महर्षि 'यतीन्द्र'
क्रियात्मक
कुण्डलिनी तंत्र
सहज
अष्टांग
योग
सहित

क्रियात्मक कुण्डलिनी तन्त्र

[सहज अष्टांग योग सहित]

[आत्म तत्व ज्ञान के सिद्धान्त, अष्टांग योग की क्रियात्मक व्याख्या, कुण्डलिनी योग के आसन एवं प्राणायाम, बंध तथा मुद्रायें, सौन्दर्यवर्द्धक व्यायाम, ऋतुओं के आधार पर आहार, धारणा और ध्यान के विशेष त्राटक, कुण्डलिनी के षट् चक्रों से आगे के विशेष विवरण, कुण्डलिनी में सेक्स उपयोग, यौन चिकित्सा, काम-कला से योग विलास आदि विषयों का मनोवैज्ञानिक एवम् वैज्ञानिक विवरण, विभिन्न साधक साधिकाओं के अनुभवों सहित]

लेखक

महर्षि 'यतीन्द्र'

(डॉ. वाई. डी. गहराना)

प्रणयाचार्य, तत्वज्ञानवेत्ता, अष्टांग योग एवं
कुण्डलिनी तन्त्र विशेषज्ञ

परिवर्द्धित एवं संशोधित नवीन संस्करण

प्रकाशक

दीप पब्लिकेशन

कंचन मार्केट, होस्पीटल रोड, आगरा—२८२ ००३

■ प्रकाशक

दीप पब्लिकेशन
कंचन मार्केट
अस्पताल रोड, आगरा-3

■ लेखक

महर्षि 'यतीन्द्र'
(डाँ. वाई.डी. गहराना)

I.S.B.N. 81-87250-17-8

■ प्रथम संस्करण : 1988 ई.
द्वितीय संस्करण : 1990 ई.
तृतीय संस्करण : 1994 ई.
चतुर्थ संस्करण : 1996 ई.
पाँचवा संस्करण– 2001 ई.

■ **मूल्य– १५०/– रूपये**
(12) $
(10) पौण्ड

■ **लेजर टाईप सैटिंग : पैराडाईज ग्राफिक्स**
17/257, छिली ईंट रोड, आगरा-3

KRIYATMAK KUNDALINI TANTARA
By : Maharshi Yatendra

परम पूज्य बाबूजी

स्व. वीर बहादुर सिंह (पिता श्री)

(जन्म १९१६ – निर्वाण १९८५)

को

सादर समर्पित

एक प्रश्न पाठकों के मन में उभर सकता है कि मेरे गुरु कौन हैं? वास्तविकता यह है कि मैं व्यक्तिगत रूप से किसी एक व्यक्ति को गुरुपन की गरिमा प्रदान नहीं कर सका हूँ, क्योंकि मेरे चौखटे में अमीबा से ब्रह्मा तक सभी गुरु रूप में ही बैठे दृष्टिगोचर हो रहे हैं। लोग अपने से बड़ों से ज्ञान लेते हैं, मैंने अपने से छोटों से भी बहुत कुछ सीखा है, और अब भी सीखता जा रहा हूँ। बहुत से प्रयोगों के माध्यम 'छोटे' ही रहे हैं। यदि वे अपने अनुभव न देते अथवा मुझे अनुभव न करने देते तो मेरा ज्ञान कहाँ से बढ़ता? मैंने जिससे जो ज्ञान मिला, पाने का प्रयत्न किया; कभी सीधे-सीधे, तो कभी उल्टा बोल कर। पुराण में एक कथा आती है कि गणेश जी से जब कहा गया कि पृथ्वी का चक्कर लगाकर शीघ्रातिशीघ्र आओ तो उन्होंने अपने माता-पिता की परिक्रमा कर सारी परिक्रमाएँ उसमें समाहित कर दी थीं। मैं जब इस वक्तव्य पर विचार करता हूँ तो देखता हूँ कि गणेश जी के साथ यह घटित हुआ हो या न हुआ हो, मेरे साथ अवश्य घटित हो गया है कि मैं सभी गुरुओं को अपने माता-पिता में ही समाहित करता हूँ, जिन्होंने मुझे इस आनन्दपूर्ण संसार में लाकर मेरी उचित परवरिश के साथ मुझे आगे बढ़ने का उन्मुक्त अवसर दिया।

आदरणीय बाबूजी (पिता श्री) ने अपने निर्वाण से एक दिन पूर्व मुझे जो प्रेरणापूर्ण शुभाशीष दिया था, यह पुस्तकाकार उसी कृपा का परिणाम है। यह श्रद्धांजलि उन्हीं को समर्पित है।

—'यतीन्द्र'

प्रकाशकीय

'महर्षि' शब्द के साथ जो आश्रमवासी स्वामी की धारणा मानस कल्पना में उभरती है उस परम्परा क़ो डॉ. वाई.डी. गहराना ने तोड़ कर सामान्य सांसारिक कार्य व्यवहार में रत रहते 'गृहस्थ-योगी' से जोड़ दिया है ।

हमारे देश की परम गोपनीय विद्या 'कुण्डलिनी-योग' को इतना सरल और वैज्ञानिक रूप देकर लेखक ने जीवन भर के अपने संचित ज्ञान को दाँव पर लगा दिया है । ऐसा करने की हिम्मत कुछ विशेष लोग ही जुटा पाते हैं ।

अष्टांग योग के सहज क्रियात्मक अभ्यास इस पुस्तक की विशेष निधि हैं । 'भोग में योग' की प्राचीन लुप्त प्राय: परिपाटी के प्रवर्तक महर्षि 'यतीन्द्र' की 'क्रियात्मक कुण्डलिनी तन्त्र (अष्टांग योग सहित)' के रूप में प्रस्तुत पुस्तक आपके हाथ में है । आप इसका अध्ययन करके लाभ उठायेंगे यही आशा है ।

—प्रकाशक

पशु समान कार्य से जिस यौन-शक्ति का नाश होता है, उसी को ऊर्ध्व गति कर देने अर्थात् मानव शरीर की महा विद्युत धारा में अथवा मस्तिष्क में परिचालित कर देने से वह वहाँ पर संचित होकर 'ओज' अथवा आध्यात्मिक शक्ति में परणित हो जाती है। समस्त सत् चिन्तन, समस्त प्रार्थनायें इस पाशविक शक्ति को ओज में रूपान्तरण करने में सहायता करती हैं, और उसी से हम आध्यात्मिक शक्ति भी प्राप्त करते हैं। यह ओज ही है मनुष्य का मनुष्यत्व, और केवल मानव शरीर में ही इस शक्ति का संग्रह सम्भव है। समस्त यौन शक्तियों को ओज में परणित करने वाला व्यक्ति देवता है। उसके वचनों में अमोघ शक्ति होती है। उसके वचनों से नूतन जगत की सृष्टि हो सकती है।

—स्वामी विवेकानन्द

('अखण्ड ज्योति' अप्रेल १९७३ से साभार)

The method of the Guru at this stage is to use the forces of Pravritti in such a way as to render them self-destructive. The passions which bind (notably the fundamental instincts for food, drink and sexual satisfaction) may be it is said so employed as to act as forces where by the particular life, of which they are the strongest physical manifestation, is raised to the universal life. Passion which has hither to run downwards and outwards (often to waste) is directed inwards and upwards and transformed to power. But it is not only the lower physical desires of eating, drinking, and sexual intercourse which must be subjugated. The sadhak must at this stage commence (the process continues until the fruit of kaulachara is obtained) to cut off all the eight bonds (Pasha) which have made him a Pashu.........

—Sir John Woodroffe.
('Shakti & Shakta' Edn., 1959, Page 151)

One of the articles of faith of the vaidik people therefore was, the sexual union led the way to bliss hereafter and must be performed in a true religious spirit to ensure spiritual welfare; want on indulgence being severely deprecated, Ida (a woman) said—If thou wilt make use of me at the sacrifice, then whatever blessing thou shalt invoke through me, shall be granted to thee.

—Shatpath Brahman—1.8-1.9 etc.
('Shakti and Shakta' by Sir John Woodroffe)

ग्रन्थावलोकन

अब्राहम मोसलोव ने कहा है—'दृश्य, तर्क सम्मत, स्पष्ट और संगत ही महत्वपूर्ण ज्ञान नहीं है, प्रत्युत वह ज्ञान भी महत्वपूर्ण है जो अदृश्य, तर्कातीत, अस्पष्ट और रहस्यपूर्ण है।' उसे स्पष्ट करना ही मेरा गन्तव्य है। आज के विज्ञान की सारी दौड़ बाहर से बाहर की ही है। अन्दर झाँकना इसकी सीमा में नहीं आता और जो इसकी सीमा में नहीं आता उसे वह अविश्वसनीय कहकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। जिन लोगों ने बहिर्मुखी दृष्टि रखी वे विज्ञानवादी बन गये, जो अन्तर्मुखी हुए वे ब्रह्मवादी बन गये। कुछ ऐसे भी रहे जो बिन देखे ही जिये, तन्त्र ऐसे व्यक्तियों को पशु-भाव से बद्ध मानता है।

योग के विविध आयामों में कुण्डलिनी तन्त्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। कुण्डलिनी की अन्तर्यात्रा स्थूलतम आधार से प्रारम्भ होकर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती हुई सूक्ष्मातिसूक्ष्म का भी अतिक्रमण कर परम सत्य तक पहुँचाती है। इस साधना की उच्चावस्था में योग के अनेक आयाम और विविध प्रक्रियायें भी समाहित हो जाती हैं इसलिये यह साधना 'सिद्धयोग' और 'महायोग' नाम से भी जानी जाती है। कुण्डलिनी आंतरिक रूपान्तरण और जागरण की वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें अस्तित्व रूपांतरण (Existencial transformation) घटित होता है।

कुण्डलिनी के 'परम सत्य' की उपलब्धि में जीवन की सारी सीमायें, विरोध, द्वन्द्व और पीड़ायें समाहित व शांत हो जाती है। साधक को उस उपलब्धि के लिये स्वयं के भीतर यात्रा करनी होती है, स्वयं के अस्तित्व के साथ ही श्रम करना होता है, उपलब्धि की खोज में निकलना होता है, अपनी ही वृत्तियों व अंत:स्थितियों के साथ साधना करनी होती है और अपने ही भीतर के सोये हुए चेतना केन्द्रों की शक्तियों को जगाना होता है।

आज तक कुण्डलिनी साधना का प्रयोग सामान्यत: आश्रमों में कुछ चुने हुए साधकों पर किया जाता रहा है। सामान्य-जन समूह उससे बिल्कुल ही अछूता और अपरिचित रहता आया है। यह मैं मानता हूँ कि उस काल की उपलब्ध विधियों के अपने खतरे थे, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की अपनी सीमायें थीं, जिसके कारण उसे गिने-चुने लोगों तक सीमित रखना एक मजबूरी थी। परन्तु आज परिस्थितियाँ बदल चुकी है। जन-साधारण का काम विषयक ज्ञान (Sex knowledge) बढ़ा है। इस समय यदि व्यक्ति को अन्तर्मुखी नहीं बनाया गया तो यह विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर सकता है। मेरी कामना है कि प्रत्येक नया दम्पत्ति शिव और शक्ति की जीवन्त मूर्ति बने। यहाँ जो ध्यान प्रक्रिया का प्रयोग दिया गया है। वह प्राचीन होकर भी अनूठा और नये अनुसंधान जैसा है। इसमें कुण्डलिनी के मार्ग में आने वाले सारे सम्भाव्य खतरों का निराकरण है। इन प्रयोगों में साधक की

योग्यता और क्षमता के अनुसार ही प्रतिक्रियाएँ घटित होती है जो उसे आगे की गहरी प्रतिक्रियाओं के लिये अधिक पुष्ट और सक्षम बनाती चलती है।

हारने वालों की एक सामान्य उक्ति है 'अपने ही सबसे बड़े दुश्मन सिद्ध होते हैं; मानव विकास के प्रारम्भ से ही यह उक्ति सिद्ध होती चली आ रही है। देव-असुर संग्राम (देव और असुर दायाद बांधव ही थे), सुग्रीव की सलाह पर बाली का वध, विभीषण की सलाह पर रावण का वध (जो कि बन्धु विद्रोह ही था), आदि इसके पौराणिक उदाहरण है। शाहजहाँ का बुढ़ापा, मीरा का विष पान आदि ऐतिहासिक उदाहरण है। आधुनिक उदाहरणों में आप समाचार पत्रों में ऐसे बहुत से समाचार देख सकते हैं। जिनमें सास ने बहू को धोखा दिया, पति ने पत्नी को जला दिया, भाभी ने ननद को मरवा दिया, प्रेमिका ने पत्नी की हत्या कर दी आदि-आदि।

सामाजिक लोगों से भी ज्यादा बुरी हार खून के सम्बन्धियों से होती है। हर बाप अपने बेटे से हारता है। कोई कितना ही खूँख्वार क्यों न हो, जब उसका बेटा अपने रंग दिखाता है तो बाप को चुप हो जाना पड़ता है (जो चुप नहीं हो पाता वह बाप आत्म हत्या करता है या संन्यासी हो जाता है)। इसमें कुछ बुनियादी कारण हैं, शक्ति की बात नहीं।

'खून के सम्बन्धी' से भी बुरी हार 'मन के सम्बन्धी' से होती है। मन के सम्बन्धी वे, जिन्हें हम प्रेमी कहते हैं। प्रेमी-प्रेमिका के बीच यदि कोई धोखे वाली बात हो जाय तो वह बहुत भयंकर होती है। व्यक्ति का जीवन आमूल परिवर्तन कर डालने वाली होती है। हमारे पूर्वजों ने प्रेम की नवीं अवस्था उन्माद (पागलपन) और दसवीं मृत्यु बताई है। सतयुग से आज तक ढेरों उदाहरण ऐसे मिलेंगे जिनमें इस कथन की सत्यता प्रमाणित होती है।

मन के सम्बन्धियों से भी ज्यादा बुरी हार आत्मा के सम्बन्धियों से मिलती है। आत्मा के सम्बन्धी—वे जो अकेले में भी आपके साथ हैं—आपकी इन्द्रियाँ। आत्मा की आत्मिक शक्ति के आधार पर ही शरीर (इन्द्रियों आदि) का निर्माण माँ के गर्भ में होता है, इसलिये इन्द्रियों का सम्बन्ध आत्मा से माना है। सारे धर्म-सम्प्रदाय, पूरी दूनियाँ के धर्मगुरु, सम्पूर्ण धार्मिक वाङ्मय एक ही बात दुहराता है 'इन्द्रियों को वश में रखो।' और अपने-अपने हिसाब से ये सभी इसके लिये विभिन्न विधियाँ बताते हैं। वे कहते हैं 'मनुष्य और पशु में मात्र यही अन्तर है कि मनुष्य इन्द्रियों पर विजय पाकर ईश्वर अर्थात् मालिक बन सकता है परन्तु पशु ऐसा नहीं कर सकता। पशु को प्रकृति की आवश्यकता के अनुरूप ही चलना पड़ता है, जबकि मनुष्य प्रकृति को संयत कर सकता है। एक प्रकृति का मालिक है और दूसरा प्रकृति का दास।' यह प्रकृति हमारी पाँच इन्द्रियाँ हैं। हमारा वर्तमान शरीर है।

जब हम अपने बारे में सोचते हैं तो हमें प्रारम्भ में 'भौतिक शरीर' दिखाई देता है। हमारी सामान्य साधना का प्रारम्भ भी यहीं से होता है और इसके लिये हम थोड़ी सी भौतिक एवं शारीरिक क्रियाएँ सम्पादित करते हैं। इससे अगली पीढ़ी पर पाँच इन्द्रियाँ आती हैं जो कि शरीर को चलाती है। एक आदमी अपशब्द बोलता है, तो दूसरा उसे सुनकर अपने हाथ-पाँव चलाने लगता है। कान की सुनी हुई बात पर

व्यक्ति क्या करे यह उसकी निजी बात है। परन्तु वास्तव में निजी बात नहीं रहती क्योंकि ज्योंही एक ने अपशब्द कहे, दूसरा आवेश में आ जाता है। यही दासत्व है।

मैंने लोगों को खाँसी-जुकाम में आइसक्रीम खाते देखा है क्योंकि वे अपनी जीभ के दास है। जीभ को यह नहीं कह पाते कि स्वास्थ्य ठीक हो जाने पर ही आइसक्रीम मिलेगी, पहले नहीं। मालिक हो तो ऐसा कह सकें, दास कहीं ऐसा बोल सकता है ? उसका काम तो मालिक की आज्ञा का पालन करना है। आँखों ने आज्ञा दी शरीर को कि चलो वहाँ एक सुन्दरी है उसे हमें पास से दिखाओ। बस शरीर मियाँ चल दिये उसके पास। यदि वहाँ जूते पड़े वह शरीर पर। आज्ञा देने वाली आँखें तो मस्त हैं। उन्हें कोई अन्तर नहीं पड़ा। इसी प्रकार कामेन्द्रिय जब जैसे चाहती है, अपनी सेवा कराती है और व्यक्ति बीसियों प्रकार के व्यभिचारों में लिप्त हो जाता है। यदि वह दास न होकर मालिक हो तो व्यभिचारी बने बिना काम तुष्टि पाकर भी ब्रह्मचारी बना रह सकता है। वह जब चाहे वीर्य की अधोगति कर सकता है और जब चाहे उसकी ऊर्ध्वगति कर सकता है। इन्द्रियों का सम्बन्ध मन से होता है। इसलिये इनका मालिक बनने के लिये व्यक्ति को मानसिक क्रियाएँ सम्पादित करनी होती हैं।

अंत: प्रकृति पर विजय पाने की तकनीक 'योग' कहलाती है क्योंकि इस विधि में **अन्त: प्रकृति का वाह्य प्रकृति से 'योग' होता है।** अन्त: प्रकृति के संयम द्वारा वाह्य प्रकृति का संयम हो जाता है। चूँकि प्रकृति तो एक है। अंत: वाह्य की सीमा रेखा हमने अपनी आसानी के लिये बना ली है जो परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है, जैसे आगरा शहर में रहने वाला व्यक्ति जब लन्दन में होता है तो उसकी सीमा रेखा पूरा भारत होता है और वह अपने को भारत का निवासी बताता है। जब वह भारत में होता है तो अपने को उत्तर प्रदेश का निवासी बताता है। उत्तर प्रदेश में आ जाने पर वह आगरा का निवासी बताता है। इस प्रकार उसकी सीमा रेखा परिवर्तित होती जाती है। यदि यही व्यक्ति लन्दन में कहे कि मैं आगरा का हूँ तो दूसरे व्यक्ति को पूछना पड़ेगा आगरा कहाँ है ? वह कहेगा उत्तर प्रदेश में। फिर वह उत्तर प्रदेश के बारे में पूछेगा तब वह कहेगा कि भारत में। तो लन्दन वाला कहेगा—अच्छा तो आप भारत के हैं, तो आप भारत ही बतलाइये। आगरा बोलने का क्या फायदा जो मैं जानता ही नहीं। व्यावहारिक धर्म का प्रारम्भ वहीं से होता है जहाँ तक आप जानते हैं।

दुनियाँ में फैले ढेरों मत-मतान्तरों में एक ही कमी है कि वे दूसरे के स्तर पर ध्यान दिये बिना पूरी दुनियाँ को अपने स्तरसे बाँध लेना चाहते हैं। ५ अप्रैल सन् १९०० में स्वामी विवेकानन्द ने सेन फ्रांसिस्को में अपने भाषण में कहा था— We are always trying to ignore the standard of another, trying to bind the whole to our standard. (हम दूसरे के स्तर पर ध्यान दिये बिना पूरे भूमंडल को अपने स्तर में बाँध लेना चाहते है) जब तक हम अपने स्तर से बात करेंगे तब तक वह कोरा आदर्शवाद बनेगा। पूरा का पूरा दर्शनं शास्त्र उन्हीं ऊँची हस्तियों के अपने अपने स्तंर से बात करने का परिणाम है। व्यावहारिक धर्म दूसरे के स्तर तक उतर कर बात करने से प्रारम्भ होता है। इसी सन्दर्भ में योग कहता है सभी के प्रति प्रेमपूर्ण बनो। प्रेम के लिये आपको अपना स्तर छोड़ कर दूसरे के स्तर पर

आना पड़ता है । जब तक दोनों एक स्तर पर न आ जाय प्रेम नहीं पनपता ।, एक स्तर पर आना और एक स्तर पर होना, यह दो अलग-अलग बातें हैं । किसी स्तर पर आने के लिये दूसरे को नीचे से ऊपर अथवा ऊपर से नीचे आना पड़ता है ।

दो व्यक्तियों का एक ही स्तर पर आकर किया गया प्रेम अन्धा नहीं होता क्योंकि बीच में 'ज्ञान' होता है । परन्तु प्रकृतिगत 'एक ही स्तर' वालों का प्रेम अन्धा हो जाता है चूँकि उनमें आकर्षण अन्धा होता है चाहे वह किसी वस्तु, प्राणी अथवा देवता के प्रति ही क्यों न हो । अन्धा होना, और अँधेरे में चलना ही भेड़ की तरह चलना है । सारी दुनियाँ के दार्शनिक कहते हैं कि मुक्ति और बन्धन में अन्तर ज्ञान और अज्ञान का है । अन्धे होने से तात्पर्य इसी अज्ञान से है । वे कहते हैं—तमसो मा ज्योतिर्गमय । ज्ञान होने से प्रकृति (अन्त: और वाह्य) दो न होकर एक हो जाती हैं । इसी अद्धैत की शिक्षा वेदान्त देता है । वह कहता है—तुम बदलो तो तुम्हारे लिये सारी दुनियाँ बदल जायगी । क्योंकि तुम; मैं या जो कुछ भी दुनियाँ में है सबएक ही है । 'मनुममतांकल' के अनुसार यह सब शास्त्रों में पढ़ कर सीखने की बातें नहीं हैं, क्रियात्मक रूप में करने की हैं। धारणा, ध्यान और समाधि का मूल 'संयम; (Control over body, Mastery over your own body) ही है । महर्षि पतंजलि ने कहा है—त्रयमेकत्र संयम: । उससे क्या होता है ?—तज्जयात् प्रज्ञालोक: (उसके जय करने से ज्ञान का प्रकाश होता है ।)

संसार को दु:खपूर्ण कहने वालों की संख्या आज कम नहीं है । **यह वही लोग हैं जिन्होंने दुखी रहने की आदत डाल ली है।** आप चौकेंगे परन्तु यह एक वास्तविकता है । कुछ वर्ष पहले एक पिक्चर आई थी 'दो ऑखें बारह हाथ' । उसमें, एक जेलर, प्रयोग के रूप में अपने कैदियों को सुधारने के विचार से उनकी हथकड़ी-बेड़ी खुलवा देता है । परन्तु जब वे कैदी रात को बिना बेड़ियों के सोते हैं तो उन्हें नींद नहीं आती । जब वे बहुत परेशान हो जाते हैं तो अपनी खुली हुई बेड़ियों को अपनी टाँगों पर रख लेते हैं तब उन्हें नींद आ पाती है । इन कैदियों को बेड़ियों के सहित सोने की आदत पड़ गई थी ।

एक पालतू तोते के पिंजड़े को आप खुला छोड़ दें तो भी तोता पिंजड़े से बाहर जाकर खुली हवा में जाना नहीं चाहता । यदि उसे धक्का देकर बाहर उड़ा भी दें, तो एक चक्कर लगाकर वहीं आ जाता है । हममें बहुत से ऐसी बँधी आदतों वाले हैं जिन्हें खुले में जाने का, आनन्द में जाने का मार्ग बताओ तो जाने को तैयार नहीं हैं । बहुत से लोग अपने पूर्वजों के कुओं का खारा पानी पीना केवल इसलिये नहीं छोड़तें क्योंकि वह परम्परागत है । ऐसी दु:खमय आदत वालों के लिये यह दिव्य जीवन का मार्ग-दर्शन करने वाली पुस्तक व्यर्थ है । इस पुस्तक से लाभ केवल वे उठा सकते हैं जो अपने मस्तिष्क का उपयोग करना जानते हैं, मौलिक विचारों से युक्त संवेदनशील, विद्वान, परन्तु धैर्यवान शोधार्थी है ।

दिव्य जीवन के बारे में जैसे कहा जाता है—'वहाँ सभी समस्याएँ, बुराइयाँ और दु:ख समाप्त हो जाते हैं । वहाँ सम्पूर्ण सनातन चिन्मय आनन्द की अनुभूति होती है ।' क्या यह सम्भव है ? वेदांत कहता है—हाँ ! है । यह मात्र कहने या विचारने से नहीं

होता कि 'मैं खुश हो जाऊँ, मैं आनन्दमय हो जाऊँ;' करने से ही होता है। स्वामी चिन्मयानन्द ने कहा है—Act, if you want to be happy, create the happiness, by building up the conditions necessary for real and substantial happiness. (यदि तुम प्रसन्न होना चाहते हो तो वास्तविक आनन्द अर्जित करने के लिये आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करो) **आपके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने के लिये एक विचार ही बहुत है—जैसे आप वास्तव में हैं, उसे पहिचानें** (Realise it)। आपकी दिव्य-जीवन की यात्रा का प्रारम्भ इस पुस्तक में 'यहीं' से हुआ है।

सम्पूर्ण कुण्डलिनी साधना की श्रृंखला पर यदि आज की शैक्षिक प्रणाली के अनुपात से दृष्टिपात करें तो जो कुछ सांप्रदायिक सीमा के अन्तर्गत हम लोग धर्म व्यवहार और जीवन व्यवहार सीखते हैं वह उतना है जितना एक बच्चा किंडर गार्डन स्कूल (Nursery & K.G.) में सीखता है। जहाँ पर उसके लिये 'आई' माने 'टीचर', और फिर थोड़ी देर बाद 'आई' माने 'मम्मी' हो जाता है। जब वह यह समझ लेता है कि आई माने न टीचर, न मम्मी और न मैं ही हूँ परन्तू मात्र एक सर्वनाम 'मैं' है, वह पहली कक्षा में आने के योग्य हो जाता है; वह आध्यात्मिक स्तर पर चलाया हुआ कर्मकांड-पूर्ण जीवन है। जब तक वह यह समझता है कि धर्म और कर्मकांड एक हैं वह प्राइमरी स्कूल के छात्र के तुल्य ज्ञानी है। जब वह धर्म और कर्मकाण्ड को व्यावहारिक रूप में अलग-अलग देखने लगता है, तो समझो जूनियर क्लास में पहुँच गया। यहाँ योग साधनाएँ (जो धर्मसांप्रदायिकता से परे हैं और मानव प्रकृति के निकट हैं) साधक का जीवन ऊँचा उठाती है। जब साधक वाह्य प्रकृति का अन्तः प्रकृति से सामंजस्य बिठाने लगे तो समझो उसकी जूनियर क्लास पूरी हो गई। सीनियर क्लास (हाई स्कूल) कुण्डलिनी के षडचक्र भेदन में पूरी हो जाती है। सहस्त्रार से जहाँ परम प्रकृति (Cosmic nature) का शून्यत्व (Zero poinit) प्रारम्भ होता है तब जीवन (Life) का श्री गणेश होता है। इससे आगे की साधनाओं में अन्तहीन गहराई है और अन्तहीन आनन्द है। एक प्रकार से साधना और आनन्द समानुपाती है। हाई स्कूल पूरी होने के बाद आता है इन्टरमीडियेट—माध्यमिक अवस्था। जहाँ साधक 'संसार और साधना' दोनों के बीच सामंजस्य (माध्यमिक अवस्था) उत्पन्न करके अपने को 'उपाधि' के उपयुक्त बनाने का प्रयत्न करता है।

उपाधि के उपयुक्त साधक में—जो कुछ उसने अब तक सीखा है उसे बाँटने की, औरों को सिखाने की इच्छा जाग्रत होती है। इस सिखाने में भी वह स्वयं सीखता जाता है और यह सीखना उसका कभी समाप्त नहीं होता—चाहे वह ऋषि बने, यति बने या मुनि बने। यह आप सभी जानते हैं—डी. लिट्., डी. फिल. आदि करके भी व्यक्ति की शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती, वह उत्तरोत्तर आगे बढ़ती जाती है।

स्वामी शिवानन्द ने कहा है—'Freedom is the goal of all nature. Bondage of the soul is death and freedom of the soul is the liberation or conquest of death.' (**मुक्त होना ही मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है,** आत्मा का बंधनों में होना ही मृत्यु है और स्वतन्त्र होना ही मुक्ति अर्थात्

मृत्यु पर विजय है) ध्यान रखना, वस्तुओं के त्यागने से आप मुक्त नहीं होते, जब वस्तुएँ आपको त्यागने लगें तब मुक्ति प्रारम्भ होती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—You need not to give up the things, things will give you up. (तुम्हें वस्तुएँ त्यागने की आवश्यकता नहीं है, वस्तुएँ आपको त्याग देंगी)। तत्सम्बन्धी विधियाँ इस पुस्तक में आपको मिलेंगी।

यह पुस्तक दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग यम नियमादि के संयम की जन साधारण के उपयुक्त व्याख्या करते हुए इस बात पर जोर देता है कि कोई भी अलौकिक शक्ति जाग्रत करने से पूर्व उसका सिद्ध कर लेना अत्यावश्यक है। इन शक्तियों का वैज्ञानिक विवेचन क्या है तथा किस प्रकार विभिन्न समुदायों में उनका प्रचलन होता, यह स्पष्ट कर दिया गया है। दूसरा भाग परम गुप्त रहस्यों का उद्घाटन करते हुए बताता है कि आप एक सामान्य गृहस्थ के रूप में किस प्रकार इस अलौकिक शक्ति को जाग्रत कर परमानन्द लाभ ले सकते हैं? ध्यानपूर्वक अध्ययन करने एवं क्रियात्मक प्रयोगों से आप यह भली भाँति समझ लेगें कि इन सिद्ध-शक्तियों को प्राप्त करना असम्भव नहीं है, केवल थोड़ी साधना और सुदृढ़ इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। यह एक विचित्र बात है कि अलौकिक शक्तियों के इस देश में अब तक हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई जिसमें इस विषय का साँगोपाँग खुलकर वैज्ञानिक विवेचन किया गया हो। इस कमी को पूरा करने की दिशा में प्रस्तुत पुस्तक को एक विनम्र प्रयास कहा जा सकता है।

इस पुस्तक को लिखने की बात सन् १९६४ से मेरे मस्तिष्क में थी। तब से मैं बराबर इसे टालता आ रहा था। कारण यह था कि मैंने योग सिखाने में एक बात विशेष रूप से नोट की थी कि जहाँ तक सामान्य योग की बात है सबके लिये आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि क्रियाएँ लगभग एक जैसी हैं परन्तु जहाँ योग की बारीकियों में जाने की बात आती है तो प्रत्येक व्यक्ति के लिये आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान आदि सभी क्रियाएँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। अब प्रत्येक व्यक्ति के लिये अलग-अलग पुस्तक तो लिखी नहीं जा सकती, और यदि आवश्यक वारीकियाँ न दी जा सकें तो सामान्य स्तर की पुस्तकें बाजार में उपलब्ध हैं ही। फिर इस नये प्रयास की आवश्यकता ही क्या है?

एक दिन डाक्टर जे.टी. कैन्ट की रैपर्टरी (लक्षणावली) पलटते-पलटते विचार अया कि मेरे पास जो रोगी चिकित्सा के लिये आते हैं उनमें बहुत से रैपर्टरी में दिये गये लक्षणों से अलग ही रोग लक्षणों वाले होते हैं। फिर भी मुझे रैपर्टरी से उनकी चिकित्सा करने में सहायता मिलती है। यदि डॉ. कैंट अथवा दूसरे विद्वान लोग यह सोच कर पुस्तकें न लिखते कि जो हम लिख रहे हैं ठीक उसी प्रकार के रोगी तो किसी के पास आने नहीं हैं (यह एक अनुभव सिद्ध बात है), तो पुस्तक का क्या लाभ?" तो मैं आज किसी रोगी की चिकित्सा करने के योग्य न बन पाता। इसी विचार से प्रेरणा लेकर पुस्तक का श्री गणेश करने की योजना बना डाली।

समय का सुयोग कहिये, उन्हीं दिनों प्रकाशक श्री मुनेन्द्र कुमार वार्ष्णेय जी मेरे क्लीनिक पर सुबह-सुबह उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'शाबर तन्त्र शास्त्र' के सम्बन्ध

में बातें करने के लिये पधारे। उस समय मैं वहाँ योग की क्लास ले रहा था। उन्हें मेरी बातें शायद कुछ जँची, तो उन्होंने मुझसे कुण्डलिनी योग पर क्रियात्मक ज्ञान देने वाली पुस्तक लिखने की बात की। चूँकि मैं सन् १९६५ के पहले से इस विषय की शिक्षा आसाम, बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र, तामिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, अंडमान निकोबार आदि प्रदेशों में विभिन्न भाषा-भाषी जिज्ञासुओं को देता आ रहा था अत: आवश्यक मसाले (सामग्री) की मेरे पास कमी नहीं थी। समस्या केवल समय के अभाव की थी। प्रकाशक महोदय ने यथेष्ट समय देकर वह समस्या हल कर दी। अत: लगभग ढाई वर्ष में यह कलेवर आपकी भेंट किया जा सका है। पुस्तक का मसाला लगभग १९५६ ई. से संचित किया हुआ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न स्तर, वर्ग एवं आयु के व्यक्तियों की सामान्य परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की सरलतम योग विधियों द्वारा कुण्डलिनी जागरण की प्रेरणा देने का प्रयत्न किया है। आपकी आयु, परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप जो युक्ति-युक्त हो वही मार्ग अपना कर आप आगे बढ़ने का प्रयत्न करें। कुण्डलिनी योग एक दम निजी बात है। आप दूसरे को देख कर, दूसरे के अनुसार चलने का प्रयत्न कम से कम कुण्डलिनी मार्ग में नहीं कर सकते। **ब्रह्मचारी, व्यभिचारी, अनाचारी आदि कोई भी बिना यह विचार किये कि अब तक वह क्या करता रहा है, कितने पाप करता रहा है, इस पुस्तक की सहायता से कुण्डलिनी यात्रा का श्री गणेश कर सकता है।**

जिसे अपनी धर्मचर्या पर विशेष घमण्ड हो, जो अपने को ईश्वर का देव दूत समझ कर बैठा हो वह इस पुस्तक की सहायता से अपना सही रूप (स्तर) माप सकता है और अपनी दिनचर्या सुधार कर उचित मार्ग पर चल सकता है। जो योगाचार्य 'अन्धे के कन्धे पर अन्धा चढ़े दोनों मिल कुए में गिरे,' वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं, उन्हें यह पुस्तक 'अँधे को लाठी का सहारा' चरितार्थ होगी। हमें अपने पूर्वज शिव-शंकर भगवान का ऋणी होना चाहिये जिन्होंने आत्म यज्ञ के रूप में कुण्डलिनी योग की विद्या का आधार रूप 'लिंगार्चना' का प्रसार करके व्यक्ति मात्र को 'ईश्वर' बनने का अवसर प्रदान किया। इन प्राचीन रहस्यों की निधि को सुरक्षित रखने में यदि हमारे ऋषिमुनि जागरूक नहीं रहते तो हम चिंतन की दृष्टि से दरिद्र होकर तर्क के चौराहे पर ही चक्कर काटते फिरते।

संसार की सारी संपदा खुली पड़ी है, जितना चाहो समेटो। वे लोग जो वीर हैं, पात्र हैं, वे समेट लेते हैं, भोगते हैं, और शेष में, कुछ उन वीरों को द्वेषवश भला-बुरा कहते हैं तो कुछ उनके साथ हो उन्हें समर्पित हो जाते हैं। प्रमुख बात व्यक्ति की अपनी पात्रता और क्षमता की होती है। जिस तरह नृत्य में विविध मुद्रायें बनती हैं उसी तरह जड़ और चेतन की अनन्त मुद्रायें विभिन्न विधाओं के रूप में प्रकट होती है। मैथुन में शिव-शिवा की इन्हीं मुद्राओं के मूल स्वरूप से उस सीमा तक एकाकार हुआ जाता है कि व्यक्ति अपने स्व की सीमा के बंधनों को भूलकर प्रकृति से एक रूप हो जाय। ऐसा भोग ही मोक्ष बन जाता है।

सर जान वुडरौफ ने कुण्डलिनी के बारे में कहा है—Kundalini is the static form of the creative energy in bodies which is the Source of all energies, including Prome (the life principle or vitality). विदेह चेतना (Bodiless consciousness) के सम्बन्ध में विवरण देते हुए वे कहते हैं 'The bases of this yoga are of a highly metaphysical and scientific character.' स्वामी दयानन्द ने 'राज योग' के अन्तर्गत लिखा है कि 'राजयोग, का सम्पूर्ण क्रियात्मक अभ्यास मानसिक है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिज्ञासु मनस और उसके कार्य-कलापों को पहले समझ ले।'

इस पुस्तक में मेरुदंड, मस्तिष्क आदि योग से सम्बन्धित विशेष शरीरांगों के विषय में स्पष्टीकरण देकर विषय को समझाने का प्रयत्न किया है। मानसिक अभ्यासों के साथ ही मनोविज्ञान के स्पष्टीकरण भी दे दिये हैं जिससे साधक कहीं भी 'दर्शन' में न उलझें। चक्र-दर्शन में, जहाँ दूसरे विश्लेषक उन्हें दिव्य दर्शन की अनुभूति मानते हैं, यांत्रिक चित्रांकन का रूप मानकर साधकों को मनोवैज्ञानिक दिव्य-दर्शन से बचाने की चेष्टा की है और साधकों को शोध के लिये नई प्रेरणा दी है। दिव्य दर्शन की अनुभूति सम्बन्धी झलक Sir Arthur Avalon की The Serpent Power नामक पुस्तक के Preface to Third Edition में इस प्रकार मिलती है—'The volume contains plates of the Cakras as said to have been seen Clairvoyantly as also a plate of the Cakras according to Johann George Gichtel,.........'

'चक्र-दर्शन रहस्य' जैसा तांत्रिक शास्त्रों में उपलब्ध है पुस्तक में दिया गया है। परन्तु इस बात पर कहीं जोर नहीं दिया गया है कि साधक उन चक्रों का वर्णनानुसार अथवा चित्रानुसार मानसिक चिन्तन इस सीमा तक करे कि उसे 'दिव्य-दृष्टि-स्वरूप' उनका 'मनोवैज्ञानिक दर्शन' होने लगे। मेरे विचार से इससे बड़ी भूल और कोई नहीं हो सकती कि साधक मकान के दर्शन करने के स्थान पर मकान के नक्शे (Map of the house) के दर्शन करे। चक्रों के चित्र कुण्डलिनी ज्ञान और प्रक्रिया का रहस्योद्घाटन करने वाले नक्शे हैं, वे स्वयं कुण्डलिनी के शक्ति-चित्र नहीं हैं। साधक इसे अच्छी प्रकार समझ लें।

इस विषय के अच्छे शोधकों से मेरा एक ही निवेदन है कि वे लोग यन्त्रों में प्रयुक्त होने वाली भाषा के आधार पर कुण्डलिनी के यन्त्र-चित्रों का रहस्योद्घांटन करने का प्रयत्न करें। इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य बड़ा गुरुतर है। गुरुतर इसलिये, क्योंकि जो सदियों से परम गुप्त रहस्य बनाया हुआ है उसे प्रकट करने वाले को बहुत सी चोटें झेलनी पड़ेंगी। सारी चोटों से ऊँची चोट उसकी अपनी साधना की होगी। कच्चा साधक इस कार्य को कभी नहीं कर सकेगा, क्योंकि बहुत से 'तांत्रिक सूत्र' अलभ्य है। खोजने पर भी मिलते नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति की खोज की सीमा होती है। इसलिये जो खोजी होने के साथ-साथ क्रियात्मक साधक होगा, कोरा विश्लेषक नहीं, वह इस कार्य में आगे बढ़ सकेगा। अलभ्य सूत्रों को आगे और पीछे के प्राप्य

सूत्रों से जोड़ने वाला साधक का अपना 'क्रियात्मक अभ्यास के आधार पर अर्जित ज्ञान' होगा ।

इसमें सन्देह नहीं कि तांत्रिक पद्धति की अपेक्षा दार्शनिक पद्धति के परिणाम अधिक परिश्रम तथा समय में प्राप्त हो पाते हैं। साथ ही दार्शनिक पद्धति में मनोवैज्ञानिक परिणामावस्था से भी बचना पड़ता है जहाँ अधिकतर साधक चूक जाता है, और उच्चावस्था प्राप्त होने से पूर्व ही अपने अहं की झूठी तुष्टि पाकर योग भ्रष्ट हो जाता है । स्वामी मुक्तानन्द ने कहा है—'ऐसे अनेक मार्ग हैं जिनमें अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति अत्यधिक प्रयास और कठिनाई के बाद हो पाती है।' **यदि कुण्डलिनी प्राकृतिक सहज क्रियाओं से जाग्रत हो तो शरीर के लिये आवश्यक और उचित आसनादि क्रियाएँ स्वत: ही होने लगती हैं।** जो अप्राकृतिक विधियों से बलपूर्वक कुण्डलिनी जाग्रत करते हैं, उनकी शक्ति एक सीमा से अधिक कुपित हो जाय तो उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ सकता है ।

तन्त्र के अनुसार 'काम-कला विलास' कुण्डलिनी जाग्रत करने की प्राकृतिक सहज प्रक्रिया है। कुण्डलिनी के छ: चक्रों का अनुभव केवल योग (शिव और शक्ति का) और ध्यान (सतत् चेतना) के द्वारा ही किया जा सकता है । आप उन्हें शरीर की शल्य-क्रिया करके नहीं खोज पायेंगे क्योंकि वे शरीर में नहीं हैं। इनकी **सम्पूर्ण अनुभूतियाँ** ध्यान करने वाले की प्रकृति और उसकी श्रद्धा की गहराई पर निर्भर करती हैं। इस प्रकार आप देखते हैं कि 'कुण्डलिनी-योग' उपासना की कोई शैली विशेष नहीं है । न वह किसी विशेष उपास्य, भाषा या सम्प्रदाय से सम्बन्धित है । ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करना भी उसका अंग नहीं है । वह तो उन सभी उपासना-पद्धतियों के मूल में है जो सहज आनन्द प्रदान करने वाली हैं, और प्राकृतिक रूप से विभिन्न संस्कृतियों के समुदायों में प्रचलित हैं ।

शास्त्रों में कहा गया है—

'आहार निर्हार विहार योगाः सुसंवृता धर्म विदा तु कार्याः ।'

(आहार (Eating), निर्हार (Evacuation), विहार (Sexual Intercourses) और योग अर्थात् समाधि द्वार (yoga) धर्मज्ञ के लिये गुप्त क्रियायें हैं ।) लौकिक व्यवहार में आप लोग अपने गुह्यांग सम्भव उपायों से आवृत्त रखते हैं परन्तु उनमें कुछ दोष आ जाने पर उन्हें अनावृत्त करने में नहीं झिझकते । जो उस समय भी संकोच करते हैं वे अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारते हैं । यौन रोग होने पर कौन चिकित्सक के पास नहीं जाता ? महिला चिकित्सक के अभाव में महिलायें भी पुरुष चिकित्सकों की सहायता लेती हैं; और उन सब बातों का कोई बुरा नहीं मानता ।

कुण्डलिनी योग की सहज और प्राकृतिक विधियाँ 'गुह्यांग आवरण' के चक्कर में इस सीमा तक भुलाई जा चुकी हैं कि मुझे विवश होकर संस्कार सुलभ संकोच को त्याग कर इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता पड़ गई । फिर भी मैंने दार्शनिक और तांत्रिक दोनों पहलुओं के विवेचन मर्मज्ञों और साधकों के लाभार्थ देने का प्रयत्न किया

है। साथ ही ऐसी क्रियात्मक सरल और सहज पद्धतियाँ वरण की हैं कि सम्पूर्ण सामाजिक मर्यादाओं का आवश्यक मात्रा में पालन करते हुए साधक अपनी पत्नी की सहायता से कुल-कुण्डलिनी-मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। जो परिस्थितिवश पत्नी-रहित हैं—उनके लिए स्थान-स्थान पर संन्यासियों वाली सहज पद्धतियाँ दे दी गई हैं।

कुण्डलिनी तन्त्र को 'गुह्याद् गुह्यतमम्' (गुप्त से भी गुप्त) तथा 'सेवितम् चाति गुप्तम्' (अत्यन्त गुप्त रूप से सेवनीय) आदि कहा गया है। **गुह्यांग का आवरण सभ्यता का प्रतीक है इसलिए गुह्य बातों तथा क्रियाओं को अनावृत्त नहीं करना चाहिए।** यह गुह्यांग आवरण वाला सिद्धान्त मानने के कारण ही आज भी टी.वी. और रेडियो आदि में आप परिवार नियोजन सम्बन्धी विज्ञापन इस प्रकार के देखते हैं—'जब तक चाहें बच्चा न पायें, अधिक जानकारी के लिए अपने पास के किसी परिवार नियोजन केन्द्र में जायें।' ऐसा ही विज्ञापन कुल कुण्डलिनी का रहता था कि 'जब चाहें ईश्वर को पायें, अधिक जानकारी के लिए योग्य गुरु के पास जायें।' जो ज्ञान गुरु सिखाता है वह जन-साधारण में नहीं कहा जा सकता। गुरु भी शिष्य को भली प्रकार ठोक बजाकर देख लेता था कि बातें गुप्त रख सकेगा या नहीं ?

शिव सूत्र में कहा है—**'लोकानन्द समाधि सुखम्।'**

संसार में सर्व व्यवहार करते हुए आनन्द की मस्ती में रहना ही सच्चा समाधि सुख है। 'तैत्तिरीय उपनिषद' कहता है—

आनन्दाद्धैव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवंति आनन्द प्रयन्त्यभि संविशंति ॥

विश्व के सब प्राणियों का जन्म आनन्द से हुआ है। आनन्द में ही जीवन जाता है (नहीं जाता, तो आप कहीं गलती पर हैं), और आनन्द में ही उसका लय होता है।

आनन्द हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। जिसके पास कुण्डलिनी सिद्धि हेतु एक नारी हो उसे आनन्द की कमी नहीं। **दर्शन कहता है कि जहाँ मोक्ष है वहाँ जगत का भोग विलास नहीं और जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं। लेकिन कुण्डलिनी में सांसारिक भोग व मोक्ष दोनों ही सन्निहित हैं।** कुण्डलिनी परम्परा के अनेक गृहस्थ संत महात्मा ऐसे हैं जिन्होंने अपना पूरा जीवन भोग-प्रपंच-मय आनन्दित व्यतीत करते हुए भी ईश्वरत्व को प्राप्त कर लिया था। इसलिए मैं चाहता हूँ कि विवाह होने तक व्यक्ति यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि द्वारा शरीर व मन की पुष्टि करे और उसे सन्तुलित बनाये, तत्पश्चात् अपनी धर्म पत्नी (मात्र पत्नी नहीं) के साथ कुल-कुण्डलिनी शक्ति को अपनी परिवार वृद्धि के साथ-साथ ही इतना आगे बढ़ाये कि वह अर्धनारीश्वर बन सके। अर्धनारीश्वर की स्थिति से सहस्रार आरम्भ होता है। स्वामी पूर्णानन्द ने ठीक ही कहा है—

हुंकारेणैव देवीं यमनियमसमभ्यासशील: सुशीलो
ज्ञात्वा श्री नाथ वक्त्रात्क्रममिति च महामोक्षवर्त्म प्रकाशम्।

ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति स तां शुद्ध बुद्धि स्वभावो
भित्वा तल्लिग रूपं पवनदहनयोराक्रमेणैव गुप्तम् ॥ —षटचक्रनिरूपण ५०

[जिसका स्वभाव यम नियम आदि के अभ्यास से सुशील हो चुका है, जो श्री (त्रिपुर सुन्दरी-कुण्डलिनी) के नाथ (वश में करने वाले अर्थात् गुरु) के मुख से महान मोक्ष की खोज के मार्ग की विधि सीखता है। वह शुद्ध-बुद्धि स्वभाव वाला बन्द मुँह के लिंग को हुंकार द्वारा घुसा कर (काम) वायु और (काम) अग्नि के आक्रमण से गुप्त रूप में उसे (कुण्डलिनी को) ब्रह्मद्वार पर रख देता है।]

इस सब के लिए सर्व वर्णाश्रमों में उपयुक्त गृहस्थाश्रम ही है। जिसने गृहस्थ आश्रम में आनन्दित जीवन व्यतीत करते हुए कुण्डलिनी का नित्य-आनन्द अमृत-रस पान कर लिया वह अर्धनारीश्वर की स्थिति आने पर स्वतः ही सत्य-संन्यासी हो जायगा, स्वतः मुक्त हो जायगा।

पुस्तक तांत्रिक होने के कारण कुछ लोगों को वाम मार्ग का पक्ष लेती हुई प्रतीत हो सकती है। वास्तव में यहाँ किसी विशेष मार्ग का पक्ष नहीं लिया गया। जैसा जहाँ 'सत्य' मिला है, प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है। हमारे बहुत से गण्य मान्य सन्त जानबूझकर सत्य छिपाते रहे हैं, जो हानिप्रद ही रहा है। स्वामी विवेकानन्द सन् १९०० में सेनफ्रान्सिस्को में ब्रह्मचर्य (Chastity) की बात करते-करते संकोच कर गये और बोले—'It is a long subject, of course, but I want to tell you : Public discussions of this subject are not to the taste of this country." (वास्तव में यह एक लम्बा विषय है, परन्तु मैं एक और बात आपको कहना चाहता हूँ कि इस विषय पर खुली बात इस देश में पसन्द नहीं की जाती है।) (The Complete Works, Vol. I, 11th Edition, August 1962, Page 520.) हमारी संस्कृति की ऐसी ही संकोची प्रथा के कारण बहुत से महान सन्त या तो संस्कृति छोड़ गये (वाम मार्गी हो गये), अथवा गुप्त रहस्यों को अपने साथ ही अपनी चिता में भस्म कर गये। जो वास्तविक सन्त बचे उन्होंने विभिन्न कारणों से गुप्त रहस्यों के विषय पर मुँह बन्द रखे और जो दिखावटी सन्त थे उन्होंने मार्ग छोड़कर जाने वाले सन्तों को वाममार्गी कहकर बदनाम करना प्रारम्भ कर दिया जिससे जनता में उनके प्रति घृणा भाव उत्पन्न हो जाय। जबकि अन्दर-अन्दर यह लोग सारे वाम-मार्गी कार्य करते रहे। परिणाम यह हुआ कि 'शक्ति' तो इनके हाथ लगी नहीं, व्यभिचारी और हो गये अथवा 'भ्रष्ट साधक' होकर रोगी हो गये। ऐसे भ्रष्ट साधकों ने ब्रह्मचर्य के प्रति अफवाहें फैला दीं कि जो ब्रह्मचारी बनने का प्रयत्न करेगा वह रोगी हो जायगा। स्वामी विवेकानन्द ने ऐसे गुरुओं को फटकारा है—How do these teachers know it? Have they been chaste? Those unchaste, impure fools, lustful creatures, want to drag the whole world down to their level ! (यह गुरु इसे क्या जाने ? क्या वे कभी ब्रह्मचारी रहे ? वे अपवित्र व्यभिचारी मूर्ख, वासना के कीड़े, सम्पूर्ण सृष्टि को अपने स्तर पर ला पटकना चाहते हैं।)

यूँ तो योग तन्त्र में पूर्णता पाना पिछले संस्कारों पर निर्भर करता है। जीवन भर योग तन्त्र का अभ्यास करते रहने पर भी जो मुझे मिला है समुद्र में से बाल्टी भर लेने के समान है। परन्तु, यह इतना ही, यह विश्वास करने भर के लिये काफी है कि उचित और सही मार्ग योग तन्त्र के अलावा कोई नहीं है। व्यक्ति को योग भ्रष्ट होने में देर नहीं लगती, परन्तु जो सावधानी से बढ़ता है वह अवश्य लक्ष्य प्राप्त करता है। इस मार्ग की एक और विशेषता है कि जो व्यक्ति जिस स्तर तक योग तन्त्र को इस जन्म में पूरा कर पाता है, वह अगले जन्म में उससे आगे प्रारम्भ करता है। अर्थात् इस जीवन का किया हुआ योगतन्त्र अपूर्ण रह जाने पर व्यर्थ नहीं होता। हो सकता है, आप में कितने ऐसे हों जिनका योग-तन्त्र पूर्ण होने में बहुत थोड़ा श्रम बाकी हो, शेष शक्ति पहले ही अर्जित कर ली हो? फिर क्यों न आप इसे अभी से क्रियात्मक रूप देना प्रारम्भ करें।

गुरु खोजने की चिंता आप न करें 'गुरु स्वतः ही मिलता है'—यह भी योग तन्त्र की एक अनुभव सिद्ध बात है। गुरु आपको मिल जायगा। आप अपनी यात्रा का प्रारम्भ कीजिये। जब तक गुरु न मिले, यह पुस्तक आपका मार्ग दर्शन करेगी। परिस्थिति के लिये मत रोइये, समय के अभाव के लिये मत रोइये, पाँच मिनट हैं तो पाँच मिनट ही कीजिये। आधा घण्टा बैठे-बैठे सोचने से तो पाँच मिनट कुछ क्रियात्मक करना अधिक उपयुक्त है।

'मनु ममता काव्याञ्जलि' की एक कविता का सार इस प्रकार है कि "इन्द्रियाँ घोड़े के समान हैं, मन उनकी लगाम है, बुद्धि उनका सारथी है, और शरीर रथ। रथ के अन्दर आत्मा सवार है। यदि घोड़े लगाम के संकेत को नहीं मानते, सारथी उन्हें संयत करके चलाना नहीं जानता तो सवार को दुःख झेलना ही पड़ेगा। यदि घोडे वश में हों तो सारथी और सवार दोनों ही अपने लक्ष्य पर अवश्य पहुँचते हैं।" **शरीर को चलाते समय लगाम को अच्छी तरह थामकर इन्द्रियों से कर्तव्य कर्म कराना ही तपस्या (Mortification) है।** ऐसी तपस्या की सरलतम एवं घरेलू विधियाँ इस पुस्तक में आप पायेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखकर मेरा लक्ष्य किसी प्रकार का सम्प्रदाय बनाना और कोई शोभा यात्रा निकालना नहीं है, प्रत्युत एक दर्शन से, एक दृष्टिकोण से, एक सत्य से जनसाधारण को परिचित कराना है। कोई भी आत्मवादी और सत्यान्वेषी समुदाय नहीं बना पाता क्योंकि यह मार्ग इतना संकीर्ण है कि इस पर व्यक्ति अकेला होकर ही आगे चल सकता है। यूँ भी मुझ में और आप में कोई अन्तर नही है, जो है वह मात्र इतना ही कि मुझे तीर्थाटन करने वाले यात्री के समान पुनीत तीर्थों के दर्शन का सौभाग्य मिला है, और उनका वर्णन मैने आपके सामने कर दिया है। तात्पर्य यह है कि प्रवक्ता से अधिक मेरा अपना कुछ नहीं है। इसमें दिये गये प्रयोग विभिन्न तन्त्र ग्रन्थों, तांत्रिक परिवारों और साधकों से प्राप्त किये गये हैं। मैं या कोई भी व्यक्ति इतने सारे प्रयोगों को स्वयं करके देख ले और उन पर अपने परीक्षण की मुहर लगा दे, यह सम्भव नहीं है। जिनका परीक्षण मैंने किया है या मेरे परामर्श और मार्ग दर्शन पर दूसरो ने किया है तथा सफल हुए हैं वे तो दिये ही हैं, वे भी हैं जिनका परीक्षण शेष है

और परम्परागत रूप से चली आ रही हमारी निधि हैं। विभिन्न स्थानों जैसे आगरा, अमृतसर, बरेली, बम्बई, हाशीमारा, जामनगर आदि के योग-जिज्ञासुओं ने मुझे जो दिशा दर्शन दिया, जो अपेक्षायें रखीं, जो प्रश्न पूछे उनका समाधान इस पुस्तक के दो भागों में प्रस्तुत है। प्रथम भाग में 'बहिरंग साधना' के यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार का सहज और क्रियात्मक विवेचन है, और दूसरे भाग में 'अन्तरंग साधना' के कुण्डलिनी तन्त्र से सम्बन्धित धारणा, ध्यान और समाधि का क्रियात्मक परम-गोपनीय विवेचन है।

मेरा आग्रह है कि पुस्तक आद्योपान्त पढ़ी जाय क्योंकि आपके किसी प्रश्न का उत्तर, बहुत संभव है, किसी अन्य पृष्ठ पर मिल जाय। यह देश, इसकी परम्परा, इसका ज्ञान-विज्ञान हमारा गौरव है। इसे पुनर्जीवित करने के लिये हम जो कुछ कर सकते हैं करना ही चाहिये, यह इस युग को परमावश्यकता है और समूची मानव जाति की सेवा है।

पुस्तक में क्या-क्या है, यह मत खोजिये। केवल वह खोजिये जिसकी आपको आवश्यकता है। **आपकी दिव्य-जीवन की यात्रा में काम आने वाला प्रत्येक निर्देशन आप ही के स्तर की भाषा में आपको मिलेगा। जहाँ पुस्तक का ज्ञान चुक जाय, समझो वहाँ शब्दों की सीमा समाप्त हो गई। उससे आगे अंतर्ज्ञान ही काम देगा,** जो सिद्ध, गुरुओं की लम्बी परम्परा श्रृंखला से मिलता है (ऐसे तत गुरुओं की प्राप्ति विभिन्न स्तर एवं वर्ग के जिज्ञासु एवं सिद्ध-पुरुषों के अनुभवों से प्रमाणित है)।

यदि आपने इस पुस्तक को पढ़ने से पूर्व बहुत सा धर्म ज्ञान, तत्व ज्ञान, परा मनोविज्ञान, दर्शन, वाद, सिद्धान्त एवं मीमांसा ज्ञान एकत्र किया हुआ है तो और भी अच्छा है, आप फालतू वाद-विवाद से बच जायेंगे। चूँकि इन कोरे वाद विवादों की पहुँच कहाँ तक है, यह आप अच्छी तरह समझ जायेंगे। 'थोथा चना बाजे घना,' प्रारम्भिक एवं अधूरे ज्ञान वाला ही वादों के चक्कर में अधिक पड़ता है। यदि आप वादों और सिद्धान्तों के चक्कर में नहीं पड़े तो पड़ सकते हैं क्योंकि अंधे बन कर किसी भी मार्ग से चलना युक्ति-युक्त नहीं है। बौद्धिक व्यायाम (Intellectual gymnastics) जीवन में अत्यावश्यक है। **वाद-विवाद वाले स्तर को पार करके ही योगी बना जा सकता है क्योंकि स्थिर-चित्त वही होगा जो सारे वाद और सिद्धान्त पार करके अपने निर्णावों में दृढ़ हो जायगा।** आगे योगी को अपने निर्णयों को क्रियात्मक रूप देने की आवश्यकता होती है, उनमें गहरे जाने की आवश्यकता होती है। तब उसे कह दिया जाता है (योगी यदि स्व-निर्मित है तो उसकी आत्मा यह आदेश दे देती है अन्यथा उसका आचार्य यह आदेश देता है)—**वाद-विवाद** (Arguments) **मत करो, यदि कोई वाद-विवाद करने पर जोर दे तो चुप हो जाओ, बात मत करो। किसी भी वाद-विवाद का उत्तर मत दो** और चुपचाप वहाँ से चले जाओ। क्योंकि तुम्हें बुद्धि को एक अवाश्यक स्तर पर लाने का सतत् अभ्यास करना है, न कि उसे व्यर्थ में अस्थिर बनाना है।

जितनी देर बुद्धि अस्थिर रहेगी, अभ्यास का काम रुका रहेगा। ध्यान रहे योगी का अभ्यास चौबीस घंटे चलता रहता है चाहे वह कोई भी काम करता रहे। बुद्धि हमें

केवल इन्द्रियों की सीमा में आने वाले ज्ञान से ही अवगत कराती है और योगी इन्द्रियों से परे जाता है। अत: बुद्धि का अधिक महत्व योगी के लिये नहीं रहता। जितने भी वाद और सिद्धान्त हैं, वे बुद्धि की सीमा में ही हैं, इसलिये इनके सम्बन्ध में योगी का चुप रह जाना ही उचित रहता है। इस पुस्तक में बुद्धिवादियों को परेशान करने वाले कुछ अंश मिलेंगे। मैं उनसे विनम्रता पूर्वक यही कह सकता हूँ कि वे स्वयं क्रिया योग में उतरें और अनुभव करें कि बुद्धि से आगे (परे) क्या कुछ है। जो साधक मुझे पत्र लिखना चाहें वे यह अवश्य इंगित करें कि उनके पास इस पुस्तक का कौन-सा संस्करण है, उसी आधार पर पत्रोत्तर दिया जायेगा।

जहाँ तक लेखन कला का प्रश्न है, वह मुझे नहीं आती। न मैं लेखक हूँ न कवि। यह तो प्रकाशक महोदय की अनुकंपा है कि मेरे छुट-पुट बिखरे विचारों को एकत्र कर उन्होंने पुस्तकाकार में 'सैट' करके आप लोगों तक पहुँचाने की हिम्मत की है। मैंने मौलिक कुछ भी नहीं लिखा, लिख भी नहीं सकता, क्योंकि आज तक नये के नाम पर जो कुछ कहा, लिखा या किया जाता है वह प्रकृति में विद्यमान है। हम उसे समझ लेते हैं, उसका रहस्य जान लेते हैं, तो हमारे पास नये के नाम पर उसके संयोजन और प्रस्तुतीकरण के सिवाय क्या रह जाता है?

पुस्तक की भाषा यथासाध्य सामान्य रखने का प्रयत्न किया गया है। कुछ स्थल जहाँ कि दार्शनिकों एवं अन्वेषकों से सम्बन्धित सामग्री है, क्लिष्ट हो सकते हैं, उससे जन सामान्य को कोई हानि नहीं है और जिनके लिये लाभप्रद हैं उनके लिये वह क्लिष्ट नहीं है। साधना के जगत में लाखों को क्रियात्मक (Experimental) प्रेरणा इस पुस्तक से मिल पायेगी, इस आशा, आश्वासन, चुनौती और आमन्त्रण के साथ प्रस्तुत है—क्रियात्मक कुण्डलिनी तन्त्र की बहिरंग और अंतरंग साधना।

इस पुस्तक की रचना में जिन जिज्ञासुओं एवं साधकों के अद्वितीय क्रियात्मक अनुभव दिये गये हैं, जिन महात्माओं एवं संतों के विचारों का समावेश हुआ है, जिनके सहयोग से इस पुस्तक के कलेवर को उपयुक्त रूप दिया जा सका है; उन सभी वैज्ञानिकों, साधकों एवं जिज्ञासुओं का मैं हृदय से आभारी हूँ। साथ ही उन विद्वान मनीषियों का भी आभारी हूँ जिनकी सतत् परीक्षणात्मक अनुभवों से पूर्ण कृतियों में मैने लाभ उठाया है। मेरे इस लघु प्रस्तुतीकरण से यदि पाठक 'साधक' बन सकें तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

—श्रीराम स्वरूप कुलश्रेष्ठ
भट्टे वालों की धर्मशाला
सोरों कटरा, शाहगंज,
आगरा—२८२०१०
दिनांक १०-२-१९८८ ई.

—'यतीन्द्र'
(डॉ. वाई.डी. गहराना)

संस्करणावलोकन

आशा के विपरीत प्रथम संस्करण का इतना शीघ्र बिक जाना और विदेश तक पहुँच जाना ही पुस्तक की उपादेयता का प्रमाण है, जब कि मैं स्वयं पुस्तक के प्रथम संस्करण में छूट गई त्रुटियों तथा 'सैटिंग' से अप्रसन्न ही था। जब प्रकाशक महोदय ने द्वितीय संस्करण के लिये पुस्तक के कलेवर को 'सैट' करने की बात की तो मुझे ये सोचकर शान्ति मिली कि जिस रूप में पुस्तक साधक के हाथ में पहुँचनी चाहिये, वैसी 'सैटिंग' के साथ अब पूरी पुस्तक को सजाया जा सकेगा।

यूँ तो पुस्तक 'क्रियात्मक कुण्डलिनी तन्त्र' अपने विषय में पूर्ण ही है, जिसमें पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में देश-विदेश के विभिन्न साधक-साधिकाओं द्वारा पूछे गये प्रश्नों के समाधान स्थान-स्थान पर आवश्यकतानुसार दिये गये हैं, फिर भी साधकों की मानसिक आवश्यकताओं तथा उनसे प्राप्त सुझावों के आधार पर क्रियात्मक कुण्डलिनी योग के बहुत से गोपनीय आयामों के रहस्य को अनावृत करने के विचार से विभिन्न पाठकों के आग्रह पर दूसरी पुस्तक 'कुण्डलिनी तन्त्र रहस्य' का प्रकाशन भी शीघ्र ही किया जा रहा है। (जो अब प्रकाशित हो चुकी है)

विषय के गोपनीय होते हुए भी इस द्वितीय संस्करण में विषय को जितना अधिक सरल करके जन-सामान्य के आगे रखा जा सकता है, स्पष्ट करने के प्रयत्न में पुनरावलोकन कर दिया गया है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि पुस्तक के कलेवर को साधकों के पूर्ण उपयुक्त बना कर प्रकाश महोदय ने जिस उत्साह और परिश्रम के साथ इसे पुनर्मुद्रित किया है उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस संस्करण में पुनरावलोकन तथा साधकों एवं पाठकों से प्राप्त सुझावों के आधार पर जहाँ तक सम्भव हो सका है, त्रुटियाँ सही कर दी गई हैं। फिर भी साधकों एवं पाठकों को कोई कठिनाई हो अथवा कमी दृष्टिगत हो तो वे इंगित करने में संकोच नहीं करेंगे, ऐसी आशा के साथ—

आगरा
6 मई, 1990

आपका मित्र
—'यतीन्द्र'

द्वितीय संस्करण की भूमिका

आध्यात्म जगत को 'क्रियात्मक कुण्डलिनी तन्त्र' जैसी पुस्तक महर्षि 'यतीन्द्र' की अमूल्य देन है। यह प्राकृतिक तत्व ज्ञान के सिद्धान्तों और क्रियात्मक अष्टांग योग की उच्चावस्था 'कुण्डलिनी साधना' का एक ऐसा अद्‌भुत ग्रन्थ है जिसमें विद्वान लेखक का उद्देश्य मात्र उन सिद्धान्तों की सप्रमाण व्याख्या करना रहा है जो सत्य का क्रियात्मक मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा आडम्बर वाद से दूर 'आवश्यक जीवन दर्शन' की सतत साधना द्वारा ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं जिनसे सामान्य व्यक्ति भी चरित्र प्रधान व्यक्ति बन सकता है। ऐसे चरित्र प्रधान व्यक्ति स्वयं में असाधारण, विरल, विचित्र एवं विशिष्ट होते हैं जो अपने सम्यक् ज्ञान के आधार पर युग निर्माण में सहयोग देते हैं। ग्रन्थ का प्रथम संस्करण हिन्दी भाषा में ही विदेश तक में अपनाये जाने से तथा इतना शीघ्र समाप्त हो जाने से प्रकट होता है कि लोगों में धर्म का मर्म समझने की आकांक्षा है, यही नये युग के निर्माण के प्रति सच्ची लगन की द्योतक है।

आध्यात्मिक हिन्दी संसार के हाथों इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण समर्पित करते हुए मेरी हार्दिक इच्छा ऐसी रही है कि इसे और अधिक सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया जाय जिससे प्रत्येक गृहस्थ व्यक्ति भी इस सहज और परमोच्च साधना को जीवन में उतार सके।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पुस्तक देश विदेश के असंख्य हिन्दी-भाषी साधकों तथा उन समस्त गृहस्थों के लिये अधिक उपयोगी होगी जो अपनी गृहस्थी पर गौरव करना चाहते हैं।

—प्रकाशक

चतुर्थ संस्करण की भूमिका

योग शिक्षा में गुरु शिष्य परम्परा का सदैव ही श्रेष्ठ तथा उपयोगी स्थान रहा है। यह सम्बन्ध जितना ही दृढ़तर होगा, परिणाम उतना ही अधिक अच्छा होगा। अच्छी क्रियात्मक पुस्तकें गुरुओं के ज्ञान भंडार को शिक्षार्थी तक पहुँचाने में सर्वश्रेष्ठ माध्यम का कार्य करती हैं।

आज से कुछ वर्ष पूर्व सम्पूर्ण अष्टांग योग पर, और विशेष रूप से कुण्डलिनी योग जैसे महत्वपूर्ण और अत्यावश्यक विषय पर पुस्तकों का बहुत अभाव था, परन्तु कुछ ही समय पूर्व बहुत से विद्वानों ने एक साथ इस ओर ध्यान दिया और अब तो अनेक पुस्तकें दृष्टिगोचर होने लगी हैं, परन्तु खेद की बात है कि उनमें से कतिपय पुस्तकें ही विषय को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्पष्ट कर पाती हैं। प्रतीत होता है कि लेखकों ने विषय के क्रियात्मक अनुभव के बिना एक पुस्तक से दूसरी पुस्तक लिख डाली है। ऐसे लेखक भूल जाते हैं कि पुस्तक किसी विद्वान की संचित धरोहर होती है, जो आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन करती है। साधकों को एक ऐसी पुस्तक की महती आवश्यकता थी, जिसमें उन सभी विषयों की चर्चा की गई हो, जो कुण्डलिनी योग की दृष्टि से उपयोगी हो, साथ ही शास्त्रीय दृष्टि से क्रियात्मक सामग्री को आज की वैज्ञानिक भाषा में प्रस्तुत करे।

आज योग के प्रचार का सबसे बड़ा स्रोत विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी हैं परन्तु वहाँ योग के नाम पर कुछ आसन प्राणायाम तथा ध्यान आदिं का प्रारम्भिक परिचय कुछ इस प्रकार दिया जाता है जो अनुपयोगी ही रहता है। कुछ योग संस्थान लकीर के फकीर बने सभी प्रकार के आसन प्राणायाम आदि का ऐसा अभ्यास कराते हैं कि प्रशिक्षणार्थी जीवन भर अपने पेट को पकड़े बैठा रहता है फिर भी वे ऐसे योग प्रशिक्षण की हानियों की ओर से आँखें बन्द किये रहते हैं चूँकि उन्हें तो भारत की गौरवपूर्ण योग परम्परा को जीवित बनाये रखना है, भले ही प्रशिक्षणार्थी मरता रहे। हो सकता है यह सत्य आपको कटु लग रहा हो, परन्तु ऐसे योग शिक्षक रोगी मेरे पास आये हैं।

'क्रियात्मक कुण्डलिनी तंत्र' के चतुर्थ संस्करण को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे संतोष हो रहा है। कुल कुण्डलिनी योग परम्परा से सम्बद्ध कार्य दक्ष आचार्यों तथा अन्य अनुभवी विद्वान साधकों का ढेर सारे पत्रों, प्रश्नों तथा साक्षात्कार के रूप में जो अनुमोदन प्राप्त हुआ है वह किसी भी लेखक के लिये गौरव का विषय है। इस विषय पर आकाशवाणी आगरा से मेरा एक धारावाहिक तथा आकाशवाणी शिवपुरी एवं आकाशवाणी ग्वालियर से मेरे साक्षात्कार भी प्रसारित किये जा चुके हैं। अहिन्दी भाषी साधकों की अत्यधिक माँग पर इस विषय पर अंग्रेजी संस्करण भी शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

प्रस्तुत संस्करण को यह नवीन रूप देने के लिये प्रकाशक महोदय का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने भारी मेहनत और लागत लगाकर पुस्तक को यह रूप दिया है।

धन्यवाद !

पाठकों और साधकों से विनम्र निवेदन

धर्म की बातें करेंतो आज के युग में कोई भी ब्रह्म और परब्रह्म से नीचे की बात नहीं करता, प्रतीत होता है, सभी ब्रह्म ज्ञानी हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी रोगी से मिलने आने वाले व्यक्ति भी कुछ न कुछ उपचार बता कर जाते हैं, जैसे कि रोगी का इलाज करने वाला डॉक्टर तो मूर्ख है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी बातें करने वाले कितने जानकार होते हैं। ऐसे ही अधकचरे और असम्बद्ध ज्ञान वाले पाठकों एवं साधकों के बहुत से पत्र मुझे शंका समाधान हेतु प्राप्त होते रहते हैं और बहुत से साधक मुझसे मिलने भी पहुँच जाते हैं। परन्तु जो लोग इस पुस्तक को पूर्णतः पढ़े बिना मेरे पास पहुँचते हैं उन्हें मैं उनके क्रमबद्ध ज्ञान के अभाव में कोई क्रियात्मक विधि नहीं बता पाता, अतः साधकों से अनुरोध है कि यदि मेरे पास आना चाहें तो पुस्तक को भली प्रकार से पढ़कर और साथ लेकर ही आयें जिससे उनका आना सार्थक हो सके। केवल मेरे दर्शन के लिये आने का कष्ट न करें, मैं भी उन्हीं के समान नाक-मुख वाला सामान्य व्यक्ति हूँ। समयाभाव के कारण जिज्ञासुओं के पत्रों के उत्तर भी शीघ्र नहीं दे पाता, अतः क्रियात्मक विधान में कठिनाई होने पर ही मेरे पास आने का कष्ट करें, और ध्यान रखें—बिना यम-नियम की साधना के आगे की साधनायें अच्छे और स्थायी परिणाम नहीं देतीं।

धन्यवाद !

आपका मित्र,
'यतीन्द्र'

अनुक्रमणिका

अन्तरंग साधना

१

कुण्डलिनी योग

सामूहिक अचेतना मानवता का सामान्य मूल आधार है जिससे प्रत्येक व्यक्ति का चेतनात्मक तथा अचेतनात्मक जीवन विकसित होता है। सामूहिक अचेतना वंशगत होती है जो हमें अपने आद्य पूर्वजों से प्राप्त होती है। यह प्राणी संरचना (STRUCTURE) में वंशानुगत पाई जाती है इसमें प्राकृतिक मस्तिष्क रचना भी सम्मिलित है। यह मस्तिष्क रचना व्यक्ति में ऐसी पूर्व वृत्ति निर्माण करती है कि वह उसी तरह से विचार तथा कार्य करता है जैसा कि उसकी जाति (Race) अनेक पीढ़ियों से करती चली आ रही है।

मानसिक अचेतना में मूल-प्रवृत्तियाँ (Instincts – काम करने के आदिकालीन ढंग) तथा आद्य स्वरूप (Archetypes – विचार करने के आदिकालीन ढंग) सम्मिलित रहते हैं।'यदि कोई व्यक्ति ऐसे कुछ नवीन कार्य करना प्रारम्भ करता है जो उसके अचेतन तक उतरते हैं या उसमें गहरे तक जाते हैं तो उनका प्रभाव उसकी पीढ़ियों में उतर जाता है।' इस सिद्धान्त का उपयोग योग विद्या में नस्ल सुधार की प्रेरणा प्रदान करता है। योग द्वारा व्यक्ति अचेतन से भी अधिक गहराई में जा पहुँचता है। इस प्रकार आप देखते हैं कि किसी भी स्तर तक योग में उतरा हुआ व्यक्ति अपने को इस जन्म में तो सुधारता ही है, संस्कारों के नियम के आधार पर अगले जन्मों के लिए भी सुधारता है; और साथ ही अपने पूरी भावी पीढ़ी (कुल) का भी उद्धार कर (सुधार) देता है।

कुंण्डलिनी के सम्बन्ध में यूँ तो हमारा दर्शन वाङ्मय बड़े-बड़े सुसज्जित चित्रों सहित भरा पड़ा है, परन्तु कुल मिलाकर अनेक पुस्तकालयों के अध्ययन के पश्चात् भी 'साधक' के पल्ले कुछ नहीं पड़ पाता। 'पाठक' के लिये तो बहुत मसाला मिल जाता है। साधक और पाठक में अन्तर है। 'पाठक' पुस्तकों को पढ़ता है और अपना ज्ञानवर्द्धन करता है। 'साधक' पुस्तक पढ़ता है, उसके आधार पर साधना करता है और स्वयं उस ज्ञान का व्यावहारिक अभ्यास करता है। साधना के समय में ही उसे पता लगता है कि वास्तव में सही (जो कि क्रियात्मक और व्यवहार में लाने योग्य है) कौन है और कोरा किताबी कौन है?

मेरा अपना अनुभव है कि जो दर्शन के आधार पर पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें इतना अधिक उलझाव है कि बात स्पष्ट नहीं हो पाती। स्पष्ट हो भी कैसे? पुस्तक लिखने वाले को ही स्पष्ट नहीं थी, तो वह आपको क्या स्पष्ट करे? किसी भी व्यक्ति या धर्म गुरु (जिसे हम इस विषय का ज्ञानी समझते हैं) से इस उलझाव की बात कीजिए तो वह इस सीमा तक बात को बढ़ाता है कि वह यह कह सके कि ये बातें आपकी बुद्धि से परे हैं। अथवा यह कह सके कि ऋषि-मुनि पार नहीं पा सके तो हम और आप इसका क्या पार पायेंगे? यदि उसे आप प्रत्येक ओर से दबा लें तब वह निरुत्तर हो जाता है और यह मानने के लिये बाध्य हो जाता है कि इतना प्रैक्टीकल (इतनी साधना) उसने नहीं किया। फिर वह आपसे सीखने के लिए पीछे पड़ता है। परन्तु विडम्बना यह है कि वह सीखने भी नहीं आ पाता, क्योंकि जो अब तक अपनी बातों से हजारों को अपना शिष्य बनाये हुये हैं, वह अपने को शिष्य रूप में कैसे दिखाये? ऐसे कई महात्माओं से मेरी भेंट हुई है जो चाहते हुए भी कुण्डलिनी नहीं सीख सके। चूँकि सिखाने वाला एक सामान्य गृहस्थ था, फिर वह महात्मा होकर उसके शिष्य कैसे बनते? उनका झूठा आत्मसम्मान उन्हें मार जाता है।

पुस्तकीय ज्ञान रखने वालों के साथ ऐसी ही एक और विकट परिस्थिति (अण्डर कोन्फीडेन्स) की आती है, उसके कारण वे कहते हैं, स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने ऐसा कहा है, स्वामी विवेकानन्द ने ऐसा कहा है, नारायण स्वामी ऐसा बोल गये हैं, तुलसीदास ने यह लिखा है, श्रीकृष्ण ने ऐसा बोला है। मैं कहता हूँ, इसने कहा; उसने लिखा; **यह सब कुछ छोड़कर वह कहो जो तुमने समझा है, तुमने परखा है।** अब मुसीबत तो यह है कि 'परखा' तो कुछ है ही नहीं, पढ़ा ही है। बहुत से पी-एच. डी. भी यही लिख-लिख-कर हो गये कि इसने यह कहा, उसने वह कहा। बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने 'विषय' में अधिकार पूर्वक यह कहें कि अमुक ने 'यह' कहा, जिसे मैंने स्वयं परखा और परिणाम 'यह' पाया। यदि आप इतना न कह सकें तो आपकी पी-एच. डी. व्यर्थ है। ऐसी डिग्रियाँ आपको ऊँचा नहीं उठायेंगी और जब तक 'आप' ऊँचे नहीं उठेंगे, देश को ऊँचा उठाने की बात करना ही व्यर्थ है।

पुस्तकों से ज्ञान लेकर पुस्तकों में लिख देना ऐसा है जैसे एक टंकी का पानी दूसरी टंकी में मिला देना। यह कोई 'ज्ञान-वर्द्धन' नहीं हुआ। पुस्तकों से ज्ञान लेकर मंच पर भाषण दे देना भी खाना खाने के बाद उल्टी करने जैसा है। जो पुस्तकीय ज्ञान एकत्र करके आता है उसे वह ज्ञान कहीं सुनाने की बहुत जल्दी होती है। कई बार तो ऐसा व्यक्ति ऐसे आदमी को सुनाने लगता है जो उसे सुनने का इच्छुक ही नहीं है और बेचारे सुनने वाले को जबरदस्ती 'बोर' होना पड़ता है। सुनाने वाला यह परवाह नहीं करता कि आप सुनना चाहते हैं या नहीं, उसे तो जो कुछ वह भरकर लाया है उसे उलटने की पड़ती है। इस प्रकार की 'उल्टी' लोगों का भला नहीं कर सकती। सुने सुनाये अथवा पुस्तकीय ज्ञान वाले व्यक्ति में अपने ज्ञान के प्रति विश्वास नहीं होता। जिसे अपने ज्ञान के प्रति

'आत्मविश्वास' नहीं है, ऐसे अज्ञानी को आप पी-एच. डी. देकर प्रोफेसर बनायें और फिर रोयें—हमारी शिक्षा को क्या हो रहा है ? ऐसी मूल (बेसिक) गलती का परिणाम यही हो सकता है । हमारे कितने छात्र मनोविज्ञान में बी. ए., एम. ए. करते हैं और अपने को बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक समझने लगते हैं । मालूम है उन्हें कौन बेवकूफ बना जाता है, गली में दरी बेचने वाला । क्यों ? वह बाबूजी की मनःस्थिति (साइकोलोजी) को उनसे अधिक अच्छी तरह समझता है । उसकी मन: स्थिति (साइकोलोजी) समझने की पहुँच इनकी डिग्री से अधिक है । ऐसी शिक्षा जो व्यावहारिक नहीं है, छात्रों को हानि पहुँचाती है । कई स्थलों पर उनका मनोबल गिराती है, जिसके कारण वे 'दरी वाले' को अपना गुरु मानने को बाध्य हो जाते हैं ।

अति-विश्वास (ओवर कान्फिडेन्स) वाली गलती भी इन युवकों से होती है । वे समझते हैं हम जिस विषय के ज्ञाता हैं उसमें पारंगत हैं । अब मनोविज्ञान विषय को ही लीजिये—मनोविज्ञान का स्नातक व्यावहारिक जीवन में अपनी शिक्षा के अनुरूप 'रीडिंग्स' लेता है, पर्यावरण निरीक्षण (Environment Reading) करता है, 'फेस रीडिंग' करता है, जो कि अधिकांशत: गलत होती है और विडम्बना यह है कि वह उस 'गलत' को 'सही' मानता है । वह उस 'गलत' को 'सही' माने, यहाँ तक भी चल जाए; परन्तु जब वह उस 'गलत के आधार पर ही अपना जीवन व्यवहार चलाने लगता है तो एक और बहुत बड़ी गलती हो जाती है—जो 'सही' है उसे वह 'गलत' समझने लगता है ।' **परिणाम—जीवन का सर्वनाश ।**

ऐसी ही सर्वनाश सम्बन्धी एक पौराणिक कथा है—राधा सदैव श्रीकृष्ण से कहा करती थी कि तुम मुझसे नहीं, मेरे शरीर से प्रेम करते हो । श्रीकृष्ण बहुत समझाते थे कि 'मेरा तुम्हारा प्रेम आत्मिक है, शारीरिक नहीं ।' परन्तु वह अल्पबुद्धि यही देखती थी कि बात करते हैं—आत्मिक प्रेम की और लिपटते हैं शरीर से । श्रीकृष्ण की भी विवशता थी—आत्मा से कैसे लिपटें ? आत्मा से लिपटने का माध्यम भी तो शरीर ही था । दोनों में यह बहस चलती रही । कृष्ण ने यह भी कहा कि शारीरिक प्रेम के लिये क्या मेरे पास गोपियाँ कम हैं ? परन्तु राधा की मन: स्थिति (साइकोलोजी) बिगड़ी सो बिगड़ती ही गई । अन्त में कृष्ण ने राधा से मिलना बन्द कर दिया । बहुत व्यग्र (बेचैन) रहते थे, क्योंकि प्रेम तो आत्मिक था, शारीरिक होता तो किसी दूसरे से प्रेम करके बात समाप्त हो जाती । श्रीकृष्ण व्यग्र रहे, पर राधा से मिलने नहीं गये । अपने मन को बहलाने के लिए उन्होंने सम्पूर्ण जीवन जनसेवा में लगा दिया, पर उस स्थान पर लौटकर नहीं गये जहाँ राधा थीं, अन्यथा वह फिर कहती कि आ गये शरीर से प्रेम करने ।

शारीरिक और आत्मिक प्रेम में जो भावनात्मक अन्तर है, उसे पहचानने में अच्छे-अच्छे मनोविज्ञानी (साइकोलोजिस्ट) विफल हो जाते हैं । परन्तु कुल मिलाकर हमने तो यह देखा कि राधा की मन: स्थिति (साइकोलोजी) बिगड़ने से कृष्ण की आनन्द क्रीड़ा (रास लीला) ही समाप्त हो गई । जीवन ही बदल गया । यह बात दूसरी है कि इस प्रकार कृष्ण का बाल जीवन को त्यागकर कर्मक्षेत्र में उतरना हम सबके लिये वरदान बन गया ।

इसके लिये स्वयं कृष्ण या हम सब लोग राधा को धन्यवाद का पात्र समझें। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो आनन्दमय जीवन दोनों का चल रहा था उसका सर्वनाश हो गया। ऐसा ही उदाहरण सन्त तुलसीदास का है। उनकी पत्नी ने उनकी मन: स्थिति (साइकोलोजी) ऐसी बिगाड़ी कि वे महान् सन्त बन जाने पर विवश हो गये। फिर भी रामायण में उन्होंने यही लिखा—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

यहाँ भी तुलसीदास के 'दाम्पत्य जीवन' का सर्वनाश हुआ। आप कहेंगे कि यदि ऐसी मन: स्थिति (साइकोलोजी) बिगड़ने से समाज को एक नई दिशा देने वाला, समाज के लिये अपना जीवन-अर्पण करने वाला व्यक्तित्व मिल जाय तो इसमें लाभ ही है। यह लाभ मन: स्थिति (साइकोलोजी) सुधार कर भी प्राप्त किया जा सकता है—पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका द्वारा एक-दूसरे के कार्य में सहयोग करके। गाँधी जी की सहायिका कस्तूरबा, स्वामी विवेकानन्द की सहायिका-भगिनी निवेदिता, स्वामी रामकृष्ण परमहंस की सहायिका माँ शारदा, महर्षि यतीन्द्र की सहायिका डॉ. शकुन्तला आदि कितने ही उदाहरण हैं जहाँ सहयोग भाव द्वारा एक जीवन का सर्वनाश किये बिना ही समाजोद्धार में लगाया जा सकता है। उससे एक और लाभ होगा—एक जीवन के स्थान पर दो ऐसे जीवन समाज को अर्पित होंगे, जो अधिक आनन्दपूर्ण और स्वस्थ होंगे। आज भी, जितनी दुर्घटनाएँ, आत्म-हत्याएँ, बलात्कार एवं खून-खराबे की घटनाएँ घटित हो रही हैं उनमें नब्बे प्रतिशत मन: स्थिति (साइकोलोजी) बिगड़ने से ही होता है और व्यक्ति अपने आनन्दमय जीवन का सर्वनाश कर लेता है।

हाँ ! हम बिना अनुभव की डिग्री की बात कर रहे थे। पुराना गुरुकुल का आचार्य बिना डिग्री का होता था। जो ज्ञान उसके पास होता था, उसका स्वयं का अनुभव होता था, इसलिए ठोस होता था। उसे यह नहीं कहना पड़ता था कि नारद मुनि ने ऐसा कहा है इसलिए आप मेरी बात मान लो। वह सीधा बोलता था कि यह बात ऐसी नहीं ऐसी है और सारी दुनियाँ मानती थी। आज भी आप ऐसे ही बोलते हैं जहाँ पर आपको अपने ज्ञान पर 'विश्वास' होता है। बच्चे को पढ़ाते समय आप कहते हैं बेटा यह 'अ' है। यह नहीं कहते कि मेरे गुरु ने बताया कि यह 'अ' है, क्योंकि 'अ' पर आप को विश्वास है कि आप गलत नहीं हैं। मैं कहता हूँ ऐसा ही विश्वास आप उस विषय में भी लाइये ज़िसमें आप डिग्री लेते हैं, विशेषज्ञ बनते हैं। स्वयं अनुभव कीजिए और ठोस होकर बोलिये, कृष्ण की भाँति—

सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकम शरणम् व्रज:

'सभी धर्मों का परित्याग करके एक मेरी शरण में आओ अर्थात् मैं बताता हूँ वह सही है। तुम जो सुनकर या पढ़कर आये हो वह गलत है।'

ऐसा ठोस ज्ञान शुद्ध जल के कुएँ के समान है, वह ज्ञान टंकी के पानी जैसा नहीं है; वह सड़ेगा नहीं। टंकी का पानी ऋतु के अनुसार अपने तापमान (Temperature) को हवा के अनकूल बदलेगा। टंकी का पानी शीतकाल में ठण्डा तथा गर्मी में गर्म होता है।

भले ही मानव मात्र को उससे दुःख पहुँचता हो। परन्तु कुएँ का पानी ऋतु और हवा की परवाह किये बिना समाज के हित का ध्यान रखते हुए अपना तापमान बदलता है। वह गर्मी में ठंडा और सर्दी में गर्म रहता है। हवा के रुख की परवाह किये बिना वही चल सकता है जो स्वयं ठोस है और सत्य पर खड़ा है। आज हमें ऐसे ही ज्ञान की आवश्यकता है जो हवा के रुख को न देखे अपितु उचित-अनुचित का ध्यान रखे। ऐसा ज्ञान वही है जो वैज्ञानिक है, विश्लेषणात्मक है और साधकों के स्वयं के अनुभव पर आधारित है। वैज्ञानिक कभी किसी बात पर ऐसे ही विश्वास कर बैठने को नहीं कहता, वह स्वयं कुछ विषयों का प्रत्यक्ष अनुभव करता है और उन पर विचार करके वह कुछ सिद्धान्तों पर पहुँचता है। वह प्रत्येक व्यक्ति से कह देता है "तुम स्वयं करके देख लो कि यह बात सत्य है या नहीं और तब उस पर विश्वास करो।"

धर्म तत्व दर्शन विश्वविद्यालय की 25 मार्च सन् 1966 को सम्पन्न जिज्ञासु गोष्ठी में 'वैज्ञानिक कसौटी' विषय पर निम्न निर्णय लिया गया था। "मनोविज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, भौतिक विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान अथवा कोई भी विज्ञान हो, उसके आधार पर प्रायोगिक रूप से प्राप्त परिणाम ही उस सिद्धान्तवाद (Theory) के सही अथवा गलत होने के सूचक होते हैं। यदि हमारा विज्ञान कहता है कि अमुक प्रकार से बातें करने वाले व्यक्ति अमुक-अमुक आदतों वाले होने चाहिए, अमुक प्रकार की मिट्टी में अमुक प्रकार की फसल अच्छी होती है, अमुक प्रकार गाना प्रसारित (Transmit) करने पर अमुक प्रकार से वही गाना उसी रूप में पुनः सुना जा सकता है, अमुक नक्षत्रों में पैदा होने वाले व्यक्ति अमुक आपत्तियों का शिकार हो सकते हैं, आदि आदि; और यदि व्यावहारिक रूप में भी हम पर्याप्त सीमा तक हम ऐसा ही पाते हैं तो उस सिद्धान्त वाद (Theory) को सही मान लिया जाय।"

हमारा कुण्डलिनी विज्ञान 'तत्व ज्ञान' का ही एक अंग है जो कि स्वयं में एक पूर्ण और निश्चित विज्ञान है। **'राजेन्द्रादर्श'** के अनुसार, 'तत्व ज्ञान के सूत्रों को आधार मानकर ही विभिन्न धर्म-प्रणेताओं ने अपने-अपने सम्प्रदाय के धर्म ग्रन्थ रचे हैं।' यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि हम ग्रन्थों में तो उलझ गये और 'मूल' को भूल गये। जो जिज्ञासु अपने धर्म ग्रन्थों की बातें न समझ पाने के कारण उन्हें 'शब्द जाल' कह देते हैं वे एक बार तत्व ज्ञान के मूल सूत्रों का अध्ययन करें, तब उस 'शब्द जाल' में प्रविष्ट हों; उन्हें एक-एक बात स्पष्ट हो जाएगी।

■■

कुण्डलिनी : अभेद्य जीवन-शक्ति

कुण्डलिनी स्वयं में एक ऐसी शक्ति है जिसका वर्णन करने के लिए प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों ने अपने देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के निकटतम रूपक प्रयोग किये हैं। कहीं कुण्डलिनी को नारी-पुरुष की सम्मिलित सत्ता का रूप देने के लिए अर्द्धनारीश्वर भगवान की कल्पना की गई है, तो कहीं उसकी सर्प वृत्ति का ध्यान करके 'साढ़े तीन कुण्डली मारे सर्प' की संज्ञा दी गई है। आज के परिप्रेक्ष्य में हम इसे विद्युत शक्ति के समान ही एक शक्ति मान सकते हैं। विद्युत शक्ति हीटर में लगा देने से गर्मी, कूलर में लगा देने से ठंडक, टी. वी. में चलचित्र, रेडियो में गाना, रोगी में स्वास्थ्य, आदि देती है। तात्पर्य यह है कि शक्ति एक ही है—वह अलग-अलग विधि से प्रयोग करने पर अलग-अलग कार्य सम्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को भी विभिन्न प्रकार के— सात्विक, राजसिक और तामसिक कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

विद्युत शक्ति के उत्पन्न करने की अनेक विधियाँ वैज्ञानिकों ने खोजी हैं। जिनमें कुछ उपयुक्त हैं, और कुछ अनुपयुक्त। यह उपयुक्तता वाली बात देश-काल-परिस्थिति के आधार पर ही चलती है। जैसे कि, जिस वस्तु से विद्युत तैयार होनी है वह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है अथवा नहीं। जिन-जिन उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है, वह वहाँ उपलब्ध कराये जा सकते हैं अथवा नहीं। आवश्यक सामान का उचित भण्डारण किया जा सकता है अथवा नहीं। आपने विद्युत तैयार करने के बहुत से संयंत्र देखे होंगे। जैसे—पन-बिजली घर (जहाँ पानी से बिजली तैयार होती है), थर्मल पावर प्लान्ट (जहाँ भाप अथवा गर्मी द्वारा बिजली तैयार की जाती है) आदि-आदि।
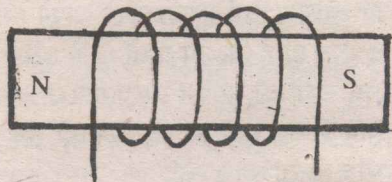
चित्र संख्या १

यदि किसी चुम्बक को किसी ताँबे के तार के छल्लों में आगे-पीछे गति दें तो तार में विद्युत प्रवाहित होने लगती है।

एक अन्य विधि में दो असमान धातुओं के एक जोड़ को गर्म करने से दूसरे ठंडे जोड़ तक विद्युत प्रवाहित होने लगती है। विज्ञान की भाषा में इसे **'सी-बैक प्रभाव'** (Seeback effect) कहते हैं। बिस्मथ तथा ऐन्टीमनी सबसे अधिक विद्युतीय ऊर्जा (इलेक्ट्रोमोटिव फोर्स) देने वाली धातुएँ हैं।
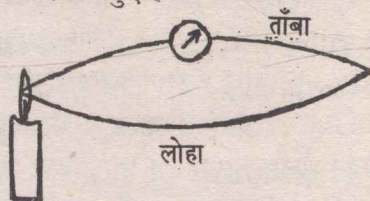
चित्र संख्या २

विद्युत उत्पन्न करने की विधियों के समान ही कुण्डलिनी शक्ति को उत्पन्न करने के लिए भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न प्रकार की विधियाँ अपनाते हैं। कोई प्राणायाम का प्रयोग करके कुण्डलिनी जाग्रत करते हैं, तो कोई शक्तिपात की विधि अपनाते हैं। कोई शाम्भवी आदि मुद्राओं का प्रयोग करते हैं तो कोई भैरवी आदि चक्रों का प्रयोग करते हैं। कोई भावातीत ध्यान शैली अपनाते हैं तो कोई नाद शैली का अनुसरण करते हैं। विभिन्न शैलियों के अपनाने में कुछ विशेष सूत्र ध्यान में रखने पड़ते हैं। एक सम्प्रदाय चाहता है कि कुण्डलिनी शक्ति इस ढंग से जाग्रत हो कि वह न तो विस्फोटक हो और न इतनी गतिशील हो कि व्यक्ति के सामान्य कार्यक्रम में परिवर्तन आये, चाहे समय कितना भी लग जाय। दूसरा सम्प्रदाय चाहता है कि शक्ति का पहला झटका इतना विस्फोटक हो कि किसी प्रकार व्यक्ति उसे झेल जाय, तत्पश्चात् साधक शक्ति के रूप को समझ कर अपनी कुण्डलिनी शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि करे। एक सम्प्रदाय चाहता है कि सांसारिक कार्यों से मुक्त होकर ही शक्ति जागरण के चक्कर में पड़ो, तो दूसरा कहता है शक्ति को जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही जाग्रत कर डालो जिससे शेष जीवन में उसके उपयोग द्वारा आनन्द लो। एक सम्प्रदाय चाहता है शक्ति का जागरण आनन्दप्रद विधि से करो, तो दूसरा चाहता है शक्ति ऐसी विधि से जाग्रत करो जो फिसलने का भय न रहे।

सब बातों पर विचार करने के बाद भी कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के समय पर साधक एकाकी ही रह जाता है। वहाँ साम्प्रदायिकता का कोई महत्व नहीं रहता क्योंकि जो अनुभव उसे होते हैं वे साधक के निजी ही होते हैं। उन्हें स्वयं ही उसे समझना और भुगतना होता है। गुरु अथवा आचार्य तो मात्र एक दिशा-निर्देशक (गाइड) मात्र रह जाता है। यह उसी प्रकार है जैसे तैरना सीखने के लिए ढेरों विधियाँ अपनाई जा सकती हैं, परन्तु तैरना सीखने का 'मूल' **तैरना जाने बिना पानी में डूबना** ही है और वे डुबकियाँ नव-तैराक को झेलनी ही पड़ेंगी उसमें न कोई सम्प्रदाय रोक लगा सकेगा न कोई गुरु; और जो रोक लगायेगा वह सिद्धि प्राप्त नहीं करा सकेगा। इसी सन्दर्भ में आचार्य रजनीश ने कहा था कि **'धर्म एक-दम निजी बात है जैसे प्रेम।'**

कुण्डलिनी परिचय

फ्रॉयड ने अपने पूर्वकालीन मनोविज्ञान में काम-वासना को अतिशय बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया है और उत्तरकालीन मनोविज्ञान में विरोधी आक्रमण को अधिक महत्व दिया है। **एल्फ्रेड ऐडलर** (Alfred Adler) ने जीवन के लिए स्वाग्रही (Self assertive) आवेग को काम-आवेग (Sex impulse) की अपेक्षा महत्वपूर्ण माना है। बच्चे के लिए सम्पूर्ण पारिवारिक परिस्थितियों का उसके विकास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस विकसित अभिवृत्ति को जीवन शैली (Style of life) कहा जाता है। उदाहरण के रूप में आप देखेंगे—सन्तुष्ट व्यक्ति आदेश देना और दूसरों से काम लेना चाहता है। तिरस्कृत व्यक्ति अलग रहने की आदत डाल लेता है। सबसे बड़ा बच्चा अपरिवर्तनवादी (Conservative) आदत का हो जाता है और अपने से छोटे भाई द्वारा अपदस्थ नहीं होना चाहता। इसी प्रकार सबसे छोटा बच्चा आमूल परिवर्तनवादी अभिवृत्ति (Radical Attitude) वाला हो जाता है।

ऐडलर के अनुसार जीवन की आरम्भिक समस्याएँ लैंगिक नहीं होतीं और जब तक ये समस्याएँ सामने आती हैं तब तक जीवन शैली पहले ही बन चुकती है और फिर लैंगिक जीवन को सम्पूर्ण जीवन-शैली में स्थान बनाना पड़ता है। युंग ने सन् 1912 में 'The Psychology of the Unconscious' नामक पुस्तक में काम-वासना को अभेद्य मानसिक शक्ति की समग्रता बताया। वे इसकी तुलना वर्गसन के 'Elan Vital' से क़रते थे और काम वासना को जीवन की प्रक्रियाओं की शक्ति मानते थे।

व्यक्ति की कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ भी होती हैं जिन्हें अहं आदर्श (Ego ideals) अस्वीकृत कर देता है और वे अचेतन ग्रन्थि (Unconscious Complex) का रूप धारण कर लेती हैं। इन्हें मनोविज्ञान छाया (Shadow) कहता है। यह काम तथा आक्रामक आवेगों का एक व्यक्तित्व के अन्दर दूसरा व्यक्तित्व होता है। छाया की प्रवृत्ति प्रक्षेपण होती है। जो दोष हम अपने में स्वीकार नहीं करना चाहते उन्हें हम दूसरों पर आरोपित कर देते हैं। इस प्रकार छाया अहं के विपरीत होती है, और अचेतन स्तर पर कार्यशील रहती है। 'अहं' पुरुष के मुखौटे (Persona) में नर-रूप का प्रतिनिधि होता है, और उसकी 'छाया' उसके व्यक्तित्व में स्त्री रूप धारण करती है। इसे Anima कहा जाता है। पुरुष के मानस में स्त्री तत्व होता है और स्त्री के मानस में पुरुष तत्त्व। अतः स्त्री की अचेतना, अर्थात् छाया (Shadow) Animus की नर-आकृति (Male figure) द्वारा निरूपित की जाती है। **तत्त्व मीमांसा** (Metaphysics) **आध्यात्मिक क्रियाशीलता के आधार पर स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं मानता। तन्त्रशास्त्र इनमें जननांगों के आधार पर वर्गीकरण करके भी एक-दूसरे को पूरक मानकर साधना करने की सलाह देता है।**

डॉ. कारेन हॉर्ने (Karen Horney) 'अन्तः मानव सम्बन्ध' में प्रेम को स्वीकार करती हैं। परन्तु उनकी दृष्टि में 'प्रेम' सक्रिय-काम-प्रेरणा (Sex Urge) से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार प्रेम एक ऐसी अलैंगिक तथा निष्क्रिय आवश्यकता है जिसे स्वीकार करना ही पड़ता है। वे सुख-नियम (आनन्द के सिद्धान्त Pleasure principle) को कामुकता (Sexuality) मानने से इन्कार करती हैं। **बेंथम** (Bentham) के नैतिक सुखवाद (Ethical Hedonism) के अनुसार 'केवल वैयक्तिक या सामाजिक भलाई ही सुख है।'

एक आदर्श समाज वही है जिसमें व्यक्तिगत या सामाजिक सुख मिलकर एक हो जायें। युंग ने कहा है कि 'मानसिक व्यवहार न फ्रॉयड की काम वासना से प्रेरित होता है न ही ऐडलर की उत्कृष्ट चालना' (Super drive) से। **केवल एकं अभेद्य जीवन-शक्ति है जिसकी अभिव्यक्ति किसी समय लैंगिक सुख का अनुसरण करने में होती है, और कभी उत्कर्ष की खोज में, कभी कलात्मक सृजन एवं अन्य क्रियाओं में होती है।**' युंग इस शक्ति का नामकरण नहीं कर सके हैं। **योग दर्शन इसे ही कुण्डलिनी शक्ति कहता है।** योग का साधक युंग के उक्त कथन को पूरी तरह समझ सकता है।

पात्रता

कोई भी शक्ति किसी व्यक्ति के हाथ में देने से पूर्व यह ध्यान देना आवश्यक हो जाता है कि वह उस शक्ति का दुरुपयोग तो नहीं करेगा? 'पात्रता' तीन रूपों में आंकी जाती है—एक तो यह कि जो बंदूक आपको दी जा रही है उसकी तकनीक (Mechanism and Operation) को आप समझते हैं। उसके द्वारा जो गोली चलनी है वह आप सही निशाने पर लगा पाते हैं, जिससे समय पड़ने पर आप अपनी रक्षा कर सकें और अपने मार्ग पर निर्भय होकर चल सकें। इसे **'व्यक्तिगत पात्रता'** कहा जाता है। दूसरी है **'सामाजिक पात्रता'**—जो बंदूक आपको दी गई है उससे आप राहगीरों को लूटते हैं, कमजोरों को डराते हैं, अथवा जो कमजोरों को लूटने आ रहे हैं उन्हें आप भगाते हैं। तीसरी है **'धारक पात्रता'**—जो बंदूक आपको दी गई है उसकी रक्षा आप कर पाते हैं या नहीं? उसे रखने-संभालने में आप सक्षम हैं अथवा नहीं?

क्या आपने सैनिकों की सामान्य चाल (परेड वाली नहीं) तथा जन-साधारण की सामान्य चाल के अन्तर पर ध्यान दिया है? सैनिक के बुड्ढे हो जाने पर भी उसकी चाल में वह ढुलमुलपन नहीं आ पाता जो असैनिक नवयुवकों में ही देखने को मिलता है। जिसकी चाल में ढीलापन नहीं उसके अन्य कार्यों में भी ढीलापन नहीं मिलेगा। यहाँ मेरा तात्पर्य सैनिकों की वकालत करना नहीं है, मैं तो उनके प्रत्येक कार्य करने के ढंग में एक विशेष छाप की बात कर रहा हूँ। इसी प्रकार कुण्डलिनी साधकों के कार्य व्यवहार में आप एक अलग ही छाप देख सकेंगे। **सैनिक के हाथ में उसकी शक्ति (बंदूक) रहती है, और योगी के मेरुदण्ड में उसकी शक्ति (कुण्डलिनी) रहती है।** बंदूक रखने की पात्रता

बनाये रखने के लिए एक सैनिक को कुछ विशेष अभ्यास एवं श्रम करना होता है उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को संभाले रखने के लिये योगी को कुछ विशेष श्रम एवम् अभ्यास करने होते हैं, जिससे शक्ति संग्रहीत होने के साथ-साथ वृद्धि को भी प्राप्त होती रहे।

यदि आप चाहते हैं कि 'बंदूक' ऐसे व्यक्ति के हाथ में रहे जो उसका दुरुपयोग न समाज के लिये करे और न अपने लिये, तो आपको उसे कुछ दीक्षा (ट्रेनिंग) देनी पड़ेगी। कुण्डलिनी के विषय की दीक्षा पूरी हो जाने पर व्यक्ति का स्वभाव, उसके सोचने का ढंग, बात करने का ढंग, काम करने का ढंग आदि सब कुछ ऐसे कल्याणकारी ढंग में परिवर्तित हो जाता है जैसा प्राचीन काल में ब्रह्मज्ञों का होता था। उस काल में गुरु द्वारा केवल ऐसे चरित्र के व्यक्ति को ही कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत करने का ज्ञान दिया जाता था जो इस शक्ति से न समाज को हानि पहुँचाए, न स्वयं को। **इसी सूत्र को ध्यान में रख कर कुण्डलिनी जागरण से पूर्व आज भी यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि जैसी अष्टांग योग क्रियाओं का अभ्यास करना अनिवार्य समझा जाता है।**

कहने की आवश्यकता नहीं कि कुण्डलिनी जागरण अष्टांग योग की प्रारम्भिक क्रियाओं के अभ्यास के बिना भी किया जा सकता है, परन्तु वही शक्ति के दुरुपयोग वाली बात आड़े आती है। कुछ गुरु अपने प्रदर्शन हेतु अथवा अपने अहं की सन्तुष्टि हेतु अपात्र व्यक्तियों की कुण्डलिनी 'शक्तिपात' आदि क्रियाओं द्वारा जगाते हैं, जिससे लोग उन्हें एक सिद्ध पुरुष समझें। ऐसा करना कम से कम मेरी समझ में अनुचित है। **शक्ति का प्रवाह उसी क्षेत्र पर होना युक्तियुक्त है जो उसे सँभालने की योग्यता रखता हो।** अन्यथा जो हानि होती है उसे संभालने वाले पैदा नहीं होते। **बिना मूलाधार चक्र को सिद्ध किये ऊपर के चक्रों पर ध्यान देना अनुचित है।** मूलाधार का अर्थ है—मूल + आधार। जिस तरह वृक्ष का आधार मूल होता है, महल का आधार उसकी नींव होती है, उसी प्रकार व्यक्ति का मूल-आधार 'विसर्जन संस्थान एवम् जननांग' हैं। कोई भी शक्ति देने (शक्तिपात) से पूर्व उसके क्षेत्र (शरीर) को और व्यक्तित्व (मन) को उसके उपयुक्त बनाना अत्यावश्यक है।

रूप

कुण्डलिनी की दो अवस्थाएँ बताई जाती हैं—जाग्रत एवं प्रसुप्त। प्रसुप्त कुण्डलिनी को स्वतः कुण्डलिनी भी कहा जाता है। नित्यप्रति अपनी जीवनचर्या में जो कुछ हम करते हैं वह **स्वतः कुण्डलिनी** शक्ति का ही परिणाम है। जितनी शक्ति हम नित्यप्रति के कार्यों में व्यय करते हैं उतनी शक्ति उत्पन्न करने वाले तन्तुओं को कार्यशील बनाने की शक्ति स्वतः कुण्डलिनी से प्राप्त होती है। प्राचीन ईसाई धर्म ग्रन्थ **'द ग्नास्टिक गॉस्पैल्स'** में लिखा है कि 'प्रत्येक मनुष्य के अन्दर एक अनन्त शक्ति निवास करती है, जिसके दो रूप हैं—एक प्रकट, दूसरा प्रसुप्त।' प्रसुप्त रूप का अर्थ 'सोया हुआ' नहीं है। उक्त वाक्यांश

को इस प्रकार समझिये—'प्रत्येक मनुष्य के अन्दर एक अनन्त शक्ति निवास करती है जो दो रूपों में काम करती है—बहिर्मुखी एवम् अन्तर्मुखी।' बहिर्मुखी रूप में कुण्डलिनी हमारी इन्द्रियों द्वारा विभिन्न आधिभौतिक कार्य सम्पादन कराती है और अन्तर्मुखी रूप में आध्यात्मिक संसार की अनुभूतियाँ कराती है।

नाम

भिन्न-भिन्न देशों में कुण्डलिनी सम्बन्धी विवरण उनके अपने-अपने आचार-व्यवहार के आधार पर मिलते हैं। जापान में 'की' नाम से कुण्डलिनी शक्ति की बात की जाती है तो चीन में 'ची' नाम से। ईसाई लोग 'होली-स्पिरिट' कहते हैं तो हिन्दू चिति शक्ति। देवी पूजक चिर कुमारी शक्ति कहते हैं तो तान्त्रिक ऊर्ध्वरेतः शक्ति। योगी इसी को सर्प की कुण्डली की संज्ञा देते हैं।

कुण्डलिनी जागरण के लाभ

कुण्डलिनी जागरण के पश्चात् साधक के दृष्टिकोण में अद्‍भुत परिवर्तन आता है, जो जीवन पहले कभी-कभी निराशापूर्ण और कठिन प्रतीत होता था वह अब आनन्दपूर्ण और रमणीय लगने लगता है। साधक में अपनी जीवनचर्या के प्रति एक नया उत्साह पैदा हो जाता है। जो लोग अभी तक सुनते आये थे कि मोक्ष कामी को भोग नहीं, और भोग विलासी को मोक्ष नहीं। वे कुण्डलिनी की कृपा से भोग द्वारा ही मोक्ष का आनन्द लेने में समर्थ हो जाते हैं। कुण्डलिनी के कृपा पात्र बहुत से महात्मा गृहस्थ रहे हैं।

जो सेवा-निवृत्त अथवा अन्य रूपों से तिरस्कृत व्यक्ति अपने जीवन का उद्देश्य पूरा हुआ समझकर जीवन के प्रति विरक्ति अनुभव करते हैं, उन्हें कुण्डलिनी जीवन के सच्चे उद्देश्य का ज्ञान कराकर जीवन के प्रति नयी स्फूर्ति उत्पन्न करती है। **कुण्डलिनी किसी को परिवार से अलग नहीं करती, वह तो व्यक्ति को परिवार की देखभाल करने में अधिक सक्षम और योग्य बनाती है।** कुण्डलिनी आपकी बुद्धि को इस प्रकार विकसित करती है कि आप अपना व्यवसाय और व्यापार अधिक कुशलता से चला सकते हैं। कुण्डलिनी विद्यार्थियों में स्मरण-शक्ति और एकाग्रता बढ़ाती है। अधिकारी वर्ग में प्रशासनिक योग्यता, वैज्ञानिक में आविष्कार क्षमता आदि प्रत्येक प्रकार की गुणवत्ताएँ बढ़ाने में कुण्डलिनी सक्षम है। कुण्डलिनी विभिन्न प्रकार की प्रेरणायें और सृजनात्मक शक्तियों का उदय करती है।

कुण्डलिनी का साधक ही सच्चे अर्थों में 'संयमी' होता है, चूँकि संयम वही कर सकता है जिसमें शक्ति हो। **शक्तिहीन व्यक्ति केवल संयम की बातें करता है, संयम नहीं कर पाता। कुण्डलिनी व्यक्ति को इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने की शक्ति देती है, जिससे मनुष्य सहज-सन्तुष्ट रहता है। जो मनुष्य सन्तुष्ट हो जाता है वह इन्द्रियों के विभिन्न विषयों के आकर्षण से प्रभावित नहीं होता।** इस आशय को ठीक से समझ लें। किसी वस्तु के लिए लालायित होना अलग बात है और उसे आवश्यकता के समय प्रयोग

में लाना अलग बात है। जो विषयों के आकर्षण से प्रभावित होता है वह लालायित कहलाता है, विलासी कहलाता है; और **जो आवश्यकतानुसार इन्द्रियों के विषय का आनन्द लेता है, वह योगी कहलाता है।**

आनन्द प्राप्ति का सूत्र

जिस क्षण में व्यक्ति जितना अधिक अन्तरात्मा के निकट होता है उतना ही अधिक आनन्द का अनुभव उसे उस क्षण होता है। यदि अधिक से अधिक समय हम अन्तरात्मा के निकट रह सकें तो अधिकतम समय सुख और आनन्द में बिता सकेंगे। सुख और दुख में अन्तर केवल अन्तर्मुख होने का है। जितने आप बहिर्मुखी होंगे उतना ही दु:ख पायेंगे। वस्तुएँ वही रहेंगी, व्यक्ति वही रहेंगे, अन्तर होगा आपकी प्रवृत्ति का। प्रवृत्ति की प्रेरक शक्ति 'कुण्डलिनी' है और प्रेरक-क्षेत्र 'संस्कार'।

अन्तर्मुखी होने का एक और उदाहरण लीजिए—आप स्वादिष्ट भोजन कर रहे हैं। उस समय यदि आपका ध्यान आपके साथ कल हुए वाद-विवाद की ओर चला जाता है, अथवा कल आने वाले मित्र की ओर चला जाता है तो वह सुस्वादु भोजन भी आपको नि:स्वाद लगेगा। कुस्वाद नहीं, नि:स्वाद, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति भोजन में नहीं है, आपका ध्यान भोजन में नहीं है। अपने ध्यान को बाहरी विषयों से हटाकर भोजन की थाली पर ले आइये, तब आपको नमक, मिर्च-मसाले का आनन्द मिलेगा। अब थोड़ा सा ध्यान को और अन्दर खींचिए और जीभ पर ले जाइए फिर देखिए भोजन की एक-एक चीज के स्वाद की अनुभूति में क्या अन्तर आता है? इसी प्रकार एक-एक बिन्दु (पाइन्ट) पर अन्दर की ओर, आत्मा की ओर खिसकते जाइए और अन्तरात्मा की अनुभूति प्रत्येक कार्य में प्राप्त करते जाइये।

आत्मानुभूति और सम्मान

जो व्यक्ति आत्मानुभूति प्राप्त करने लगता है, वह अपना 'स्वयं' का सम्मान करना सीख जाता है। आप चौंकेंगे—स्वयं का सम्मान? जी हाँ! आप स्वयं, आपका यह शरीर सम्मान योग्य है। इसे दुनियाँ कितना ही सम्मान दे सब व्यर्थ है। 'आप स्वयं इसे कितना सम्मान देते हैं, यह अर्थ पूर्ण है। इसे उतना ही सम्मान मिलना चाहिए जितना आप अपने मन्दिर को, अपने पूजा-घर को देते हैं। यह उस ईश्वर की अद्भुत कृति है जिसे आप दुनियाँ में खोजते फिर रहे हैं। या यूँ समझिये कि उस ईश्वर का निवास इसी 'शरीर-मन्दिर' में है। इसे सम्मान देना आपका प्रथम एवम् पुनीत कर्त्तव्य है।'

जो व्यक्ति स्वयं को सम्मान नहीं दे सकता वह सम्मान का मूल्य नहीं समझ सकता। आजकल सम्मान दो प्रकार से दिया जाता है—एक तो भय के कारण, और दूसरा श्रद्धा के कारण। दोनों में ही दबाव है, परतन्त्रता है। दबाव में आकर किया हुआ कोई भी

कार्य हिंसा है; हिंसा कभी भी विनाशकारी हो सकती है, क्योंकि परतन्त्रता किसी व्यक्ति पर थोपी जाती है और स्वतन्त्रता व्यक्ति का स्वभाव है ।

स्वतन्त्रतापूर्वक किया हुआ कार्य 'अहिंसा' है । ऐसे अहिंसापूर्ण सम्मान को 'प्रेम' कहते हैं । प्रेम में न भय है, न श्रद्धा है, अपितु 'सम-मान' है । बराबर का मान है । बराबर के मान से तात्पर्य है जो अपना मान है वही दूसरे का मान है । जिसका अपना कोई मान नहीं, जिसने अपने को कभी मान दिया ही नहीं, वह दूसरे को क्या मान देगा ? दूसरे के सम्मान का क्या मूल्य समझेगा ? जिसने परिवार वालों का सम्मान नहीं सीखा, उससे गली मुहल्ले वालों के सम्मान की बात करना ही व्यर्थ है । जो मुहल्ले के लोगों का सम्मान न करे वह ग्राम, नगर या देश के लोगों का सम्मान करे, असम्भव है । **मानवता को पुनः प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने आत्म-स्वरूप को पहले पहचाने।** आत्मानुभूति के सैद्धान्तिक सूत्र तत्त्वज्ञान (Metaphysics) में निहित होते हैं और उसका क्रियात्मक रूप योग-व्यवहार होता है ।

■■

३

आत्मा और अतीत

चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin) ने विकासात्मक सिद्धान्त की रूप रेखा स्थिर की और योग्यतमावशेष (Survival of the Fittest) के विचार को जन्म दिया। जो प्राणी अपने वातावरण के अनुकूल खाने-पीने का प्रबन्ध कर सकता है और अपने शत्रुओं को दूर हटा सकता है, वही योग्य (Fit) है। सृष्टि में वही अपनी संतति वृद्धि करने में समर्थ होता है। इसीलिए 'वातावरण' में परिवर्तन होने पर उसमें जीवित रहने वाले प्राणियों के रूप में परिवर्तन आ जाता है। यह प्राकृतिक वरण (Natural Selection) के नियम के कारण होता है।

डार्विन ने सन् 1872 में 'The Expression of the Emotions in Men and Animals' नामक पुस्तक में उग्र भावावेग की अवस्था में होने वाले शरीर और मुख के विशिष्ट परिवर्तनों की विकासवादी व्याख्या की। सन् 1871 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'The Descent of Man' में उन्होंने मानवीय तर्क शक्ति और उच्च श्रेणी के पशुओं में भी उसी प्रकार की शक्ति के बीच समानता स्थापित की। **हरबर्ट स्पेंसर** (Herbert Spencer) का विचार था कि प्राणी का अपने पर्यावरण में जितना अच्छा समायोजन होगा उतनी ही अधिक चेतना की मात्रा होगी। प्राणी की तन्त्रिका तथा मानसिक प्रक्रियाओं का स्वरूप ऐसा होता है कि उसके कारण पर्यावरण के साथ समायोजन करने में आसानी होती है। उनके अनुसार शरीर तथा पर्यावरण में सम्बन्ध स्थापित होने पर ही मन का विकास सम्भव है। वे मन को मस्तिष्क में होने वाली प्रक्रियाओं तथा घटनाओं की मालाओं का संकलन कहते हैं। उन्होंने मूल प्रवृत्तियों (Instincts) के विकास में आनुवंशिकता (Heredity) को महत्व दिया। एक और बात स्पेन्सर ने कही कि व्यक्ति की सहज प्रतिभा (Innate endowment) उसके प्रजातीय इतिहास पर निर्भर करती है। इससे प्रजातीय अनुभव को बल मिला। प्रजातियों के अध्ययन में फ्रांसिस गैल्टन (Francis Galton) ने विभेद (Variation), वरण (Selection) तथा अनुकूलन

(Adaptation) के सिद्धान्तों को सर्वप्रथम सुचारु रूप से उपयोग किया। उन्होंने बहुत से वंश वृक्षों का अध्ययन करके पाया कि व्यक्तिगत महत्ता (विशिष्ट प्रतिभा) वंशानुगत कारणों से होती है। गैल्टन ने सांख्यिकी (Statistics) का उपयोग प्रारम्भ किया जो जन्म, मृत्यु, विवाह आदि के योग मिलाने में प्रचलित हुई।

ऑगस्ट कॉम्टे (Auguste Comte), जिन्हें समाजशास्त्र के जन्मदाताओं में गिना जाता है, ने कहा है कि मनुष्य का मन तीन विकासात्मक अवस्थाओं में से गुजरता है—धर्मशास्त्रीय (Theological), तत्त्वमीमांसीय (Metaphysical) तथा प्रत्यक्ष (Positive)। धर्मशास्त्रीय अवस्था में व्यंक्ति कल्पना में लीन रहता है और यह मानता है कि संसार की समस्त वस्तुएँ मानवरूप हैं और वे अलौकिक सत्ता (Supernatural being) की अभिव्यक्ति हैं। तत्त्व मीमांसीय अवस्था में व्यक्ति व्यक्तिगत सत्ताओं के स्थान पर सूक्ष्म शक्तियों को मानने लगता है। प्रत्यक्षवाद (Positivism) की अवस्था में व्यक्ति घटनाओं (Phenomenon) में एकरूप (Uniform) सम्बन्धों की खोज करने का प्रयत्न करता है।

यूनानी विश्ववादियों ने धार्मिक परम्पराओं का विरोध कर उनका उल्लंघन किया। उनकी प्रवृत्ति परिकल्पना (Speculation) और तर्क की ओर थी। मध्य युग में तर्क का पुनरुद्धार हुआ परन्तु परिकल्पना की कमी रही। सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी के विज्ञान ने परिकल्पनात्मक भाव को घटनाओं के अवलोकन के साथ मिला दिया। आदिम दार्शनिकों में मिलेटस के निवासी थेलीज (जो 624 से 550 ई. पू. के माने जाते हैं) का नाम सबसे प्राचीन है। उन्होंने संसार का मूल तत्व 'जल' को माना।

मिलेटस के निवासी एनैक्सिमैंडर (Anaximander) ने जगत् का मूल तत्त्व ऐसा भौतिक पदार्थ माना जो जल नहीं है, अपितु रूप-रहित (Formless) तथा अनिश्चित (Indefinite) है। इससे जल, अग्नि, वायु आदि सीमित पदार्थ उत्पन्न होते हैं और इसी में लीन हो जाते हैं। उनके अनुसार यह पदार्थ परिमाण से परे हैं क्योंकि ऐसा न मानने पर सृष्टि के रहते यह पदार्थ भी समाप्त हो जाना है जो कि सम्भव नहीं है। यह अपरिच्छिन्न पदार्थ स्वयं कार्य नहीं हो सकता; यह अनश्वर है तथा इसकी गति शाश्वत है। मिलेटस के ही एक और व्यक्ति एनैक्सिमेनीज थे जिन्होंने वायु को संसार का मूल तत्व माना। सेमस निवासी पायथागोरस (जिनका काल ईसा पूर्व 580 माना जाता है) सब पदार्थों को अंक (Number) मानते थे। पायथागोरियन संस्था यह मानती थी कि शरीर आत्मा का कारावास है। वे लोग द्वैतवादी थे। हरेक्लिटस (Herecleitus) जो ई. पू. 535 के थे; अग्नि को संसार का मूल तत्त्व मानते थे। उन्होंने आत्मा को भी अग्नि का अंश माना और संवेदी ज्ञान को तर्क से नीचे दर्जे का माना। उनके अनुसार विचार रहित प्रत्यक्ष, प्रच्छन्न सत्य का साक्षात्कार नहीं करा सकता।

पारमेनिडीज (जो 514 ई. पू. के थे) ने परिवर्तनशील तथा अस्थायी संसार के मध्य सतत तथा स्थायी सत्ता की खोज की और सत् तथा असत् के बीच प्रतिपक्ष (Antithesis) उत्पन्न कर दिया। सत् को निरपेक्ष सत्ता माना और असत् को अवास्तविक और सत्ता रहित माना। इस प्रकार असत् का तादात्म्य परिवर्तनशील संसार से किया। संवेदी जगत् अवास्तविक, भ्रामक तथा आभासी माना गया और उसका ज्ञान संवेदांगों द्वारा किया जा सकता है, ऐसा माना गया। सत् (Being) सदैव विद्यमान रहने वाला, जिसका न परिवर्तन होता है न जन्म, यही ऐसा मूल तत्त्व है जिसका विभाजन नहीं होता है, यह इन्द्रियगम्य नहीं है, चूँकि यह प्रत्यय है पदार्थ नहीं है, अत: उसका ज्ञान तर्क (Reason) पर आश्रित रहता है, ऐसा माना गया। पारमेनिडीज ने मन को शरीर के भौतिक संगठन की उपज कहा और संवेदन शक्ति (Sensibility) को सत्य माना तथा उसका सम्बन्ध सत् (Being) के साथ बताया। सिसली में जन्मे एम्पडॉक्मेलीज ने चार गुणात्मक तत्व स्वीकार किये—पृथ्वी, वायु, अग्नि तथा जल। इन्हीं को सबका मूल कारण माना, और कहा कि इन तत्वों में प्रेम के कारण मिश्रण होता है और घृणा के कारण पृथक्करण।

एनेक्सेगोरस ने मन (Mind) को तत्त्व और स्वत: सक्रिय सत्ता माना और कहा कि संसार में सम्पूर्ण गति तथा जीवन का यही स्वतन्त्र स्रोत है। इसे भूत, वर्तमान व भविष्य का ज्ञान रहता है। इसी के कारण संसार में क्रम आता है। डिमॉक्रिटस (Democritus) संसार की सृष्टि के मूल साधन परमाणु को मानते हैं। उन्होंने क्षिति अर्थात् रिक्त देश या आकाश को स्वीकार किया जिससे उसमें परमाणु गति कर सके। उन्होंने गति को परमाणुओं का स्वाभाविक लक्षण माना। परमाणु को अजन्मा, अनश्वर तथा अपरिवर्तनशील माना। साथ ही कहा कि परमाणु गतिशील होते हैं और उसका परिणाम विश्व (Cosmos) की उत्पत्ति है। परमाणु आकार, क्रम, परिमाण तथा स्थान में पृथक होते हैं। इन लक्षणों का प्रत्यक्ष स्पर्श द्वारा होता है। स्पर्श के कारण संवेदना होती है। जिसकी अनुभूति उन परमाणुओं से निर्मित प्रत्येक वस्तु में की जा सकती है।

डिमाक्रिटस ने आत्मा को सूक्ष्मतम, गोल, फुर्तीले तथा अग्निमय परमाणुओं से निर्मित माना, और कहा कि आत्मा-परमाणु श्वास-प्रश्वास के साथ शरीर के अन्दर और बाहर आते-जाते रहते हैं; शरीर की मृत्यु होने पर आत्मा-परमाणु बिखर जाते हैं। उन्होंने आत्मा की अमरता को स्वीकार नहीं किया। देवताओं को भी परमाणुओं से निर्मित माना। जीवन का प्रधान उद्देश्य सुख (Happiness) माना। सुख को सन्तोष की आन्तरिक अवस्था माना जो आत्मा की शान्ति तथा सन्तुलन पर निर्भर करती है। यह सुख धन तथा भोगों पर आश्रित नहीं है क्योंकि वे क्षणिक और दु:खद होते हैं। उनके अनुसार इच्छाएँ

जितनी कम होंगी उतना ही कम भग्न-आशा होना पड़ता है । व्यक्ति को कर्त्तव्य समझकर उचित कार्य करना चाहिए न कि दण्ड के भय से ।
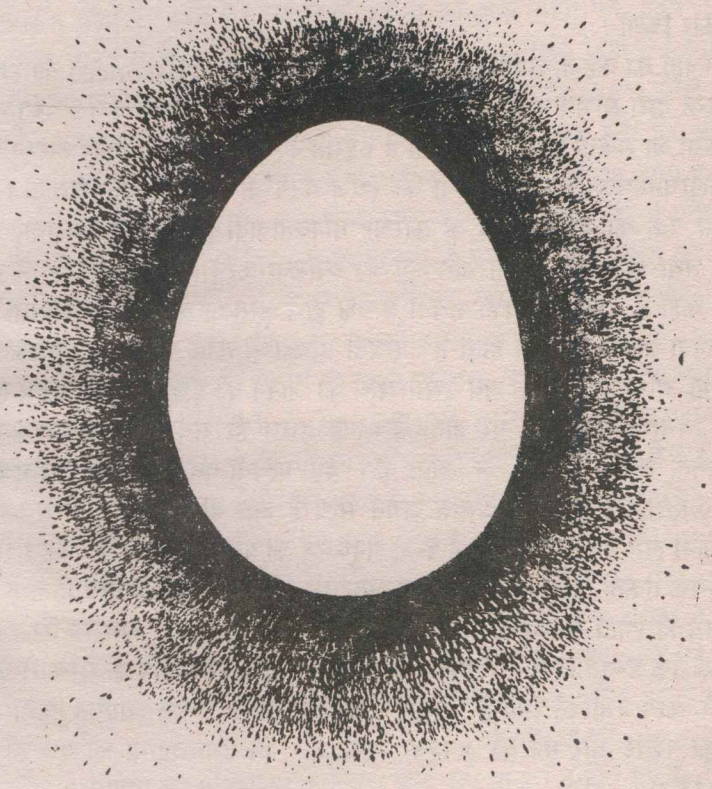
आत्मा SOUL

अजन्मा, अजर, अमर, नित्य, अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, अवध्य, सर्वगत, सनातन, तरंगोत्पादक, शिवलिंगम, ज्योतिपुंज है ।

चित्र संख्या-३

हिपोक्रैटीज (Hippocrates) ने इन्द्रियानुभविक चिकित्सा (Empirical Medicine) से सम्बन्धित सिद्धान्त का विवेचन कर यह सिद्ध किया कि शिक्षा आरोग्यप्रद (Salubrious) क्षेत्रों में आत्मा का प्रशिक्षण होता है । इन्होंने भी पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु को मूल तत्त्व माना । शरीर के अन्दर पीला पित्त पृथ्वी की शुष्कता से,

काला पित्त नमी अर्थात् जल से, रक्त गर्मी अर्थात् अग्नि से और कफ वायु की शीतलता से उत्पन्न माना। इस द्रव्य को देह द्रव्य (Humour) कहा गया। उन्होंने प्रेतात्मा, देवात्मा तथा दानव आदि को किसी बीमारी का कारण न मानकर बीमरी को दैविक मानने से इनकार किया।

प्लेटो का कहना था कि ज्ञान (Knowledge) सत्त्व (Essence) का होता है जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सम्भव नहीं हो सकता। अरस्तू कहते थे कि सत्व को उस वस्तु से अलग नहीं किया जा सकता जिसमें वह रहता है। इसीलिए थिली ने प्लेटो और अरस्तू के दर्शन को आलोचनात्मक (ज्ञान के नियमों की खोज करने के कारण), तर्कबुद्धिवादी (सत्य की खोज में तर्क को मान्यता देने के कारण), मानवतावादी (मानव का अध्ययन करने के कारण) तथा आध्यात्मिक (वास्तविकता की व्याख्या करने में महत्वपूर्ण स्थान रखने के कारण) कहा है। प्लेटो ने कहा संवेदी प्रत्यक्ष द्वारा वस्तुओं की वास्तविक सत्ता का पता नहीं चलता अपितु आभास होता है। संवेदी प्रत्यक्ष से कोई व्यक्ति वास्तविक ज्ञान की ओर तभी अभिमुख होता है जब उसमें सत्य को जानने की इच्छा होती है। इस इच्छा की उत्पत्ति विचार सुन्दर होने पर होती है। यह इच्छा ही संवेदी प्रत्यक्ष से व्यक्ति को प्रत्ययात्मक ज्ञान की ओर ले जाती है। यह प्रत्ययात्मक ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान (Knowledge) है। अत: प्रत्यय जगत सत्य है और इन्द्रिय जगत असत्य है। जैसे मनुष्य जन्म लेते हैं और मर जाते हैं परन्तु मनुष्यत्व का प्रत्यय शाश्वत है। बहुत से प्रत्ययों की आंगिक एकता ही विश्व है। इसका अनुशासन श्रेयस् के प्रत्यय द्वारा होता है। श्रेयस् का प्रत्यय ही प्लेटो के अनुसार परमात्मा है। प्लेटो ने आत्मा का अमरत्व सिद्ध करने के लिए कई तर्क प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने यह भी माना है कि पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण मनुष्य के कार्य प्रभावित रहते हैं। प्लेटो ने मन और शरीर में द्वैत स्थापित किया। उन्होंने शरीर को नश्वर और मन को अनश्वर माना और मन तथा आत्मा को एक ही अर्थ में उपयोग किया।

प्लेटो का संक्षिप्त दर्शन इस प्रकार है—आत्मा का उदय सर्वप्रथम होता है। आत्मा शरीर बंधनों में रहती है जब तक कि वह अपने यथार्थ चेतन रूप को नहीं पहिचानती। आत्मा ही ज्ञान का आधार है, उसमें सम्पूर्ण प्रत्यय विद्यमान रहते हैं। जब हमें इन्द्रियों द्वारा किसी वस्तु का प्रत्यक्ष होता है तब आत्मा में अन्तर्निहित प्रत्यय उस इन्द्रियजन्य प्रतयय के शुद्ध रूप का ज्ञान करता है। अत: इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान की शुद्धि आत्मा में अन्तर्निहित ज्ञान द्वारा होती है। इस प्रकार इन्द्रिय जन्य ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं होता, वास्तविक ज्ञान तो प्रत्ययों का ज्ञान होता है। उस ज्ञान का स्थान आत्मा (मन) है।

प्लेटो के शिष्य अरस्तू अधिक व्यवहारवादी दार्शनिक थे। विलडरेन्ट ने 'Story of Philosophy' में अरस्तू को 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' कहा है क्योंकि उन्होंने भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति, तत्त्व मीमांसा, तर्कशास्त्र एवं दर्शन आदि विभिन्न विषयों पर 400 पुस्तकें लिखी हैं। अरस्तू के अनुसार—वास्तविक ज्ञान

केवल तथ्यों को समझ लेना ही नहीं है अपितु उनका कारण जान लेना है। जो वस्तुओं के 'प्रथम कारणों' का अध्ययन करता है वह तत्त्व मीमांसा (Metaphysics) कहलाता है। **तत्त्व मीमांसा का विषय सत्** (Being) **है किन्तु अन्य विज्ञानों का सम्बन्ध सत् के कुछ भागों अथवा पक्षों से होता है।** अरस्तू ने आत्मा को अंश रहित एक अविभाज्य सत्ता माना है और मानवीय चेतना के स्तरों को मन:शक्ति (Faculty) कहा है। इनमें संवेदी प्रत्यक्ष निम्नतम मन:शक्ति है, सामान्य बुद्धि (Common Sense) उससे ऊपर है, कल्पना की मन:शक्ति तीसरे स्तर पर है, स्मृति की मन:शक्ति चौथे स्तर पर और पाँचवे स्तर तक तर्क की मन:शक्ति है। इन सब मन:शक्तियों का योग आत्मा (मन) है।

प्लेटो ने आत्मा और शरीर में यान्त्रिक सम्बन्ध माना है, जो शरीर में प्रवेश की जा सकती है, और शरीर से बाहर निकाली जा सकती है, परन्तु अरस्तू आत्मा को शरीर का रूप मानते हैं, अत: बिना शरीर के आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते। उनके अनुसार आत्मा वस्तु नहीं कार्य है। नेत्र द्वारा देखना ही नेत्र की आत्मा है। अरस्तू आत्मा (Soul) का स्थान हृदय मानते थे। गैलन ने आत्मा का स्थान मस्तिष्क बताया था। मध्य युग में 'अमर मानवीय आत्मा' (Immortal human soul) को शरीर से पृथक ऐसे पदार्थ की बनी हुई माना जाता था जो ईश्वर से मिलने का सदैव प्रयत्न करता रहता है। डेकार्ट ने आत्मा और शरीर को अलग मानकर शरीर की यान्त्रिक अभिनति (Bias) का विवेचन किया है। उनके अनुसार तन्त्रिकाओं में स्थित पशु-प्राण शक्तियों (Animal Spirits) की गति कोनेरियम (Conarium) पर संस्कार (Impression) उत्पन्न कर देती है और इस संस्कार से मन संवेदना उत्पन्न करता है। जब मन अपने संस्कार उत्पन्न करता है तो कोनेरियम इधर-उधर झुककर पशु प्राण शक्तियों की प्रभाव (Flow) की दिशा को पेशियों को ओर भेजता है जिसके कारण गति सम्भव होती है। फिर भी डेकार्ट ने इस कोनेरियम ग्रन्थि (Conarium Gland) को अन्योन्यक्रिया (Interaction) का बिन्दु माना है, आत्मा को कोनेरियम के अन्दर बन्द नहीं माना। उन्होंने मन से दो प्रकार के विचार उत्पन्न होते हुए माने हैं—व्युत्पन्न (Derived) तथा सहज (Innate)। सहज विचार व्युत्पन्न (बाह्य उद्दीपक के कारण उत्पन्न) विचारों से अधिक महत्वपूर्ण माने गये हैं। इन्हीं संवेगों में ईश्वर या आत्मा आदि के भाव प्रधान होते हैं। हाब्स ने सहज विचारों का विरोध किया है और कहा है कि संवेदनाएँ सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत होती हैं।

लॉक ने अनुभव को ज्ञान का स्रोत माना, जिसमें एक वह जो सीधा संवेदना (Sensation) से प्राप्त हो और दूसरा वह जो मनन (Reflection) से प्राप्त हो। मन पर संवेदना के प्रभाव के अतिरिक्त उसका अपना (मन का) कार्य होता है जिसे मनन कहते हैं। यही आन्तरिक इन्द्रिय (Internal Sense) है जो संवेदी अनुभव पर निर्भर रहकर ही अपने विचार उत्पन्न करती है। बुद्धि के द्वारा विचारों का संश्लेषण और विश्लेषण होता रहता है। लॉक ने साहचर्य (Association of ideas) तथा उत्तरोत्तर साहचर्य (Successive combination) को विचारों की उत्पत्ति में प्रधानता दी है। हम लोग

एक समान भौतिक उद्दीपकों का अनुभव करते हैं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति उस स्थिति में अपनी बुद्धि, अतीत अनुभव तथा प्रेरकों के अनुसार पृथक-पृथक रूप में भिन्न-भिन्न परिणाम देता है क्योंकि **प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग एक प्रत्यक्ष मनोवैज्ञानिक क्षेत्र** (Psychological field) **होता है। इसके कारण ही एक ही वस्तु पर त्राटक** (Concentration) **अथवा ध्यान** (Meditation) **करने वालों के परिणाम अलग-अलग पाये जाते हैं।** इन परिणामों तथा व्यक्ति के सामान्य व्यवहार के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर योग्य आचार्य अपने शिष्य के लिए अगली अभ्यास कड़ी (Exercise) की व्यवस्था करता है।

जार्ज बर्कले (George Berkeley) ब्रिटिश इन्द्रियानुभववादी दर्शन के प्रसारक थे। उनका कहना था कि हम बाह्य वस्तुओं की स्थिति, आकृति, गति आदि नहीं बता सकते क्योंकि हम अपने निजी अनुभव के अतिरिक्त कभी कुछ नहीं जानते। वे कहते हैं—दृश्यते इति वर्तते (Esse is percipi) मैं वस्तु को देखता हूँ इसलिए उसकी सत्ता है, अन्यथा नहीं। इसलिए वे केवल विचारों की सत्ता पर विश्वास करते थे। बर्कले ने आत्मा की सत्ता को स्वीकार किया, परन्तु ह्यूम (David Hume) ने कहा कि समस्त मानवीय चेतना की परीक्षा कर लेने के बाद भी आत्मा की सिद्धि में कोई प्रमाण नहीं। जिसको हम अपना 'आपा' कहते हैं, वह केवल संवेदनाओं (Sensations) का समूह मात्र है। व्यक्तित्व तो हमारे अनुभवों की क्रमिक धारा है, आत्मा की कोई सत्ता नहीं। ह्यूम के अनुसार मनुष्य के विचार उसके अनुभवों से उत्पन्न होते हैं। ये अनुभव ही परस्पर संयुक्त होते जाते हैं जिसके लिए किसी आत्मा या ईश्वर की आवश्यकता नहीं पड़ती। ह्यूम ने जीवन के आधारभूत तत्त्व संवेदना और प्रत्यक्ष को संस्कार (Impressions) कहा और उद्दीपक की अनुपस्थिति में मस्तिष्क के अन्दर रहने वाले अनुभव को विचार (Idea) कहा।

कान्डिलैक (Condillac) ने संवेदन के माध्यम से संवेदना की उत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए कहा कि संवेदनाओं की स्पष्टता 'ध्यान' कहलाती है। अर्थात् जब हमें किसी वस्तु से सम्बद्ध संवेदनाएँ स्पष्ट रूप से होती हैं तब हम उसे 'ध्यान' कहते हैं। जुलियन ऑफ्रेडिलामैट्री (Julien Offray De'La Metrie), जो कि प्रथम विषयनिष्ठ मनोवैज्ञानिक (Objective Psychologist) माने जाते हैं, ने आत्मा को नश्वर और मनुष्य को मशीन माना। डेकार्ट ने पशुओं को मशीन माना परन्तु मनुष्य को नहीं। 1795 में गिलोटिन (Guillotine) ने 'सिर कट जाने के बाद चेतना' के विषय में कहा कि शिरश्छेदन (Deheading) कर देने के बाद शरीर की ऐंठन आदि क्रियाओं का चैतन्य सत्ता से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वह मूलप्रवृत्ति (Instinct) के स्तर पर होती हैं। यह क्रियाएँ मेरुरज्जु के स्तर पर प्रतिवर्त-क्रियाएँ उद्दीपकों के कारण उत्पन्न होती हैं। यह अर्द्ध संकलित क्रिया कहलाती हैं। सर्वोच्च स्तर पर प्रतिवर्त-क्रिया चिन्तन (Thought) तथा

संकल्प (Volition) का स्वरूप धारण कर लेती है। सिर के बिना यान्त्रिक अनुक्रियाएँ होती हैं, मानसिक प्रक्रियाएँ नहीं होतीं। बेंथम (Bentham) ने नैतिक सुखवाद (Ethical hedonism) का समर्थन किया जिसके अनुसार केवल वैयक्तिक या सामाजिक भलाई ही सुख है। अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख (Greatest happiness of greatest number) उनका नारा था। फलतः उपयोगितावाद (Utilitarianism) का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ।

क्रिश्चियन वुल्फ (Christian Wolff) को अनीश्वरवादी माना गया। वे आत्मा को निश्चित तथा सुस्पष्ट शक्ति मानते थे। उनके अनुसार, जिस प्रकार एक होते हुए भी शरीर के द्वारा भिन्न-भिन्न क्रियाएँ होती हैं उसी प्रकार आत्मा एक है, किन्तु उसके द्वारा विविध प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। फलतः आत्मा एक है, अविभाज्य है, भिन्न-भिन्न अवयवों का समूह मात्र नहीं। चेतना में जो हमें परिवर्तन दिखाई देते हैं वे आत्मा की क्रिया से उत्पन्न होते हैं। आत्मा की प्रच्छन्न शक्ति की क्रिया से मानसिक अनुभव की उत्पत्ति होती है जिसे मानसिक संवेदना कहा जाता है। उन्होंने एक और बहुत महत्वपूर्ण बात डेकार्ट के आध्यात्मवाद (Spiritualism) तथा लैबनिज के चिद्‌णुवाद (Monadology) के सम्बन्ध में विचार के बाद कही है कि शरीर क्रिया विज्ञान अन्तर्दर्शन (Introspection) का पूरक है। अन्तर्दर्शन की इच्छा रखने वाले को 'शरीर क्रिया विज्ञान' का ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

जेम्स दो प्रकार के आधारभूत अनुभव मानते हैं। **एक स्वस्थ मनः स्थिति** (Healthy mindedness) **का धर्म, जिसमें संसार को सुखमय समझा जाता है। ऐसा धर्म दुःख और निराशा को सम्मान नहीं देता। दूसरा अस्वस्थ मनः स्थिति** (Unhealthy mindedness) **का धर्म, जो संसार को दुःखमय समझता है। इस धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति सुख प्राप्त करने के प्रयत्न में ऐसे कार्य कर जाता है जो उसे दुःख देते हैं, इसलिए इन्द्रियों के स्तर पर उसे कभी सन्तोष नहीं मिलता। यों दुःख तो स्वस्थ मनः स्थिति वाले व्यक्ति को भी मिलता है परन्तु वह स्वयं सुख-केन्द्रित होने के कारण उसे कुछ नहीं समझता। जो दुःख-केन्द्रित होता है वह जीवन की प्रत्येक वस्तु के केन्द्र में दुःख ही देखता है और वह अधिक संकट में पड़ता जाता है।**

यूनान धर्म, कला, राजनीति, दर्शन मनोविज्ञान आदि से परिपूर्ण रहा है। यहाँ कुछ लोग भारत की बात कर सकते हैं। उन लोगों से मेरा अनुरोध है कि वे भारत की आज की स्थिति को देखें। प्राचीन स्थिति की प्रशंसा करते-करते तो हम लोग इस स्थिति तक आ गये। क्योंकि **हम प्राचीन संस्कृति की बातें करके, अपने पूर्वजों और देवताओं की बातें करके ही अपने को महान समझते रहे। अन्ततः हमारे पास महानता की बातें रह गईं, महानता के कार्य नहीं।** हाँ, तो हम यूनान की बात कह रहे थे। धार्मिक विकास के लिए यूनान में दो विचार प्रचलित थे—(१) विश्व विज्ञान (Cosmology) तथा तर्क बुद्धिवाद (Rationalism)। विश्व विज्ञान में विश्व की उत्पत्ति, विकास तथा संरचना

आदि सम्बन्धी बातों का समावेश है। तर्क बुद्धिवाद आत्मा (Soul) को जीवित प्राणी की अभिव्यक्ति देता है। थेलीज, एनैक्सिमैंडर, एनैक्सिमेनीज, हरेक्लिटस, डिमॉक्रिट्स आदि Cosmology के प्रतिनिधि माने जाते थे और प्लेटो (Plato) तथा अरस्तू (Aristotle) Rationalism के। प्लेटो का दर्शन कहता था कि तर्क के उपयोग द्वारा सत्य को पाया जा सकता है और तर्क के द्वारा प्राप्त ज्ञान उतना ही वैध होता है जितना प्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त ज्ञान। कहीं-कहीं पर 'तर्क बुद्धिवादी' तर्क से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान की अपेक्षा उत्कृष्ट मानते देखे गये हैं। विश्ववादियों ने प्राकृतिक अवलोकन (Naturalistic observations) का सूत्रपात करके अज्ञात (Unknown) को उसके संघटक तत्वों (Constituent elements) में न्यूनीकृत करके उसे समझने का विचार किया। ये दोनों प्रकार की प्रणाली तन्त्रीय उपागम (Methodological approaches) प्रत्येक विज्ञान में प्राचीन अथवा नवीन आधारभूत प्रथम अवस्थाएँ (First stages) मानी जाती हैं।

अरस्तू का समय राजनैतिक उथल-पुथल का रहा था। अरस्तू के शिष्य मैसीडन के फिलिप तथा उसके पुत्र सिकन्दर ने यूनान को रोम के अधीन कर दिया था जिससे लोगों में भय, आतंक, निराशा तथा पराजय की भावना व्याप्त हो गई थी। मध्य पूर्व की ओर से ईसाई अपना धर्म फैला रहे थे। पश्चिमी योरोप में सांस्कृतिक जीवन धर्मशास्त्रीय (Theological) रुचिपूर्ण बना हुआ था। जब मनुष्य के विचार सामान्य जीवन से ऊपर चले जाते थे तब वह आत्मा के सम्बन्ध में विचार करता था और नरक यातना (Hell torture) से बचने की सोचता था। विचारशील पुरुष सत्य को समझने के लिए उत्सुक रहते थे परन्तु समय का ऐसा प्रभाव था कि वह यह विश्वास करते थे कि सत्य का प्रादुर्भाव दैवी संकल्प (Divine will) द्वारा होगा और हठधर्मिता (Dogmas) उनका मार्गदर्शन करेगी। इन मध्य युगों की निन्दा करने का एकमात्र कारण यही रहा है कि उसमें विज्ञान की प्रगति की कमी थी और सत्तावाद (Authoritarianism) का जोर था। यहाँ तक कि गिरजाघर की क्रियाएँ स्वतन्त्र वैज्ञानिक अनुसन्धान में बाधक होती थीं। अप्रामाणिक (Unprovable) हठधर्मिता को मान्यता दी जाती थी।

धीरे-धीरे सामन्तवाद (Feudalism) समाप्त हुआ, जागीर व्यवस्था का विघटन हुआ, स्थल और समुद्र मार्गों से व्यापार खुला, धर्मयुद्धकर्ताओं ने कुछ ऐसे शोध किये जिससे सभ्यता में क्लासिकी संस्कृति के तत्त्व सम्मिलित हो गये और पूर्व पुनर्जागरण (Proto Renaissance) का उदय होने लगा, जो सोलहवीं सदी में उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा। पन्द्रहवीं शताब्दी में बारूद का युद्ध में प्रयोग हुआ। 1440 में मुद्रणालय (Printing Press) प्रारम्भ हुए। तुर्कों ने 1453 में कुस्तुन्तुनिया को पराजित करके उसकी संस्कृति को पश्चिम की ओर प्रसारित किया। 1492 में अमरीका की खोज कोलम्बस ने की। यह सब इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि लोगों की रुचि आत्मा और हठधर्मिता से व्यापार तथा व्यवसाय की ओर उन्मुख हो रही थी। सोलहवीं सदी में मैक्सिको तथा पेरू में सोना और चाँदी की खानें मिल गयीं। 1543 में कॉपरनिक्स का सूर्यकेन्द्री (Heliocentric) सिद्धान्त का प्रचार हुआ कि 'पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार घूमते हैं।' सत्रहवीं सदी से नवीन विज्ञान का प्रारम्भ हुआ, जिसमें

केपलर, गेलीलियो और न्यूटन के महत्त्वपूर्ण कार्य सम्मिलित हैं। विज्ञानों की फ्रेंच अकादमी (French Academy of Sciences) को 1671 में फ्रांस द्वारा राजकीय सहायता मिलने लगी (इसका कार्य-केन्द्र पेरिस था) जिससे खोजकर्ताओं को बहुत सहयोग मिला। सोलहवीं सदी में गिरजाघरों के घोर विरोध के बावजूद लियोनार्डो डा विंसी (Leonardo da Vinci) तथा माइकेलैन जैलो (Michelangelo) ने मानव शरीर की शल्य-क्रिया (Dissection) कर शरीर रचना का अध्ययन प्रारम्भ किया। ऐंड्रियास वेसेलियस (1514-1564) ने छोटी उम्र में ही मानव-डिसैक्शन प्रारम्भ कर शरीर रचना विज्ञान की आधुनिक परम्परा को जन्म दिया। इसी समय फ्रेंच दार्शनिक और गणितज्ञ रेनी डेकार्ट (Rene Descartes) ने कुछ ऐसे क्रान्तिकारी विचार दिये जिन्होंने बौद्धिक प्रबोध (Intellectual Enlightenment) के आविर्भाव में सहयोग दिया। इसके पश्चात् नवीन विज्ञान का बहुसर्जक तथा शीघ्रगामी विकास हुआ। डेकार्ट यन्त्रवादी (Mechanistic) थे किन्तु प्रकृति के अध्ययन में उनकी प्रवृत्ति इन्द्रियानुभविक अवलोकन में थी। वे तर्क बुद्धिवादी भी थे क्योंकि वे दार्शनिक परिकल्पनाओं में अनुभव निरपेक्ष सूक्तियों (Apriori Axioms) के महत्व में विश्वास रखते थे।

सामान्यत: ब्रिटिश दार्शनिकों ने अपने को इन्द्रियानुभविक परम्परा से सम्बद्ध कर लिया था, जबकि योरोप के महाद्वीप में दोनों दृष्टिकोणों को अपनाया जाता था। इन्द्रियानुभववाद के सैद्धान्तिक पक्ष का सम्बन्ध मन की वृद्धि से रहता है। उसके अनुसार संवेदी अनुभवों के संचयन द्वारा मन (Mind) की वृद्धि होती है। तत्त्वमीमांसा के अनुसार 'संस्कारों के संचयन को ही मन कहते हैं।' यह अभिवृत्ति आनुवंशिकवादी (Nativistic) दृष्टिकोण से भिन्न है। डेकार्ट के अनुसार, 'कुछ प्रत्यय जन्म से विद्यमान रहते हैं। तत्त्वमीमांसा (Metaphysics), संस्कार आवरणों का आच्छादन जन्म-जन्मान्तर से मानता है।' इन्द्रियानुभववादियों में टॉमस हाब्स (Thomas Hobbes) ने समूचे ज्ञान का स्रोत संवेदनाओं को माना और दर्शन का मनोविज्ञान से जुड़ना आवश्यक माना।

वस्तुत: प्राचीन इतिहास एवम् संस्कृति को बिना समझे 'वर्तमान' विकृत तथा विघटित प्रतीत होता है, साथ ही नवीन आन्दोलनों तथा विधियों की सार्थकता का मूल्यांकन करना कठिन हो जाता है। आध्यात्मिक इतिहास के ज्ञान के बिना समकालीन **आध्यात्म की जटिलता तथा विशालता** (Vastness) **उन व्यक्तियों को भ्रमित कर सकती है जो विभिन्न प्रकार के प्रत्ययों, विचारों तथा एक-दूसरे के प्रति उपागमों में बिना क्रियात्मक ज्ञान के सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं** और मात्र बौद्धिक जिज्ञासा शान्त करते हैं। मनोवैज्ञानिक वार्दाइमर ने कहा है 'इतिहास के अनुशीलन के लिए कोई सफाई देने की आवश्यकता नहीं है। कहानी के लिए उसका आकर्षण ही पर्याप्त पुरस्कार होता है।'

■■

महर्षि यतीन्द्र दर्शन

सन् 1966 में थीसिस सलैक्शन बोर्ड, धर्म तत्त्व दर्शन विश्वविद्यालय के समक्ष प्रस्तुत किये गये 'तत्त्व ज्ञान के मूल सूत्रों' को यहाँ आपके लाभार्थ प्रकाशित कर रहे हैं। यह सूत्र अत्यन्त सरल और व्यावहारिक ढंग से सूत्र बद्ध किये गये हैं। जिससे इस विषय के शोध छात्रों एवं जिज्ञासुओं को एक नई दिशा मिल सके।

बहुत-सी बातें जो शब्दों में कहना सम्भव नहीं हो सका है उन्हें चित्रों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है। क्योंकि शब्दों की सीमा बहुत कम है और ज्ञान असीमित। आप लोग यहाँ भी शब्दों में न उलझें, जो बात शब्दों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया जा रहा है उसे पकड़ें। फूल की सुगन्ध का आनन्द लें, फूल के दलों पर झगड़ा न करें और आप यह देखकर हैरान रह जाएँगे कि कुछ सिद्धान्त जिनसे आप बिल्कुल सहमत नहीं होंगे उनके बारे में भी **यदि, आप कुतर्क को स्थान न देकर अपने नित्य प्रति के प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर निष्पक्ष होकर शांत भाव से मनन चिंतन करते रहें** तो आपकी समस्या का समाधान प्रकृति स्वयं कर देगी; क्योंकि 'तत्त्व ज्ञान' के सूत्र पूर्णत: 'प्राकृतिक' हैं।

दर्शन परिचय

अब तक के संचित ज्ञान और अनुभवों से आप यह समझ चुके होंगे कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति पर दो उत्तरदायित्व हैं—(१) समाजोन्नति, और (२) आत्मोन्नति। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है जिसमें जीव आत्मोन्नति हेतु कुछ कर सकता है, क्योंकि भावनाओं का संयमन व वशीकरण किसी अन्य जीव-बुद्धि की सामर्थ्य से परे की बात होती है।

'कृष्णार्वीन्द्र' के अनुसार—'आत्म तत्त्व ज्ञान' मानव मात्र के अवयवों, अंग-उपांगों एवं उनके द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक रूप से किये जाने वाले आत्मोन्नति के कार्यों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस विषय पर बहुत कुछ अन्वेषण एवम् शोध कार्य किये हैं।

शिप्राशोकालका के अनुसार—"भारतीय संस्कृति के सभी कार्य आध्यात्मिक दृष्टिकोण को सामने रखकर ही किये जाते रहे हैं।" यही कारण है कि भारत में पाये जाने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के धर्म-नियम मानवोत्थान के दृष्टिकोण को आधार मानकर ही बनाये गये हैं।

अध्ययन की आवश्यकता (The Purpose of Study)

तत्त्व ज्ञान के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न महानुभावों—महर्षि नन्दी, महर्षि वात्स्यायन, महर्षि पाणिनी, ब्रह्मर्षि अत्रि, देवर्षि नारद, महर्षि द्रोणाचार्य, कपिल मुनि, पैरागोरस, अफलातून, अरस्टोटिल, प्लैटो, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शंकराचार्य, श्रीकृष्ण, स्वामी रामकृष्ण, ज्ञानेन्द्र एवं मध्य युग के कुछ क्रिश्चियनों, रोमन-कैथोलिक संतों तथा सूफियों आदि के द्वारा विभिन्न शोध कार्य किये गये हैं परन्तु **इतना सब होते हुए भी किसी का इतना स्पष्ट एवं सूत्रबद्ध क्रियात्मक रूप में इस ज्ञान का विवेचन नहीं मिलता जैसा कि इन शोध सूत्रों में किया गया है।** इनका अध्ययन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से लाभप्रद होने के साथ-साथ सामाजिक दृष्टिकोण से भी लाभप्रद होगा, क्योंकि जहाँ अन्य सम्प्रदाय एवम् मत-मतान्तर मानव को कुछ विशेष नियमों द्वारा (उनका कारण स्पष्ट किये बिना) भिन्न-भिन्न रूपों एवम् वर्गों में बाँधते हैं, वहाँ **यह ज्ञान सम्पूर्ण मानव-मात्र पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा; फिर भी जिसमें विकास के लिये अनन्त अवकाश होगा।** दूसरे शब्दों में—इस ज्ञान का ज्ञाता न तो ब्राह्मण होगा न बौद्ध, न ईसाई और न सिख या इस्लामी, अपितु इन सब की समष्टि 'मानव' बनेगा। प्राग्वेद काल में ऐसे मानवों को 'कमल-योनि' कहा जाता था (इस भाव को चित्रकार देवी-देवताओं को कमल पुष्प पर बैठाकर प्रदर्शित करते हैं)। **कमल-योनि व्यक्ति सभी भोग्य वस्तुओं का उपभोग करते हुए भी कर्मों से निर्लिप्त रहने की अद्भुत कला का ज्ञाता होता था।**

इस तथ्य को भी झुठलाया नहीं जा सकता कि सारी दुनिया की सरकारें तथा विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाएँ मानव स्तर को सुधारने के लिये अथक प्रयत्नशील हैं। फिर भी आज का 'मानव स्तर' 'मानवता' की ओर नहीं बढ़ रहा है। इसका मूल कारण है—मानव सुधार के प्रयत्नों में 'आत्मोत्थान के आधार' का अभाव। इस तथाकथित समस्या के समाधान हेतु ऋषि 'यतीन्द्र' आत्म-तत्त्व-दर्शन एवम् अन्य भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शनों के तुलनात्मक विश्लेषण की आवश्यकता है। इस प्रकार का अध्ययन मत-मतान्तरों में फैले ढोंगवाद एवम् विरोधाभास को समापत करने में सहायक होगा।

पूर्वाध्ययन (Pilot Study)

इन शोध सूत्रों को तैयार करने से पूर्व सनातन, वैदिक, वेदान्त, घट मार्ग, शैव, वैष्णव, ब्रह्मा कुमारी, ब्रह्म समाज, कौलाचार आदि तांत्रिक मार्ग कैथोलिक, प्रोटेस्टैन्ट, बौद्ध, पारसी, सूफी, जैन, नन्दी, कबीर पन्थ, रामानन्दी, सिक्ख, इस्लाम आदि आदि विभिन्न सम्प्रदायों के आचार-विचारों के अध्ययन के साथ-साथ ही इनके मतानुयायियों की मानवता तथा इन मत-मतांतरों के धर्म-नेताओं की अमानवीयता का निष्पक्ष भाव से व्यावहारिक रूप में विश्लेषणात्मक सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। इस प्रकार विभिन्न धर्मों में पाये गये विरोधाभासों पर विचार करने से ज्ञात हुआ कि—

१. मानव धर्म एक है, जब तक मानव 'मानव' है उसका धर्म भी दूसरे किसी भी मानव जैसा ही होगा।
२. सभी मत-मतान्तर देश-काल-परिस्थिति के आधार पर उसी एक मानव धर्म को आधार मानकर बनाये गये हैं।
३. इन मत-मतान्तरों व सम्प्रदायों में पाखण्ड आदि दोष स्वार्थी धर्म नेताओं द्वारा पैदा कर दिये गये हैं, जो कि धर्म-विग्रह एवं साम्प्रदायिक-विग्रह पैदा करते हैं।
४. सभी सम्प्रदायों में विरोधाभास का दोष पाया जाता है।
५. सभी मतों में काल्पनिक अविश्वसनीय गप्पाष्टिक अत्यन्त भरी पाई गई, जो कि सम्भवत: उस मत को काले जादू की तरह छूमंतर-मार्का अत्यन्त प्रभावशाली और श्रेष्ठतम सिद्ध करने के लिये गढ़ी गई हैं।
६. धर्मशास्त्रों में उदाहरणार्थ दी गई कहानियाँ तथा अलंकारिक भाषा का अत्यधिक प्रयोग ऐसे रूप में देखा गया जो उन्हें अगम्य बना देता है।
७. सभी मत-मतान्तरों एवम् सम्प्रदायों में केवल 'वैदिक सनातन धर्म' ही ऐसा पाया गया जिसमें सबसे अधिक शोध कार्य विभिन्न ऋषियों आदि के द्वारा किया गया है।
८. धर्म स्वयं में एक पूर्ण विज्ञान है, यहाँ प्रत्येक बात के कारण एवं प्रमाण होते हैं। **ज्यों-ज्यों विज्ञान उन्नति करेगा धर्म में शुद्धता आती जायेगी** और कट्टरता समाप्त होती जायेगी।
९. प्रकृति के सभी नियम अटल हैं तथा सभी के लिये समान रूप से प्रभावकारी हैं—इनमें कहीं कोई परिवर्तन नहीं होता।
१०. प्रकृति एक खुली प्रयोगशाला है जहाँ 'छूमन्तर' वाली बात कभी नहीं होती। हर कार्य की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। किसी भी प्रक्रिया में जितने गहरे जायेंगे उतने ही मोती खोज लायेंगे। इस पूर्वाध्ययन, पूर्वावलोकन, प्राप्त साहित्य आदि, प्राप्त प्राचीन लेख्य तथा गणना आदि, एवम् क्रियात्मक अनुभवों, व्यक्तिगत व्यवहारों आदि के आधार पर ही यह शोध सूत्र प्रस्तुत किये गये हैं।

आत्म तत्त्व ज्ञान के सिद्धान्त (यतीन्द्र सूत्र)

ब्रह्म ज्ञान

१. आत्म तत्त्व ज्ञान को अंग्रेजी में METAPHYSICS (The Science of "first principles and causes") कहा जाता है। इसी को कुछ विद्वान ब्रह्मज्ञान, वेदान्त, जीवन दर्शन, आदि-आदि कहते हैं। 'ब्रह्म ज्ञान' शब्द के आधार पर ही इस ज्ञान के अनुसार आचरण करने वाले को ब्रह्मचारी कहा जाता है और चूँकि वह संसार सागर में रहकर भी कमल के समान उसमें लिप्त नहीं होता अत: 'कमल योनि' कहलाता है।
२. मनुष्य जीवन का उद्देश्य है मोक्ष प्राप्ति, जिससे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हुआ जा सके।
३. मोक्ष प्राप्ति तभी सम्भव है जबकि हमारी आत्मा पूर्ण पवित्र हो अर्थात् वह सभी आवरणों से मुक्त हो चुकी हो।

४. आत्मा को विभिन्न आवरणों (बन्धनों) से मुक्त कराने वाली विद्या का नाम 'आत्म तत्त्व ज्ञान' है; जो कि हमें सभी भोग्य वस्तुओं का उपभोग करते हुए भी कर्मों से निर्लिप्त रहने की अद्‌भुत कला सिखाता है । आगे इन्हें 'यतीन्द्र सूत्र' कहा जायेगा ।

आत्मा

५. प्रत्येक जीवित शरीर के अन्दर कम से कम एक आत्मा होती है ।

६. आत्मा अजन्मा (जो पैदा नहीं हुई), अजर (जो क्षीण नहीं होती), अमर (जो मरती नहीं), नित्य (सदैव रहने वाली), अछेद्य (जिसका छेदन नहीं होता), अदाह्य (जो जलाई नहीं जा सकती), अक्लेद्य (जिसे कोई क्लेश नहीं दिया जा सकता), अशोष्य (जो सुखाई नहीं जा सकती), अवध्य (जिसका वध नहीं किया जा सकता), सर्वगत: (जो प्रत्येक स्थान पर जा सकती है), सनातन (कभी समाप्त न होने वाली, आदि काल से), तरंगोत्पादक (Oscillator), शिवलिंगम् (शिव के आकार वाली—अण्डाकार) ज्योति पुंज (जिसमें से सदैव शक्तिमय प्रकाश तरंगें प्रसारित होती रहती हैं ।) है ।

७. यह स्वाभाविक रूप से एक जैसी आत्मिक शक्ति वाली आत्मा की ओर, अथवा उस आत्मा की ओर जिससे इसका पूर्व सम्बन्ध रहा हो, आकर्षित होती है, तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानी जाती है ।

८. मानव शरीर में आत्मा (ब्रह्म) जिस स्थान में रहती है उसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं । यही मनश्चक्र (Thalamus) है ।

चित्र संख्या-४
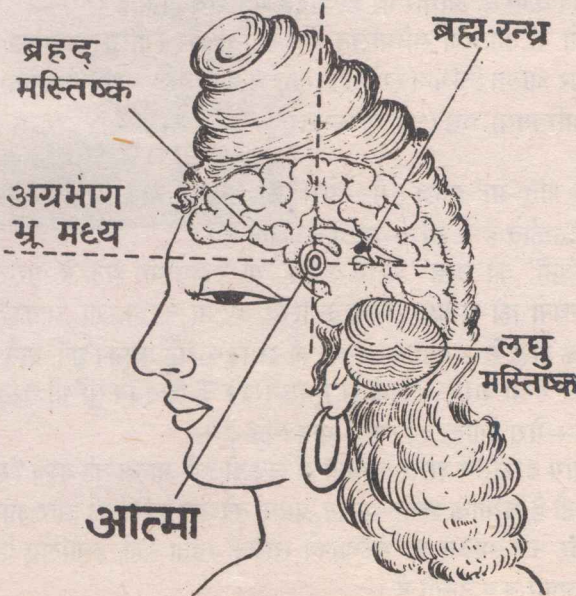
कर्म-बन्धन

९. आत्मा पर कर्मों का प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु इस पर हमारे द्वारा किये गए कर्मों के आधार पर उत्पादित भावनाओं का आवरण कर्म-बन्धन के रूप में आच्छादित हो जाता है, चूँकि यह आवरण आत्मा पर आच्छादित होता है अतः शरीर-त्याग के पश्चात् भी आत्मा के साथ ही रहता है।

१०. जिन कर्मों के करने पर आत्मा पारदर्शी आवरणों से आच्छादित होती है वे कर्म 'पुण्य' कहे जाते हैं तथा जिन कर्मों के करने पर आत्मा अल्प पारदर्शी आवरणों से आच्छादित होती है वे 'पाप' कहे जाते हैं।

११. दोनों ही प्रकार के आवरण (पारदर्शी एवं अल्प-पारदर्शी) अत्यधिक चेतन (Sensitive) होते हैं, इसलिए इन पर नक्षत्र, ग्रह तथा अन्य ब्रह्माण्डीय गैसें (Space Gases) आदि भी प्रभावकारी होती हैं।

१२. मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि आत्मा पर कोई भी अल्प-पारदर्शी या पारदर्शी आवरण न रहे। यूँ डेढ़-दो लाख पारदर्शी आवरण मुक्ति प्राप्ति में अवरोधक नहीं होते।

१३. कर्म-बन्धन का कारण हमारी भावनायें (इच्छाएँ) होती हैं अतः इनके संयम द्वारा ही कर्म-बन्धनों का नियमन किया जा सकता है, इसीलिए कर्म करते समय उसमें 'अनासक्ति भाव' या 'अर्पण भाव' रखने का विधान है।

१४. सभी कर्म-बन्धन अस्थायी (थोड़े से प्रयत्नों द्वारा नष्ट किये जाने योग्य) होते हैं।

१५. यदि कोई कर्म-बन्धन मुक्त होने के लिए कर्म करना बन्द करना चाहे तो यह उसकी मूर्खता होगी, क्योंकि कर्म-बन्धनों का कारण हमारे द्वारा किए गये कर्म नहीं होते, अपितु उन कर्मों के आधार पर उत्पादित भावनायें होती हैं।

१६. ये बन्धनों के आवरण सम्मिलित रूप में विभिन्न रंगों का आभास देते हैं जिसके आधार पर आत्मा विभिन्न रंगों में दिखाई देती है जैसे—शुक्ल (श्वेत), पद्म (गुलाबी), तेजस (अग्निमय), धूम्र (धुएँ या कबूतर जैसी), नील (नीली), कृष्ण (काली) आदि।

शरीर-बन्धन

१७. शरीर के प्रति अहं-इच्छा ('मैं—मेरा' की भावना) होने से आत्मा पर जो आवरण आच्छादित होते हैं वे शरीर-बन्धन कहलाते हैं।

१८. 'कर्म-बन्धनों' की तरह 'शरीर-बन्धन' भी अस्थायी होते हैं, परन्तु पूर्वाच्छादित शरीर-बन्धनों को समाप्त करने के लिये आत्मा का नारंगी आकाश तक पहुँचना आवश्यक होता है—वहाँ वह स्वतः ही शरीर बन्धन मुक्त (शनैः-शनैः) हो जाती है।

१९. आत्मा को भावी शरीर-बन्धनों से मुक्त रखने के लिए किसी भी वस्तु के प्रति अहं-इच्छा (मैं—मेरा आदि) का त्याग आवश्यक है।

२०. शरीर-त्याग के समय शरीर-बन्धनों से जकड़ी हुई आत्मा की दशा "साँप छछूँदर के ऐसी" होती है, क्योंकि शरीर-बन्धन आत्मा को उस शरीर की ओर आकर्षित करते हैं और शरीर उस आत्मा को सम्भालने लायक रहता नहीं, इसीलिए ऐसे प्राणी मृत्यु काल में अपार कष्ट उठाते हैं।

ब्रह्माण्ड अंश - Brahmānd Ansh

स्तम्भ रूप - Stambha Roopa

(A Coloumn of Cosmic Space)

२१. शरीर-त्याग के पश्चात् 'शरीर-बन्धन' समाप्त होने से पूर्व ही आत्मा पुनर्जन्म ले तो उसे पिछले शरीर (पूर्व-जन्म) के सभी सम्बन्ध आदि याद रहते हैं।

ब्रह्माण्ड—

२२. ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत इस विशाल आकाश मण्डल में स्थित सभी नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह तथा आकाशीय गैसें आदि आ जाती हैं।

२३. ब्रह्म ज्ञान को अधिक सुगम करने के लिए विभिन्न ब्रह्माण्डीय गैसों के अणुओं से प्रकाश के प्रकीर्णन (Scattering) के कारण दृष्टिगोचर होने वाले विभिन्न रंगों के आधार पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सात भागों में विभक्त कर लेते हैं—१. सफेद या रंगहीन, २. बैंगनी, ३. नीला, ४. हरा, ५. पीला, ६. नारंगी, ७. लाल।

२४. इन सभी आकाशों में पायी जाने वाली गैसों के भौतिक, रासायनिक तथा आणविक गुणों के आधार पर इनके पुनः कई भाग किए गए हैं—आयनोस्फीयर (Ionosphere), ट्रोपोस्फीयर (Troposphere), एक्झौस्फीयर (Exhosphere) आदि, आदि, परन्तु इन गैसों के आध्यात्मिक (Metaphysical) रूप में क्रियाशील होने के आधार पर हम प्रत्येक आकाश को तीन भागों में विभक्त करते हैं—सत, रज, तम।

२५. पृथ्वी से जो आसमानी रंग हमें दृष्टिगोचर होता है वह ऐसे विभिन्न अणुओं के प्रकीर्णन के कारण है जो बैंगनी, नीले व हरे रंग का समन्वित रूप में आभास देते हैं।

२६. सफेद व रंगहीन आकाश में सभी प्रकार के जीव—जलचर, थलचर, नभचर आदि का वास होता है।

२७. नीले आकाश में उन अशरीरी आत्माओं का वास होता है जो पुनर्जन्म के अयोग्य होती हैं, जैसे भूत-गण आदि।

२८. हरे आकाश में (सौरमण्डल के नक्षत्र आदि विभिन्न सूर्यों के सम्मुख पड़ जाने के कारण) अधिकतर घना अन्धकार छाया रहता है, जिससे सन्देह होता है कि 'काला आकाश' भी है।

२९. जो आत्मायें शरीर त्यागोपरान्त हरे आकाश तक आकर पुनः पृथ्वी की ओर चली जाती हैं वे अधिकतर पुनर्जन्म के अयोग्य होती हैं और अशरीरी आत्माओं के रूप में मर्त्यलोक में विचरण करती हैं तथा जो पुनर्जन्म के योग्य (सत विभाग से वापस होने वाली) होती हैं वे अचल जीवों (वृक्ष आदि) में जन्म लेती हैं।

३०. पीले आकाश तक पहुँचकर पृथ्वी की ओर तम विभाग से वापस जाने वाली आत्मायें अधिकतर एककोशीय जीवों, कीटाणुओं आदि में जन्म लेती हैं। रज विभाग से वापस होने वाली आत्मायें अधिकतर साँप, जानवर आदि योनियों में जन्म लेती हैं।

३१. नारंगी आकाश में आ जाने वाली आत्माओं के शरीर-बन्धन स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं, यह इस आकाश के तम विभाग में पायी जाने वाली गैसों की आध्यात्मिक विशेषता (Metaphysical Property) है। यहाँ से पृथ्वी की ओर वापस जाने वाली आत्मायें मनुष्य जैसी श्रेष्ठ (भाव-प्रधान) योनि में जन्म लेती हैं।

३२. यदि कोई आत्मा पीले और नारंगी आकाश के मिलन स्थल से वापस आये और उसका जन्म मनुष्य योनि में हो तो (नारंगी आकाश में अधिक समय न रहने से सम्पूर्ण शरीर-बन्धन समाप्त न हो पाने के कारण) उसे पिछले जन्म की बातें कुछ काल तक याद रहती हैं।

३३. लाल आकाश तक पहुँच जाने वाली आत्मा पुन: पृथ्वी की ओर स्वत: नहीं आती यह यहाँ पाई जाने वाली गैसों की आध्यात्मिक विशेषता है। साथ ही इन आत्माओं के 'परम ज्योति' के सन्निकट रहने के कारण शनै:-शनै: बहुत से बचे हुए कर्म-बन्धन भी समाप्त हो जाते हैं। इस आकाश का दूसरा नाम परमधाम है। इस आकाश में पहुँचकर आत्मा का अपनी आत्मिक शक्ति के आधार पर स्थित हो जाना (पुन: पृथ्वी की ओर आकर शरीर धारण न करना अर्थात् जन्म-मरण से छुटकारा पा जाना) ही मोक्ष कहलाता है।

३४. लाल आकाश में रहने वाली आत्मायें भी "ब्रह्माण्ड स्थित प्रत्येक वस्तु गतिमान है" के सिद्धान्तानुसार अपनी कक्षा में चक्कर लगाती रहती हैं।

आत्मिक शक्ति—

३५. आत्मा पर आच्छादित कर्म-बन्धनों के आवरणों में से छनकर आने वाला शक्तिमय प्रकाश ही उस आत्मा की आत्मिक शक्ति है। अत: जो भी (नक्षत्र, ग्रह, तपस्या तथा अन्य वस्तुएँ) कर्म-बन्धनों को प्रभावित करती हैं वे सभी आत्मिक शक्ति में भी परिवर्तन करती हैं, क्योंकि कर्म-बन्धन ही आत्मिक शक्ति में कमी का कारण होते हैं।

३६. पिछले कर्म-बन्धनों के नष्ट कर देने पर तथा भावी कर्म-बन्धनों के संयम द्वारा हम आत्मिक शक्ति में वृद्धि कर मनुष्यात्मा (भू:) से क्रमश: धर्मात्मा (भुव:), पुण्यात्मा (स्व:), महात्मा (मह:), देवात्मा (जन:), शुद्धात्मा (तप:) और पवित्रात्मा (सत्) तक बन सकते हैं—यहीं से परमगति प्रारम्भ होती है।

३७. आत्मा की प्रकाश शक्ति के आधार पर जीव का शरीर निर्माण माँ के गर्भ में होता है और कर्म-बन्धनों के आवरणों के प्रभाव के आधार पर माँ-बाप (उपयुक्त गर्भ) का चयन स्वत: ही आत्मा करती है।

३८. यही कारण है कि कर्मों के आधार पर आत्मिक शक्ति को घटा-बढ़ाकर अपनी इच्छित योनि में जन्म लिया जा सकता है।

३९. ध्यान-प्रार्थना आदि क्रियाओं का सम्बन्ध भी आत्म-शुद्धि से है।

४०. अपने को शुद्धात्मा बनाने के लिए हमारा पहला उद्देश्य है—आत्मा पर भविष्य में कोई भी कर्म-बन्धन या शरीर-बन्धन आच्छादित न होने देना। इसके लिए किसी भी कार्य को करने से पहले, करते समय, या करने के पश्चात् उसके फल के बारे में आसक्तिपूर्ण भावना का त्याग करना होता है। यदि किसी कार्य को केवल अपना 'कर्तव्य मात्र' समझकर किया जाय अथवा 'ईश्वर-अर्पण' करके किया जाय तो फल की इच्छा का लोप हो जाता है।

४१. अपने को शुद्धात्मा बनाने के लिए हमारा दूसरा उद्देश्य है—आत्मा पर पूर्वाच्छादित संस्कारों (कर्म-बन्धनों एवं शरीर-बन्धनों) को नष्ट कर देना।

४२. आत्मा की शक्ति को एकत्र कर (ध्यान व मन्त्र आदि सहायक विधियों द्वारा) ब्रह्माण्ड स्थित एक विशेष शक्ति स्रोत (नक्षत्र आदि) की ओर प्रसारित किया जाता है। ये शक्ति-तरंगें (जिन्हें 'जी रेज' G Rays) भी कहते हैं। उस शक्ति स्रोत से टकराकर वापस आती हैं और आत्मा पर आच्छादित आवरण को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार कर्म-बन्धनों के आवरण हटाये जा सकते हैं।

४३. शरीर-बन्धनों को दूर करने के लिए आत्मा को समाधि अवस्था में शरीर से निकाल कर नारंगी आकाश तक ले जाया जाता है। परन्तु थोड़ी-सी असावधानी ऐसी स्थिति पैदा कर सकती है कि आत्मा उस शरीर में वापस ही न लौट पाये। इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर-बन्धन दूर करने से कर्म-बन्धन के आवरण नष्ट करना अपेक्षाकृत सुगम एवं स्पष्ट कार्य है।

मृत्यु—

४४. मृत्यु उस संस्कार का नाम है जिसमें आत्मा सदैव के लिए किसी शरीर का त्याग करती है।

शरीर–आत्मा = मृत (शव)

४५. आत्मा शरीर का त्याग केवल उस अवस्था में करती है जब वह शरीर उस आत्मा की शक्ति के उपयुक्त नहीं रहता (चाहे वह वृद्धावस्था से जीर्णकाय हुआ हो अथवा किसी घटना वश)।

४६. शरीर त्याग के पश्चात् आत्मा स्वाभाविक रूप से आकाश में कुछ ऊँचाई तक (अपने ऊपर आच्छादित संस्कारों के आधार पर) ऊपर की ओर जाती है और पुनः पृथ्वी की ओर वापस आकर अपने समान परिणामी (Resultant) आत्मिक शक्ति वाले संभोग-रत दम्पत्तियों की ओर आकर्षित हो जाती है।

४७. जब आत्मा (शरीर त्यागोपरांत) आकाश में विभिन्न ग्रहों एवं नक्षत्रों तथा विभिन्न ब्रह्मांडीय गैसों में होकर ऊपर जाती है, अथवा पृथ्वी की ओर आती है तो वे सभी आत्मा पर आच्छादित संस्कारों को प्रभावित कर उस आत्मा की शक्ति (Spiritual Power) में परिवर्तन कर देते हैं।

४८. शरीर त्याग के पश्चात् वे सभी आत्मायें जो मोक्ष प्राप्ति के योग्य नहीं होतीं, ३६ से ४० घंटे (यात्रा काल = Transit time) के अन्दर नवीन शरीर निर्माण हेतु अपनी आत्मिक शक्ति के आधार पर उपयुक्त गर्भ में शरण ले लेती हैं।

४९. जो अशरीरी आत्मायें (जिनकी आत्मिक शक्ति न किसी गर्भ में जाने के उपयुक्त रहती है और न मोक्ष पाने के उपयुक्त), मर्त्यलोक में रह जाती हैं, इन्हें सभी बातें पिछले जन्म की (पूर्व शरीर-बन्धन समाप्त न हो पाने के कारण) ज्ञात रहती हैं; अतः अपने पिछले जन्म के सम्बन्धियों को प्रभावित कर सकती हैं।

जन्म—

५०. जन्म उस संस्कार का नाम है जिसमें एक आत्मा एक पूर्ण शरीर के साथ कर्मक्षेत्र में आती है।

शरीर + आत्मा प्राणी (जीव)

५१. संभोग काल में दम्पत्तियों—कीड़े, मच्छर,पशु, मनुष्य, पौधे आदि प्रकृति की किसी भी इकाई (नर-मादा सम्मिलित रूप में एक इकाई कहलाते हैं) की आत्मिक शक्ति विभिन्न आत्माओं का आह्वान करती है, यह आह्वान केवल उसी आत्मा द्वारा स्वीकार किया जाता है जिसकी आत्मिक शक्ति दोनों संभोग रत दम्पत्तियों की परिणामी (Resultant) आत्मिक शक्ति के लगभग समान हो ।

५२. संभोग के चरम काल में मादा के गर्भ में आने वाले डिम्ब में ऐसी आत्मा प्रवेश कर जाती है ।

५३. तत्पश्चात् नर के शुक्र (वीर्य) तथा मादा के डिम्ब में प्रविष्ट आत्मा की शक्ति के आधार पर गर्भ में रासायनिक क्रिया द्वारा शरीर की पुष्टि उस आत्मा के लिये होने लगती है ।

५४. इस प्रकार यह शरीर केवल उस आत्मा के लिए उपयुक्त (Fit) रहता है जिसके लिए वह गर्भ में बना है ।

५५. उस शरीर की बनावट, गठन तथा जन्म के उपरान्त उस प्राणी विशेष के व्यवहार, बुद्धि-चातुर्य आदि में अन्तर आने का कारण डिम्ब मे प्रवेश करने वाली आत्मा की आत्मिक शक्ति भी होती है । अन्य कारण वंशानुक्रमण (Heredity) एवं पर्यावरण (Environment) आदि हैं ।

एक शरीर दो आत्मायें—

५६. किसी भी शरीर में दो आत्मायें प्रवेश हो सकती हैं, अथवा प्रवेश की जा सकती हैं ।

५७. किसी भी जीवित या मृत शरीर में कोई भी आत्मा प्रवेश कर सकती है इसके लिए उस शरीर का उस आत्मा के लिए आत्मिक शक्ति के आधार पर उपयुक्त होना आवश्यक है ।

५८. किसी भी जीवित शरीर, (जिसमें एक आत्मा पहले ही है) में दूसरी आत्मा स्वतः ही प्रवेश कर सकती है, परन्तु इसके लिए प्रवेश होने वाली आत्मा का पहली आत्मा से पूर्व सम्बन्ध अनिवार्य है ।

५९. किसी भी जीवित शरीर में अन्य आत्मा को (जिसका सम्बन्ध कभी भी उस शरीर की आत्मा से नहीं रहा हो) बाह्य शक्ति (यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र या अन्य विधियों) द्वारा हठपूर्वक प्रवेश कराया जा सकता है ।

६०. चाहे आत्मा स्वतः किसी शरीर में प्रवेश करे या बलपूर्वक प्रवेश करायी जाए वह शरीर सदैव नयी आत्मा के अनुसार कार्य करता है ।

६१. एक जीवित शरीर में जितनी भी अन्य शरीरधारी आत्मायें होती हैं, वे सभी उस शरीर (प्रधान शरीर) की आत्मा के वश में रहती हुई अपने शरीर के भोगों को अवसरानुकूल भोगती हैं । अतः गर्भ में रहने वाली आत्मा (मादा की आत्मा की शरणागत होने के कारण) शरीर पूर्ण होने तक माँ की आत्मा के वश में रहती है ।

६२. कोई भी मनुष्य किसी भी आत्मा को विशेष विधियों द्वारा अपने पास बुलाकर बात कर सकता है ।

६३. यह बातें आत्मा की आत्मा से (तरंगों के माध्यम से) होती हैं, मुख की आवश्यकता नहीं होती ।

६४. कोई भी आत्मा किसी अन्य शरीर में अधिक देर तक नहीं ठहर सकती जब तक कि उस शरीर का निर्माण केवल उसी आत्मा के लिए माँ के गर्भ में न हुआ हो ।

परमात्मा—

६५. 'परमात्मा' अन्य आत्माओं की तरह ही अण्डाकारी प्रकाश-शक्ति पिण्ड है, परन्तु 'परम' इसलिए है क्योंकि इसकी कुछ अपनी ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्य किसी आत्मा में नहीं पायी जातीं ।

परम + आत्मा = परमात्मा

६६. किसी भी माँ के गर्भ में इसके लिए शरीर निर्माण नहीं होता इसलिए इसका जन्म नहीं होता, अपितु अवतरण होता है ।

६७. कर्मों का प्रभाव संस्कार के रूप में इस आत्मा पर आच्छादित नहीं होता अतः ग्रह, नक्षत्र तथा अन्य ब्रह्माण्डीय गैसें आदि भी इस पर प्रभावकारी नहीं होते ।

परमात्मा	आत्मा	जीवात्मा
१. यह परम-आत्मा, परम-ब्रह्म एवम् त्रिगुणातीत है ।	१. यह आत्मा, ब्रह्म एवं त्रिगुणातीत है ।	१. यह जीव, मन एवं त्रिगुणात्मक है ।
२. यह परम प्रकाश व शक्ति युक्त परम ज्योति है ।	२. यह प्रकाश एवं शक्तिमय ज्योति पुँज है ।	२. यह आच्छादित आवरणों के आधार पर कम या अधिक प्रकाश एवं शक्ति वाला ज्योति पुंज है ।
३. यह संस्कार मुक्त रहता है ।	३. यह संस्कार युक्त हो जाता है ।	३. यह संस्कार युक्त है ।
४. यह पूर्ण तैयार शरीर में आवश्यकतानुसार अवतार लेता है ।	४. यह आत्मिक शक्ति के आधार पर शरीर निर्माण हेतु गर्भ का चुनाव स्वयं करता है ।	४. यह (गर्भ में शरीर निर्माण के पश्चात्) जन्म लेता है ।
५. ये बन्धन मुक्त है ।	५. यह बन्धन युक्त हो जाता है ।	५. यह बन्धन युक्त है ।

६८. अन्य आत्माओं से सहस्त्र गुना अधिक प्रकाश एवं शक्तिमय होता है ।

६९. विधिपूर्वक आह्वान करने पर मुश्किल से चौथाई सैकिण्ड के लिए अपनी झलक दिखाता है ।

७०. परमात्म दर्शन किये मनुष्यों को न साधारण आत्मा वश में कर सकती है, न कोई बाहरी अन्य आत्मा उसके शरीर में प्रवेश कर सकती है, हाँ परमात्मा का प्रवेश सम्भव है ।

७१. ऐसे मनुष्य के इर्द-गिर्द अन्य अशरीरी आत्मायें चक्कर काटा करती हैं परन्तु वे उसे कोई हानि नहीं पहुँचाती हैं।

७२. परमात्म दर्शन के पश्चात् शारीरिक अन्तर कोई नहीं आता, यूँ मानसिक शान्ति अवश्य हो जाती है, तथा प्रकृति एवं परमात्मा के सही सम्बन्ध को समझना अत्यन्त सरल हो जाता है। परमात्मा की ('डी' रेज रहित) 'Y' वाई रेज भी उस आत्मा के पूर्व संस्कारों के आवरणों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं लातीं।

आत्मा एवं परमात्मा

१. यह परमात्मा है।
२. यह परम ज्योति है।
३. यह सहस्त्रगुना अधिक प्रकाश व शक्तिमय है।
४. यह संस्कार मुक्त है।
५. पूर्ण तैयार शरीर में अवतार लेता है।
६. यह बन्धन मुक्त रहता है।
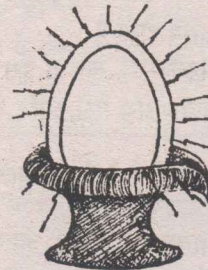
परमात्मा
परमब्रह्म
(त्रिगुणातीत)

१. यह आत्मा है।
२. यह प्रकाश एवं शक्तिमय ज्योतिपुंज है।
३. यह संस्कार युक्त है।
४. यह (गर्भ में शरीर निर्माण के पश्चात्) जन्म लेता है।
५. यह बन्धन युक्त है।
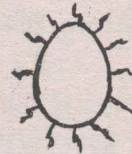
बन्धन मुक्त आत्मा
ब्रह्म
(शुद्ध सतोगुणी)

बन्धन तीन प्रकार के हैं—
१. पाप कर्म बन्धन।
२. पुण्य कर्म बन्धन।
३. शरीर बन्धन।

बन्धन युक्त आत्मा
जीव
(त्रिगुणमयी)

चित्र संख्या ५

७३. **मन** (Mind) – विभिन्न कर्म-बन्धनों या शरीर-बन्धनों से आच्छादित आत्मा को ही मन अथवा सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

७४. आत्मा से निकलने वाली प्रकाशमय शक्ति-तरंगें ही 'भावना' कहलाती हैं जो कि संस्कारों के आधार पर संकल्प या विकल्प बनकर बुद्धि को प्रभावित कर धारणा का रूप ले लेती हैं।

७५. **भाग्य** (Fate) – भाग्य के निर्णायक होते हैं—आत्मा पर आच्छादित कर्म बन्धन अर्थात् संस्कार। जिसमें 50 प्रतिशत हाथ उन संस्कारों का होता है जो कि पूर्व के

जन्मों में अब तक आत्मा पर आच्छादित हो चुके हैं तथा 50 प्रतिशत हाथ उन संस्कारों का रहता है जो कि इस जन्म में देश, काल, परिस्थिति के आधार पर बनते जा रहे हैं। इस 50 प्रतिशत के अनुपात में 'मानवीय विकास के सिद्धान्त' (Theory of Growth) के आधार पर पर्यावरण और वंशानुक्रमण (Environment and Heredity) के कारण अधिकतर अन्तर पाया जाता है।

७६. **मानवीय विकास का सिद्धान्त** (Law of Growth) – पूर्व जन्म में किये गये कार्यों के संस्कार वर्तमान जन्म में उन कर्मों के प्रति रुचि पैदा करते हैं, तथा पूर्व जन्म में सिद्ध किए हुए कार्य इस जन्म में शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं।

७७. **आत्म गति निर्णय सिद्धान्त** (Law of Movement of Soul) – शरीर त्याग से पूर्व कर्मों में आसक्ति भाव जितना कम होगा उतने ही कम कर्म-बन्धन लगेंगे और जितने कम कर्म-बन्धन होंगे उतनी ही अधिक ऊँचाई तक आत्मा शरीर त्याग के उपरान्त जाती है।

७८. **गर्भ-योनि विचार सिद्धान्त** (Law of Womb's Selection for Rebirth) – जितनी अधिक ऊँचाई तक ब्रह्माण्ड में आत्मा जायेगी उतनी ही अधिक श्रेष्ठ योनि (संसार में 'कर्म का फल' भोगने के 84 लाख स्तर हैं जिन्हें योनि कहा जाता है) में पुनर्जन्म होगा।

७९. **आत्मिक तरंग प्रसारण का सिद्धान्त** (Law of Transmission of Spiritual Power) – आत्मा (कारण शरीर) से निकलने वाली प्रकाशमय शक्ति तरंगें ('Y' Rays) संस्कार आवरणों (सूक्ष्म शरीर) में से छनकर ('D' Rays) बुद्धि को प्रेरित (Trigger) कर भावनात्मक तरंगें ('G' Rays) उत्पादित करती हैं, तथा शरीर (स्थूल शरीर) से बाहर आ जाने पर इन्हें ('G' Rays) इष्ट (विशेष आकृति) के ध्यान द्वारा किसी भी दिशा (Bearing) में मन्त्रों की वाहक तरंगों (Carrier waves) द्वारा एक निश्चित दूरी तक (यह दूरी उस मन्त्र की जन संख्या की समानुपाती होती है) प्रसारित किया जा सकता है।

८०. **नेति-नेति का सिद्धान्त** (Law of Research) – 'महर्षि यतीन्द्र दर्शन' तत्वज्ञान-सिद्धान्तों के रूप में एक धनात्मक विज्ञान (Positive Science) है, जिसका क्रियात्मक (Practical) रूप व्यावहारिक राज योग (ब्रह्म योग = Cosmic Yoga) है। इसके माध्यम से सतत् प्रयत्नशील एवं जागरूक होकर 'प्राकृतिक विकास प्रक्रिया' की अन्तहीन गहराई में उतरते हैं, और अन्त (End = इति) अनुभव होने वाले प्रत्येक ठहराव को नेति-नेति (न इति, न इति = It is not the end, It is not the end) मानकर अनुसन्धानरत रहते हैं।

बन्धन मुक्ति

उक्त दर्शन सूत्रों को समझ लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी विष्णुदेवानन्द ने अपनी पुस्तक 'Conquest of Death' की अन्तिम पंक्तियों में उचित ही कहा है—Bondage of the soul is death and freedom of the soul

is the liberation or conquest of death. यह Bondage **(बन्धन) ही मृत्यु दूत है, इनसे मुक्त होना ही (मुक्ति)** Liberation है। मनसा-वाचा-कर्मणा बन्धन-मुक्त होकर ही व्यक्ति मृत्यु पर विजय (Conquest of death) प्राप्त करता है। इसके लिये व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने आचार-व्यवहार में शरीर को बन्धन मुक्त बनाना चाहिये। कुछ लोग विशेष प्रकार के तिलक-छापे लगाते लगाते उनसे बँध जाते हैं, तो कुछ विशेष प्रकार के कपड़ों एवं रूप-सज्जा से बँध जाते हैं। **बड़ा गर्व करते हैं अपनी वेशभूषा पर, और बातें करते हैं गर्व-रहित होने की।** कुछ लोग विशेष धर्म-कर्म में अपने को बाँध लेते हैं, तो कुछ पारम्परिक मर्यादाओं में बँध जाते हैं कि उन्हें छोड़ने में भयभीत होते हैं, भले ही वे नारा देते हों—'जो बोले उसको अभय।' **ऐसे व्यक्तियों की गर्व-रहित और भय-रहित बनने वाली बात 'वाचा' में रह जाती है। शरीर और मन से वे लोग गर्व-पूर्ण और भय-पूर्ण ही बने रहते हैं।** ऐसे व्यक्ति दो पाटों के बीच स्वयं ही फँसते हैं और दुःख उठाते हैं। शरीर से व्यर्थ के बन्धनों को हटा देने के पश्चात् मन के बन्धनों का नम्बर आता है। मन के बन्धनों में लोभ, मोह आदि आते हैं। मितव्ययिता और प्रेम आवश्यक हैं परन्तु इनका प्रतिरूप लोभ और मोह नहीं यह व्यर्थ के बन्धन हैं। शरीर और मन को जो मुक्त कर लेता है उसे वह आत्मा (Self) दिखाई देता है जिसके लिये स्वामी विष्णुदेवानन्द ने लिखा है—The self, when it appears behind the universe, is called God, and that the same self, when it appears behind this body is the individual Soul or Jiva. ऐसा व्यक्ति ही ब्रह्ममय होकर कह पाता है—

अहं ब्रह्मास्मि ! शिवोऽहं !! ज्ञानोऽहं !!! परमानंदो अहं !!!!

■■

बहिरंग साधना

५

यम

सैद्धान्तिक रूप में जो कुछ तत्त्व ज्ञान सिखाता है उसका व्यावहारिक रूप 'योग' है। योग का सामान्य अर्थ है जोड़—दो वस्तुओं को मिलाना। यहाँ हम आत्मा-परमात्मा के मिलाने की बात नहीं करते, क्योंकि जब तक हम आत्मा को नहीं जानते परमात्मा की बात करना ही व्यर्थ है। आप किसी स्थान की यात्रा करना चाहते हैं, तो यह जानने के लिए कि यात्रा किस दिशा में और किस तरह करना अधिक उपयुक्त होगा? आपको यह जानना अत्यावश्यक हो जायेगा, कि आप पहले यह जानें कि आप स्वयं किस स्थान पर हैं? आपकी अपनी स्थिति अर्थात् 'आत्म स्थिति' क्या है?

तू चाहता है जाना लंदन के इक नगर में।
पर तू स्वयं कहाँ है? रहता है किस डगर में?
आत्म स्थिति पता हो तब ही तो खोज होगी।
वर्ना ये तेरी बातें, ज्यों सन्निपात रोगी॥

आपकी 'आत्म-स्थिति' वही है जो आप अभी हैं। जो आप नित्य प्रति अपने कार्य व्यवहार चला रहे हैं, तो आपकी यात्रा का प्रारम्भ भी यहीं से होगा। इन्हीं कार्यों को करते हुए होगा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हमारी आध्यात्मिक यात्रा का श्रीगणेश 'मानवीय-कर्म' से होता है। जहाँ हम हैं, जिनमें हम लिप्त हैं। और अंत 'कुण्डलिनी साधना' में होता है। इसके पश्चात् जीवन में जो कुछ बचता है वह आनन्द ही आनन्द है।

"योग के लिए आवश्यक तत्त्व है 'गुरु श्रद्धा'। इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयत्न कर सकते हैं—आप साइकिल चलाना जिस समय सीखते हैं, मैं आपको केवल सामने देखने की आज्ञा देता हूँ। इधर-उधर थोड़ा भी नहीं देखने देता! आप झल्लाते हैं—यदि आप मुझे इधर-उधर नहीं देखने देंगे तो मैं मोटर गाड़ी, स्कूटर से कैसे बचूँगा?

मैं इसके लिए कह देता हूँ कि तुम यह सब मेरे ऊपर छोड़ो । जब तक मैं हूँ कोई स्कूटर या मोटर गाड़ी तुम्हारे पास नहीं आयेगी। तुम आश्वस्त होकर सामने देखते रहते हो और साईकिल चलाते रहते हो। मैं कोई जादूगर नहीं, कि जब तक मैं हूँ मोटर गाड़ी नहीं आये, परन्तु इसकी व्यवस्था मैं पहले ही कर लेता हूँ और आपको ऐसे मैदान (फील्ड) में ले जाता हूँ जहाँ मोटर गाड़ी आती ही नहीं है, और यदि किसी कारणवश आ भी जाए तो वहाँ इतना स्थान है कि दोनों टकरायेंगे नहीं। ऐसी ही व्यवस्थाएँ गुरु चेले के बीच योग-मार्ग में रहती हैं। चेले को गुरु पर इसी तरह विश्वास रखना पड़ता है, मानो वह कोई जादूगर है, और जब तक वह है कोई मोटर-गाड़ी उधर नहीं आ सकती। बिना ऐसे विश्वास के कोई मानसिक कार्य नहीं हो सकता। विश्वास से मानसिक तनाव कम होता है। मानसिक कार्य के लिये यह पहली शर्त है कि मस्तिष्क (उससे सम्बन्धित) भय और तनाव से मुक्त हो। 'वेदानिल' के अनुसार "साइकिल चलाना शारीरिक कार्य है परन्तु साइकिल सीखना नितांत 'मानसिक' है। इसी प्रकार योग सीखना भी शारीरिक कम और मानसिक अधिक है।"

मनुष्य जो भी कर्म करता है उन्हें हम तीन भागों में विभाजित करते हैं—तप, दान और यज्ञ।

तप—वे सारे कार्य कहलाते हैं जो स्वयं के (आत्म) लाभ हेतु किये जाते हैं (अर्थात् मन, शरीर व आत्मा के लाभ हेतु किये जाने वाले कार्य)।

दान—वे कार्य कहलाते हैं जिनसे दूसरे व्यक्ति का लाभ हो (वह व्यक्ति चाहे परिवारी हो अथवा विदेशी इससे कोई तात्पर्य नहीं है)।

यज्ञ—वे कार्य कहलाये जाते हैं जिनसे एक समूह का (विश्व का, राष्ट्र का) लाभ होता हो।

'स्नेहानिल' के अनुसार—"यह तीनों प्रकार के कार्य पुनः तीन श्रेणियों में विभक्त हो जाते हैं—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक।" यथा—आत्मिक यज्ञ में आहुति दान आता है, मानसिक यज्ञ में ज्ञान दान आता है तो शारीरिक यज्ञ में श्रम दान आता है। इसी प्रकार शारीरिक दान में अर्थ व श्रम दोनों ही दान सम्मिलित हैं, मानसिक दान में धर्म एवं काम दान सम्मिलित हैं, और आत्मिक दान में तत्त्व ज्ञान एवं मोक्ष दान आता है। शारीरिक तप में आरोग्य प्राप्ति हेतु एवं स्वस्थ रहने के लिये किये गये सम्पूर्ण कार्य तथा इन्द्रिय संयम हेतु किये गये कार्य आते हैं। मानसिक तप में अपने चित्त की वृत्तियों का निरोध करके आत्मा पर आच्छादित होने वाले कर्म बंधन के आवरणों को रोकने के लिये किये गये कार्य आते हैं। आत्मिक तप में आत्मा पर पूर्वाच्छादित कर्म-बंधन हटाकर या कम करके उसे अपनी शुभ्र एवम् तेजोमय अवस्था में लाने के लिये किये जाने वाले कार्य सम्मिलित हैं।

मानवीय कर्म
तप
[आत्म लाभ हेतु किये गये कार्य]
दान
[दूसरे के लाभ हेतु किये गये कार्य]
यज्ञ
[विश्व के लाभ हेतु किये गये कार्य]
शारीरिक
[श्रम दान]
मानसिक
[ज्ञान दान]
आत्मिक
[आहुति दान]
शारीरिक
[अर्थ/श्रम दान]
मानसिक
[धर्म/काम दान]
आत्मिक
[ज्ञान/मोक्ष दान]
शारीरिक
[आरोग्य एवम् इंद्रिय संयम हेतु किये गये कार्य]
१. यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह
२. नियम—शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान
३. आसन—अवस्था एवं परिस्थिति अनुसार बैठने की प्रणाली तथा शुद्धिकरण अभ्यास (शौच)
४. प्राणायाम—प्राण का संयम एवं विस्तार
मानसिक
[चित्त वृत्ति निरोध अथवा कर्म-बन्धन रोकने के लिये किये गये कार्य]
१. प्रत्याहार—मन की विषयाभिमुखी गति को अंतर्मुखी करना
२. धारणा—ज्ञान की धारणा, अप्रमाद ज्ञानेन्द्रिय शक्ति वर्द्धन
आत्मिक
[कर्म-बंधन हटाने या कम करने के लिये किये गये कार्य]
१. ध्यान—एकाग्रता द्वारा आत्मिक ऊर्जा को प्रसारित करना, तथा समाधि अवस्था में ग्रहणीय अनुभवों का सतत जागरण द्वारा ध्यान रखना
२. समाधि—विचरणावस्था, अति चेतन अवस्था

यदि आप महर्षि पातंजलि के योग सूत्र पर ध्यान दें तो आप देखेंगे कि "यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि में प्रथम चार शारीरिक तप के अंतर्गत आते हैं। प्रत्याहार एवं धारणा मानसिक तप के अंतर्गत और ध्यान एवम् समाधि आत्मिक तप के अन्तर्गत आते हैं। जहाँ तक इन आठ विषयों पर पढ़ने और विचार करने का प्रश्न है, हम एक-एक को अलग-अलग पढ़ सकते हैं परन्तु जब हमें इन्हें जीवन में उतार कर व्यवहार में लाना होता है तो इन सब का एक साथ ही अभ्यास करना पड़ता है।

यदि हम एक विषय का अभ्यास एक बार में करें तो अन्तिम विषय के अभ्यास तक हमारा पूरा जीवन ही निकल जायगा। यदि हमने एम. ए. करने में ही पूरा जीवन लगा दिया तो इस डिग्री का लाभ हम कब उठायेंगे? आप कहेंगे कि यह सब परलोक सुधार के लिये किया गया था। यहीं आप बहुत बड़ी भूल में हैं। परलोक उसका सुधरता है जिसने इस लोक को सुधारा हो। परलोक का आनन्द उसे मिलता है जिसने इस लोक में आनन्द पाया हो। आनन्द बाहर की वस्तुओं में नहीं है, अपने अन्दर ही है। **अन्दर के आनन्द का बाहर की वस्तुओं से क्या तारतम्य है यह ब्रह्म योग** (cosmic yoga) **सिखाता है।**

ब्रह्म योग के अष्टांग सूत्रों की बात करें तो महर्षि पतंजलि **'यम'** से प्रारम्भ करते हैं। जैसा कि हम पीछे कह आये हैं—यम, नियम, आसन और प्राणायाम शारीरिक तप के अन्तर्गत आते हैं। यम के अन्तर्गत—अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और सत्य, ये पाँच विषय आते हैं। आगे के पृष्ठों में एक-एक विषय का प्रायोगिक एवं व्यावहारिक स्पष्टीकरण प्रस्तुत है—

अहिंसा

अहिंसा का साधारण अर्थ है—किसी को दुःख न पहुँचाना। यह 'किसी' कौन? यह आपके अतिरिक्त कोई दूसरा है। अब इस दूसरे की कहानी सुनो—जब कोई दूसरा अपना बनने लगता है तो वह समय कितना सुखद प्रतीत होता है? यह अनुभव तो आप लोगों ने किया ही होगा। अब एक कदम और आगे बढ़ कर देखिये। दूसरे को 'दूसरा' न समझिये। 'अपना' भी नहीं समझिये। यह समझिये कि जो 'मैं हूँ' वही 'वह है'। और फिर देखिये इस सुख का आनन्द। इस समय आपके शरीर में जो धारा बहेगी वह अहिंसा की धारा होगी। जब तक आप दूसरे को अपना मान रहे हैं, आपके अन्दर उस अपने के प्रति 'सहानुभूति' (Sympathy) का भाव रहता है। परन्तु जब वह 'अपना' न हो कर वही होता है जो 'आप' हैं, तब उसके प्रति 'समानुभूति' (Impathy) का भाव रहता है। समानुभूति का अभ्यास हो जाने पर उस व्यक्ति के सुख दुख की अनुभूति (जैसी उसे हो रही है वैसी ही) आपको भी होने लगेगी। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के जीवन के बहुत से प्रसंग समानुभूति-युक्त हैं।

इस प्रकार आप देखते हैं कि कुण्डलिनी के साधक के लिए अहिंसा का अर्थ कुछ दूसरा ही है, योगी सभी को आत्मवत् देखने का अभ्यास करता है। आत्मवत् का अर्थ

'अपने जैसा' लगायेंगे तो व्यावहारिक रूप में धोखा खा जायेंगे। आत्मवत् का अर्थ लगाइये 'मैं स्वयं', अर्थात् दूसरा है ही नहीं। सार्थ ने कहा है—"The other is hell" 'दूसरा नर्क है'। नहीं ! दूसरे को दूसरा मानना नर्क है। तात्पर्य यह है कि योगी की अहिंसा का अर्थ है—अद्वैत भाव का अभ्यास।

यह अभ्यास छोटी-छोटी दिन प्रतिदिन की क्रियाओं से प्रारम्भ होगा—आप किसी को मारते हैं तो यह सोचकर मारिये कि मार आप में पड़ रही है। आपका प्रत्येक मुक्का या चाँटा उतनी शक्ति से अधिक न उठे जितनी कि आप स्वयं सह सकते हैं। मैंने कितने माँ-बापों को बच्चे की पिटाई करने के बाद अपने हाथों के दर्द के लिये बच्चों को कोसते देखा है कि इसके चोट नहीं लगी और मेरा हाथ दर्द करने लगा। आप किसी को गाली देते हैं तो अनुभव कीजिये कि यह गाली आपको दी जा रही हो तो आपको कैसा लगता ? आप पैर से लात मार कर घर का दरवाजा खोलते हैं, यदि उतने ही जोर से कोई आपको रास्ते से हटाने के लिये आप में लात मारे तो आप कैसा अनुभव करते हैं ? इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा प्रत्येक जड़ और चेतन वस्तु के साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार प्रारम्भ करने से अद्वैत की स्थिति की ओर आप अग्रसर होने लगेंगे। यह अभ्यास २४ घंटे शरीर और मन की प्रत्येक क्रिया पर ध्यान देने से होगा।

अस्तेय

साधारण रूप में अस्तेय का अर्थ हम मानते हैं—चोरी न करना। सामाजिक स्तर पर तो 'चोरी न करना' अर्थ माना जा सकता है परन्तु आध्यात्मिक स्तर पर वस्तुओं का केवल उपयोग किया जा सकता है। चाहे आप उपयोग करें, चाहे आपका चोर-मित्र, क्योंकि वह भी तो आप ही हैं (अद्वैत भाव का सिद्धान्त) जो व्यावहारिक नहीं है। इस अस्तेय का अर्थ कुछ ऐसा है कि आप अपने ही अन्दर अपने से छिपाकर कुछ कर रहे हैं—**वह है जो आप वास्तव में हैं उससे कुछ दूसरा ही अपने को प्रदर्शित करना।**

यदि आपको पता हो कि आप जो हैं, और जो आप अपने को प्रदर्शित कर रहे हैं उसमें अन्तर है, तो बहुत बड़ी दुर्घटना होने से बच सकती है। परन्तु आप जो हैं नहीं, उसे इस सीमा तक प्रदर्शित कर रहे हैं कि आप क्या हैं, यही आप भूल गये हैं। हनुमान जी का प्रदर्शन करने वाला सचमुच ही अपने को हनुमान जी समझ कर समुद्र लाँघने लगे तो क्या आप उसे पागलखाने में नहीं डाल देंगे ? एक प्रकार का पागलपन तो यह हुआ जो हनुमान की एक्टिंग करते-करते स्वयं को हनुमान समझने लगे। एक और पागलपन है जिसमें व्यक्ति क्षण-क्षण अपने रूप बदल लेता है—अभी हनुमान समझने लगे, क्षण में राम समझने लगे, और क्षण में सीता समझने लगे। आप जानते हैं ! ऐसा हनुमान तो पूरी 'राम लीला' का सत्यानाश ही कर डालेगा। आप कहेंगे बात तो ठीक है। तो महोदय जी, जरा आप अब अपनी ओर ध्यान दीजिये; आप क्या कर रहे हैं ? अभी मालिक बने हुये हैं, नौकर को फटकार रहे हैं। क्षण में कुत्ता बने हुए हैं, बीबी के आगे पूँछ हिला रहे हैं। क्षण

में दादा बने हुए हैं और कमजोरों व छोटों पर रौब गाँठ रहे हैं। क्या आपने कभी अपने इस क्षण-क्षण बदलते रूप पर ध्यान दिया है? नहीं ! और बिना ध्यान दिये (अर्थात् अपने से छुपाकर) अपने रूप बदलते जा रहे हैं। कुण्डलिनी योग के अभ्यासी के लिये यही सबसे बड़ी चोरी है, व्यक्तित्व की चोरी। इस चोरी का त्याग ही "अस्तेय" है।

आप कहेंगे यदि यह चोरी, जो करोड़ों काम बनाती है, चलती रहे तो क्या हानि है? अभी आपके पिन चुभ जाय तो आप तुरन्त उस पिन को अपने शरीर से बड़े स्वाभाविक रूप में अलग करके रख देंगे। परन्तु ऐसा छोटा-सा परिवर्तन जिसमें पिन का स्थान परिवर्तन किया गया, आपके शरीर की बहुत-सी नाड़ियों के ढेर-सा कार्य करने का परिणाम हुआ। जब आप व्यक्तित्व परिवर्तित करते हैं तो एक साथ हजारों नाड़ियाँ तनाव में आती हैं। **यह तनाव ही योगमार्ग का रोड़ा है।** कुण्डलिनी साधक को विभिन्न प्रकार के तनावों से मुक्त होना आवश्यक है।

अहिंसा के अभ्यास के लिये जिस प्रकार आपको अद्वैत भाव का २४ घंटे ध्यान रखना है उसी प्रकार अस्तेय के अभ्यास के लिये अपने क्षण-क्षण बदलते चेहरे पर ध्यान देना है। **चेहरे के बदलने की प्रक्रिया को रोकना नहीं है, केवल ध्यान देना है।** जिससे आपको पता लग जाय कि अब चेहरा बदला, अब व्यक्तित्व बदला। बदले हुए व्यक्तित्व में यदि आप कुत्ता बने हों, तो भी कुत्ता नहीं बन पायेंगे। वह मात्र कुत्ता बनने की 'एक्टिंग' होगी। क्योंकि आपको जानकारी होगी कि आप कुत्ता बने हुए हैं। कुत्ता बनना उस क्षण की अनिवार्यता हो सकती है, आप शौक से कुत्ता बनिये, परन्तु चेहरे बदलने के क्षण का ध्यान रखिये। दिन भर में हजारों बार आपको चेहरा बदलना पड़ेगा, बदलते जाइये। बस बदलने के क्षण को पकड़ लीजिये। एक चेहरे से दूसरे चेहरे के बदलने के बीच का जो अंतराल है उस पर ध्यान दे लीजिये। केवल इतना ही आपका काम है। धीरे-धीरे आप अस्तेय में पूरे उतरते जायेंगे।

अपरिग्रह

अपरिग्रह का सामान्य अर्थ है 'त्याग', वस्तुओं का त्याग। इस आधार पर लोग घर-बार के त्याग को अपरिग्रह समझ कर संन्यासी बनते हैं। बहुत से लोग बड़े-बड़े दान करते हैं अपरिग्रह दर्शानि के लिये। यह सब थोथे धंधे हैं। आप गृहस्थ धर्म का त्याग कर रहे हैं, संन्यास धर्म ले रहे हैं। वस्तुएँ एवं धन दे रहे हैं, यश-मान ले रहे हैं, यह तो व्यवसाय हुआ, एक्सचेंज हुआ। अपरिग्रह व्यवसाय नहीं है।

परिग्रह का अर्थ होता है स्वत्वाधिकार (Possessiveness), मालकियत की भावना (Feeling of Bossing Over)। जो यह भावना निकाल दे, वह अपरिग्रही है। स्वत्वाधिकार व्यक्तियों पर भी होता है और वस्तुओं पर भी। वस्तुएँ खरीद लिये जाने पर उन पर स्वामित्व का अधिकार (स्वत्वाधिकार) होना समझा जाता है। परन्तु कई बार, एक व्यक्ति भी दूसरे व्यक्ति पर स्वत्वाधिकार प्रदर्शित करते हए देखा जा सकता है।

जैसे—पति अपनी पत्नी पर, पिता अपने पुत्र पर, दामाद श्वसुराल पर, गुरु अपने चेले पर। व्यक्तिगत सम्बन्धों की बात करें तो जितने नाते-रिश्ते, उतने ही प्रकार के स्वत्वाधिकार आप पायेंगे। प्रकृति की ओर से सब समान हैं। यह स्वत्वाधिकार वाला धंधा मानव निर्मित है। प्रकृति की ओर से स्वत्वाधिकार एक अनधिकार चेष्टा है, अप्राकृतिक है। जो भी प्राकृतिक रूप से अनधिकार चेष्टा है, योगी को ग्रहण नहीं करनी है। योगी का कार्य पूरी तरह प्रकृति के अनुरूप होकर चलना है। फिर अपरिग्रही कैसे बनें?

अपरिग्रही बनना अत्यन्त सरल है। जितनी भी वस्तुएँ आपके पास हैं, जितने भी व्यक्ति आपके पास हैं, सब में मित्र-भाव रखिये। आप मालिक किसी के नहीं, मित्र सबके हैं। यदि मित्र भाव का अभ्यास होने लगे तो आपके मस्तिष्क के हजारों तनाव जो पत्नी की टाँय-टाँय के कारण, अथवा साली के प्रेम सम्बन्धों के कारण, या चेले की अवज्ञा के कारण, या अधिकारी से कहासुनी के कारण और बेटे की अनसुनी कर जाने के कारण पैदा होते हैं, सब कूच कर जायेंगे। इस प्रकार मालकियत का भाव त्यागने से न आप पत्नी को त्याग रहे हैं, न चेले को, न बेटे को, सब कुछ वही है। केवल परिग्रह को त्याग रहे हैं। इतना होते ही आप ऐसा अनुभव करेंगे जैसे कि तनाव रहित, द्वन्द्व रहित नई दुनियाँ में प्रविष्ट हो गये। फिर इस संसार में होने वाली प्रत्येक घटना का उतना ही महत्व होगा जैसे पर्दे पर होने वाली किसी सिनेमा की घटना का होता है।

अपरिग्रही बनने के लिये लोग घर-बार त्यागें, वस्तुएँ त्यागें, यह अनुचित है। क्योंकि वस्तुएँ व्यर्थ नहीं हैं—परिग्रह व्यर्थ है। परिग्रह में, जो हम पा रहे हैं वह स्थूल वस्तुएँ हैं और जो हम पाना चाहते हैं, जिसके लिये इतनी सारी दौड़ है, वह है परम चैतन्य आत्मा। इसीलिये मन की रिक्तता नहीं भरती। एक वस्तु को पा लेने के बाद व्यक्ति दूसरी वस्तु को पाने के प्रयत्न में लगा रहता है। जो मन की पूर्णता को पा लेता है, उसकी बाहर की वस्तुओं को पाने की लालसा समाप्त हो जाती है। वह अपने मन का मालिक हो जाता है। अपरिग्रह को एंक और तरह से समझा जा सकता है—बाल मनोविज्ञान कहता है, "बच्चे को किसी गलत कार्य से रोकने के लिये उसे मारो नहीं, अपितु समझाओ।" यह 'मारना' परिग्रह के कारण होता है और 'समझाना' मित्र भाव (अपरिग्रह) से। किसी पर परिग्रह थोपने का अर्थ है उस व्यक्ति पर परतन्त्रता थोपना। परतन्त्रता का अर्थ है किसी के मनोभावों को दबाना, किसी के सामान्य व्यवहार पर अंकुश लगाना। इससे विकास-प्रक्रिया में विरोध आता है इसलिये यह एक प्रकार की हिंसा है। आप कहेंगे, यदि सभी मुक्त होकर अपना-अपना विकास करने लगें तो अनुशासन कैसे चलेगा? समाज-व्यवहार कैसे चलेगा? अनुशासनात्मक कार्यवाही अधिकतर भय युक्त होती है। धर्म पाप का भय देता है, प्रशासन जेल का भय देता है, परिवार मार का भय देता है, जनता असहयोग का भय देती है, **यह भयपूर्ण अनुशासन पशुओं को शोभा देता है।** विकसित बुद्धि के व्यक्ति को समझाना भर काफी होता है। किसी के सामान्य व्यवहार पर भय के कारण अंकुश लगे तो उसकी लालसा समाप्त नहीं होती। यदि भय के स्थान पर समझ विकसित होने के कारण कोई अपना व्यवहार परिवर्तन करे तो वहाँ लालसा नहीं रहेगी।

'लालसा' ही मन की रिक्तता है। 'लालसा' और 'आवश्यकता' में अन्तर है। मन की पूर्णता पा लेने वाले का मन किसी लालसा के कारण कोई वस्तु नहीं माँगता अपितु आवश्यकता के कारण माँगता है, इतने पर भी उस माँग को आप पूरा कर दें तो कर दें, यदि नहीं करें तो भी कोई असहयोग नहीं। चूँकि मन के मालिक आप होंगे। वैसे यह तो निश्चित है ही कि जिस वस्तु के आप मालिक बनेंगे उसकी प्रत्येक आवश्यकता का ध्यान रखना आपका कर्तव्य हो जायगा।

ब्रह्मचर्य

यम के अन्तर्गत अगला विषय है—ब्रह्मचर्य। ब्रह्म का अर्थ है आत्मा, चर्य का अर्थ है आचरण। अर्थात् आत्मा—आचरण, आत्मा के अनुसार व्यवहार। ऐसा व्यवहार जिससे आत्मोन्नति हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं। **'आत्म तत्त्व ज्ञान' के नियमों के आधार पर जीवन-यापन करना ही ब्रह्मचर्य है।** आप कहेंगे, हम तो ब्रह्मचर्य का अर्थ यौन से, सैक्स से विरोध सुनते आये हैं। नहीं; यदि सैक्स से विरोध करने वाले को, सैक्स को जीवन में उपभोग न करने वाले को ब्रह्मचारी माना जाता तो अपने यहाँ 'हिजड़ा' शब्द न होता। हिजड़े को, नपुंसक को, क्लीव को कोई ब्रह्मचारी नहीं कहता है। नपुंसक के प्रति दया भाव रखा जाता है जबकि ब्रह्मचारी के प्रति सम्मान भाव। कितना अन्तर है दोनों में? एक के पास धन नहीं है इसलिए वह उसका दुष्प्रयोग नहीं करता, दूसरे के पास धन है परन्तु वह दुष्प्रयोग नहीं करता।

एक और प्रकार के लोग हैं जो इतना धन कमाते ही नहीं जो संचित हो और दुष्प्रयोग की नौबत आये। वे उपवास रखने प्रारम्भ कर देते हैं, ताकत पैदा करने वाली वस्तुएँ खाना बन्द कर देते हैं। उतनी ही खाते हैं जिसमें किसी तरह शरीर चलता रहे, और वे निर्विघ्न राम नाम जपते रहें। वे नहीं जानते वे क्या कर रहे हैं—वे अपने पौरुष को धीरे-धीरे मार रहे हैं। उन्हें अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि जिसके पास पौरुष नहीं वह 'ना पुरुष' (नपुंसक) है, और जिसके पास पौरुष संचित है वह महापुरुष है। हमें ना पुरुष अथवा पौरुषहीन नहीं बनना है। पौरुष संचित करना है, **यहाँ तक कि उसे यौन से, सैक्स से भी विसर्जित नहीं होने देना है।** उसका संग्रह कर योग में, समाधि में, कुण्डलिनी में उपयोग करना है।

जिन लोगों ने 'सैक्स' पर ध्यान दिया है, कुछ रिसर्च की है, उन्होंने वीर्य के निकलने के क्षण और आनन्द प्राप्ति के क्षण के बीच के अन्तर को परखा है, वे जानते हैं कि यह दो अलग प्रक्रियाएँ हैं। यदि आप भी इस अन्तर को क्रियात्मक रूप में समझ लें तो आप इससे अगली बात भी आसानी से समझ लेंगे कि यौन अर्थात् सैक्स द्वारा वीर्य का उपयोग न होकर फैंकना है। आपने देखा होगा छींक आती है तो थोड़ी देर को आराम मिल जाता है, कुछ देर बाद पुनः छींक आने लगती है। यही हाल ऐसे कामुक, पौरुष-क्षीण व्यक्ति का होता है। ध्यान रखिये **पौरुष-क्षीण व्यक्ति ही कामुक होता है।** पौरुष-क्षीण होना, क्लीव

होना, एक अपमानजनक बात है, एक गाली है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिए ऐसे शब्द बोलकर उसे युद्ध के लिए उत्तेजित करने का प्रयत्न किया था—

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वैय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

['पार्थ ! क्लैव्य मा गमः स्म' हे पार्थ, ऐसे नपुंसक (हिजड़े पौरुषहीन) मत बनो।]

जो पौरुषयुक्त पुरुष होते हैं, उन्हीं को वीर्यवान कहा जाता है—

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैव्यश्च नरपुंगवः॥

[वीर्यवान् धृष्ट केतुः, चेकितानः, काशीराजः, नरपुंगवः पुरुजित् कुंतिभोजः शैव्यः चं]

जिस पौरुष के कारण पुरुष का पुरुषत्व है उस पौरुष (वीर्य) का संग्रह करके उचित उपयोग में लाना ही वीर्यवानों का कर्तव्य है। इस उपयोग में लाने की विधि समझने के लिए शरीर की सप्त-धातुओं के बनने की प्रक्रिया को संक्षेप में समझना आवश्यक है। क्रिश्चियन वुल्फ (Christian Wolff) मनोवैज्ञानिक बर्कले के समकालीन व्यक्ति थे। वे शक्ति-मनोविज्ञान के प्रचारक थे और 'आत्मा में शक्ति (Faculty) होती है, जिसके द्वारा क्रिया सम्पन्न होती है,' इस बात को मानते थे। उन्होंने यह भी कहा कि 'मानव प्राणी को समझने के लिए शरीर क्रिया-विज्ञान के महत्त्व को जानना अत्यधिक आवश्यक है।' शरीर-क्रिया-विज्ञान के बिना मानवीय प्रकृति को समझना कठिन है। अतः हम भी तत्त्वमीमांसीय सामंजस्य (Metaphysical Harmony) को समझने के लिए सप्त धातु निर्माण का संक्षेप में और सामान्य विवरण देते हैं।

महात्मा चरक के अनुसार—हम जो भोजन करते हैं उससे 'सार रूप' हमें रस प्राप्त होता है, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से मज्जा, मज्जा से भग (वीर्य/रज), भग से (मक्खन में से घी की तरह छँटने वाला) ओज, और ओज से तेज। चेहरे व शरीर पर चमकने वाली आभा (Aura), जो हम देवताओं के चित्रों में दर्शाते हैं, प्राप्त होता है। रस, रक्त, माँस, मज्जा, मेद, वीर्य और ओज यह सात शरीर की धातुएँ कहलाती हैं। यदि इनमें से किसी भी धातु का ह्रास होने लगे तो उससे अगली धातु के निर्माण में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। आप नित्य प्रति देखते हैं कि किसी के शरीर का रस उल्टी या दस्त के द्वारा निकलने लगे या किसी कारण से रक्त का बहना बन्द न हो तो सारे शरीर की सम्पूर्ण प्रक्रिया डगमगा जाती है। इसी प्रकार वीर्य का क्षय होने पर ओज और तेज का निर्माण रुक जाता है। जैसे मलाई में से घी छँटकर अलग होने लगता है वैसे ही वीर्य में से ओज बनता है और वह रीढ़ द्रव में मिल जाता है। 'तेज' शरीर से बाहर विकीर्ण होता है अतः सप्त धातुओं में नहीं माना जाता।

डॉ. ज्ञान्नरेन्द्रानुसार—'रीढ़ के हड्डी की कई कशेरुकाएँ मिलकर एक नली बनाती हैं जो मूलाधार तन्त्र से मस्तिष्क तक जाती है। इसी के द्वारा ओज मस्तिष्क तक (अन्य

पदार्थों के साथ जो रीढ़ द्रव में मिले होते हैं) पहुँचता है।' आप कोई भी मानसिक कार्य करें, मस्तिष्क गर्म होने लगता है। इस गर्म मस्तिष्क को ठण्डा करना ओज का कार्य है। यदि ओज-रस कम हो तो मस्तिष्क में खुश्की बढ़ने लगती है और मस्तिष्क की कार्य व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। व्यक्ति पागल होने लगता है। यदि मस्तिष्क को पर्याप्त मात्रा में ओज मिलता रहे तो मस्तक पर एक विशेष चमक आने लगती है। चेहरे के चारों ओर आभा मण्डल गहन हो उठता है।

यशपालादर्श के अनुसार—'मस्तिष्क के चारों ओर कपाल में ओज आवश्यकता से अधिक भर जाय तो कपाल में से तालू (गले) में इस ओज रस के घन सत्व की बूँद टपकने लगती है जिसे अमृत-रस कहा जाता है।' इसमें संशय नहीं कि उसका स्वाद बताने के लिए कोई उचित उपमा नहीं है। कई लोगों के मस्तिष्क में नजला जम जाता है और वह जब गले में टपकता है तो उसका स्वाद बताना ही मुश्किल हो जाता है फिर अमृत-रस की तो बात ही निराली है।

महात्मा विष्णुतीर्थ ने कहा है—सुषुम्ना में मस्तक के अन्तराकाश में एक ग्रन्थि है, जिसे रुद्र ग्रन्थि कहते हैं। जब जीभ खेचरी मुद्रा में इसे स्पर्श करती है तब यह ग्रन्थि जीभ की नोंक से खुल जाती है। ललाट के पीछे अमृत का कुण्ड है और खेचरी-मुद्रा में यह अमृत स्त्रवित होकर जिह्वा मूल पर टपकने लगता है। **'निर्मलारुण साधना तन्त्र'** के अनुसार 'रीढ़ द्रव वाहिनी सुषुम्ना के भीतर एक चित्रिणी नाम की सूक्ष्म नाड़ी है, जिसमें से होकर कुण्डलिनी ऊपर-नीचे प्रवाहित होती है। सुषुम्ना को ब्रह्म नाड़ी, संवित्ती नाड़ी, मध्य नाड़ी अथवा महा कुण्डलिनी शक्ति की पगडंडी भी कहते हैं।' **'राकेश खिलेश तन्त्र रहस्य'** में सुषुम्ना अथवा सूक्ष्मणा के बारे में लिखा है 'यह नाड़ी मूलाधार से मस्तक के अन्तराकाश में सहस्त्रार में पर शिव के आसन तक सीधी अखण्ड रेखा में पसरी हुई है।'

अमृत-रस (जिसे कुछ योगी खेचरी मुद्रा से प्राप्त करते हैं) गले में टपक कर रक्त में मिल जाता है जिससे पूरा शरीर आभामय होने योग्य बनता है। जो आभा अभी तक चेहरे तक सीमित थी वह पूरे शरीर के चारों ओर घेरा बनाने लगती है। इस आभा को ही तेज कहते हैं।

शारदाकुसुमाचार्य के अनुसार—'ध्यान (Concentration) से अधिक असरदार मानसिक कार्य कोई भी नहीं है। यही कारण है कि ध्यान (Concentration) करने के समय, अथवा किसी भी विषय पर मन को केन्द्रित (एकाग्र) करते समय शरीर दुबला होता जाता है, सारी चर्बी पिघलने लगती है।'

राज्जगदीश चंद्रोपाध्याय के अनुसार—'ध्यान (Concentration) करते समय मस्तिष्क अति शीघ्र गर्म होने लगता है, जिसके कारण मस्तिष्क के चारों ओर भरा हुआ ओज रस उसमें शोषित हो जाता है।' जैसे-जैसे यह ओज रस मस्तिष्क में शोषित होता जाता है लघु मस्तिष्क की ओर से रीढ़ की नली में भरा हुआ ओज रस मस्तिष्क की ओर चढ़ता जाता है, और मस्तिष्क में शोषित हुए रस की संपूर्ति करता है। रीढ़ की नली के

ऊपर के भाग का ओज रस जब मस्तिष्क में चढ़ने लगता है तो रीढ़ के निचले भाग वाला ओज रस भी धीरे-धीरे ऊपर को चढ़ता है। नीचे वाले हिस्से में रिक्त स्थान हो जाता है। उसकी संपूर्ति हेतु वीर्य से ओज रस खिंच कर रीढ़ में पहुँच जाता है।

चित्र संख्या-६
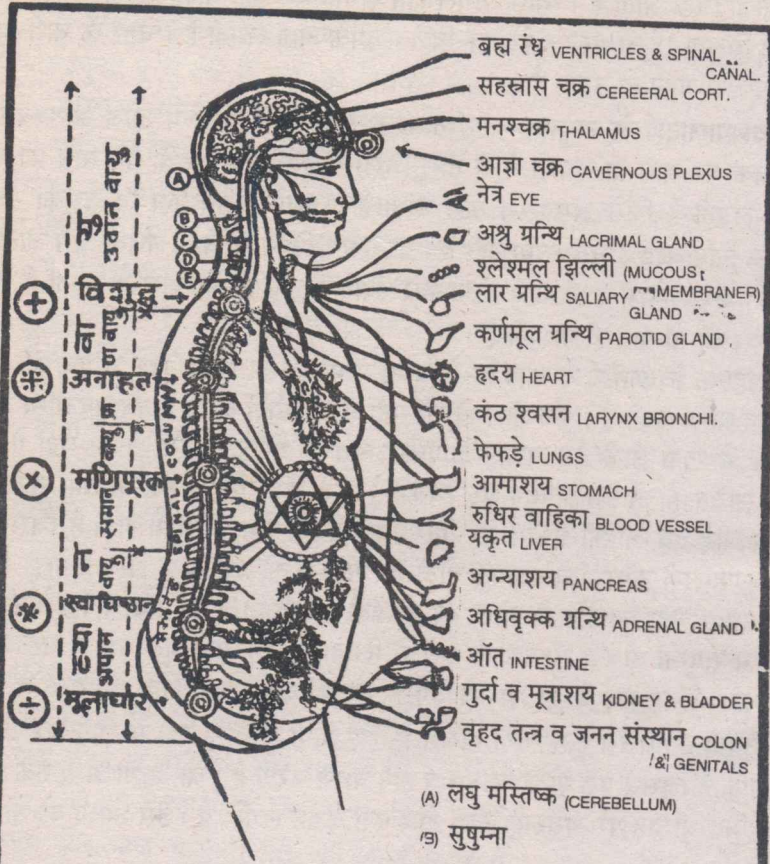
'अशोकार्चना यंत्र रहस्य' के अनुसार—डॉ. डी. एन. एलबर्ट कहते हैं कि **"वीर्य से** ओज को रीढ़ द्रव में जाकर मिलने के लिये कोई नली नहीं है, **अपितु 'पोरस' (अत्यल्प** छिद्र) हैं। जैसे आपके पानी पीने वाले घड़े में होते हैं। **आपके इतने बड़े घड़े में से छन-छन** कर पानी की एक बूँद दिन भर में जिस प्रकार एकत्र हो पाती है **उसी प्रकार वीर्य में से ओज** शनैः-शनैः एकत्र होता है और शनैः-शनैः ही रीढ़ में चढ़ता रहता है। यह संपूर्ण **प्रक्रिया** शरीर में इतने स्वाभाविक ढंग से होती है कि इस सब का हमें कोई अनुभव नहीं हो पाता।" भोजन से रस, रस से रक्त और वीर्य आदि बनने की प्रक्रिया में हमारा शरीर कितना कार्य करता है, इस सब का भी हमें कोई आभास नहीं होता। **शरीर की कोई भी स्वाभाविक प्रक्रिया का हमें कोई आभास नहीं होता। आभास कब होता है—जब कार्य** प्रणाली अस्वाभाविक होने लगती है। यदि रीढ़ के नीचे के **भाग की ओर से, जो योग की** भाषा में मूलाधार (आधार का मूल, Coccyx से Sacrum **तक का भाग, जिस क्षेत्र की** नाड़ियाँ Sacral Nerves कहलाती हैं) कहलाता है, **ओज रस जोर से** (अस्वाभाविक रूप से) खींचें तो व्यक्ति को अद्भुत आनन्द की अनुभूति होती है। **यही कारण है कि यदि किसी प्रक्रिया द्वारा रीढ़ के ओज रस को मस्तिष्क की ओर तेजी से चढ़ाया जाय तो सम्पूर्ण रीढ़ नली (मेरु दंड) में तरंगें चलने लगती हैं, जो पूरे शरीर को आनन्दमय झंकार देती हैं।** इसी को कहते हैं ब्रह्मानंद, कुण्डलिनी का आनन्द। **इस आनन्द का अंदाज** लगाने के लिये आप ऐसे समझ लीजिए—कामानंद के समय रीढ़ का केवल निचला भाग तरंगित होता है, उसमें जब इतना आनन्द है कि आपकी आँखें सारे होश-हवाश खोकर अध मुँदी-सी हो जाती हैं, और आप उस आनन्द का वर्णन नहीं कर पाते, तो जब आपकी पूरी रीढ़ तरंगें दे रही हो, उस आनन्द की क्या सीमा?

जब हम अपने ओज-रस-निर्माणक-तन्त्र को आन्दोलित करते हैं तो **सैक्स** तल (Sacral region) से मस्तिष्क तक सम्पूर्ण कार्य तन्त्री झंकृत हो उठती है। यह ओज-रस निर्माणक-तन्त्र एक विशेष प्रकार से वीर्य तन्त्र से सम्बद्ध है। मनीषियों ने पाया कि **वीर्य तन्त्र को उद्वेलित कर देने से ओज तन्त्र उद्वेलित होता है। इस सिद्धान्त का लाभ तांत्रिक लोगों ने उठाया** और ओज निर्माण के लिये 'सम्भोग' को अति सुलभ तांत्रिक (Technical) उपाय माना। जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ, ओज भग (वीर्य/रज) में पाये जाने वाले किसी तत्त्व से निर्मित होता है, अतः तन्त्र ने ऐसे सम्भोग की ढेर सारी विधियाँ खोज निकालीं जिससे संभोग तो हो परन्तु वीर्य की अधोगति न हो, उर्ध्वगमन हो। हमारा सम्पूर्ण तांत्रिक वाङ्मय ऐसे ही संभोग-आसनों और बाजीकरण योगों से भरा पड़ा है जिनसे पुरुष यदि चाहे तो सौ-सौ स्त्रियों को द्रवीभूत करके भी स्वयं स्खलित न हो।

यह मनोवैज्ञानिक नियम है कि शरीर के जिस तंत्र या संस्थान पर हम ध्यान करेंगे वही सक्रिय होने लगता है। इसलिये जो लोग ब्रह्मचर्य के नाम पर वीर्य अवरोध करते हैं उनका यौन केन्द्र और भी अधिक उत्तेजित होकर उन्हें कामुक बनाने लगता है। जो काम

वे दिन में नहीं कर पाते, वह काम वे सपने में करने लगते हैं अर्थात् उनका **सैक्स चेतन से अचेतन में** उतरने लगता है, और गहराई में उतरने लगता है। **जो कि बहुत से रोगों की** जड़ होता है।

पूर्वकालीन समय में फ्रायड (Sigmund Freud) ने काम प्रवृत्ति के सम्बन्ध में बड़े आश्चर्यजनक कथन युक्त लेख लिखे थे। उन्होंने कहा है—**जो व्यक्ति अपनी कामेच्छाओं को बलपूर्वक दमित कर लेते हैं उनमें बहुत से रोगी मनस्तापी होते हैं।** अचेतन प्रेरकों की रक्षा युक्तियों (Defence mechanism) के बारे में फ्रायड प्रतिक्रिया-विधान (Reaction formation) की बात बताते हैं कि **जो व्यक्ति कामुक होता है वह उच्च चरित्र** (high character) **की बातें करता है।** प्रक्षेपण (Projection) का नियम भी ऐसा ही है जिसमें **व्यक्ति अपनी अपराध भावना को अपने मित्र पर आरोपित कर देता है।**

फ्रायड ने सम्मोहन पर बहुत से प्रयोग किये, उन्होंने पाया कि **उत्कृष्ट अतृप्त इच्छाएँ जो अचेतन में चली जाती हैं, चेतनात्मक व्यवहार पर असर डालती हैं।** यहाँ तक कि लिखने में त्रुटि होना, बोलने में शब्द छूट जाना (Slip of tongue), शादी की अँगूठी खोना आदि जीवन की छोटी-छोटी त्रुटियों का भी कोई प्रेरक अवश्य होता है, इसलिये उनका अर्थ अवश्य है। **ऐसे अर्थों का उपयोग 'शकुन-अपशकुन' में होता है।** दमन के बारे में फ्रायड कहते हैं कि व्यक्ति का अचेतन प्रेरक जिस बात को बाहर लाना चाहता है, चेतन अहं उसे बलपूर्वक रोक देता है क्योंकि उससे चेतन अहं में अपराधी-भावना उत्पन्न हो जाती है। अचेतन प्रेरक के बारे में एक और अद्भुत नियम फ्रायड ने दिया कि व्यक्ति के लिये **जिस बात का निषेध कर दिया जायगा वह उसी को प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा।** जिस लड़की से प्रकट में घृणा की जायेगी अप्रकट में व्यक्ति उसी की इच्छा करेगा। **निकटस्थ सम्बन्धियों में पारिवारिक व्यभिचार अथवा लैंगिक सम्बन्धों के उदाहरण इसी निषेध के कारण मिलते हैं** क्योंकि चेतन मन निषेध करता है और अचेतन मन उससे उल्टा व्यवहार करता है। इस कामुकता में वे सब क्रियाएँ आ सकती हैं जो बालक को एन्द्रिय और प्राकृतिक सुख प्रदान करती हैं। जैसे, बच्चे का धाय से प्रेम करना, तोड़-फोड़ द्वारा आनन्द लेना, संगीत और कला का आनन्द लेना। इडिपस मनोग्रन्थि (Oedipus complex) के कारण बच्चा विपरीत लिंगी के प्रति प्रेम करता है। इडिपस नामक यूनानी युवक ने अनजाने में अपनी माँ से विवाह कर चार बच्चे पैदा किये। जब उसे पता लगा कि उसकी स्त्री उसकी माँ थी, तो उसने प्रायश्चित के लिये अपनी आँखे निकलवा दीं, क्योंकि उसने अनजाने में पिता की हत्या कर माँ से शादी की थी।

छः वर्ष की आयु से 12 वर्ष की आयु का समय काम-प्रसुप्ति (Sexual latency) का होता है। इस बीच बच्चे माँ-बाप के विशेष प्रेम को पसन्द नहीं करते। **इस काल में उसे उच्चादर्श, परोपकार एवं बुद्धिमता की बातें सिखाना उपयुक्त रहता है।** लड़की की इडिपस मनोग्रन्थि को इलैक्ट्रा मनोग्रन्थि कहते हैं इसका विशेष विवरण 'The

Psycodynamics of Abnormal Behaviour' by Dr. Brown, में दिया गया है। इन दोनों मनोग्रन्थियों के अध्ययन से व्यक्ति के लैंगिक अंतर्द्वन्दों के मनोविश्लेषण में सहायता मिलती है। मनोविज्ञान में एक शब्द है नारसिसिज्म, आत्ममोह। कई व्यक्ति दर्पण में अपना शरीर देख कर उसे ऐसे चूमते हैं जैसे कि वह शरीर किसी दूसरे का हो। ऐसा व्यक्ति सदैव दूसरों से प्रेम और प्रशंसा चाहेगा किन्तु स्वयं दूसरे की न प्रशंसा करता है, न प्रेम देता है। यह पूर्णतया आत्म-प्रेमी (Narcissistic) या आत्ममोही कहलाता है।

यदि हम मन को सेब का फल मान लें तो उसका छिलका अहं (Ego) है और गूदा इदं (Id) है। इदं का बाह्य वातावरण से सीधा सम्बन्ध नहीं होता। न यह कुछ जानता है न कुछ कर सकता है। इसका विकास अहं है। जब यह अनुभव द्वारा वातावरण के भय का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो इसे इदं को अनुबंधित करने की आवश्यकता पड़ती है। अहं यथासंभव इदं से मूल प्रवृत्तियों को ग्रहण कर वास्तविक आवश्यक नियम के अनुरूप कर देता है। जब अहं इदं की इच्छा का दमन करता है तो यह दमित इच्छा और उससे सम्बन्धित अनुभव और वस्तुएँ अन्दर जाकर इदं में जुड़ जाती हैं। इससे इदं पहले से अधिक दुखदायी बन जाता है। **यही कारण है कि अच्छे-बुरे का ज्यादा ध्यान करने वाले लोगों का जीवन असहज हो जाता है।** व्यावहारिकता में आप देखते होंगे कि ऊपर से अधिक धार्मिक दिखाई देने वाले लोग अन्दर से उतने ही अधार्मिक और आमानवीय दृष्टिगत होते हैं। मन का एक और अवयव पराहं (Super Ego) है। यह अंतरात्मा का आधार माना गया है। यह पूर्वकालीन बाल्यावस्था में उत्पन्न होता है। अहं कार्य करता है और पराहं कार्य की नैतिक आलोचना करता है कि यह करो, वह मत करो। इसके आदेशों का मूल अचेतन इदं में होता है। अतः पराहं यह नहीं जानता कि ऐसा न करो तो क्यों न करो ? क्यों का उत्तर इदं में होता है। भय के अतिरिक्त सभी मूल प्रवृत्तियाँ और प्रेरणाएँ विशेष रूप से इदं से सम्बन्धित होती हैं।

इस प्रकार फ्रायड ने मानसिक नियतत्ववाद (Psychic determinism) के बारे में बताते हुए कहा कि बिना कार्य के कारण नहीं होता और बिना कारण के कार्य नहीं होता। यहाँ तक कि स्वप्नों, कल्पनाओं (Fantasies), स्मृति ह्रास (Lapse of Memory), वाक्य स्खलन (Slip of tongue) तथा ऐसी ही अन्य प्रकार की **विचार प्रतिकृतियों आदि का भी कोई न कोई प्रेरक होता है। यदि चेतनात्मक प्रेरक नहीं है तो अचेतनात्मक प्रेरक अवश्य होगा। इनमें से कोई भी सूत्र मिलने पर आगे की गणना की जा सकती है। योगी लोग इस सिद्धान्त का प्रयोग धारणा और ध्यान में करके साधन की अगली योग क्रियाओं** (Yoga exercises) **का निर्णय करते हैं।** मानसिक नियतत्ववाद मनोविश्लेषण का आधारतत्त्व माना जाता है। फ्रायड ने शैशव कामुकता का विवरण देते हुए कहा है कि बच्चा मुख, गुदा तथा जननेन्द्रिय से काम सुख का आनन्द लेता है। स्तन-पान तथा स्तनदंशन (Biting) आदि इसी सन्दर्भ में हैं। देर से शौच जाने

से अंतड़ियों की क्रियाओं का आनन्द लेता है जिसमें तीव्र संवेदना हो। बाद में आरम्भ के **छः वर्षों तक** हाथ लगाकर आनन्द लेता है। यह तीनों अवस्थाएँ आरम्भ के छः वर्षों तक अधिकतर बच्चों में पाई जाती हैं। यह सब स्वरात्मक (Autocratic) क्रियाएँ हैं। **जिस स्तर पर ये क्रियाएँ दमन द्वारा अचेतन में उतर जाती हैं उस स्तर का परिवर्तन व्यक्ति के व्यवहार में आ जाता है।** जैसे—चूषण में रति रखने वाला संग्रहशील (Acquisitive), गुदा में रति रखने वाला मितव्ययी एवं आज्ञाकारी, तथा जननेन्द्रिय में रति रखने वाला अत्यन्त अन्तर्भावनाशील (Ultra-Conscientious) बन जाता है।

फ्रायड ने कामुकता के प्रत्यय का अर्थ सीमित तथा विस्तृत दोनों रूपों में ग्रहण किया है। **तब फिर सैक्स को, काम को संयत करने का उपाय क्या है ?** आपको पेशाब लगा हो और आस-पास कोई उपयुक्त स्थान न हो तो आप थोड़ी देर पेशाब रोक लेते हैं। यदि आप उस समय किसी अन्य कार्य में व्यस्त हो जायें तो घंटों उस पेशाब करने की इच्छा को गायब रख सकते हैं। कुछ समय पश्चात् पुनः पेशाब जोर करेगा। फिर सोचेंगे, अरे ! अब तो घर जाकर ही देखेंगे, थोड़ी देर की बात है, और पेशाब पुनः रुक जायगा। ऐसा कई बार होता है कि सुबह का पेशाब लगा हुआ अक्सर शाम को घर आकर ही विसर्जित हो पाता है। यदि इसी पेशाब के लिए आप यह सोचें कि 'आज पेशाब नहीं जाना है, आज पेशाब जाना ही नहीं है, तो अवश्य ही आपको दिन में चार बार पेशाब जाना पड़ जायगा। तात्पर्य यह है कि **जिस काम से आप बचना चाहते हैं उसको मस्तिष्क में, विचार में मत रखो—न 'हाँ' के रूप में, और न 'ना' के रूप में।** उपर्युक्त उदाहरण में, पेशाब रोकने का अभ्यास आपने उचित स्थान के अभाव में किया था, यही अभ्यास आप उचित स्थान पर होते हुए, अर्थात् पेशाबघर में खड़े-खड़े भी कर सकते हैं, और पेशाबघर से बिना पेशाब किये, बिना किसी परेशानी के वापस आ सकते हैं। यह उदाहरण इसलिये नहीं है कि आप लोग आज से ही पेशाब रोकने का अभ्यास प्रारम्भ कर दें। यह तो मैं आपको यौन के, सैक्स के बिंदु से हटने की विधि बताने के लिये कहा रहा हूँ। **यदि आप अपने को सैक्स से, कामुक होने से बचाना चाहते हैं तो आपके लिये यह सोचना कि 'सैक्स से बचना है' उतना ही हानिकारक है जितना यह सोचना कि 'सैक्स में डूबना है।'** एक नौसिखिया साइकिल चलाने वाला बीच सड़क पर एक रोड़ा पड़ा देखता है, और बहुत दूर से सोचता आता है कि इस रोड़े से बचना है, और पूरी सड़क खाली होते हुए भी वह अपनी साइकिल उस रोड़े पर ही चढ़ा देता है। क्यों ? यही रोकने वाली मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया उसे मार जाती है।

आप काम का, सैक्स का निरोध मत करिये, नियोजन कीजिये। इसके लिए बहुत सरल विधि है—अपने को व्यस्त रखना। 'व्यस्त' रहने के लिये आवश्यक नहीं है कि आप वहीं कार्य करें जिनसे आर्थिक, मानसिक या शारीरिक लाभ हो। आप कोई भी ऐसा कार्य अपना सकते हैं जिसमें आपको आनन्द आये, चाहे लाभ कुछ भी न हो। पेन्टिंग, चित्र बनाना, नाचना, गुनगुनाना कुछ ऐसे ही कार्य हैं। यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है कि आप

अच्छे चित्रकार हों तभी चित्र बनाएँ। यह किसी दूसरे को दिखाने के लिये बनाये गये चित्र नहीं होंगे। यह तो स्वान्तः सुखाय, अपने आनन्द में मग्न होकर बनाये हुए चित्र होंगे। गीत जो गुनगुनाया जायगा, आपकी मस्ती में बिल्कुल स्वान्तः सुखाय होगा। नाचना, अपनी मस्ती में, दूसरों से कोई सम्बन्ध नहीं, भले ही वह नाचना न होकर मटकना ही हो, परन्तु हो स्वान्तः सुखाय। इसी प्रकार के ऐसे सभी कार्य जो आनन्द की मस्ती में आनन्द मनाने के लिये किये जाँय (आनन्द एक आवश्यक सूत्र है) तनाव मुक्त करते हैं। **तनाव मुक्त करने वाले ऐसे कार्यों को हम 'लीला' कहते हैं।** प्रारम्भ में यह लीला थोड़े-थोड़े समय के लिये होगी बाद में पूरी जिन्दगी ही लीला बन जायेगी, खेल बन जायगी। हर कार्य को खेल समझ कर पूरा करने वाले कभी वासना के तनाव से नहीं भरेंगे। **तनाव से ही व्यक्ति कामुक होता है।** विभिन्न प्रकार के तनावों से मुक्त होने की अन्य विधियाँ आप आगे के अध्यायों में पायेंगे।

सैक्स और संस्कृतियाँ

विभिन्न संस्कृति के लोगों के मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में यह देखा गया है कि स्त्री और पुरुषों की भूमिकायें भिन्न-भिन्न होती हैं। **पी. स्लोविक** के अनुसार, 'जिस उम्र में सैक्स सम्बन्धी अन्तर स्पष्ट हो जाता है उस उम्र के लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक साहसी होते हैं और जोखिम के कार्य (Risk taking task) अधिक करते हैं।' इसी सन्दर्भ में नपुंसक व्यक्ति अथवा हिजड़ों में साहस कम बताया जाता है। मनोवैज्ञानिक Terreil ने अपने अध्ययनों में देखा है कि सैक्स के प्रति स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक आक्रामक व्यवहार पाया जाता है। उच्च शिक्षा प्राप्त पुरुषों में आक्रामकता अधिक तथा उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं में आक्रामकता अपेक्षाकृत बहुत कम पाई जाती है। जूनी लोगों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ Sexually Aggressive होती हैं। ई. टी. हॉल ने अपने अध्ययनों में पाया कि ईरान की स्त्रियों का संवेगात्मक और बौद्धिक व्यवहार पाश्चात्य देशों की स्त्रियों के विपरीत होता है। मार्ग्रेट मीड (Margret Mead) ने न्यू गायना (New Guinea) के आरापेश पर्वतों पर रहने वाली जनजाति का अध्ययन करके पाया कि वहाँ की स्त्री और पुरुषों का व्यवहार पाश्चात्य देशों के समान है। साथ ही ये लोग उन व्यक्तियों की अधिक प्रशंसा करते हैं जो अपनी आक्रामक वृत्तियों का दमन करते हैं। ये लोग बालकों में नम्रता का विकास अधिक करते हैं। इसी क्षेत्र में पाई जाने वाली मुंडागुमार जनजाति की स्त्रियाँ माँ बनना पसन्द नहीं करतीं। माँ बन जायँ तो बच्चे का पालन-पोषण ढंग से नहीं करतीं। बच्चे को खड़े-खड़े स्तन-पान कराती हैं। इसलिये इनके बच्चे आक्रामक, निर्दयी, अहंवादी, ईर्ष्यालु, निराशावादी, प्रतिद्वंद्वी और निर्दयी होते हैं। टेचाम्बुली जनजाति में स्त्री स्वयं पति का चुनाव करती है और पति को अपने नियन्त्रण में रख कर उससे बच्चों का पालन-पोषण, सफाई, तथा खाना आदि पकाने का कार्य कराती है। न्यू मैक्सिको में रहने वाले होपी लोगों में सम्पत्ति का हस्तांतरण माँ

से पुत्री को होता है। कृषि आदि के कार्य पुरुष करते हैं फिर भी सम्पत्ति और परिवार की प्रधान स्त्रियाँ ही होती हैं। क्वाकियूटल (Kwakuital) जनजाति में बड़े लड़के को परिवार का प्रधान माना जाता है। जो जितना अधिक धन बर्बाद करे वही इनके यहाँ सम्माननीय होता है। ये लोग घोर भौतिकवादी होते हैं। कोनयक नागा जनजाति में स्त्री अपनी ससुराल जाने से पूर्व ही एक बच्चे की माँ बनती है और बिना माँ बने पति के घर नहीं जा सकती है। ये स्त्रियाँ विवाह के बाद भी अन्य पुरुषों से यौन सम्बन्ध रखती हैं। देहरादून की खस जनजाति की स्त्रियाँ ससुराल में रान्ती कहलाती हैं और अपने यौन सम्बन्ध केवल पति से रखती हैं परन्तु अपने पिता के घर पर आकर वह श्यान्ती कहलाने लगती हैं और दूसरों के साथ उसे यौन सम्बन्ध रखने की खुली छूट होती है। भारत की अनेक जनजातियों में घोटुल (युवाग्रह-Youth organisation) की व्यवस्था है जिसमें अधिक आयु की लड़कियाँ कम आयु के लड़कों को यौन व्यवहार की शिक्षा देती हैं। टोडा जनजाति में स्त्रियों को मासिक धर्म के कारण अपवित्र और हीन समझा जाता है।

श्यत्त संस्कृति दो प्रकार की है—मौलिक और समयिन। प्राचीन मौलिक योनि के चित्र की पूजा करते हैं तथा मद्य, माँस, मीन का भक्षण करते हैं। समयिन ये क्रियाएँ नहीं करते। सर भाण्डारकर कृत 'वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजन्स' के अनुसार भैरवी चक्र के समय वर्ण-भेद या सम्बन्ध-भेद नहीं रहता। माता, पुत्री, पत्नी, शूद्रा, चाण्डाल, ब्राह्मण सब समान होते हैं। नवीं शताब्दी के कविराज शेखर ने अपने 'कर्पूर मंजरी सट्टक' में कौल मत के बारे में प्रथम जवनिकान्तर के अन्तर्गत लिखा है।

मंताणं तंताणं णकिंपि जाणो झाणं चणों किंपि गुरुपसाओ। मंज पिआओ महिलं रमामो मोंक्खं च जामो कुल मंग्गलग्गा॥ २२॥

(हम मन्त्र तन्त्र कुछ नहीं जानते, न गुरु कृपा से हमें कोई ज्ञान मिलता है हम लोग मद्यपान व स्त्री गमन द्वारा कुल मार्ग का अनुसरण कर मोक्ष पाते हैं।)

रण्डा चण्डा दिक्खिआ धम्भ दारा मज्जं मंसं पिज्जए खिज्जए अ मिक्खा भोजं चम्म खण्डं च सेज्जा कोलो धम्भो कस्स णो भाइ रम्भो ॥ २३॥

(हम वेश्याओं और कुलटाओं को दीक्षित कर धर्मपत्नी बना लेते हैं। मद्य पीते व माँस खाते हैं। भिक्षान्न ही हमारा भोजन और चर्म खंड शैया है, ऐसा कौल धर्म किसे प्रिय नहीं।)

विषय विलास से सम्बन्धित अन्य देवियों को पूजा में आनन्द भैरवी, त्रिपुर सुन्दरी और लालसा आदि के सम्प्रदाय आते हैं। सर रामकृष्ण भण्डारकर कृत 'वैष्णविज्म, शैविज्म एन्ड अदर माइनर रिलीजन्स' के अनुसार इन महाशक्तियों के उपासक 'शिव और त्रिपुर सुन्दरी' के योग से संसार का निर्माण मानते हैं। वर्णमाला के प्रथम अक्षर 'अ' को शिव तथा अन्तिम अक्षर 'ह' को त्रिपुर सुन्दरी कह कर इन दोनों के योग 'अहं' को काम-कला का सूचक मानते हैं। 'कपाल कुण्डला' नामक देवी का वर्णन भवभूति ने

'मालती माधव' में किया है और लिखा है कि 'अघोर घण्ट द्वारा चामुण्डा को बलि देने के लिये वह देवी मालती को आधी रात में श्मशान पर ले गई थी।' अघोर पंथी कापालिक आदि अन्य सम्प्रदाय भी नर खोपड़ी में खाने वाले व शरीर पर चिता भस्म लगाने वाले होते हैं। मूल शैव सम्प्रदाय पाशुपत सम्प्रदाय कहलाता था। पाठकों को यदि ध्यान हो, तन्त्र में पशु का अर्थ है 'अदीक्षित व्यक्ति', यह नाम उसी सन्दर्भ में है। शिव को पशुपति भी कहते हैं।

सन् ९७१ ई. का एक शिलालेख मिला है उससे पता लगता है कि लकुलीश सम्प्रदाय 'कारवान्ट' (बड़ौदा राज्य) से प्रारम्भ हुआ है। लकुलीश (हाथ में डंडा लिये हुए शिव) की कई मूर्तियाँ राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, बंगाल, उड़ीसा आदि में पाई जाती हैं। इस मूर्ति के दो भुजाएँ, सिर पर लम्बे केश, दाहिने हाथ में बिजौरा और बाँये में लकुट (डंडा) होता है। मूर्ति पद्मासन में अपना लिंग ऊर्ध्व करके बैठी होती है। लिंग ऊर्ध्व रख कर मूर्ति के ऊर्ध्व रेत: (वीर्य की ऊर्ध्व गति करने वाला) होने को प्रकट किया जाता है। **रेत: (वीर्य) को ऊर्ध्व गति प्रदान करना ही कुण्डलिनी जगाना है।** ऐसी मूर्ति का विवरण श्री गोरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' में दिया है।

कुषाण वंशीय सम्राट कनिष्क सन् ७८ ई. में गद्दी पर बैठा। इसके राज्यक्षेत्र में कश्मीर, बुखारा, खानदेश, फारस का कुछ भाग और पाटलिपुत्र तक का भारतवर्ष सम्मिलित था। राजधानी पेशावर थी। इसका उत्तराधिकारी हुविश्क हुआ। फिर १३८ ई. में वासुदेव गद्दी पर बैठा। उसके पश्चात् लगभग १५० वर्ष के समय में भारशिव और वाकाटक राजाओं ने भारत में शैव धर्म स्थापित किया। इसी काल में सन् १५० ई. से २५० ई. तक नव नागों ने भी राज्य किया और नाग वंश का प्रसार किया। इनके वंश का नाम ही भार शिव पड़ा जो इस ताम्रपत्र के लेख से प्रमाणित होता है—

"अंशभारसन्निवेशितशिवलिंगोद्वहन शिवपरितुष्टसमुत्पादितराजवंशाना पराक्रमाधिगत भागीरथ्यमलजलमूर्द्धाभिषिक्तानां दशाश्वमेघावभृथस्नानानां भार शिवानाम्॥"

इस ताम्र पत्र से स्पष्ट होता है कि ये लोग शिव लिंग को कंधे पर लिये रहते थे इसलिये भारशिव कहलाते थे। इन्होंने काशी के जिस घाट पर दस अश्वमेध यज्ञ किये वह दशाश्वमेध घाट कहलाता है। भार-शिवों के समान ही पड़ौसी राजवंश वाकाटक का था। नागों में भवनाग का दौहित्र रुद्रसेन वाकाटक राजा प्रवरसेन का पौत्र था। यह दोनों ही राज्यों का उत्तराधिकारी बना। बाद में इसी शाखा में पल्लव वंश चला जिसने दक्षिण और उत्तर को एक शैव धर्म में दीक्षित करने का श्रेय प्राप्त किया। इस भारशिव से सम्बन्धित भाकुल बाबा (भारकुल बाबा) का शिवलिंग नागौद राज्य में पारसमनियाँ पर्वत पर भुमरागाँव के पास घने जंगल में एक भग्न मन्दिर में आज भी देखा जा सकता है। इस मन्दिर की ईंटों पर जो अक्षर खुदे हैं उनकी जाँच करते हुए पुरातत्ववेत्ता श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने पाया कि वे अक्षर १५० से २०० ई. तक प्राचीन थे।

शैव ग्रन्थ 'आगम' नाम से प्रसिद्ध है। अन्य ग्रन्थ हैं स्पन्द शास्त्र, शिव दृष्टि, बसव पुराण (कन्नड़) जो बहुत से जंगम (लिंगायत उपदेशक) नियुक्त कर प्रचारित कराया है। डा. फ्लीट मानते हैं कि बसव तो प्रचारक मात्र था और प्रवर्तक 'एकान्त' था। ये सब अहिंसावादी थे। परन्तु इन्होंने जैनों की मूर्तियों का उच्छेद किया और प्रचार किया कि श्रम से कमाओ, भीख न माँगो, सदाचारी बनो, भक्ति को महत्व दो, गले में शिवलिंग लटकाओ, दीक्षा संस्कार कराओ, 'नमः शिवाय' का जाप करो। तमिल प्रदेश में सबसे अधिक प्रतिष्ठित लेखक 'तिरुज्ञान सम्बद्ध' हुआ, जिसकी मूर्ति शैव मन्दिरों में वहाँ पूजी जाती है। शिवलिंग की सब प्राचीन मूर्तियाँ पहली शताब्दी ईस्वी की ही अधिकतर मिलती है। इनके मन्दिरों में सिद्धपुर का रुद्र महालय मूलराज ने गुजरात में बनवाया तथा सौराष्ट्र में 'सोमनाथ' की-शैली पर 'मल्लिकार्जुन', उज्जयिनी में 'श्री महाकाल', ओंकारेश्वर, केदारखण्ड में 'केदारनाथ', डाकिनी में 'भीम शंकर', काशी में 'विश्वनाथ', गोदावरी तट पर 'त्र्यम्बकेश्वर', चिता भूमि में 'बैद्यनाथ', दारुक वन में 'श्री नागेश्वर', सेतुबन्ध में 'श्री रामेश्वर', और 'घुरमेश्वर' आदि द्वादश ज्योतिर्लिंगों का वर्णन शिवपुराण, रामायण, महाभारत, तथा दूसरे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में मिलता है।

भारत में प्राचीनतम शिव मूर्ति गुडिमल्लम के मन्दिर में है, जो लगभग बाईस सौ वर्ष पूर्व की है जिसका पूजन आज भी होता है। यदि इस मूर्ति पर ध्यान दें तो आप पायेंगे कि यह एक स्तम्भाकार लिंग मूर्ति है। लिंग दंड के एक ओर द्विभुज पशुपति शिव खड़े हैं उनके एक हाथ में मेष पशु (भेड़) है और दूसरे में परशु। बिल्कुल इसी के समान एक मूर्ति मथुरा में कुषाण युग की मिली है। एक कुषाण युगीन पत्थर की दो अँगुली मुद्रा कलकत्ते के अजायबघर में रखी है। बम्बई के निकट एलीफेन्टा द्वीप के गिरि मन्दिर की मूर्ति, द्रविड़ देश की नटराज मूर्ति आदि अद्वितीय हैं। ऐसी ही अन्य मूर्तियाँ जावा, इन्डोचीन, मध्य बर्मा, कम्बोडिया, कोचीन, मलाया, सिंगापुर, सुमात्रा, बोर्नियो, फिलीपाइन द्वीपों, स्याम देश (थाइलैंड), आदि में पाई गई हैं। यदि आप ईसाइयों की कथाओं पर ध्यान दें तो स्थान-स्थान पर भेड़ों की बातें आती हैं। गुडिमल्लम की मूर्ति में भी 'भेड़' है, तंत्र में भी पशु की बात की है। 'भेड़' आँख बन्द करके लीक पर चलने वाले अज्ञानी व्यक्ति का ही नाम है जिसके लिये कहा जाता है 'एक पड़ा जेहि खाड़ में सबै जाँहि तेहि बाट'?

भैरवीचक्र को न योनि-पूजा कहा जा सकता है न लिंग-पूजा। उसे तो 'संभोग साधना' कहना अधिक उपयुक्त होगा। उसमें पहले प्रत्येक साधक जल स्नान करता है फिर तैल स्नान तब पुनः जल स्नान, उसके पश्चात् देवी चयन होता है तब योनि पूजन (केवल देवी का) होता है। उसके पश्चात् पुजारी देवी के साथ सम्भोग करके सभी उपस्थित साधक-साधिकाओं को अपना तेज प्रदर्शित करता है। ज्योंही सबको इस संभोगरत जोड़े के ऊपर प्रकाश का वलय दिखाई पड़ता है सब दर्शक तालियाँ बजाते हैं। देवी चयन के पश्चात् देवी का योनि पूजन हो जाने पर देवी नृत्य करती हुई आती है और

साधक-साधिकाओं के जोड़े बना जाती है। जोड़े बनाते समय किसी रिश्ते अथवा वर्ण आदि पर ध्यान नहीं दिया जाता—**'प्राप्ते भैरवी चक्रे सम्बन्ध वर्णा प्रकृति भवेत। निवृत्ते भैरवी चक्रे सम्बन्ध वर्णा प्रथक-प्रथक'** जो चक्र पूजा में आ गया उसका कुल, वर्ण-सम्बन्ध सब बाहर रह जाता है। पूजा काल में वह मात्र नारी अथवा पुरुष रह जाता है। पूजा समाप्त होने के पश्चात् जो जिस सम्बन्ध-वर्ण अथवा कुल का है उसके नियमों का पूर्ण पालन करता है। पुजारी और देवी का प्रकाश वलय देखने के उपरान्त साधक-साधिकायें अपने-अपने साथी को मुद्रा प्रदर्शन करके एक-दूसरे को सम्भोगामत्रण देते हैं। थोड़ी देर बाद पुजारी और देवी (जिसे भैरव और भैरवी कहा जाता है) दोनों नटराज शैली का नृत्य करने लगते हैं, इधर सम्बन्धित जोड़े सम्भोग क्रिया में जुट जाते हैं। वैसे तो भैरव-भैरवी के सम्भोग रत होते ही शेष साधक-साधिकायें मुद्राएँ प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर देते हैं। धीरे-धीरे यह नृत्य सम्भोग रत जोड़ों की गति बढ़ने के साथ-साथ ही गति पकड़ता जाता है और कुछ जोड़ों में भैरवी अथवा भैरव की लातें पड़नी प्रारम्भ हो जाती हैं (होता यह है कि सम्भोग रत जो भी व्यक्ति स्खलित होने को होता है उसके नितम्ब स्थल पर नृत्य कर रहे भैरव अथवा भैरवी अपना पैर मार कर उसे ऐसा न होने देने के लिये सचेत करते हैं।) लगभग दो घण्टे के सम्भोग के पश्चात् लातों की गति इतनी तीव्र हो जाती है कि यह पहचानना ही कठिन होता है कि भैरव-भैरवी नृत्य कर रहे हैं या केवल लातें ही मार रहे हैं (क्योंकि उस समय तक स्त्रवित (Discharge) होने वाले जोड़ों की संख्या बहुत बढ़ जाती है।) यह सम्भोग अधिकतर चार-पाँच घण्टे चलता है। इतने में सभी साधक-साधिकाएँ पस्त हो जाते हैं और स्वतः ही अलग-अलग होकर तीव्र श्वांसें लेने लगते हैं। इसी बीच कुछ जोड़ों पर भैरव-भैरवी वाला प्रकाश वलय भी चमक उठता है।

सभी जोड़े इस प्रकाश वलय को प्रगट करने का लक्ष्य रखते हैं। **यह प्रकाश वलय ही इनके सम्भोग की पूर्णता है,** न कि थोड़े समय बाद आनन्द पाकर स्त्रवित हो जाना। **स्त्रवित होना सम्भोग का खण्डित होना माना जाता है।** इस सम्भोग साधना में चाहे ५० जोड़े हों चाहे २०० जोड़े हों, एक को भी स्खलित न होने देने में ही भैरव और भैरवी के नृत्य की सार्थकता है। जो जोड़ा वलय प्रकट कर पाता है वह शीघ्र ही अलग होकर भैरव-भैरवी के साथ नृत्य में सम्मिलित हो जाता है और दूसरों को नियन्त्रित करने में जुट जाता है। किसी ने सत्य ही कहा है "तेजस्वी ही आनन्द लूट पाता है और वही दूसरों को नियन्त्रित करने का अधिकारी है।" आनन्द का प्रकटीकरण नृत्य में होता है।

यदि आप इस भैरवी चक्र की क्रिया-विधि पर ध्यान दें तो आप देखेंगे कि इसके सारे साधक (स्खलित न होने के कारण) ब्रह्मचारी हैं। **इस सम्भोग में सन्तानोत्पत्ति न होने के कारण सांसारिक रिश्तों और सम्बन्धों के मानने का कोई औचित्य नहीं रहता। जैसा** कि हम पहले कह आये हैं—सामाजिक नाते रिश्तों में केवल दूर के रिश्ते के साथ सम्भोग की स्वीकृति समाज इसलिये देता है जिससे 'उत्पन्न सन्तान' कमजोर न हो। परन्तु जिस सम्भोग में वीर्य की ऊर्ध्वगति हो वहाँ यह नियम लागू नहीं होता। **जो वर्ग सामान्य**

सामाजिक नियमों में किन्हीं विशेष कारणों के आधार पर नहीं बँधते वे समाज से परे माने जाते हैं। इस चक्र पूजा को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए इनके कुछ सहायक नियम भी प्रचलित हैं, जिनका मैंने उल्लेख नहीं किया है। यथा—सोमरस पान (एक प्रकार का मीठा गाढ़ा सा सुगन्धित मादक और सम्भवतः वीर्य स्तम्भक द्रव्य), कुटुम्ब साधना (चक्र पूजा में एक व्यक्ति को सम्मिलित न करके उसके पूरे परिवार को सम्मिलित करना) आदि। भैरवानन्द के अनुसार 'यह 'तेज-वलय' उन सम्भोग रत दम्पत्तियों को सम्भोग के अन्तिम क्षण में प्राप्त होता है जो सम्भोग काल में आने वाले विभिन्न स्खलन क्षणों में अश्विनी मुद्रा द्वारा अपनी ओज शक्ति में उद्वेलन उत्पन्न कर कुण्डलिनी जाग्रत करते हैं। **जब भी कुण्डलिनी की तरंगें सहस्त्रार तक पहुँचती हैं (जब ओज आवश्यक मात्रा से अधिक भर जाने पर तेज में परिवर्तित होने लगता है) अमृत रस गले में टपकता है और उस क्षण चेहरे पर तेज का वलय (आभा) प्रकट होता है। जब अमृत रस शरीर के ऊर्जा कोषों में प्रस्फुटित होता है तो पूरे शरीर पर प्रकाश का वलय प्रकट हो जाता है।** उस समय साधक के मुँह से आनन्दातिरेक में चीख सी निकलती है। आँखें स्वतः ही बन्द-सी हो जाती हैं, यहाँ तक कि साधक अपने वलय को स्वयं नहीं देख पाता और उसके पश्चात् जो आनन्द और शान्ति का स्त्रोत फूटता है उसकी सीमा नहीं होती।"

सत्य

यम के अन्तर्गत अन्तिम विषय है 'सत्य'। पीछे के पृष्ठों में आपने देखा—अहिंसा के द्वारा द्वैत भाव का तनाव समाप्त होता है, अस्तेय के अभ्यास द्वारा व्यक्तित्व परिवर्तन से होने वाला तनाव समाप्त होता है, अपरिग्रह के अभ्यास द्वारा मित्र भाव आ जाने के कारण मालिक बनाने का तनाव समाप्त होता है, आनन्दपूर्ण ललित कलाओं (चित्रकारी, गुनगुनाहट, अथवा नृत्य आदि) के द्वारा यौन सम्बन्धी तनाव समाप्त होता है, जब इतने सारे तनाव समाप्त हो जायँ तो हमारे पास क्या बचेगा? केवल वह, जो ईश्वर प्रदत्त है—यही 'सत्य' है। **सारे तनाव हमारे अपने थोपे हुए थे। इन तनावों से मुक्त होने के बाद जो बचा वह सत्य है**—एक सहज और सरल जीवन, एक दम प्राकृतिक जीवन जो सारे तनावों से मुक्त हो। **कुमकुमानिल** के अनुसार—'यदि आप प्रकृति जैसे हो सकें तो आप निर्ग्रन्थ, ग्रन्थि रहित, तनाव रहित (Complexless) हो जायेंगे, और स्वयं निर्ग्रन्थता (Bodylessness) अनुभव करेंगे।' ऐसे व्यक्ति को हिन्दू पुराणों में विदेह (देह रहित) कहा गया है। महावीर स्वामी को निर्ग्रन्थ और राजा जनक को विदेह कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति जो कुछ करते हैं वह सब परिस्थितिजन्य (Inspiration) से होता है इसलिये इनका कर्म भी कर्म न होकर 'क्रीड़ा' हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक शिशु Inspiration से क्रीड़ा करता है। कृष्ण का पूरा जीवन ही क्रीड़ा (लीला-खेल) था। उनकी रास-लीला आदि को लेकर बड़े-बड़े वाद-विवाद आक्षेप-पटाक्षेप किये जाते हैं, सच तो यह है कि ऐसे लोग लीला और कर्म के अन्तर को नहीं समझ पाते।

लीला और कर्म में मूल अन्तर भावना का है। कर्म वही है, करने वाले की भावना का अन्तर है। किसी ने कहा है—'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा' मैं कहता हूँ—**'भाव प्रधान विश्व रचि राखा'**। इस सम्बन्ध में डॉ. आर. के. शर्मा एक छोटा सा उदाहरण देते हैं—डॉक्टर के पास बहुत सी महिलायें अपने इलाज के लिए आती हैं। वह उन्हें टेबल पर लिटाकर गर्भाशय आदि की परीक्षा करता है, किसी के स्तनों की गाँठों का इलाज करता है, इस सब में वह विभिन्न महिलाओं को हाथ लगाता है। जो भावना के अन्तर को नहीं समझते वे कहते हैं 'डॉक्टर साहब की तो चाँदी है।' यदि कोई कहे कि डॉक्टर साहब का तो मन ही नहीं चलता, सज्जन पुरुष हैं, तो दूसरा कहता है—'अरे भई ! हाथ लगा-लगाकर ही मन भर जाता है, उनका मन क्यों चलेगा ? परन्तु जो चिकित्सा क्षेत्र के व्यक्ति हैं, अथवा जो महिलायें पुरुष डॉक्टरों से इलाज करा चुकी हैं, वे डॉक्टर के हाथ लगाने में और एक अन्य व्यक्ति के हाथ लगाने में जो अन्तर है उसे समझ सकती हैं। डॉक्टर के लिए चिकित्सा हेतु किसी के मुँह में अँगुली डालना और योनि की अंगुली से जाँच करना एक ही समान होता है। जबकि सामान्य व्यक्ति के लिए दोनों कर्म अलग-अलग अर्थ रखते हैं, अन्तर है केवल 'भावना' का। बुलन्द-नीरज कहते हैं—एक सिपाही सीमा पर दुश्मन को गोली मारता है, एक अन्य व्यक्ति पड़ौसी व्यक्ति को गोली मारता है, एक को आप पुरस्कार देते हैं, दूसरे को दण्ड, जबकि दोनों व्यक्तियों ने कार्य एक ही किया। अन्तर यह रहा ? कार्य करते समय की 'भावना' का।

'गायत्री बाला' कहती हैं—"प्रकृति के सत्य को यदि हम पकड़ना चाहते हैं तो 'भावना परिवर्तन' हमें सीखना होगा।" वैसे यह कोई बड़ी बात नहीं। यह मनुष्य बुद्धि का एक विशेष गुण है जिसके कारण मनुष्य योनि अन्य योनियों से श्रेष्ठ मानी जाती है। अपने समाज में नाते-रिश्ते 'भावना परिवर्तन' का श्रेष्ठ उदाहरण हैं। सब स्त्रियाँ शारीरिक दृष्टि से एक जैसी हैं, परन्तु मानसिक दृष्टि से एक बहन है, दूसरी साली है, तीसरी मौसी है, चौथी बुआ है, पाँचवीं भानजी है, छटवीं बेटी है, एक माँ है तो दूसरी पत्नी है, आदि आदि। इसमें संशय नहीं कि अपने समाज में ऐसे व्यक्ति हैं जो रिश्ते के आधार पर भावना परिवर्तन नहीं करते। उनकी दृष्टि में नारी मात्र नारी होती है, रिश्ता कुछ भी हो। पशु के समक्ष भी नर और मादा नामक दो ही रिश्ते होते हैं, क्योंकि वह भावना परिवर्तन नहीं कर सकता।

'रिलीजस रिसर्च ऐकैडेमी' की सन् १९६६ की त्रैमासिक रिपोर्ट में एक प्रश्न **'नीलम कुलश्रेष्ठ'** की ओर से प्रकाशित हुआ था— वे सभी कार्य जो एक मनुष्य करता है पशु भी कर सकता है। सोचने, समझने तथा अन्य कलाबाजी आदि अद्‌भुत कर्म करने का ज्ञान सिखाने पर सभी पशुओं में आ जाता है, और बिना सिखाये मनुष्य भी नहीं जान सकता। सभी पशु अपनी रुचि अनुसार खाते हैं, और प्राप्य सुविधाओं के आधार पर खाने के लिए कमाते हैं। सभी पशुओं में काम, क्रोध मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावनाएँ भी ठीक उसी रूप में दृष्टिगोचर होती हैं जैसी कि मनुष्य में; फिर भी मनुष्य योनि को पशु योनि से श्रेष्ठ माना गया है, आखिर क्यूँ ? इस प्रश्न का उत्तर 'आर. आर. ए.' की ओर से दिया

गया था—मनुष्य योनि की श्रेष्ठता का कारण केवल मनुष्य बुद्धि का 'भावना-परिवर्तन' वाला गुण है। पशु बुद्धि में मनुष्य बुद्धि का प्रत्येक ज्ञान सिखाने पर आ सकता है परन्तु आत्मतत्त्व का ज्ञान पशु बुद्धि की सीमा से परे की वस्तु होता है, क्योंकि पशु मानसिक रूप से भावना-परिवर्तन नहीं कर पाता। यदि आप किसी कुत्ते को मूर्ति के सम्मुख प्रार्थना करना सिखा दें तो वह हाथ जोड़कर हाऊ-हाऊ अवश्य करेगा (जैसे महान गुरु संत ज्ञानेश्वर ने भैंसे के मुँह से गायत्री मन्त्र कहलवाया था) परन्तु प्रार्थना की भावना मन में न ला सकेगा। भावना रहित उपासना तो व्यर्थ है ही क्योंकि मुक्ति ज्ञान का सम्बन्ध आत्मिक भावनाओं से होता है, शारीरिक कर्मों से नहीं।

ठीक इसी प्रकार का भावनात्मक अन्तर प्रकृति और पुरुष के बीच है। **'संध्याप्रदीप'** के अनुसार—जिसने भावनात्मक परिवर्तन कर लिया वह पुरुष 'नारी' को देवी कहता है। प्रकृति को आनन्दमयी कहता है, और जो भावना परिवर्तन में असफल रहता है वह नारी को 'नर्क का द्वार' और प्रकृति को 'माया महा ठगिनी' कहता है। जिसने अपने रोग और उपचार को समझ कर भावना परिवर्तन कर लिया वह दूसरों को चीनी बाँटते हुए भी स्वयं उससे बचा रहता है और चीनी के गुणों को दुनियाँ को बताता है। जो भावना परिवर्तन नहीं कर पाता वह, यह जानते हुए कि चीनी खाना उसके लिए अनुचित है, स्वयं चीनी खा जाता है, और फिर हानि उठाने के कारण पूरी दुनियाँ में चीनी के अवगुणों की ही चर्चा करता फिरता है। ऐसे ही दो प्रकार के धार्मिक व्यक्ति आज दुनियाँ में आपको मिलेंगे। **एक, संसार को असार बताकर उससे दूर भागने वाले; और दूसरे, संसार को आनन्द मनाने का एक मात्र स्थल मानने वाले।** आनन्द मानने वालों के भी दो भेद हैं—एक तो वे जो दूसरों को भी चीनी खिलाते हैं और स्वस्थ होने पर स्वयं भी चीनी खाते हैं। दूसरे वे, जो दूसरों को तो चीनी खिलाते ही हैं परन्तु अस्वस्थ होते हुए भी स्वयं चीनी इसलिए खाते हैं कि अन्य उन्हें लोग स्वस्थ समझें। यह स्थिति अत्यन्त विषम है। ऐसी ही कलुषित मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों के कारण तन्त्र मार्ग बदनाम हुआ था। बौद्धों के 'चैत्यों' को 'विहार' बन जाना पड़ा था।

संसार को चाहे असार, स्वप्निल व झूठा कहें, चाहे सार भूत, चिन्मय आनन्द देने वाली ईश्वर कृति कहें, या 'सत्यमेकमेवो द्वितीयोनाऽस्ति' कहें, यह सब हमारे अपने ज्ञान की पहुँच है। संसार तो जो है, वह है। **'दर्पण'** कवि ने कहा है—

संसार दिया है नाम इसे विद्वानों ने, ऋषि मुनियों ने।
देखा विधान इसका रहस्यमय विद्वानों, ऋषिमुनियों ने॥
सम-सार, बराबर सार यहाँ, जितना अन्दर उतना बाहर।
प्रेमी को प्रेम धनी को धन, पर भय-पीड़ित को घबराहट॥
जिसके अन्तर में पीड़ा है, उसको सुख 'दर्पण' नहीं मिलता।
जो अन्तर में खुश रहता है उसको दुःख यहाँ नहीं मिलता॥
महत्वाकांक्षा लाती अशांति ऐसा जीवन इक तड़पन है।
जन-जन का प्रेमी जीवन जो उसमें यौवन की धड़कन है॥
आवश्यकता भर आकांक्षा कर, असुरक्षा को जीवन समझो।
सम्पूर्ण सृष्टि है खुला ग्रन्थ, पढ़ लो यतीन्द्र इसको समझो॥

'जगदीश राज' के अनुसार संसार के सत्य को जो समझ लेता है, वह न भय पीड़ित होता है, न महत्वाकांक्षाएँ करता है। वह तो निर्ग्रन्थ होकर विदेह रूप में अपने जीवन में विभिन्न लीलाओं के रूप में कर्त्तव्य कर्मों को करता हुआ संसार-सत्य का आनन्द भोग करता है।" ऐसे व्यक्ति को जो कुछ आप समझते हैं, वह आपकी अपनी बुद्धि की पहुँच है, आपकी अपनी छवि है, वह तो 'दर्पण' तुल्य कमल योनि है।

'सहजानन्द रूपोऽस्मि न मे माया न मे मल'

सत्य-क्षण—आपके पास 'सत्य' को पकड़ने का जो क्षण है, वह न तो एक क्षण पहले था न एक क्षण के बाद होगा, वह क्षण अभी है, इसी समय, जब न भूत काल है न भविष्यत् काल, केवल वर्तमान है। इस वर्तमान क्षण को पकड़िये। इस वर्तमान क्षण का ही आनन्द लीजिए। इसी एक क्षण के लिए, अभी, तुरन्त, तनाव मुक्त होकर देखिये। एक क्षण के लिए अभी अपने मस्तिष्क को तनाव मुक्त कर डालिये। तनाव मुक्ति से यह तात्पर्य नहीं है कि करते हुए कार्य को छोड़कर बैठ जाइये; कार्य जारी रखिये, केवल तनाव छोड़ दीजिए। यदि आप वह कर सकें जो मैं कह रहा हूँ तो **आप यह देखकर हैरान रह जायेंगे कि तनाव से आपके कार्य का कोई सम्बन्ध नहीं है।** 'तनाव' और कार्य' दो अलग बातें हैं। श्रीमती गंगादेवी कहती हैं—'संसार सत्य का अनुभव करने के लिए यह आवश्यक है कि आप सारे मानसिक तनाव छोड़कर वर्तमान का आनन्द लें।' उस समय जो कार्य कर रहे हैं उसी का आनन्द लें। उस समय न भूत काल में किये गये कार्यों का पश्चाताप करें, न भविष्य में होने वाले कार्यों की चिन्ता। दिन में कई बार ऐसा अभ्यास प्रारम्भ में करें धीरे-धीरे आपको तनाव रहित रहते हुए प्रत्येक कार्य करने का अभ्यास हो जायगा।

इसे और अधिक सरल उदाहरण से समझें—यदि आप रास्ते में जा रहे हैं, तो सड़क पर जाते हुए लोगों को नहीं देखें अपितु स्वयं को देखें कि आप सड़क पर कैसी मस्ती में चल रहे हैं? यदि आप लिख रहे हैं तो सारे तनाव छोड़कर अपने अक्षरों की बनावट को देखें। तात्पर्य यह है कि उस क्षण आपका शरीर क्या कर रहा है, कैसे कर रहा है, इस बात पर ध्यान दें। केवल वर्तमान क्षण को ही देखें। यदि आप चले रहे हैं तो पिछले क्षण जो हो चुका वह आप छोड़ दें अगले क्षण आपका एक पैर आगे आयेगा। वह आये, तब उसे देखना। अभी इस क्षण जो पैर जमा हुआ है और आपके पूरे शरीर का भार सँभाले है उसे देखें। चलते समय सामान्यत: हमें पिछला पैर ध्यान रहता है जो अपना काम पूरा कर चुका है अथवा अगला पैर ध्यान रहता है जो बाद में काम करेगा। परन्तु इनके अन्तराल का, वर्तमान में जमे हुए पैर का ध्यान नहीं रहता जो पिछले और अगले दोनों पैरों के जमने का आधार है। हमारे चलने की प्रक्रिया में 'सत्य' वही पैर है जो जमा हुआ है और पूरे शरीर का भार लिए है। जीवन के हर क्षेत्र में इस सूत्र पर ध्यान देना है। **नींव को हम लोग हमेशा भूल जाते हैं, कँगूरों पर ध्यान देते हैं। ऊपर के कँगूरों की सत्यता उनकी नींव में निहित है।** 'संसार-सत्य' खोजने का सूत्र बताते हुए 'ताई रामलली' कहती थीं— भूत चला गया, भविष्य का भरोसा नहीं, इन दोनों को छोड़ दें और वर्तमान पर ध्यान दें, जो हाथ में है। **इसी वर्तमान में जीवन का सत्य है।** इसकी खोज अभी इसी क्षण प्रारम्भ करें।

■■

६

नियम

यम के पश्चात् अष्टांग योग में नियमों का क्रम आता है। नियम पाँच हैं—शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान। योग में जीवन के सैद्धान्तिक और क्रियात्मक दोनों ही पक्षों की महत्ता विद्यमान है। इन पाँचों में शोधन, नेती, धोती, पवित्रीकरण, गृह शुद्धि, आश्रित शुद्धि, अतिथि शुद्धि, तनाव रहित संतोषी जीवन के लिए समझौतावाद, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, पूजा, प्रार्थना, हवन, स्वयं का स्वयं अध्ययन तथा ईश्वरार्पण भाव आदि विषय आते हैं। आगे हम एक-एक करके सभी नियमों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

शौच

शौच का अर्थ है सफाई (Cleaning), धुलाई (Washing), पवित्रीकरण (Purification), आदि द्वारा शरीर का भौतिक शोधन करना। योगी विभिन्न प्रकार के नेती-धोती कर्म करके शरीर की अंत: धोती क्रिया (Internal Cleaning) सम्पादित करते हैं। यथा—एक विशेष प्रकार के प्राणायाम द्वारा वायु शोधन (Wind Purification) करना , कुंजर आदि क्रियाओं द्वारा जल शोधन (Water Purification) करना, अग्निसार जैसी क्रियाओं द्वारा जठर शोधन (Fire Purification) करना, हृद धोती द्वारा गला, जीभ श्वास नली, गल नली आदि का शोधन करना, नेती द्वारा नाक व तालू आदि का शोधन करना, दंत धोती (Cleaning of teeth) द्वारा दाँत और मुँह का शोधन करना, मूल शोधन द्वारा बड़ी आँत की सफाई करना, शंख प्रक्षालन क्रिया द्वारा मुँह से गुदा तक सम्पूर्ण पाचन प्रणाली का शोधन (Complete washing) करना, आदि।

बाह्य धोती (External Cleaning) **के लिए**—शरीर शुद्धि (मल-मूत्र विसर्जन, तेल स्नान, उबटन, पंचामृत स्नान, धूप, स्नान, अंग-राग, स्नान आदि द्वारा) घर-द्वार शुद्धि (लिपाई-पुताई, झाड़ू, धुलाई, पुछाई आदि द्वारा), वस्त्र शुद्धि (वस्त्रों की आवश्यकतानुसार धुलाई आदि द्वारा), आश्रित शुद्धि (घर में साथ रहने वाले अन्य व्यक्तियों, पशुओं आदि की समुचित सफाई द्वारा) अतिथि शुद्धि (बाहर से आने वाले मेहमानों की शुद्धि व सफाई

पाद-प्रक्षालन द्वारा, तथा संक्रमण शुद्धि घी के दीपक को अतिथि के चारों ओर घुमाकर, आरती उतार कर), भोजन शुद्धि (रसोई तैयार करते समय संक्रमण रहित भोजन तैयार करने के लिए भोजन सामग्री की शुद्धि) आदि विभिन्न प्रकार के शुद्धियों का ध्यान रखा जाता है।

आप में से बहुत से इन शुद्धियों का पालन करते होंगे। जो नहीं करते उन्हें अपनी देशकाल परिस्थिति अनुसार अभ्यास कर लेने में लाभ है। यूँ आप श्मशान घाट पर बैठकर भी भोजन कर सकते हैं, कोई हाथ नहीं रोक लेगा, परन्तु एक बार फूलों भरे पार्क (बाग) में भोजन करके देखिये। तब श्मशान और बाग में भोजन करने में जो अन्तर है स्पष्ट हो जायगा। बहुत से तान्त्रिक व्यक्ति श्मशान को ही मन्दिर मानते हैं। आप कहेंगे—उनके लिए 'शुद्धि' कहाँ गई? यदि आप चील, कौए, गीध आदि देखना चाहते हैं तो आपको किसी कट्टी घर (Slaughtering house) की ओर जाना पड़ेगा। शेर को खोजने घनघोर वन में ही जाना पड़ेगा और जब तक शेर हाथ नहीं आता वहाँ खाना-पीना भी करना पड़ेगा। अत: तान्त्रिकों, कापालिकों आदि की अपनी आवश्यकता है जो उन्हें श्मशान में रहने के लिए बाध्य करती है। सन् १९७१ के युद्ध काल में मैं पश्चिमी मोर्चे पर था। ऐसा कई बार हुआ कि बमबारी के तुरन्त बाद अपने मरे हुए साथियों की लाशों के बीच अपनी जेब में से डबलरोटी के टुकड़े निकालकर हम लोगों ने खाये। न वहाँ सूतक लगे न कोई संक्रमण हुआ। इसीलिए मैंने ऊपर शुद्धि-पालन में देशकाल परिस्थिति वाली बात कही है। हाँ! इस विषय की एक विशेष बात है—भले-बुरे के अधिक सोच-विचार और भेद-भाव (Discrimination) से बचना। बिना इसके जीवन असहज हो जाता है, बनावटी हो जाता है।

हमें सहज सरल-प्राकृतिक जीवन की ओर जाना है। भले-बुरे का अधिक विचार करने वाले व्यक्ति भलाई-बुराई में इतने फँस जाते हैं कि वह उनके लिए तो उनके लिए, दूसरों के लिए भी तनाव का कारण बन जाती है। फिर भी परिणाम यह निकलता है कि उसकी बुराई बाहर से रुक जाती है और अन्दर इकट्ठी होती रहती है। आप लोगों ने सम्भव है, ध्यान दिया हो, कि जो मनुष्य जितना अधिक 'दिखावटी-धार्मिक' होगा वह अन्दर से उतना ही अधार्मिक और अमानवीय होगा। यह हो सकता है कि जो देवता तुल्य सत्पुरुष हो वह कभी मन्दिर न जाता हो, कभी ईश्वर का नाम न लेता हो। जो स्वयं ईश्वर बनने के प्रयत्न में है, जो अन्दर से धार्मिक है, वह बनावटी धार्मिक क्यों कर बने? कहने का तात्पर्य यह है कि अच्छा होना अलग बात है और अच्छे काम करना (दिखाना) अलग बात है। **जो अच्छे काम करते हैं, वे स्वयं भी अच्छे हों, यह आवश्यक नहीं है।** आज के युग में रामनामी दुपट्टा डाले बहुत से डाकू घूमते हैं, क्योंकि अच्छे को ओढ़ लेना बहुत आसान है परन्तु अच्छा बनना तपश्चर्या (Arduas) है। **कुण्डलिनी के साधक को 'अच्छा बनना पड़ता है, उसका काम 'अच्छा ओढ़ लेने' से नहीं चलता।**

संतोष

नियम के अंतर्गत दूसरा विषय है 'संतोष'। कहावत है कि 'संतोषी सदा सुखी'। सुखी रहने के लिये, तनाव रहित जीवन-यापन करने के लिए, 'संतोष' एक अच्छा शास्त्र है। '**नवीनालोक**' के अनुसार, 'संकट तो प्रत्येक व्यक्ति पर परिस्थितियों के आधार पर आते ही रहते हैं। उनका धैर्य और प्रसन्ता से सामना करना व्यक्ति मात्र का कर्त्तव्य है।

दिल दे तो इस मिजाज का परवरदिगार दे।
जो रंज की घड़ियाँ भी खुशी में गुजार दे॥

संकट काल में संतोष ही व्यक्ति के जीवन को बचाता है। आप जानते हैं तनाव रहित होकर ही 'प्रसन्न चित्त' हो सकते हैं। वेद में भी ऐसी ही प्रार्थना की गई है—

विश्वदानिं सुमन सा स्याम

(प्रभु ! ऐसी कृपा करो कि मैं सदैव प्रसन्नचित रहूँ।)

भगवान कृष्ण ने कहा है—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योप जायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशुं बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।

प्रसन्नता व संतोष प्राप्त करने के कुछ सूत्र अभी तक चलते आए हैं, जैसी हरि इच्छा, अथवा ईश्वर के आगे किसी का वश नहीं या इसमें भी कोई अच्छाई होगी जो अमुक कष्ट हमें मिला, आदि-आदि। अब ऐसे सूत्रों में अधिक दम नहीं रहा क्योंकि मनुष्य बुद्धि पहले से कहीं अधिक विश्लेषणात्मक हो गई है।

संतोष चाहने वाले व्यक्ति को एक नया सूत्र ध्यान रखना होगा—समझौतावाद। जब भी आप 'संतोष' की स्थिति में जाना चाहते हैं तो परिस्थिति से समझौता कर लीजिए। परन्तु यह इतना सरल नहीं है, जितनी सरलता से हमने लिख दिया है, और आपने पढ़ लिया है। उसके लिए भी अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। यह अभ्यास करने का समय आपको प्रतिदिन मिलता रहता है—कभी बच्चे शोर मचाते हैं, किसी का लाउडस्पीकर इतने जोर से चीख रहा होता है कि आपको गुस्सा आने लगता है, कभी किसी की समय से कहीं अधिक प्रतीक्षा आपको करनी पड़ जाती है, कभी कोई व्यक्ति (या घर के लोग ही) आवश्यकता से अधिक जली-कटी सुनाने लगते हैं। कभी आपका कोई आत्मीय आपसे कतराने लगता है, अथवा आपको गलत समझने लगता है। ऐसी ही बहुत-सी समस्याएँ हैं जिन्हें आपके 'अनुकूल' होने में समय लगता है। **उस 'अनुकूल' होने तक अपने मस्तिष्क का संतुलन बनाये रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आप 'समझौतावाद' अपनायें।**

सभी अप्रिय और प्रतिकूल स्थितियाँ 'समझौतावाद' का अभ्यास करने का उपयुक्त समय होती हैं। उस समय जो हो रहा है उसे स्वीकार कर लो। बच्चे शोर मचा रहे हैं—मचाने दो और उनके शोर करने का आनन्द लेने लगे, फिर देखो वह हारते हैं या आप। यदि कोई आत्मीय (प्रियजन) रूठ गया है, मनाने से भी नहीं मानता, तो उसे चाहते

हुए भी उससे आप अलग हो जाओ, और उसके रूठ जाने का आनन्द लो। उस रूठ जाने ने में वह क्या-क्या करता है, देखते जाओ (परन्तु अपना प्यार कम मत करो, यह आपका 'मौन-प्रेम ही उसे आपसे मिला कर रहेगा) ध्यान रखना, उससे मिलने की प्रतीक्षा मत करना (मिलने की प्रतीक्षा में रहे तो वियोग में मारे जाओगे) केवल उसके रूठने का आनन्द लेते रहो। आपके पड़ौसी का लाउडस्पीकर चीख रहा है, पढ़ने नहीं दे रहा, सोने नहीं दे रहा, उसका भी आनन्द लो। लाउडस्पीकर का नहीं, उस परिस्थिति का जिसमें आप फड़फड़ा रहे हैं और इस प्रकार आत्म केन्द्रित होने का प्रयत्न करो। यदि किसी की आपको प्रतीक्षा करनी पड़े तो आप अपनी दशा देखिये, बार-बार घड़ी देखेंगे, बार-बार सड़क देखेंगे, बेचैनी अनुभव करेंगे, बार-बार बुदबुदायेंगे, आप सोचिये यदि आपको दूर से कोई देख रहा हो तो वह आपकी बेचैनी का कितना आनन्द लेगा ? क्यों न आप स्वयं ही अपनी बेचैनी का आनन्द लेने लगिये ? आप स्वयं अपने दृष्टा बन जाइये। आप यह देखकर दंग रह जायेंगे कि आपकी बेचैनी आपके 'दृष्टा' बनते ही हवा हो जायेगी।

कुछ लोग स्वयं दोषी होने पर दूसरों के दोषों को देखकर संतोष कर लेते हैं कि एक मैं ही ऐसा नहीं हूँ और भी बहुत हैं। परिछिद्रान्वेषी होना अच्छी बात है परन्तु इस भाव में नहीं, इससे तो सुधार के अवसर ही समाप्त हो जायेंगे। दूसरों के दोष देखकर यह ध्यान दें कि वे दोष आपके अन्दर न पनपने पायें, तब ही परछिद्रान्वेषण की सार्थकता है।

तपस्या

नियम के अन्तर्गत तीसरा विषय है 'तपस्या' का। तपस्या स्वयं में एक विशद विषय है। मन्त्र, यन्त्र, उपवास, जागरण, कीर्तन, पूजन, हवन आदि उसके विशेष अंग हैं।

मन्त्र—'श्रीचंधर्प्रसाद' में **'रजनी'** ने कहा है "मन्त्र एक ऐसा शब्द-संयोजन अथवा अक्षर होता है हो वातावरण में एक विशेष प्रकार की तरंगें उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसी सन्दर्भ में **'ममता'** का कहना है कि 'शब्द-संयोजन परिवर्तित कर देने पर तरंगों की प्रक्रिया (Mode of frequency) में परिवर्तन हो जाता है, जिससे उनकी आवृत्ति (Frequency) में अन्तर आ जाता है।' **'विमलमन्जू'** का कहना है कि 'मन्त्रों की तरंगें वाहक तरंगों (Carrier waves) की तरह हमारी भावना (G. Rays) को मनचाही दूरी तक पहुँचाने का कार्य करती हैं।'

हम मुँह से जो शब्द बोलते हैं वह वातावरण में कुछ विशेष स्पन्दन उत्पन्न करता है। यह स्पन्दन धीरे-धीरे आगे बढ़ता है जिसे हम तरंग कहते हैं। यदि हम एक अक्षर बार-बार बोलें तो एक विशेष प्रकार की तरंगें वायुमण्डल में प्रसारित हो जाती हैं। जब हम कई अक्षर मिलाकर बोलते हैं। तो दूसरे प्रकार की तरंगें प्रसारित होती हैं। इन विभिन्न प्रकारों को आवृत्ति (Frequency) कहते हैं। यदि बोलने की लय में अन्तर कर दिया जाय तो तरंग-आवृत्ति वही रहेगी परन्तु तरंग-प्रक्रिया (Mode of frequency) में अन्तर आ जायेगा। मुँह से बोले हुए शब्द 'अक्षर' कहलाते हैं। अक्षर का अर्थ है—'अ' + 'क्षर', जो क्षय न हो, समाप्त न हो। **'रामप्रताप सिंह'** कहते हैं 'व्यक्ति के मुँह से बोला हुआ अक्षर कभी समाप्त नहीं होता अपितु तरंग बनकर इस अन्तहीन आकाश में आगे बढ़ता जाता है।'

किसी शान्त तालाब में आप एक कंकड़ डालें तो चारों ओर तरंगें फैलती हैं और किनारे पर आकर समाप्त होती हैं। यदि आप ध्यान से देखें तो तरंग वहाँ भी समाप्त नहीं होती, अपितु किनारे से टकराकर पुनः वापस होती है। हाँ, यह अवश्य होता है कि जितनी दूरी वह तय करती है उतनी ही कमजोर होती जाती है। यदि आप यह चाहें कि जितनी शक्तिमय तरंग उठी थी उतनी ही शक्तिपूर्ण तरंग किनारे तक टकराये तो आपको बार-बार कंकड़ डालने पड़ेंगे, बार-बार स्पन्दन पैदा करने पड़ेंगे। ऐसा करने से, पहले स्पंदन को बल मिल जाता है और शक्तिपूर्ण तरंगें किनारे तक पहुँच जाती हैं। ऐसा ही नियम हमारे मन्त्राक्षरों में लागू होता है।

मन्त्रों का अर्थ, उनका भाव और क्रियात्मक प्रभाव यह तीनों भिन्न-भिन्न बातें हैं। यह आवश्यक नहीं कि कोई मन्त्र सुन्दर और सुरुचिपूर्ण अर्थ रखता हो तो उसका क्रियात्मक प्रभाव भी सुन्दर और शिव हो। कोई मन्त्र ऐसा हो जिसका कोई अर्थ न बनता हो तो उसका क्रियात्मक प्रभाव नहीं होगा। यह सब विवरण मन्त्र-तरंग की वैज्ञानिक प्रसारण प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं। 'तरंग प्रसारण प्रक्रिया' (Wave-propagation) के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझने के लिए कुछ तान्त्रिक सिद्धान्तों का जानना आवश्यक है।

पृथ्वी स्वयं एक चुम्बक है और अपना चुम्बकीय क्षेत्र (Magnetic field) रखती है। उस चुम्बकीय गुण के अन्तर्गत ही गुरुत्वाकर्षण आता है। कोई भी चुम्बक यदि गति करता है तो उसके चारों ओर विद्युत क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। पृथ्वी की गति दुहरी होती है। एक तो अपने ध्रुव पर घूमना, दूसरे सूर्य के चारों ओर घूमना अतः उससे विद्युत भी दो प्रकार की उत्पन्न होती है। पृथ्वी पर पाई जाने वाली प्रत्येक जड़ और चेतन वस्तु पृथ्वी की चुम्बकीय और विद्युतीय दोनों शक्तियों से प्रभावित रहती है। जड़ वस्तु में केवल वह विद्युत रहती है जो पृथ्वी से प्रभावित होने के कारण उसे प्राप्त होती है परन्तु चेतन में पृथ्वी क कारण प्रभावित विद्युत (Induce Current) के अतिरिक्त स्वयं की विद्युत तरंग (Self Current) भी रहती है। यह **आत्म-तरंग सामान्यतः पृथ्वी के संसर्ग में रहने के कारण उसकी तरंगों के साथ मिलकर निष्प्रभावी हो जाती है और 'चेतन' का महत्त्व विद्युतीय एवं चुम्बकीय दृष्टि से 'जड़' के समान हो जाता है।**

यदि किसी प्रक्रिया द्वारा 'जड़' को पृथ्वी से अलग रखा जा सके तो वह पृथ्वी से विपरीत गुण की तरंगों से प्रभावी (Induce) हो जाता है। पृथ्वी के ऊपर उड़ने वाले बादलों में इसी प्रक्रिया से विद्युत बनती (Induce) होती है, और वे तरंगयुक्त (Charged) होकर इधर-उधर उड़ते फिरते हैं। यदि हम चाहें कि जो विद्युत बादलों में है वह हमारी अट्टालिकाओं को नष्ट न करे तो हम सूची-प्रक्रिया (Action of Point) के आधार पर पृथ्वी से अट्टालिका तक, और थोड़ा सा उससे ऊपर तक एक उत्तम विद्युत सुचालक धातु की छड़ लगा देते हैं। इसके कारण पृथ्वी की विद्युत इस छड़ के अन्तिम सिरे तक आकाश में रहती है और इस सिरे के पास से गुजरने वाले प्रत्येक वायु के अणु को यह अपने से विपरीत धर्मी विद्युत-तरंगयुक्त बना देती है। इसलिए कोई भी विद्युन्मय बादल इसके पास टिकता नहीं है। जब प्रभावी बादल नहीं टिकता तो बिजली गिरने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह प्रत्येक नुकीली वस्तु का गुण है कि विद्युत-प्रभाव नुकीले भाग पर ही अधिक होता है।

बादल में दो प्रकार से विद्युत उत्पन्न होती है। एक पृथ्वी से प्रभावित (Induce) होकर और दूसरी उनके आपस के घर्षण सें, जिसे घर्षण विद्युत कहा जाता है। प्रभावी विद्युत (Induced electric) प्रत्येक जड़-चेतन पर प्रभाव डालती है जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। यदि किसी चुम्बक के चुम्बकीय क्षेत्र से बाहर कोई कुतुबनुमा रखी जाय तो उसकी सुई पर चुम्बक का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पृथ्वी के इसी गुण की गणना वैज्ञानिकों को स्पेस-क्राफ्ट भेजने में करनी पड़ती है। आप तो जानते हैं विद्युत का कोई तार किसी धातु से छू रहा हो तो पूरी धातु विद्युन्मय हो जाती है। यदि यह धातु न होकर ऐसी वायु (Air Molecules) हो जो विद्युन्मय कर दी गई हो तो इसके वैद्युतिक गुण वही हो जायेंगे जो उस धातु के थे। आकाश में ऐसी विद्युत तरंगें इसी आधार पर भेजी जाती हैं। इन तरंगों में दोनों प्रकार की बल रेखायें होती हैं—इलेक्ट्रो-स्टेटिक तथा इलेक्ट्रो-मैगनेटिक, और यह एक दूसरे से ९० अंश के कोण पर रहती हुई आकाश में आगे बढ़ती हैं। आगे चित्र में क्रौस लाइनों से दिखाया गया क्षेत्र एक 'तरंग-तल' (Wave front) है। इस तरंग-तल की गति यदि यह आकाश मार्ग से जाय, तो लगभग ३,००,००० किलोमीटर प्रति सेकिण्ड होती है। यदि आकाश मार्ग न होकर मार्ग में जल, मिट्टी आदि दूसरी वस्तुएँ हों तो गति में अन्तर आ जाता है। यदि मार्ग में केवल हवा हो तो तंरग-तल की गति में विशेष अन्तर नहीं आता। जल (Water) में भी यह गति आकाशीय गति का नौवां भाग (9th Part) रह जाती है। यदि यह तरंग किसी धातु मार्ग से जाय तो उस धातु में इन तरंगों के समान विरोधी प्रभाव की तरंगें उत्पन्न (Induce) हो जाती हैं, जिससे यह तरंगें विनष्ट हो जाती हैं। यह बात दूसरी है कि आत्मिक तरंगों (Spiritual waves) के विषय में विरोधी प्रभाव वाली बात लागू नहीं होती। दो तरंग-तलों के बीच की दूरी जहाँ समान 'फेस' हो, 'वेव लेंग्थ' कहलाती है। सामान्यत: वेव लेंग्थ (तरंग की लम्बाई) जानने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग में लाया जाता है—

इलैक्ट्रोस्टेटिक बल रेखायें
मैगनेटिक बल रेखायें
तरंग की दिशा
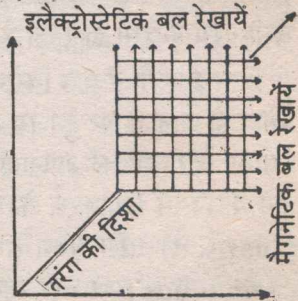
चित्र संख्या-७

तरंग दैर्ध्य = तरंग की गति/तरंग आवृत्ति

Wave length = Velocity of wave/Frequency of current

एकान्तर तरंग (Alternating current) का ग्राफ रूप में सामान्य चित्र इस प्रकार बनता है—
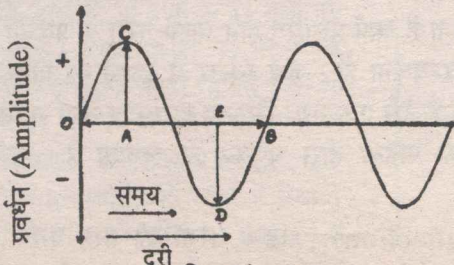
चित्र संख्या-८

O से B तक की दूरी को तरंगदैर्ध्य (Wave length) कहते हैं। AC तथा DE लम्ब तरंग के धनात्मक तथा ऋणात्मक प्रवर्धन (Amplitude) कहलाते हैं।

तरंग शक्ति (Field Intensity)—**प्रसारक** (Transmitter) से तरंग ज्यों-ज्यों दूर हो जायगी तरंग की शक्ति (Intensity) कम होती जाती है। आध्यात्म में तरंग प्रसारण (Polarisation of wave) की गणना सदैव पृथ्वी तल के अनुपात में ध्यान तरंगों (Concentration waves) की दिशा के आधार पर की जाती है। तरंग प्रसारण तल (Polarisation Planes) भी कई प्रकार के होते हैं जैसे क्षितिजीय (Horizontal), वृतीय (Circular), दीर्घवृत्तीय (Elliptical) आदि। वृत्तीय प्रसारण में रेडियो तरंग के आधार पर तरंग दो गुनी प्रवर्धित होकर प्रसारित होती है और दीर्घवृत्तीय (Elliptical) प्रसारण में तरंग आधी रह जाती है। क्षितिजीय प्रसारण में जैसी तरंग है वैसी ही रहती है।
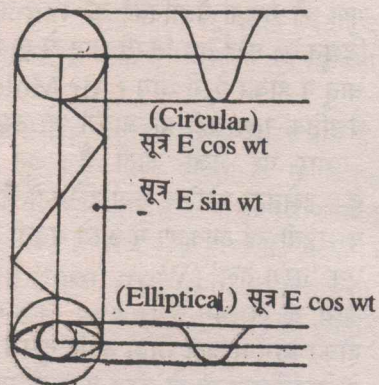
चित्र संख्या-९

मन्त्र तरंगों में कुछ विरोधी ग्रहों के बीच में आने से दीर्घवृत्तीय (Elliptical) जैसा प्रभाव हो जाता है परन्तु जिस क्षेत्र में दो ग्रहों का ग्रहण प्रभावित हो वहाँ मंत्र तरंगें वृत्तीय प्रसारण के नियम को अपनाती हैं और द्विगुणित हो जाती हैं। प्रवर्धन के कम या अधिक होने के नियम क्षयीकरण के अन्तर्गत आते हैं। क्षितिजीय प्रसारित (Horizontally polarised) तरंग पृथ्वी (क्षितिज) के समानान्तर ही चलती है और उसका प्रवर्धन (Amplitude) भी वही रहता है जो प्रसारित किया गया है। **तांन्त्रिकों द्वारा संसारी कर्मकांड में इसी प्रकार की तरंगें प्रयुक्त की जाती हैं।** यह तरंग पृथ्वी तल तथा धातु आदि के पार नहीं जाती। वृत्तीय तरंग पृथ्वी, धातु, अथवा ग्रह आदि से बिना प्रभावित हुए पार जाती है। इनका प्रयोग योगी आध्यात्मिक साधना में करते हैं जो कि पृथ्वी या पर्वत के अन्दर गुफा में बैठ कर भी की जा सकती है। दीर्घवृत्तीय (Elliptical) तरंग का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ प्रसारित होने वाली तरंग के प्रवर्धन (Amplitude) से कम प्रवर्धन की आवश्यकता हो। जैसे स्कूटर में इन्जन का पहिया एक मिनट में तीस हजार चक्कर लगाता है उसे एक गेयर सिस्टम द्वारा मात्र तीस चक्कर पर ला दिया जाता है जिससे स्कूटर का पहिया तीस चक्कर ही लगाता है। यही विधि 'क्षयीकरण' कहलाती है।

परावर्तन (Reflection)—रेडियो तरंगों की तरह परावर्तन का नियम मन्त्रित तरंगों में भी लागू होता है। मन्त्रित तरंगों का अर्थ मन्त्र की तरंगें नहीं हैं। अपितु वे

आत्मिक तरंगें हैं जो मन्त्र-तरंगों के लिए वाहक (Carrier) का काम करती हैं। रेडियो के विषय में शॉर्ट वेव तथा लोंग वेव (Short wave and Long wave) की बात आती है। शॉर्ट वेव में हाई फ्रीक्वेन्सी (H. F.) वेव तथा वैरी हाई फ्रीक्वेन्सी (V. H. F.), और अल्ट्रा हाई फ्रीक्वैन्सी (U. H. F.) आदि आती हैं। इनसे भी अधिक ऊँची फ्रीक्वैंसी में सेन्टीमीटर टैक्निक तथा माइक्रोवेव्स आती हैं। ज्यों-ज्यों फ्रीक्वैन्सी बढ़ती है वेव (तरंग) की लम्बाई घटती जाती है। यदि कोई तरंग एक सेन्टीमीटर के छेद में से
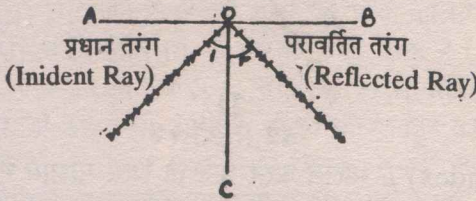
चित्र संख्या-१०

पार न हो तो इसका तात्पर्य है कि उस तरंग की वेव लेंग्थ एक वग सेन्टीमीटर से अधिक है। रैडार में इस सिद्धान्त पर जालीदार रिफ्लैक्टर बनाये जाते हैं। आप अपने विभिन्न प्रयोगों में देखेंगे कि आत्मिक शक्ति तो पोरस (अत्यल्प छिद्रों) में से भी पार हो जाती है इसका **तात्पर्य यह है कि आत्मिक तरंग की वेव लेंग्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।** वेव लेंग्थ कम होगी तो फ्रीक्वेन्सी हाई होगी। परावर्तन (रिफ्लेक्शन) का सामान्य नियम यह है कि जितनी वेव लेंग्थ (तरंग की लम्बाई) है उतने वर्ग क्षेत्र का दूसरा मीडियम हो तो उसमें से तरंग पार नहीं निकल पाती और परावर्तित (Reflect) हो जाती है। परावर्तन (Reflection) के अन्य नियम प्रकाश किरणों (Light Rays) के समान ही रहते हैं। प्रधान तरंग का कोण परावर्तित तरंग के कोण के बराबर रहता है $(i = r)$ । सामान्यत: लोंग-वेव पर्वत की चोटी पर पहुँच कर दूसरी ओर खाई की ओर मुड़ जाती है। परन्तु शार्ट वेव पर्वत की चोटी से परावर्तित हो जाती है। जो लोग अपनी तरंगों को परावर्तित नहीं होने देना चाहते वे शायद पर्वतो पर साधना करना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि आत्मिक तरंगें तो माइक्रो वेव से भी शॉर्ट हैं।

प्रत्यावर्तन (Refraction)—प्रकाश किरणें यदि अपना माध्यम बदलती हैं तो प्रत्यावर्तित होती हैं। काँच के गिलास को आधा पानी से भर कर उसमें एक छड़ डालें तो पानी के अन्दर डूबी हुए छड़ टेढ़ी दिखाई देती है। ऐसा प्रकाश की किरण के प्रत्यावर्तन के कारण होता है। इसी प्रकार मन्त्रित तरंगें भी जब एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती हैं तो भिन्न प्रकार के परावैद्युत स्थिरांक (Dielectric Constant) के कारण प्रत्यावर्तित हो जाती हैं क्योंकि माध्यम परिवर्तित होने से तरंग की गति (Velocity) में अन्तर आ जाता है। यदि हम प्रत्यावर्तन सूचकांक
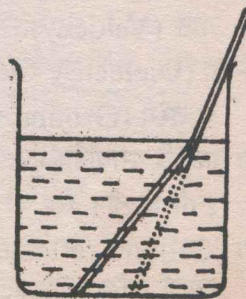
चित्र संख्या-११
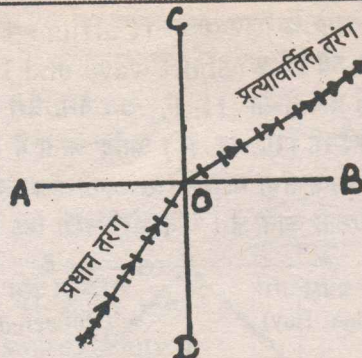
चित्र संख्या-१२

(Refractive Index) μ मालूम करने चाहें तो जिस माध्यम में से तरंग जा रही है उसकी (Permitivity) तथा तरंग की गति (Velocity of the wave) जानना आवश्यक होगा। इन्हीं गणनाओं के आधार पर साधना में ज्योतिषीय योगों का महत्व होता है।

तरंग विश्लेषण (Diffraction) – परावर्तन (Reflection) वाले प्रकरण में लोंग वेव के बारे में हमने कहा था कि ये तरंगें मार्ग में कोई अवरोध जैसे कि पर्वत आदि आने पर ऊपर को मुड़ कर पुन: नीचे की ओर मुड़ आती हैं और अपना मार्ग उनके नीचे की पृथ्वी के समानान्तर रखते हुए आगे बढ़ती जाती हैं। यह क्रिया ही विवर्तन (Diffraction) कहलाती है।

विकीर्णन (Disperson) – लयकृत तरंग (Modulated wave) में बहुत सी आवृत्तियाँ (Frequencies) सम्मिलित होती हैं। जब यह लयकृत तरंग आयनाकाश (Ionised sky layer) से होकर जाती है तो भिन्न-भिन्न प्रकार की आवृत्तियों वाली तरंगें अलग-अलग छितरा जाती हैं फिर आयनाकाश (Layer) से निकलने के पश्चात् यह सभी तरंगें फिर मिल जाती हैं। यह प्रक्रिया ही विकीर्णन (Dispersion) कहलाती है।

अवशोषण (Absorption) – जब कोई शक्ति तरंग प्रसारित की जाती है तो वह आंशिक अथवा पूर्ण रूप से कुछ वस्तुओं द्वारा अवशोषित की जा सकती है।

गति (Velocity) – शक्ति तरंगों की यात्रा की गति माध्यम के परावैद्युतिक स्थिरांक (Dielectric Constant) पर निर्भर करती है।

भू तरंग (Ground wave) – यह तरंग जो सीधी संग्राहक (Receiver) तक बिना कहीं से परावर्तित हुए पहुँचती है।

इनमें भी तीन तरह की तरंगें होती हैं—सीधी तरंग (Direct wave), भू-परावर्ती तरंग (Ground reflected wave) तथा सतही तरंग (Surface wave)।

सीधी तरंग (Direct wave) – वह है जो सीधी संग्राहक तक पहुँचती है। भू-परावर्ती तरंग (Ground reflected wave) जो पृथ्वी तल (Surface) से

परावर्तित होकर संग्राहक तक पहुँचती है और सतही तरंग (Surface wave) वह जो पृथ्वी के समानान्तर चलती हुई संग्राहक तक पहुँचती है।

व्योम तरंग (Sky wave) – वह तरंग जो आकाश की ओर प्रसारित की जाती है फिर आयनाकाश (Ionosphere) आदि से परावर्तित होकर पृथ्वी के संग्राहक तक पहुँचती है।

जैसा कि हम पहले बता आए हैं इन तरंगों के अन्दर चुम्बकीय तथा विद्युतीय दोनों प्रकार के क्षेत्र (Field) पाये जाते हैं जो एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित होते हैं। किसी भी एक फील्ड में परिवर्तन करने से दूसरा भी परिवर्तित हो जाता है। खाली आकाश में रेडियो तरंग प्रसारण हो तो विद्युत क्षेत्र $E = 300 H$ (H से तात्पर्य, चुम्बकीय क्षेत्र से है) होता है। परन्तु रेडियो फ्रीक्वेन्सी, आत्मिक फ्रीक्वेन्सी से बहुत कम है।

स्पंद विस्तारण (Pulse width) – जितने समय तक कोई प्रसारक (Transmitter) रेडियो तरंग को आकाश में प्रसारित करता है वह समय उस ट्रान्समीटर का 'पल्स विड्थ' कहलाता है। यदि हम १ मिनट तक लगातार ओइम् की धुन उठाते हैं तो पल्स विड्थ १ मिनट मानी जायगी। फिर हम दो मिनट चुप होकर १ मिनट तक फिर ओइम् की धुन उठाते हैं तो पहली पल्स विड्थ के प्रारम्भ से दूसरी पल्स विड्थ के प्रारम्भ तक का समय पल्स रिपीटीशन पीरियड (PRP) कहा जायगा। चित्र में समय और प्रवर्धन के आधार पर तरंग शक्ति का ग्राफ दिखाया गया है। इसमें मन्त्र की उच्चतम शक्ति को 'पीक पावर' कहा गया है।
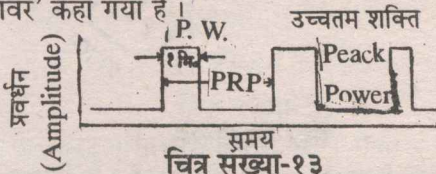
चित्र संख्या-१३

तरंग पथिका (Wave Guide) – रेडियो ट्रान्समीटर से उसके एरियल तक रेडियो तरंगें ले जाने के लिए ओपन वायर ट्रान्समीशन लाइन का प्रयोग नहीं होता है क्योंकि नीची फ्रीक्वेन्सी पर ही रेडियेशन तथा डिसीपेशन लौस (Losses due to radiation and dissipation in the conductors) न के बराबर होते हैं, ज्यों-ज्यों फ्रीक्वेन्सी बढ़ती है यह हानियाँ (Losses) भी बढ़ जाती हैं। 'कोएक्सल लाइन' में 'रेडियेशन लौस' नहीं होते परन्तु डाईइलैक्ट्रिक के कारण रेसिस्टेन्स लौस बढ़ जाते हैं। इसलिए अल्ट्रा हाई फ्रीक्वेन्सी तथा माइक्रोवेव फ्रीक्वेन्सी पर वेव गाइड प्रयोग की जाती हैं। वेव गाइड के अन्दर तरंगें इस प्रकार चलती हैं जैसे तरंगों के गोले घूमते हुए चले जा रहे हैं।

TOP VIEW

चित्र संख्या-१४
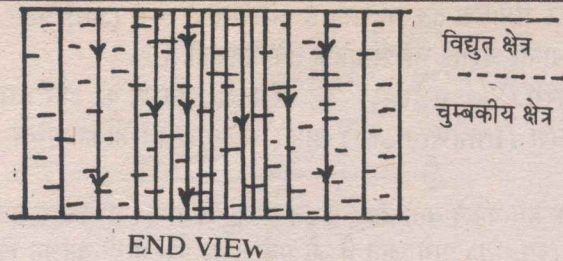
चित्र संख्या-१५

यदि आपको ध्यान हो तरंग प्रसारण (Propagation) की दिशा इस प्रकार रहती है—
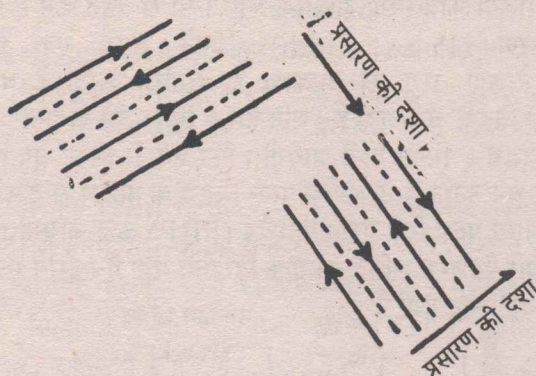
चित्र संख्या-१६

किसी विशेष तरंग के लिए वेव गाइड को इस ढंग से निर्माण किया जाता है कि वेव गाइड के खुले अन्तिम सिरे से शक्ति-तरंगों को आकाश में बिना किसी अवरोध के प्रसारित किया जा सके। यहाँ आप एक बात देखेंगे कि तरंग की वेव लेंग्थ वेव गाइड के अन्दर, आकाशीय तरंग से अधिक होती है। अब गति (Velocity) का अन्तर देखिए—
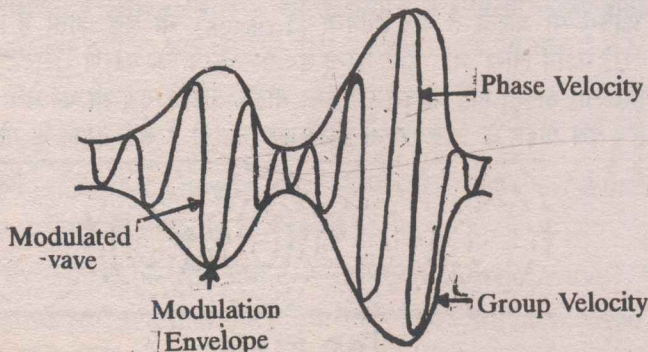
चित्र संख्या-१७

रैंडार के सम्बन्ध में कैरियर वेव की गति को फेस वेलोसिटी कहते हैं तथा जिस फ्रीक्वेन्सी को लेकर कैरियर वेव जा रही है उसकी गति को ग्रुप वेलोसिटी कहते हैं। आत्मिक तरंगों के सम्बन्ध में ठीक इसी प्रकार **आत्मिक तरंग कैरियर वेव का काम करती है और मन्त्र-तरंग अथवा भाव-तरंग को उचित दूरी तक ले जाती है।**

अभी तक हमने जो बातें कीं वे आयताकार वेव गाइड की थीं; अब गोल वेव गाइड (Circular wave guide) के बारे में बताते हैं।

विद्युतीयक्षेत्र E

चुम्बकीय क्षेत्र H
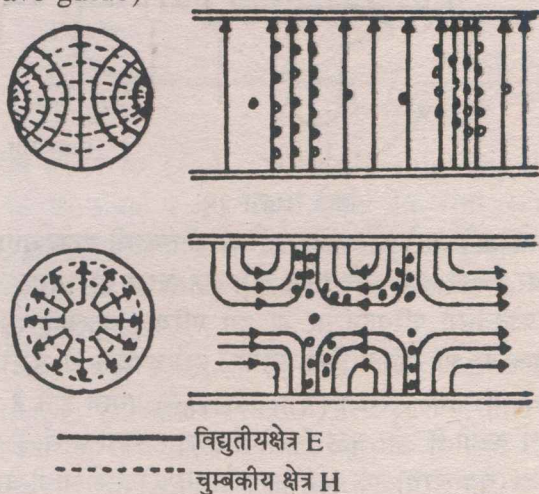
चित्र संख्या-१८

अपने शरीर के अन्दर मस्तिष्क एवं मेरुदण्ड से होकर शरीर के प्रत्येक अन्तिम छोर व रोम कूपों तक पहुँचने वाली **तन्त्रिकायें गोल वेव गाइड ही हैं जिनके बारे में आयुर्वेद कहता है कि इनमें से वायु चलता है, वह वायु यही E और H फील्ड हैं।** शरीर के रोमों से (जो ऐरियल का काम करते है) यह नाड़ियाँ तरंगें ग्रहण करके मस्तिष्क एवं सुषुम्ना तक पहुँचाती हैं, और वहाँ की तरंगें सम्बन्धित रोमों तक पहुँचा कर योगी को 'रोम-एरियल' का लाभ देती हैं। इन गोल वेव गाइडों में शक्ति तरंगों के बारे में लगभग सभी नियम आयताक़ार वेव गाइडों जैसे ही लागू होते हैं, जैसे आकाशीय वेव लेंग्थ से वेव गाइड के अन्दर की वेव लेंग्थ बड़ी होती है। शक्ति का क्षयीकरण (Attenuation) भी थोड़ा बहुत होता ही है। 'डोमिनेंट मोड' की 'कट-आफ-वेव लेंग्थ' और इससे अगली 'मोड' की 'कट-आफ वेव लेंग्थ' के बीच में बहुत थोड़ा अन्तर गोल वेव गाइड में से प्रसारित किया जा सकता है। यह अवगुण हमारे शरीर की तन्त्रिकाओं में भी होता है परन्तु वे आवश्यक संख्या में शरीर में हैं अतः यह **अवगुण भी गुण में परिवर्तित हो जाता है और छोटा-सा फ्रीक्वेन्सी चेन्ज भी हम अनुभव कर पाते हैं।**

एरियल—रैडार अथवा रेडियो में एरियल का कार्य उच्च आवृत्ति वाली विद्युत तरंगों को इलैक्ट्रोमैगनेटिक तरंगों में बदलना और इलेक्ट्रोमैगनेटिक तरंगों को हाई

कि Y Rays ही मोडुलेट होकर D अथवा G Rays बनती हैं। भाव तरंग में परिवर्तन मस्तिष्क के विचार परविर्तन कर देने से हो जाता है। दूसरे शब्दों में आप कह सकते हैं कि **भावना में परिवर्तन लाने के लिए हमें बौद्धिक परिवर्तन करना पड़ता है। मन-परिवर्तन नहीं करना पड़ता।** ध्यान रखें, विलोम चक्र में शरीर के पीछे बुद्धि, बुद्धि के पीछे मन और मन के पीछे आत्मा है।
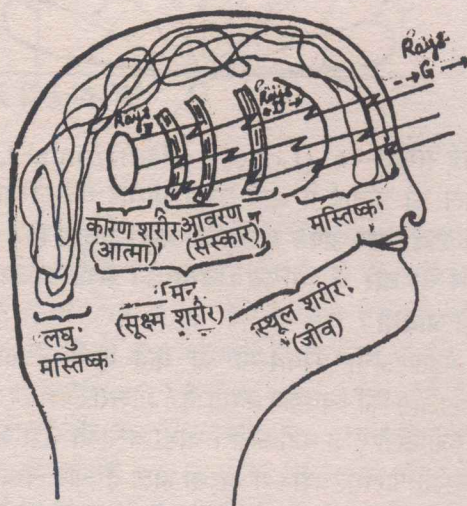
चित्र संख्या-२१

आप लोगों ने विभिन्न प्रकार की किरणों यथा अल्ट्रा वायलट रेज, एक्सरेज, अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा, यान्की आदि बहुत सी रेज के नाम सुने होंगे। तत्व मीमांसा (Metaphysics) के आधार पर बात करें तो अल्फा 'α' तरंगें धनात्मक आयन (जिन्हें प्रोटोन्स भी कह सकते हैं) युक्त होती हैं। बीटा 'β' तरंगें ऋणात्मक आयन (जिन्हें इलेक्ट्रोन्स भी कह सकते हैं) युक्त होती हैं। गामा G 'λ' तरंगें चुम्बकीय अथवा विद्युतीय क्षेत्र से प्रभावित नहीं होतीं और अपने मार्ग से विचलित (Divert) नहीं होतीं। परन्तु चिकनी और चमकदार सतह से परावर्तित हो जाती हैं। आध्यात्मिक रूप से यह अधो-गतिशील तथा परिस्थितिजन्य होती हैं, इन्हें विचार तरंग या भाव तरंग भी कहा जाता है। डेल्टा D 'Δ' तरंगों की घूर्णन-गति होती है। ये तरंगें संस्कारों से प्रभावित रहती हैं अत: आत्मा को घुमाती हैं। यान्की 'Y' तरंगें संस्कार-मुक्त आत्मा से निकलती हैं। यह ऊर्ध्व गतिशील तथा प्रकृतिजन्य होती हैं। **डॉ. अनिलकुमार जौहरी** अन्तिम तीन तरंगों G, D तथा Y के यूनानी चिह्नों (Greek Symbols) के आधार पर इनकी गति का चित्रांकन अग्र प्रकार करते हैं—

गामा G		अधोगति
डेल्टा D		घूर्णन गति
यान्की Y		ऊर्ध्वगति

चित्र संख्या-२२

गामा तरंगों की तरह डेल्टा और यान्की तरंगें भी चुम्बकीय अथवा विद्युतीय क्षेत्र से अप्रभावित रहती हैं। पिछले चित्र में आप देख ही चुके हैं कि 'वाई' रेज ही 'डी' अथवा 'जी' रेज हैं, अन्तर केवल मोडुलेशन का है। परमर्षि **वीरबहादुर सिहं 'धर्म श्री'** इस सम्बन्ध में इस प्रकार चित्रण करते हैं—
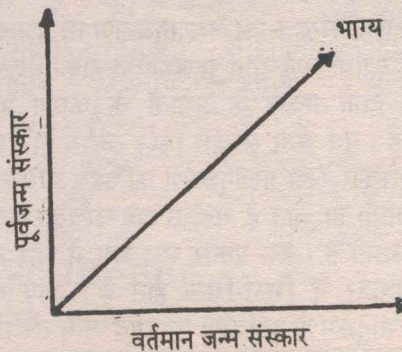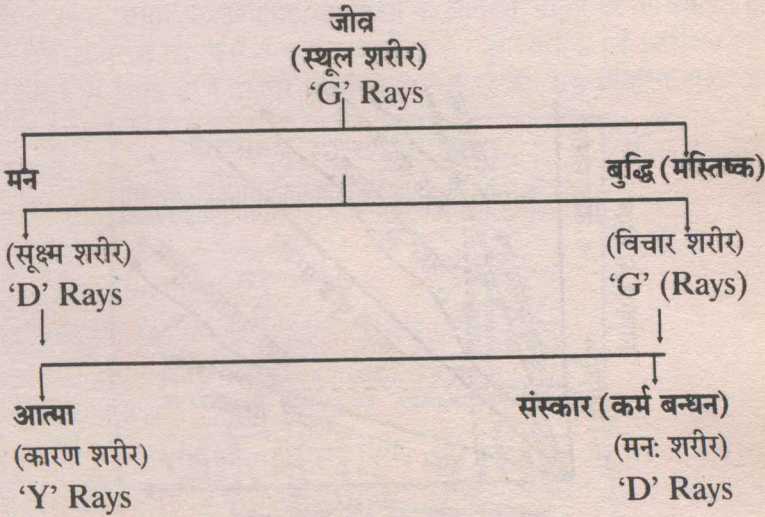
चित्र संख्या-२३

मन के संस्कारों तथा कर्मबन्धन आवरणों के बारे में चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि **किस व्यक्ति की भाग्य रेखा उसके पूर्व जन्म के संस्कारों तथा वर्तमान जन्म के संस्कारों की परिणामी होनी चाहिए।** भाग्यवाद का यही सिद्धान्त है। जबकि व्यावहारिक रूप में ऐसा नहीं होता। व्यक्ति के पर्यावरण (Environment) तथा वंशानुक्रमण (Heredity) के प्रभाव आड़े आ जाते हैं और मानवीय विकास का सिद्धान्त (Theory of Growth) भाग्यवाद के सिद्धान्त (Theory of Fate) से अलग हो जाता है।

यदि आप ध्यान दें तो देखेंगे कि अग्रांकित ग्राफ की सामान्य बुद्धि संस्कार रेखा तथा उपर्युक्त ग्राफ की भाग्य रेखा एक ही हैं परन्तु ऐसा केवल सैद्धान्तिक रूप (Theory) में होता है। व्यावहारिक जीवन (Practical life) में दूसरे ग्राफ का प्रभाव देखने को मिलता है, जिसमें पूर्व जन्म के संस्कार उच्चस्तरीय होने पर, वंशानुक्रमण के प्रभाव निम्न स्तर के होते हुए भी, बुद्धि संस्कार की रेखा (जिसे भाग्य रेखा भी कह सकते हैं) पर्यावरण के आधार पर, पूर्व जन्म के संस्कारों का प्रभाव रहने तक ऊँची चढ़ती है और
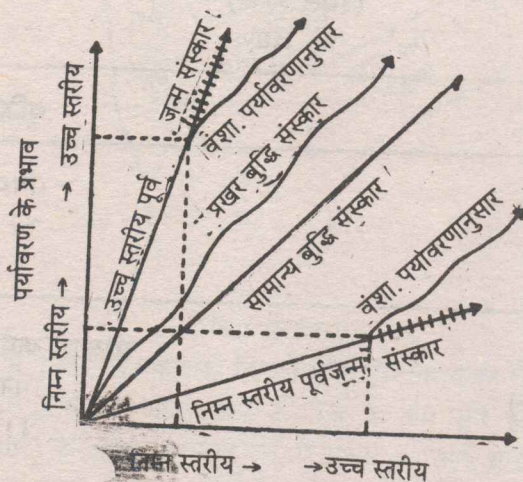
चित्र संख्या-२४ वंशानुक्रमण के प्रभाव

बाद में वंशानुक्रमण और पर्यावरण दोनों से प्रभावित होकर टेढ़ी-मेढ़ी होकर आगे बढ़ती है। प्रखर-बुद्धि रेखा दोनों प्रकार के प्रभावों के कारण प्रारम्भ से ही टेढ़ी-मेढ़ी (Zig-Zag) चलती है। पूर्व जन्म संस्कार निम्न स्तरीय होने पर, अच्छा पर्यावरण होने पर भी सामान्य बुद्धि संस्कार रेखा वंशानुक्रमण की ओर अधिक झुक जाती है, और जहाँ पूर्व जन्म संस्कार अप्रभावी हो जाते हैं, वहाँ से वह वंशानुक्रमण तथा पर्यावरण दोनों से प्रभावित होकर ऊपर उठती है। **इस प्रकार मूल रूप में सारे व्यक्ति एक होते हुए भी अपने-अपने कार्य व्यवहार में भिन्न-भिन्न होते हैं।** आप देखते हैं कि व्यक्ति का कार्य-व्यवहार उसके वंशानुक्रमण, पर्यावरण तथा पूर्व जन्म संस्कारों के आधार पर चलता है। यदि हम किसी व्यक्ति का जीवन व्यवहार परिवर्तन करना चाहते हैं तो वंशानुक्रमण में

परिवर्तन नहीं कर सकते। पर्यावरण परिवर्तन इतना सरल नहीं होता, एक तरह से वह भी व्यक्ति के अपने हाथ में नहीं होता। शेष रह जाता है—पूर्व जन्म संस्कार। **जन साधारण की मान्यता है कि पूर्व जन्म संस्कार तो पुराने बहीखाते (Old Record) के समान हैं, वहाँ जो लिख गया है वह लिख गया, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। हाँ! व्यक्ति चाहे तो वर्तमान जन्म के संस्कारों में शारीरिक तप (यम, नियम, आसन, प्राणायामादि) द्वारा जीवन संयमित करके परिवर्तन ला सकता है। मैं ऐसे लोगों को एक शुभ समाचार देना चाहता हूँ कि वे पूर्व जन्म के संस्कारों में परिवर्तन करके अपने जीवन व्यवहार में परिवर्तन ला सकते हैं। हमारे ऋषि-मुनि वर्षों से मन्त्र-प्रणाली द्वारा ऐसा करते रहे हैं।**

संस्कार और मन्त्र—मन्त्र-प्रणाली द्वारा संस्कार परिवर्तन की पद्धति समझने के लिए एक बार पुनः अब तक बताई गई तकनीकी तथा दार्शनिक पद्धतियों को एक करके देखना होगा। प्राणिमात्र के अन्दर जो चैतन्य शक्ति है उसका नाम 'आत्मा' है। जो कर्म हम करते हैं उनके आधार पर उत्पादित भावनाओं के आवरण आत्मा पर आच्छादित होते जाते हैं। ऐसे आवरणों को 'कर्म बन्धन' कहा जाता है। आत्मा एक स्व-प्रकाशित शक्ति स्रोत है जिसमें से शक्ति तरंगें अनवरत रूप से ट्रान्समीटर की तरह प्रसारित होती रहती

चित्र संख्या-२५
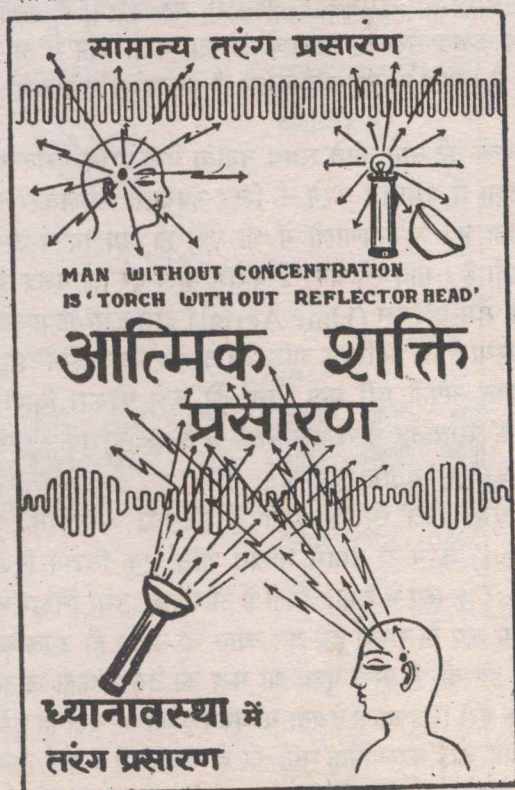
हैं। इस प्रकार आवरण कम होने पर आत्मिक शक्ति अधिक रहती है और आवरणों की संख्या बढ़ जाने पर आत्मिक शक्ति कम हो जाती है। हम लोग इन आवरणों को कम करने के लिए अपनी भाव-तरंगों को मन्त्र के माध्यम से इच्छित दिशा की ओर प्रसारित करते हैं। आत्मा से आत्मिक तरंगें ('Y' Rays) भावनात्मक आवरणों (कर्म बन्धनों) से छनकर ('D' Rays) शरीर से बाहर आती हैं फिर यह ('G' Rays के रूप में) आत्म शक्ति तरंगें मन्त्र तरंगों ('M' Rays) के साथ मिलकर (Modulate होकर) जहाँ तक मन्त्र तरंगों (M- Rays) की गति होती है, वहाँ तक जाती हैं। यह मन्त्र तरंगें विशेष जप-संख्या, [जो प्रत्येक मन्त्र के लिए ऋषियों (Researchers) द्वारा विशेष निरीक्षणों और प्रयोगों के आधार पर पहले ही निर्धारित कर दी गई है] के अनुरूप विशेष दूरी तक किसी भी दिशा में भेजी जा सकती हैं। जैसे किसी मन्त्र की जप संख्या चार लाख है। इसका तात्पर्य है कि ४ लाख जप पूरे कर लेने पर हमारी आत्मिक शक्ति उस स्थान तक पहुँच जायगी जहाँ की शक्ति मिलने से हमारा अभीष्ट सम्पन्न होता है। मान लो ४ लाख जप पूरे होने पर हमारी शक्ति ४ करोड़ मील पहुँचती है। इसका तात्पर्य यह है कि ४ करोड़ मील दूर कोई ऐसा शक्ति स्रोत (नक्षत्र आदि) है जिससे टकराकर मन्त्र-युक्त आत्मिक-शक्ति-तरंगें वापस आती हैं और साधक की आत्मा पर आच्छादित आवरणों को प्रभावित कर तत्सम्बन्धी कर्मबन्धन संस्कारों को हटाने में सहायता देती हैं। इन पूर्वाच्छादित कर्म बन्धन-संस्कार-आवरणों को नष्ट करते जाने से आत्मा की स्वत: ज्योति शुद्ध होती जाती है। मोक्ष-कामी व्यक्ति ऐसे ही आत्म शुद्धि के मन्त्रों का प्रयोग करते हैं।

मन्त्र पुरुष

पीछे एरियलों की बात करते समय बताया गया है कि इलेक्ट्रोमैगनेटिक वेव्स को किसी विशेष दिशा में प्रसारित करने के लिए उपयुक्त रिफ्लेक्टर तथा डायरेक्टर्स का प्रयोग किया जाता है। मन्त्र-प्रणाली में भी ऐसे ही रिफ्लेक्टर अथवा डायरेक्टर की आवश्यकता पड़ती है। मान लीजिए, ४ करोड़ मील दूर का नक्षत्र उत्तर-पूर्व दिशा में है और हमारी शक्ति रोम-एरियल (Hair-Aerial) द्वारा दसों दिशाओं में प्रसारित की जा रही है। अब समस्या है कि आत्मिक शक्ति को अभीष्ट नक्षत्र की दिशा में ही कैसे प्रसारित किया जाय (अर्थात् अपनी पूरी मन्त्र-शक्ति को कैसे फोकस किया जाय) जिससे हमें अधिक से अधिक परावर्तित तरंगें उस नक्षत्र से प्राप्त हो सकें। इसके लिए ऋषियों ने प्रत्येक ऐसे मन्त्र का 'इष्ट' बताया हुआ है।

इष्ट एक ऐसा चित्र अथवा मूर्ति है जिसका आन्तरिक ध्यान (Internal Concentration) करने से हमारी मन्त्रित शक्ति एक विशेष दिशा में तीक्ष्ण स्पन्दों (Sharp Pulses) के रूप में गमन करती है और इधर-उधर बिखरती नहीं है। इसीलिए **अधिकतर मन्त्रों में जप के समय इष्ट का ध्यान भी उतना ही आवश्यक होता है जितनी जप संख्या।** इस इष्ट को ही मन्त्र पुरुष या मन्त्र का देवता कहा जाता है। यह बिल्कुल आवश्यक नहीं कि ऐसे चित्र वाला देवता या पुरुष पृथ्वी पर पैदा ही हुआ हो जिसका आप ध्यान करते हैं। यह कोई काल्पनिक मूर्ति भी हो सकती है। यहाँ हमारा लक्ष्य तो उससे प्राप्त परिणाम से है न कि उसकी जन्म सम्भावना से। मध्य युग में जब हमारा सांस्कृतिक

विनाश हो रहा था उस समय संस्कृति बचाने के उद्देश्य से ऋषियों ने वेद आदि को कंठस्थ करके ध्यान की मूर्ति 'इष्ट' को भी श्रुति का रूप देकर ध्यान चित्र को श्लोक बद्ध कर दिया था। जैसे—

शांताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम्।
विश्वाधारं गगन सदृशं मेघवर्णं शुभांगम्॥
लक्ष्मी कांतं कमलनयनं योगिभिर्ध्यान गम्यम्।
वन्दे विष्णुं भवभय हरं सर्व लोकैक नाथम्॥

(विष्णु)

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीव लोचनम्।
जानकी लक्ष्मणोपेतं जटा मुकुट मंडितम्॥
ससितूण धनुर्बाण पाणिं नक्तंचरान्तकम्।
स्वलीलया जगत् त्रातुमाविर्भूत मजं विभुम्॥

(राम)

यदि कोई साधक इन ध्यान श्लोकों के अर्थ के आधार पर 'इष्ट' के चित्र को ध्यान में लाने के स्थान पर प्रार्थना की तरह इन श्लोकों को पढ़ता है, वह व्यर्थ ही समय नष्ट करता है।

चित्र संख्या—26
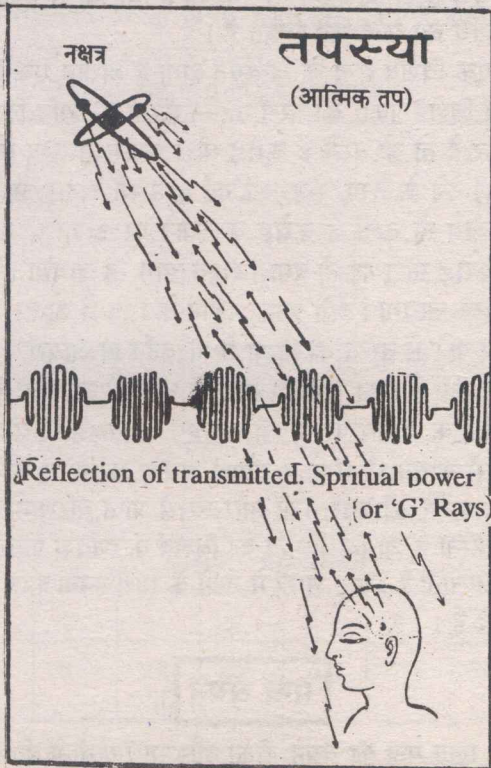
मन्त्र का छंद

हमारे मंत्र शास्त्र में संख्या और इष्ट के अलावा एक और आवश्यक वस्तु है—मंत्र का छंद। छंद के भाग 'लय' और 'यति' होते हैं। एक शब्द है 'आगरा' इसे आप 'आ ऽऽऽ ग ऽऽऽ रा ऽऽऽऽऽ' भी बोल सकते हैं और 'आ ऽऽ ग्रा' भी बोल सकते हैं और केवल 'आगरा' भी कह सकते हैं। तीनों प्रकार के बोलने में अलग-अलग प्रकार की तरंगें पैदा होती हैं। हमारा पूरा संगीत शास्त्र ऐसी ही तरंगों के स्फुट और विस्तारण का परिणाम है। इस प्रकार के अन्तर को 'शब्द के बोलने की लय' कहा जाता है। एक और उदाहरण लीजिए—एक अक्षर है "ओ"। आप बोलिये 'ओ ऽऽऽ,' आभास होता है कि आप अगला अक्षर 'म्' बोलने वाले हैं। अभी एक चूहा आपके पैर के ऊपर से निकल जाता है, आपके मुँह से एकदम निकल पड़ता है 'ओ'। आप किसी को आवाज देकर अपने पास बुलाना चाहते हैं। 'ओ ऽऽ' रामू ! अब आप स्वयं देखिये तीनों प्रकार के 'ओ' बोलने में आपकी ध्वनि भिन्न-भिन्न प्रकार की है और ध्वनि के आधार पर ही प्रत्येक 'ओ' का अर्थ-भाव अलग है। यदि यही 'ओ' तीनों प्रकार से किसी कागज या पर्दे को मुँह के सामने थोड़ा आगे रख कर बोला जाय तो आप देखेंगे कि प्रत्येक 'ओ' की तरंगों की चोट (जो कागज पर पड़ रही है) में अन्तर है इसे 'यति' कहते हैं। यति और लय का ध्यान रखते हुए जो गाया जाय उसे छन्द कहते हैं। **तात्पर्य यह है कि किसी अक्षर, शब्द या वाक्य के उच्चारण की विधि को छन्द कह सकते हैं।**

प्रत्येक मन्त्र एक विशेष छन्द के अन्तर्गत होता है अर्थात् एक विशेष स्वरतन्त्री के अन्तर्गत होता है जो विशेष प्रकार की तरंगें उत्पन्न करता है। यदि किसी प्रकार आप उन तरंगों में गड़बड़ी कर दें तो जो तरंगें ४ करोड़ मील पर स्थित वस्तु को विशेष प्रकार की चोट, झटके (Pufs) देने के लिए 'सेट' की गई है, उसमें अन्तर आ जाएगा। यदि जप संख्या गड़बड़ हो जाय तो तरंगें ४ करोड़ के स्थान पर ३ या ५ करोड़ की यात्रा तय करेंगी। यदि वे ३ करोड़ मील गईं तो हमारा लक्ष्य आगे रह जायगा। यदि ५ करोड़ मील गईं तो लक्ष्य पीछे छूट जायगा। इसी प्रकार ध्यान के चित्र में अन्तर आ जाने से अथवा ठीक से ध्यान न कर पाने से तरंगों की दिशा में परिवर्तन हो जायगा। इन सभी स्थितियों में हमारा लक्ष्य छूट जाता है। इन सभी नियमों को ध्यान में रख कर ही कोई ऋषि किसी मन्त्र की लय और यति के आधार पर गायत्री, अनुष्टुप, जगती आदि छंद निर्माण करता है। यह उसी प्रकार है जैसे कविताओं में दोहा, चौपाई, सवैया, मत्तगयंद, कवित्त आदि होते हैं।

जो ऋषि मन्त्र-शब्दों की स्वर तन्त्री और उससे प्राप्त परिणामों के आधार पर इष्ट सहित मन्त्र निर्माण करता है, या किसी मन्त्र का विशेष कारणवश पुनर्निर्माण करता है वह उस मन्त्र का ऋषि कहलाता है। मन्त्र शास्त्र में मन्त्रों के साथ उनके ऋषि जमदग्नि, भारद्वाज, अत्रि आदि दिए रहते हैं।

मन्त्र चयन

मन्त्र सिद्धि के लिए मन्त्र का चयन, दीक्षा और साधना तीनों ही महत्वपूर्ण हैं। पात्र विशेष के लिए प्रयोजनानुसार उचित मन्त्र का चयन स्वयं में एक गणित का प्रश्न है। इस

विषय को मैने विस्तृत विवरण सहित इसी प्रकाशक की 'शाबर तन्त्र शास्त्र (द्वितीय संस्करण १९८६)' नामक पुस्तक में 'मन्त्र गणना' शीर्षक से प्रकाशित कर दिया है। मन्त्र चयन की विधियाँ बहुत सी हैं। कभी-कभी एक विधि सभी गणनाओं में सही नहीं उतर पाती, तो दूसरी विधि से गणना की जाती है। यहाँ हम मन्त्र चयन की कुछ विधियाँ दे रहे हैं।

ईरानी अंक पद्धति— इस विधि को कुछ विदेशी साधकों, श्रीमती ओ' हष्णु हारा आदि ने 'काला जादू' कहा है। इसमें व्यक्ति के नाम के आधार पर ही गणना करने की विधि बताई गई है। नीचे दी गई सारणी में प्रत्येक अक्षर का कुछ मूल्य माना गया है। उसके आधार पर नाम के सभी अक्षरों के मूल्य का योग निकालकर उनका मूलांक ज्ञात कर लिया जाता है। उस मूलांक के आधार पर सम्बन्धित ग्रह की चरित्रगत विशेषताओं से व्यक्ति की स्वभावगत विशेषताओं को मिलाकर देखें। यदि मेल खाता हो तो आपकी गणना सही है अन्यथा दूसरी विधि अपनायें। नाम के अक्षरों का मूल्य निकालते समय नाम के साथ प्रयुक्त गोत्र व जाति आदि की गणना नहीं की जाती। इसी प्रकार दो-दो, तीन-तीन नाम वालों को सभी नामों के मूलांक निकालकर ग्रह की चरित्रगत विशेषताएँ अपने स्वभाव से मिलाकर देखनी होंगी। जिस ग्रह की विशेषतायें सबसे अधिक मिलें उसी ग्रह के आधार पर मन्त्र ग्रहण करना होगा।

महर्षि यतीन्द्र मूल्य सारणी

अ—१	क—२०	ट—९	प—८०	ष—३००
आ—१	ख—२८	ठ—१७	फ—८	स—६०
इ—१०	ग—३	ड—७००	ब—२	ह—८
ई—१०	घ—११	ढ—१०८	भ—१०	क़—१००
उ—६	ङ—५०	ण—५०	म—४०	ख़—६००
ऊ—६	च—११	त—४००	य—१०	ग़—१०००
ए—१०	छ—१९	थ—४०८	र—४००	अ—७०
ऐ—१०	ज—३	द—४	ल—३०	ज़—७००
ओ—८	झ—११	ध—१२	व—६	फ़—८०
औ—८	ञ—५०	न—५०	श—३००	

मूलांक—ग्रह सारणी

मूलांक	१	२	३	४	५	६	७	८	९
सम्बन्धित	सूर्य	चन्द्र	वृह-स्पति	हर्षल	बुध	शुक्र	वरुण	शनि	मंगल

किसी व्यक्ति के नाम में प्रयुक्त आधे अक्षर को पूरा अक्षर मानकर ही गणना की जायगी। एक उदाहरण देखिए—'**बद्रीप्रसाद वर्मा**' नाम का ग्रह निकालने के लिए हमें

'बद्रीप्रसाद' की मूल्य गणना करनी होगी। इन दोनों शब्दों के मूल्यांकन हेतु इन्हें इस प्रकार जोड़ना होगा— ब द र ई प र स आ द—मूल्य सारणी के अनुसार इन अक्षरों के मूल्य इस प्रकार रहे—

२ + ४ + ४०० + १० + ८० + ४०० + ६० + १ + ४ = ९६१

अब योगफल को १ से ९ तक के अंकों (मूलांकों = मूल अंकों) के बीच में लाने के लिए पुनः जोड़ें—

९ + ६ + १ = १६

१ + ६ = ७ यह मूलांक है।

इस मूलांक का सम्बन्धित ग्रह 'मूलांक-ग्रह सारणी' में देखें। मूलांक 7 का प्रतिनिधि ग्रह 'वरुण' है। अब बद्रीप्रसाद वर्मा के स्वभाव के वरुण ग्रह में दी गई चारित्रिक विशेषताएँ मिलाकर देखिए, यदि वे अधिकतम मिलती हैं तो आपकी गणना सही है और इस व्यक्ति को इस ग्रह से सम्बन्धित मन्त्र लाभ प्रद रहेगा। ग्रहों की चारित्रिक विशेषताएँ संक्षेप में इस प्रकार है—

१. सूर्य

इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति की सहन-शक्ति उत्तम होगी। जीवन में बहुत उथल-पुथल और विपरीत परिस्थितियाँ मिलेंगीं। जातक साहसी होगा। नेतृत्व करने की प्रबल प्रवृत्ति रहेगी। किसी भी अपरिचित व्यक्ति से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थोड़े ही दिनों में बना लेगा। समाज में प्रशंसा होगी। जातक कुछ न कुछ नया अलौकिक कार्य करने की खोज में रहेगा। शरीर सुदृढ़ सक्षम होगा तथा जीवन से हिम्मत हारने की बात नहीं करेगा। व्यापार में अपनी दूरदर्शिता के कारण सफल होगा। नौकरी में शीघ्र ही प्रमोशन होगा। जातक अपने लक्ष्य के प्रति पूर्णतः सजग और सचेष्ट रहेगा, भटकेगा नहीं। जातक निर्णय लेने में चतुर, स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाला होगा। अपने विचार स्वयं बनायेगा और उन पर चलेगा। किसी के दबाव में नहीं रहेगा। अपने निर्णय पर अटल होने के कारण जातक समाज की दृष्टि में विश्वासी, कार्यनिष्ठ, सही और सच्चा माना जाएगा। जातक अपनी उन्नति की महत्वाकांक्षा के कारण कभी-कभी थोड़े समय के लिए परेशान हो सकता है। अपने कार्यों में टोकना या बिना माँगे सुझाव देना जातक को पसन्द नहीं होगा। जातक का सम्पर्क नये से नये और श्रेष्ठ लोगों से बढ़ता जाएगा। जातक आवश्यकता के अनुसार व्यय करेगा। अस्त-व्यस्त, फूहड़पन और शिथिलता पसन्द नहीं करेगा। परिस्थिति के अनुसार स्पष्ट वक्ता होगा। जीवन में आकस्मिक हानि-लाभ चलते रहेंगे। जातक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होगा तथा दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने में निपुण होगा। कभी-कभी दिखावे के लिए जरूरत से ज्यादा व्यय कर डालेगा। धन सम्बन्धी मामलों में जोखिम उठाने से परेशानी बढ़ सकती है। मित्रों पर अधिक विश्वास करने से धन सम्बन्धी धोखा मिलेगा। स्त्री की आसक्ति जातक पर लांछन भी ला सकती है। जातक को

हृदय और रक्त सम्बन्धी बीमारियाँ जैसे—रक्तचाप, हार्ट-अटैक एवं नेत्र पीड़ा आदि रोग होते रहेंगे।

२. चन्द्रमा

चन्द्र ग्रह से प्रभावित व्यक्ति भावुक, कोमल, कल्पना-प्रिय, सहृदय, मधुर-भाषी, एक ही विषय पर स्थिर न रहने वाला, चंचल-मन, शारीरिक कार्यों की अपेक्षा मानसिक कार्यों में अधिक योग्य, शंकालु और दूसरों का भला करने वाला दयालु, दूसरों को चुटकियों में सम्मोहित कर लेने वाला, अपनी गलती स्वीकार कर लेने वाला, यह जानते हुए भी कि दूसरा चापलूसी करके अपना काम मुझसे निकाल रहा है फिर भी 'न' न कह पाने वाला, परिवार से जली-कटी सुनने वाला, अधैर्यवान होने के कारण पछताने वाले काम करने वाला, अक्सर निराशा और हीनता की भावना से युक्त हो जाने वाला, मित्र बहुत रहें पर वास्तविक मित्र की कमी मन में खटकती रहेगी, स्त्रियाँ सहज ही विश्वास करें, दूसरों के हृदय की बात जान लेने वाला, ललित कलाओं में रुचि रखने वाला, सुन्दर-शिक्षित पत्नी का विश्वासी पति कहलाने वाला, यात्रा वाले कार्यों से लाभ उठाने वाला, सभ्य, सतर्क, सुशील व समझदार, जरा सी बात पर घबरा जाने वाला, अपने कार्य को अक्सर अधूरा छोड़ देने वाला, प्रेम के चक्कर में बदनाम होने वाला, फालतू मित्रों की संख्या बढ़ाने वाला, स्त्रियों में अधिक रमने वाला और अपने व्यवहार में स्त्रीत्व की झलक देने वाला, संवेदना प्रधान, स्नायु और हृदय सम्बन्धी बीमारियाँ, उदर रोग पीड़ित, बीमारी के प्रति लापरवाह, फेफड़े के रोगों से पीड़ित होने वाला होता है।

३. वृहस्पति

गुरु ग्रह प्रभावित व्यक्ति साहसी, विद्या, ज्ञान एवं धर्म का ज्ञाता, रूढ़िवादिता से ग्रस्त धर्म का परिमार्जन कर आवश्यक जीवन दर्शन के आधार पर अपने धर्म का पालन करने वाला, अपने विचारों को ऐसी विधि से व्यक्त करने वाला कि दूसरा मान जाय, धन को न रोक पाने वाला स्वार्थी, सजावट व ऐश-आराम की वस्तुओं पर अधिक व्यय करने वाला, महत्वाकांक्षी, छोटा पद, छोटा कार्य पसन्द न करने वाला, आकस्मिक धन लाभ अथवा भाइयों से लाभ न प्राप्त करने वाला, चाहे जब स्वेच्छाचारिता की ओर बढ़ जाने वाला, अपने कार्य में हस्तक्षेप न पसन्द करने वाला और न दूसरे के काम में टाँग अड़ाने वाला, सरल जीवन व्यतीत करने का इच्छुक, बुद्धिमान, उदार हृदय, क्रोधातिरेक में भी विवेक से काम लेने वाला, अखण्डित तर्क प्रस्तुत करने वाला, एक से अधिक कार्य एक साथ करने वाला, मित्रों से विश्वासघात पाने वाला, प्रेम के क्षेत्र में एक प्रकार से असफल, परन्तु सुन्दर सुशील, आज्ञाकारिणी पत्नी पाने वाला, बाल्यावस्था में शिक्षा अव्यवस्थित, अर्थाभाव तथा पारिवारिक सहयोग न पाने वाला, सरकारी नौकरी से प्रेम करने वाला, यात्राओं से नये अनुभव प्रांप्त करने वाला, विशिष्ट व्यक्तियों से सम्पर्क रखने वाला, अनुशासन प्रिय, जीवन

के प्रौढ़ावस्था में जाते-जाते यशोभागी बनने वाला, गहन निद्रा वाला, कठोर परिश्रमी होता है। इस ग्रह का प्रभाव क्षीण होने पर गुप्तेन्द्रिय शिथिल होगी और कामवासना प्रबल रहेगी, स्नायविक शिथिलता, चर्मरोग, हृदय रोग, उदर रोग, अक्सर तंग करेंगे। चर्बीयुक्त गरिष्ठ भोजन तथा आवश्यकता से अधिक खा लेना सदैव अस्वास्थ्यकर रहेगा।

४. हर्षल

इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति या तो पहाड़ पर रहता है या खाई में, अर्थात् आकस्मिक घटनायें कुछ इस तरह से जीवन में आती हैं कि व्यक्ति या तो पतन के गर्त में जा गिरता है या उन्नति के शिखर पर चढ़ जाता है। ऐसे व्यक्ति का जीवन संघर्ष प्रधान होता है। हर कार्य में अड़चन आती है। क्रोधावेश ज़ितना जल्दी बढ़ता है उतनी ही तीव्रता से उतर जाता है। ऐसा व्यक्ति मन में बात दबाकर रखने वाला और कई शत्रुओं वाला होता है, यहाँ तक कि मित्र भी शत्रु बन जायेंगे। क्योंकि वे भी ऊँचे दिमाग के और क्रोधी स्वभाव के होंगे। ऐसा व्यक्ति हरेक समस्या की सलाह दूसरों से लेने वाला होता है, वह स्वतन्त्र और त्वरित निर्णय नहीं ले पाता। ऐसा व्यक्ति दूसरों पर विश्वास न करने वाला, कानून और नियम तोड़ने वाला, अपने स्वार्थ को प्राथमिकता देने वाला, फिजूल खर्च करने वाला, उतावला, असहिष्णु, अपने उग्र स्वभाव के कारण स्मरण शक्ति की शिथिलता से ग्रसित होने वाला, चिड़चिड़े स्वभाव की पत्नी वाला, वृद्धावस्था में हृदय रोग अथवा गुप्त रोग वाला, अपने को ललित कलाओं का पारखी प्रदर्शित करने वाला, भाई-बन्धु और पुत्र अथवा पिता का सुख न पाने वाला, विजातीय लोगों की कृपा पाने वाला, एक से अधिक व्यवसाय करने वाला, दूसरों को झूठे आश्वासन देने वाला; दूसरों की निन्दा करने वाला, जुखाम और छूत वाली बीमारियाँ भोगने वाला, यात्रा में धोखा पाने वाला उग्र स्वभावी होता है।

५. बुध

इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति का मस्तिष्क हर समय कुछ न कुछ सोचता ही रहता है। ऐसे व्यक्ति बुद्धिमान, दूसरों को अपना मित्र बना लेने वाले, यात्राओं में आनन्द लेने वाला, तुरन्त निर्णय लेने वाला, परिस्थिति के अनुसार अपने को ढाल लेने वाला, नियमित व्ययशील, जो भी कार्य करे उसमें तन, मन, धन से लग जाने वाला, व्यापार प्रधान मस्तिष्क वाला, व्यापार से लाभ कमाने वाला, आकस्मिक धन लाभ के अवसर वाला, अपने किसी भी प्रयोग में किसी भी प्रकार की जोखिम उठाने को तैयार रहने वाला, भाग्यवाद को मानने के कारण हानि-लाभ में समभाव रखने वाला, जीवन में मित्रों का अभाव न रखने वाला, सीखने के विशेष गुण वाला, प्रौढ़ावस्था में भी युवा दिखाई देने वाला, एक से अधिक कलाओं का ज्ञाता, जल्दी ही प्रसन्न और अप्रसन्न हो जाने वाला, स्वयं लुटकर भी दूसरे को नंगा कर देने वाला, भौतिक सुखों के लिए प्रयत्नशील होता है। जातक के स्नायु रोग, मस्तिष्क रोग, रक्त चाप, हृदय दौर्बल्य, चर्म रोग और अन्त में पक्षाघात तक हो सकता है।

६. शुक्र

इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति हँसमुख, मिलनसार, चतुर, यौवन पूर्ण, सुरुचिपूर्ण सुन्दर बने रहने की प्रवृत्ति, निवास स्थान को सजा कर रखने वाला, सलीकेदार कपड़े पहनने वाला, कुरूपता, फूहड़पन, अव्यवस्था से घृणा करने वाला, कला, संगीत, काव्य आदि का पारखी, धन का अभाव होते हुए भी व्ययशील, गम्भीर रहस्यों को बातों ही बातों में निकाल लाने वाला, घोर सांसारिक, नीतिज्ञ, दीर्घायु, कम प्रयत्न से ही प्रेमिका प्राप्त करने वाला, विपरीत रति के प्रति अधिक झुकाव वाला, सामान्य दाम्पत्य जीवन वाला, ईर्ष्यावान, अपरिचित व्यक्ति या अधिकारी से मिलने में न झिझकने वाला, आकर्षक शरीर वाला, झगड़ा पसन्द करने वाला, चंचल मन, भ्रमणयुक्त कार्य अधिक पसन्द करने वाला, फैशन पसन्द, चाहे भले ही आर्थिक तंगी हो, श्वेत वस्त्रों को अधिक पसन्द करने वाला, अपने मन का भेद न बताने वाला, मित्र मंडली में अधिक रमने वाला, पत्नी को मनोनुकूल बना लेने वाला, श्रेष्ठ पारिवारिक व्यक्तित्व वाला, तर्क में कुतर्क, कार्य में उतावलापन, आलसी, विलासी, प्रेमिका का चक्कर, क्लबों और संस्थाओं के चक्कर में गृहस्थी के प्रति उपेक्षा, शौकिया नशा, बदला लेने की भावना आदि दुर्गुण वाला होता है। सीने की कमजोरी, स्नायुविक दुर्बलता, मूत्र रोग, कब्ज, जुखाम, खाँसी आदि रोग भोगने वाला और हल्की बीमारी की परवाह न करने वाला, भोगमय जीवन व्यतीत करने वाला, साधारण घराने में जन्म लेकर भी ऊँचा उठने वाला होता है।

७. वरुण (नेपच्यून)

इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति जलप्रिय, सन्तोषी, सहिष्णु, कल्पना प्रिय, स्वतन्त्र विचार शक्ति वाला, किसी के साथ अन्याय न पसन्द करने वाला, किसी की धौंस में न रहने वाला, ऊपर से कितना ही कठोर हो परन्तु अन्दर से कोमल हृदय वाला, समाज में सम्मानित, बालक, युवक और वृद्धों में लोकप्रिय, सामने वाले के मन का भेद पा लेने वाला, कई लोगों से राय लेते हुए भी अपने ही मन की करने वाला, अपनी आज्ञा की अवहेलना पसन्द न करने वाला, मित्रों से सहयोग पाने वाला, शिक्षण काल से ही हर समय साथ देने वाले मित्र पाने वाला, साहसी कार्यों और साहित्य में रुचि रखने वाला, देश-विदेश की यात्राओं की प्रबल इच्छा रखने वाला, प्राकृतिक दृश्यों से आनन्द लेने वाला, साहसी, समुद्र पार देशों से लाभ पाने वाला, लोहे और विद्युत के व्यापार से लाभ कमाने वाला, गहरे जल में जाने का खतरा पाने वाला, जल्दी-जल्दी विचार बदलने वाला, समय को न पहचानने के कारण हानि उठाने वाला, आत्म-निर्भर बनकर ही लाभ उठाने वाला, चौतीसवें वर्ष के बाद से सम्पन्नता में वृद्धि पाने वाला, किसी भी कार्य में जागरूक, चेष्टावान और तत्पर रह कर ही सफल होने वाला, जीवन में कई बार धन प्राप्ति और धन हानि के अवसर

पाने वाला, सुशील पत्नी की अवहेलना करने वाला, घरेलू कार्यों में दिलचस्पी न लेने वाला, यात्राओं से लाभ उठाने वाला, स्वतन्त्र व्यापार से लाभ कमाने वाला, बड़ी-बड़ी जलमय आँखें, सौम्य चेहरा, सलज्ज, मधुर और चुम्बकीय व्यक्तित्व वाला, अनेक स्त्रियों के सम्पर्क में आकर भी प्रेम के मामले में अभाग्यवान, छूत की बीमारियाँ पाने वाला, अधिक पसीना निकालने वाली त्वचा वाला, उदर रोग, वात रोग, गुप्त रोग, गठिया, हृदय रोग, फेफड़े के रोग आदि से व्यथित रहने वाला परन्तु अपने ध्यान को एकाग्र कर लेने वाला होता है।

८. शनि

इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति का जीवन भयंकर संघर्षों और उथल-पुथल वाला, दूसरे को अपने मन की थाह न देने वाला, अन्तर्मुखी वृत्ति वाला, फूहड़पन और घटिया स्तर की बात न पसन्द करने वाला, छोटे कार्य से सन्तुष्ट न होने वाला, दिखावा न करने वाला, मित्र पर जान देने वाला, प्रेम पाने के लिए लालायित हृदय वाला, सेवा भावी, अर्थ प्राप्ति के लिए कुछ भी कार्य करने को तैयार रहने वाला, लोहे से सम्बन्धित व्यापार या लोहे की फर्म में नौकरी से लाभ पाने वाला, अधिक हँसी-मजाक और गप्पों में समय न गँवाने वाला, व्यर्थ कार्यों में समय व्यतीत न करने वाला, प्रचार प्रसार से दूर रहकर एक मौन चिन्तक जैसे व्यक्तित्व वाला, जीवन में लाभ और हानि अत्यन्त उच्च स्तर पर झेलने वाला, शत्रु को परास्त करके ही दम लेने वाला, ठोस और महत्वपूर्ण कार्य करने वाला, गम्भीर प्रकृति वाला, छिछोरापन पसन्द न करने वाला, धार्मिक कार्यों में रुचि न होते हुए भी हर उत्सव को सफल बनाने वाला, कोई भी कार्य करने के लिए खाना-पीना, आमोद-प्रमोद त्याग कर भूत की तरह लग जाने वाला, काली वस्तुओं के व्यापार या तेल तिलहन के व्यापार से लाभ पाने वाला, दूसरे के उत्सवों को सफल करने में गाँठ का भी लगा बैठने वाला, कार्य व्यस्तता को ही मनोरंजन समझने वाला, काम को ही भगवान मानने वाला, ढोंग और पाखण्ड से घृणा करने वाला, संकट के समय तक ही पूजा-पाठ में ध्यान लगाने वाला, धन संग्रह करके भी व्यय करने में कंजूस, व्यसनी, स्वभाव में रूखापन और कठोर वाणी वाला, मनुष्य को पहचानने की शक्ति वाला, पत्नी को धोखे में रखने वाला, इधर-उधर की बात रखने वाला, अधिकारी से बात करने में हिचकिचाने वाला, दूसरों के भरोसे कार्य छोड़ देने पर हानि उठाने वाला, भाई-बन्धु या समाज से कोई सहायता न पाने वाला, शत्रुओं से सुरक्षित, ऊँचे पर्वतों की यात्रा या गहरे जल में जाना दोनों स्थितियों में जान के खतरे वाला, प्रेम के चक्कर में स्त्रियों से हानि उठाने वाला, घोर भौतिकवादी, अत्यधिक सावधानी रखते हुए भी परेशानी में फँस जाने वाला शंकालु प्रकृति वाला होता है। ऐसे व्यक्ति गठिया आदि वात रोग, आँतों के रोग, कुष्ठ रोग, मूत्र रोग आदि से ग्रस्त हो सकते हैं।

९. मंगल

इस ग्रह से प्रभावित व्यक्ति धुन का पक्का, आन पर मर मिटने वाला, क्रोधी, साहसी, वीर, दृढ़ निश्चयी, देखने में प्रचण्ड और विस्फोटक होते हुए भी हृदय से कोमल, सहृदय अधिक दिखावा करने वाला, अधिकारियों को महत्व न देने वाला, पत्नी से खटपट चलती रहने के कारण दाम्पत्य जीवन में पूर्णता न पाने वाला, उतावला, नकली स्वाभिमान वाला, व्यसनी, एक से अधिक स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाला, शीघ्र ही पुंसत्वहीनता से ग्रसित हो जाने वाला, न्यायालय के चक्कर में अधिक रहने वाला, पत्नी की बीमारी पर अधिक खर्चा करने वाला, घर में आतंक का सा वातावरण बना देने वाला, आन और बात पर मर मिटने वाला, आपरेशन से हानि उठाने वाला, तीस वर्ष बाद मार्ग दर्शक और सच्चा मित्र पाने वाला, मित्रों को भी शत्रु बना लेने वाला, गलत फहमियों का शिकार होने वाला, चुगली, निन्दा करने वाला, परस्त्री के प्रति आकृष्ट होने वाला, लोगों को संगठित कर लेने वाला, मन के विपरीत कार्य होने पर निराशा और उदासी के गर्त में जा पड़ने वाला, जमीन के क्रय-विक्रय से लाभ उठाने वाला, कर्म क्षेत्र से टक्कर लेने वाला सामर्थ्यवान होता है। ऐसे व्यक्ति को रक्त सम्बन्धी, हृदय सम्बन्धी, रक्तचाप आदि बीमरियाँ लग सकती हैं। ऐक्सीडेन्ट, पागलपन आदि अचानक होने वाली घटनाएँ भी हो सकती हैं।

कुलाकुल पद्धति

मन्त्र चयन के लिए कुलाकुल पद्धति अत्यन्त सरल है। नीचे दी गई सारणी में साधक के नाम का प्रथमाक्षर एवं मन्त्र का प्रथम अक्षर देखें कि किस खाने में हैं। यदि दोनों अक्षर एक ही खाने में हों तो स्व-कुल के कहलायेंगे अन्यथा अ-कुल के।

कुलाकुल सारणी

तत्व	जल	पृथ्वी	आकाश	वायु	अग्नि
अक्षर	ऋ ॠ ओ घ झ द ध भ व स	अ ऊ औ ग ज ड द ब ल व	ल लृ अं ङ ण न म श ह	अ आ ए क च ट त प य ष	इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष

उदाहरण के लिए—रवि मोहन नाम का साधक 'शन्नोदेवी' शब्द से प्रारम्भ होने वाला मन्त्र ग्रहण करना चाहता है तो साधक के नाम का प्रथम अक्षर 'र' और मन्त्र का प्रथमाक्षर 'श' क्रमशः अग्नि तत्त्व और आकाश तत्त्व के खाने में हैं अतः अ-कुल हैं। यदि मन्त्र का प्रथमाक्षर अग्नि तत्त्व के खाने में ही होता तो स्वकुल कहलाता है। उसके लिए और आगे कुछ गणना करने की आवश्यकता नहीं होती। अब दोनों अक्षर अ-कुल हैं अतः

'मित्र-शत्रु' तत्त्वों का विचार करना पड़ेगा और वह मन्त्र ग्रहण करना होगा जिसका प्रथमाक्षर मित्र तत्त्व के खाने में हो।

जल तत्त्व और वायु तत्त्व का मित्र पृथ्वी तत्त्व है। वायु तत्त्व का अग्नि तत्त्व मित्र है। आकाश तत्त्व सभी का मित्र है। वायु और पृथ्वी तत्त्व भी मित्र तत्व हैं। अग्नि के शत्रु जल एवं पृथ्वी तत्त्व हैं।

ईरानी अंक पद्धति के द्वारा मन्त्र शास्त्र में किसी विशेष प्रयोग हेतु दिये गये हजारों मन्त्रों में से पहले आपने उचित ग्रह के मन्त्रों को छाँटा। उसके पश्चात् मन्त्रों के मित्रारि तत्त्व के आधार पर कुलाकुल पद्धति के द्वारा उनमें से भी छँटाई कर दी। तब जो दो-चार मन्त्र शेष बच गये उनमें से काकणी पद्धति के द्वारा छँटाई करके एक सबसे अधिक लाभप्रद मन्त्र को छाँटा जायगा। यह सब गणनायें जप के मन्त्रों के लिए की जाती हैं। सामान्यत: बोले जाने वाले मन्त्रों के लिए नहीं।

काकणी पद्धति—काकणी दो निकालनी पड़ती हैं। एक साधक के नाम की, और दूसरी मन्त्र की।

साधक के नाम की काकणी का सूत्र—

$$= \frac{\text{नाम का वर्गांक} \times २ + \text{मन्त्र का वर्गांक}}{८}$$

मन्त्र की काकणी का सूत्र—

$$= \frac{\text{मन्त्र के प्रथमाक्षर का वर्गांक} \times २ + \text{साधक के नाम का वर्गांक}}{८}$$

इन सूत्रों के अनुसार वर्गांक जानना अति आवश्यक है। नीचे वर्ग के अक्षरों के साथ वर्गांक दिये गये हैं—

वर्गांक सारणी

वर्ग के अक्षर	वर्णांक	वर्ग के अक्षर	वर्गांक
अ से अ: तक	१	त थ द ध न	५
क ख ग घ ङ	२	प फ ब भ म	६
च छ ज झ ञ	३	य र ल व	७
ट ठ ड ढ ण	४	श ष स ह	८

काकणी का परिणाम निकालने के लिए इसका तीसरा सूत्र है—

यस्याधिक शेष: स: ऋणी

जिसके अधिक शेष बचें वही ऋणी है (देता रहेगा)।

उदाहरण—देवेन्द्र कुमार नामक साधक 'शिवाय नम:' नामक मन्त्र का जप करे तो फलप्रद होगा या नहीं (मन्त्र को काकणी में देखने से पूर्व कुलाकुल तथा ईरानी अंक पद्धति से देखना आवश्यक है)?

काकणी के पहले सूत्र के अनुसार—

साधक के नाम के प्रथम अक्षर का वर्गांक = ५

मन्त्र के प्रथम अक्षर का वर्गांक = ८

$\frac{५ \times २ + ८}{८} = \frac{१८}{८}$ = शेष बचे २ (साधक कां काकणी)

काकणी के दूसरे सूत्र के अनुसार—

$\frac{८ \times २ + ५}{८} = \frac{२१}{८}$ = शेष बचे ५ (मन्त्र की काकणी)

तीसरे सूत्र के अनुसार—

'मन्त्र' साधक का ऋणी है अतः फलप्रद रहेगा।

इसी मन्त्र को यदि 'नमः शिवाय' कर दिया जाय तो ग्रह तथा मित्रारि भाव में सही होने पर भी काकणी के अनुसार लाभप्रद नहीं रहेगा क्योंकि—

साधक के नाम के प्रथमाक्षर का वर्गांक ५ है और मन्त्र के प्रथमाक्षर का वर्गांक भी ५ होगा।

अब साधक की काकणी $\frac{५ \times २ + ५}{८} = \frac{१५}{८}$ = ७ शेष

मन्त्र की काकणी $\frac{५ \times २ + ५}{८} = \frac{१५}{८}$ = ७ शेष

समान शेष रहने के कारण कोई भी ऋणी नहीं है अतः व्यर्थ है।

मन्त्र परिवर्तन—कभी ऐसी विषम परिस्थिति आ सकती है जबकि मन्त्र गणनाओं के आधार पर किसी विशेष साधक के लिए कोई उचित मन्त्र न उपयुक्त बैठे। ऐसे में काकणी के आधार पर ऋणी इष्ट (देवता) का पता लगा लेना चाहिए और फिर उस इष्ट से सम्बन्धित किसी मन्त्र के शब्दों को आवश्यकतानुसार किसी मन्त्र दृष्टा विद्वान से इधर-उधर करा लेना चाहिए। बीजाक्षरों में ऐसा अधिकतर विद्वानों को करते देखा गया है। एक व्यक्ति को एक मन्त्र लाभप्रद रहा है तो दूसरे को भी वही लाभप्रद हो, ऐसा सोचना नितान्त मूर्खता की बात होगी। ऐसी नादानी कभी मन्त्रों के विषय में न करें। पिछले उदाहरण में 'शिवाय नमः' तथा 'नमः शिवाय' के अन्तर को आप देख ही चुके हैं।

मन्त्र दीक्षा

मन्त्र दीक्षा का अर्थ है क्रियात्मक अभ्यास। इसलिए केवल गुरु द्वारा ही दीक्षा देने का विधान है। मन्त्र को जब तक बोल कर (उचित छन्द में गाकर) नहीं बतलाया जाय, तब तक दूसरा व्यक्ति सही स्वर तन्त्री में उच्चारण नहीं कर पाता। यह एक बार बोल देने भर से नहीं सीखा जा सकता, कई बार बोल कर सही लय और यति का ध्यान रखते हुए मन्त्रोच्चार का अभ्यास कराना पड़ता है, तब दीक्षा पूरी होती है। ऐसा दीक्षित व्यक्ति ही मन्त्र साधना प्रारम्भ करने का अधिकारी होता है।

मंत्र साधना

दीक्षा के उपरांत साधक गुरु के सम्पर्क में रहकर अथवा दूर रहकर गुरु के निर्देशानुसार दीक्षा के अनुरूप साधना करता है। साधना कोई भी हो साधक को निम्नलिखित विघ्नों से बचना चाहिए—

(१)रोग
(२) आलस्य
(३) संशय
(४) प्रमाद (विवेक रहित होना)
(५) अशुद्ध उपलब्धि
(६) जड़ता (मूर्खता)
(७) विषयासक्ति
(८) भोग विलास
(९) एकाग्रता प्राप्त न कर पाना
(१०) एकाग्रता स्थिर न रहना

मन्त्र प्रारम्भ करने से पूर्व यह देख लें कि मंत्र शापित तो नहीं है। बहुत से मंत्रों को शापित (प्रभाव रुद्ध) कर दिया गया है। ऐसे मन्त्रों का शापोद्धार एवम् उत्कीलन करने के पश्चात् ही मन्त्र साधना करना उचित होगा। मन्त्र सिद्ध न होने पर पश्चाताप करना अथवा सिद्ध हो जाने पर उसका प्रदर्शन करना दोनों ही बातें अनुचित हैं। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर उसका उचित उपयोग करना तथा सिद्ध न होने पर उसका पुनः प्रयोग—अभ्यास करना उचित है।

प्रयोजन के आधार पर तान्त्रिक मन्त्रों के विविध प्रकार हैं—रोगोपचारक मन्त्र, प्रत्योपचारक मन्त्र, गुरु मन्त्र, शांति मन्त्र, वशीकरण मन्त्र, पुष्टि मन्त्र, मारण मन्त्र, आकर्षण वा मोहन मन्त्र, उच्चाटन मन्त्र, विद्वेषण मन्त्र, शत्रुपीड़क मन्त्र, प्रेत मन्त्र, स्तम्भन मन्त्र, शिव संकल्प मन्त्र, श्री समृद्धि मन्त्र, कुण्डलिनी मन्त्र, आदि। प्रत्येक मन्त्र के साथ उससे सम्बन्धित इष्ट, जप संख्या, सावधानी, जप की दिशा, नक्षत्र, माला, हवन सामग्री, आसन, वातावरण, पात्रता आदि का विवेचन दिया हुआ रहता है। अपवाद स्वरूप यदि सम्पूर्ण सावधानियों का पालन करते हुए भी कोई मन्त्र अभीष्ट प्रभाव न दे तो भ्रामण, रोधन, वशीकरण, पीड़न, पोषण, शोषण और दाहन आदि सात उपाय क्रमशः तान्त्रिकों द्वारा उपयोग में लाये जाते हैं।

हमारा विषय कुण्डलिनी से सम्बन्धित मन्त्रों के बारे में विस्तृत चर्चा करने की आज्ञा देता है। कुण्डलिनी जागरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति में शक्ति का विस्फोट होता है, जो साधक के पूरे व्यक्तित्व को बदल देता है। वह आनन्दमय हो जाता है। 'अन्तरात्मा आनन्द से परिपूर्ण है' इस अनुभूति के लिए ही योग और ध्यान का अभ्यास किया जाता है जो अन्ततः शान्ति (Peace) और मुक्ति (Liberty) का मार्ग प्रशस्त करता है। तैत्तिरीय उपनिषद कहता है—

आनन्दाद्धैव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्द प्रयन्त्यभिसंविशन्ति॥

(सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों का जन्म आनन्द से हुआ है। आनन्द में ही जीवन जाता है। आनन्द हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।)

कुण्डलिनी जगाने में 'सोऽहम्' मन्त्र अच्छा काम करता है। यह प्रत्येक श्वास प्रश्वास के साथ जपा जाता है। प्रारम्भ में—साँस बाहर छोड़ते समय 'सोऽ' और साँस अन्दर लेते समय 'हम्' का मानसिक या वाचिक जप करें। वाचिक जप में 'सोऽ' की आवाज करने के लिए ओष्ठ खोल कर मुँह से बाहर श्वास फेंकें, फिर साँस अन्दर खींचते हुए 'हम' बोलने के प्रयत्न में ही खुले हुए ओष्ठ बन्द कर लें, और पूरी श्वास नाक द्वारा स्वतः ही अन्दर भर ली जायगी। प्रत्येक बार होठ खोल कर श्वास बाहर फेंकें और गले में आवाज करते हुए नाक से श्वास खींचें। इस प्रकार प्राकृतिक रूप में 'सोऽहम्' का जाप करते रहें।

कुण्डलिनी जागरण के लिए एक मन्त्र 'ऊँ' है। इसका जप 'सोऽहम्' की विधि से साँस बाहर फेंकते समय 'ओऽ' तथा श्वास अन्दर भरते समय गले में 'म ऽऽ' की ध्वनि करते हुए कर सकते हैं। ऊँ के जप की एक और विधि दी है—श्वास बाहर निकालते समय, जब तक श्वास स्वाभाविक रूप से बाहर जाये 'ओऽऽऽ' बोलिए, और जब श्वास बाहर फेंकने में जोर लगाना पड़े तो 'म् ऽऽऽ' की गुंजार प्रारम्भ कर दीजिए और पूरी श्वास बाहर निकलने तक 'म्' की गूँज उठाते रहिए। बाद में इनमें अजपा जाप की स्थिति आ जाती है।

जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ, 'ॐ' का जप सन्यासी के लिए ही सर्वोत्तम है। सांसारिक सुख की कामना चाहने वाले व्यक्ति के लिए नहीं। महात्मा लीओन लैंड्स बर्ग (Leon Landsberg) जो कि भारत में स्वामी कृपानन्द नाम से जाने गये ने ऊँ के उच्चारण की विधि बताते हुए लिखा है कि—"ऊँ का अन्तिम भाग 'म्' मधुमक्खी की भिनभिनाहट के समान कंठ में थरथरायें और इस थरथराहट के स्वर को इतना लम्बा करें जितना अधिक से अधिक एक साँस में उसे किया जा सकता हो।" साथ ही उन्होंने चेतावनी भी दी है कि मन्त्र की असाधारण शक्ति के विचार से शिक्षार्थी इसका अतिशय अभ्यास न करे। पवित्र ओंकार का अभ्यास करने के पहले यह निश्चय करलो कि तुम्हारा हृदय शुद्ध है, कर्म न्याय संगत हैं, कामनाएँ पवित्र हैं, ऐसा न होने से यह मन्त्र हानिकारक ही है।

इसी परिप्रेक्ष्य में गायत्री मन्त्र भी आता है। जगत् गुरु शंकराचार्य कहते हैं—विशुद्ध सतोगुणी मन्त्र 'गायत्री' व्यक्ति को आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए दिव्य दृष्टि और दिव्य शक्ति देता है। इस मन्त्र को गायत्री देवी के आधार पर 'गायत्री' नहीं कहा गया। अपितु यह गायत्री नामक छन्द के आधार पर शब्द संयोजन करके बनाया हुआ मन्त्र है। गायत्री की मूर्ति अथवा गायत्री का इष्ट वास्तव में सरस्वती मूर्ति ही है जो कि पुराणों के अनुसार ब्रह्मा की पुत्री मानी गई हैं। प्राचीन पुरातत्त्वशास्त्री तथा प्राग्वेदकाल संस्कृति के अनेक अन्वेषक एवम् तन्त्र विज्ञान जानने वाले लोग जानते हैं कि ब्रह्मा ने प्रजावर्धन हेतु अपने राज्य काल में प्रत्येक व्यक्ति को ऊँ की साधना में रत रहने का आदेश आपातकालीन ढंग (Emergency Style) में दिया था। जो इसमें सहयोग नहीं करता था उससे ब्रह्मा रुष्ट हो जाते थे। ब्रह्मा के बाद राज्याधिकारिणी सरस्वती रहीं। उन्होंने प्रजा-वर्धन के आदेश को आपातकालीन स्थिति (Emergency Style) से हटा कर आवश्यक स्थिति

(Required Style) में लागू किया। आप लोगों को ध्यान होगा—अपने देश में एक बार परिवार नियोजन (Family Planning) आपात स्थिति जैसे ढंग (Emergency Style) में चलाया गया था, बाद में वह आवश्यक स्थिति के ढंग (Required Style) में चलता रहा।

जैसे आज संसार में जन्म दर घटाने की समस्या है उस काल में जन्म दर बढ़ाने की थी। इसलिए एक पुरुष कई स्त्रियाँ रख लेता था। धीरे-धीरे दशा सुधरी, जन्म दर आवश्यक रूप में बढ़ चुकी तो कई-कई स्त्रियाँ रखने वाली बात में भी सुधार हो गया और त्रेता युग से ही श्रीराम ने 'एक पुरुष एक नारी' वाली बात प्रारम्भ कर दी जो धीरे-धीरे हम लोगों की आदत बन गई। अब समस्या ने विपरीत रूप ले लिया है और जन्म दर घटाना अति आवश्यक हो गया है। प्रतीत होता है कि जहाँ पहले युग में सौ स्त्रियों के बीच एक पुरुष होता था, आगे आने वाले युग में सौ पुरुषों के बीच एक स्त्री न रखनी पड़े। **यदि जनता परिवार नियोजन की गम्भीरता को समझ ले और तदनुसार आचरण करे तो यह स्थिति नहीं आयेगी।** परिवार नियोजन के लिए कुण्डलिनी जागरण में प्रयुक्त होने वाली वज्रोली मुद्रा से अधिक आनन्दपूर्ण उपाय कोई भी नहीं है।

यहाँ कुछ लोग सोच रहे होंगे कि ॐ और गायत्री के बीच में प्रजावर्धन और परिवार नियोजन जैसी बातें क्यों कर आगई? प्रसंग वश संक्षेप में उन्हें स्पष्ट कर दूँ कि तन्त्र ॐ को मिथुन (स्त्री-पुरुष समागम) के रेखा चित्र के रूप में जानता है जिसे वह 'ब्रह्म-सम्बन्ध' का नाम देता है। ब्रह्म कहते हैं आत्मा को, जहाँ एक आत्मा दूसरी आत्मा से आत्मिक तल पर सम्बन्धित हो वही ब्रह्म सम्बन्ध है। इस सन्दर्भ में गायत्री मन्त्र का अर्थ कुछ इस प्रकार बनता है—

ॐ—ब्रह्म सम्बन्ध
भूः—सत
भुवः—चित
स्वः—आनन्द

} ब्रह्म सम्बन्ध सत् चित् आनन्द स्वरूप है।

त त्—उस
सवितुः—सर्वप्रेरक
वरेण्यः—चयन योग्य
देवस्यः—देव की
भगः—योनि को
धीमहिः—धारण करते हैं

} उस सर्वप्रेरक को चयन करने योग्य देवयोनि को (हम) धारण करते हैं।

यः—जो
धीयः—बुद्धि
नः—हमारी
प्रचोदयात्—प्रेरित करे

} जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करे।

'गायत्री सिद्धि' में मैत्रेय मौदगल्य ऋषि से गायत्री का रहस्य समझ लेने के पश्चात् कहते हैं।

'एतद्वा अहं वेद नैतासु योनिष्वतऐ तेभ्यो वा।
मिथुनेभ्य संभवतो ब्रह्मचारी मम पुरायुषः प्रयादिति'

(उन्होंने कहा कि अब मैं इसे जान गया हूँ इन योनियों और इन **मिथुनों में आता हुआ मेरा कोई ब्रह्मचारी** अल्पायु नहीं होगा)। पाठक जानते ही हैं कि यदि सम्भोग खण्डित न हो तो व्यक्ति ब्रह्मचारी रहेगा ही।

सरस्वती के राज्य काल में प्रजावर्धन हेतु प्रयुक्त हुए इस गायत्री मन्त्र के बहुत काल पश्चात् जब यह श्लोक मात्र एक मन्त्र रह गया ऋषि विश्वामित्र ने इसके कुछ विलक्षण प्रभावों पर ध्यान दिया, जिन्हें समान रूप से जमदग्नि, भारद्वाज, अत्रि, गौतम भृगु, कश्यप, वशिष्ठ आदि ने भी अपने अनुभव में उचित ठहराया। ऋषियों ने पाया कि गायत्री श्लोक का मन्त्र की तरह जप करने पर यह अन्तःकरण को निर्मल करता है, धारणा शक्ति में वृद्धि करता है, व्यक्ति को शुद्ध सतोगुणी बनाकर ज्ञान मार्ग में प्रवृत्त करता है। बाद के ऋषियों ने तो यहाँ तक अनुभव किया कि गायत्री जप के बाद यदि कोई व्यक्ति रजोगुणी या तमोगुणी साधना करना चाहे तो उसे गायत्री मन्त्र के जप से दो गुनी संख्या में उस मन्त्र के जप करने के पश्चात् ही उस रजोगुणी मन्त्र की साधना का प्रारम्भिक बिन्दु आरम्भ हो पाता है। यही कारण है कि वैष्णव मार्गी उपासना में गायत्री का बहुत महत्त्व रहा।

गायत्री मन्त्र की पवित्रता को धारण और प्रकट करने के लिए एक विशेष मानदण्ड की पात्रता उत्पन्न करनी होती है। यह पात्रता उस युग के ब्राह्मणों में होती थी इसलिए उन प्राचीन दिनों में यह मन्त्र ब्राह्मणों की परम्परागत निधि के रूप में रहा करता था। सन् १९६४ में बंगलौर में मेरा परिचय रेजीडेन्शियल इन्जीनियर मिस्टर आर. कृष्णमूर्ति के परिवार से हुआ। मेरे गायत्री मन्त्र के उच्चारण और व्याख्या तथा क्रियात्मक प्रयोग से वह इतने प्रभावित हुए कि वे लोग मुझे ब्राह्मण के अलावा किसी दूसरी जाति का मानने को तैयार नहीं थे। क्योंकि उनके क्षेत्र में ब्राह्मण के अलावा किसी और के लिए गायत्री मन्त्र को पढ़ना भी निषेध था, साधना तो बहुत दूर की बात थी। उनके आधार पर गायत्री मन्त्र केवल ब्राह्मण की परम्परागत निधि ही होना चाहिए था। गायत्री को वेद-माता कहा जाता है क्योंकि उष्णिक, सुतल, वृहती, जगती आदि छन्दों की अपेक्षा गायत्री छन्द में वेदों की ऋचायें अधिक हैं अतः यह मान लेना स्वाभाविक था कि गायत्री के बिना वेद ज्ञान दुर्लभ है। यह उसी प्रकार है जैसे आज के परिप्रेक्ष्य में कोई यह कहे कि 'दोहा-चौपाई जाने बिना रामायण ज्ञान दुर्लभ है, क्योंकि प्रचलित रामायण दोहा-चौपाई में ही है। भगवद्गीता के दशमोऽध्याय के ३५ वें श्लोक में भगवान कृष्ण के मुख से धर्म श्री वीर बहादुरसिंह ने अपनी 'कल्याणी काव्य गीता' में कहलवाया है—

सामवेद मैं वृहत्साम मैं गायित्री प्रिय छन्द।
मासों में हूँ मार्गशिर ऋतुओं में वासन्त॥

गायत्री को देवी मूर्ति मान लेना भी हमारे चिंतन के प्रतिकूल नहीं है। हमारे सारे पुराण ऐसे ही मानवीकरणों से भरे पड़े हैं। एक उदाहरण देखिए—दक्ष ने प्रसूति के गर्भ से २४ कन्यायें उत्पन्न कीं। श्रद्धा ने काम को, लक्ष्मी ने दर्प को, धृति ने नियम को, तुष्टि ने सन्तोष को, पुष्टि ने लोभ को, मेधा ने श्रुत को, क्रिया ने दण्ड नय और विनय को, बुद्धि ने बोध को, लज्जा ने विनय को, वपु ने व्यवसाय को, शान्ति ने क्षेम को, सिद्धि ने सुख को और कीर्ति ने यश को जन्म दिया। इन तेरह कन्याओं के पति धर्म हुए। काम से उसकी पत्नी नन्दी ने हर्ष नामक पुत्र पैदा किया, ख्याति ने लक्ष्मी को पैदा किया, अधर्म की पत्नी हिंसा है उससे अनृत नामक पुत्र और विकृति नामक कन्या हुई। उससे भय और नरक नामक पुत्र तथा माया और वेदना नामक कन्याएँ हुईं। माया भय की और वेदना नरक की पत्नी बनीं। माया से मृत्यु उत्पन्न हुआ और वेदना से दुःख नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध का जन्म हुआ। इनके न कोई स्त्री है न पुत्र, ये सब नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं।

जहाँ तक गायत्री के इष्ट का प्रश्न है, प्रचलित गायत्री देवी के चित्र को गायत्री मन्त्र का इष्ट माना जा सकता है। कुछ विद्वान ॐ के चित्र को भी गायत्री के इष्ट रूप में प्रयोग करने की सलाह देते हैं। पवित्रता के मानदण्ड की पात्रता वाला व्यक्ति ही गायत्री की सिद्धि कर सके इसलिए ऋषियों ने इस मन्त्र को शाप दिये हैं। गायत्री मंत्र के जप से पूर्व इसे ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र के शापों से मुक्त किया जाता है। शाप विमोचन के बिना मन्त्र निष्प्रभावी रहता है। कुछ व्यक्ति गायत्री मन्त्र का प्रयोग उसके शब्दों में थोड़ा सा हेर-फेर करके आनन्दमार्गी रूप में, सांसारिक कामनाओं की पूर्ति हेतु करने की सलाह देते हैं। परन्तु, इस मूल गायत्री मन्त्र के अक्षरों में परिवर्तन कर देने से यह गायत्री छन्द अवश्य रहता है। अन्यथा सब बदल जाता है। आप ही सोचिये, जहाँ हम किसी मन्त्र की यति और लय बदलने को तैयार नहीं हैं वहाँ अक्षरों का परिवर्तन कहाँ तक उचित है?

आध्यात्मिक विद्या की विशेषज्ञा श्रीमती ओ' हष्णुहारा ने अपनी पुस्तक 'प्रैक्टीकल योग' (Practical Yoga) में लिखा है—मन्त्र योग का सम्बन्ध पवित्र मन्त्रों के साथ है, जिनके निरन्तर उच्चारण से सफलता और सिद्धि प्राप्त होती है। मन्त्र योग केवल योगियों को ही विशेषता नहीं, सूफी भी इस प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग करते हैं और एक ही शब्द को एक ही स्वर से कई सहस्त्र बार पढ़ते-बोलते हैं। कभी-कभी इस अभ्यास में अतीव चमकीले स्वप्न से दिखाई देने लगते हैं। ईरानी सूफी हिन्दू योगी की अपेक्षा मन्त्र का बहुत अधिक उपयोग करते हैं और पवित्र शब्दों के निरन्तर जप से अत्यन्त आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त करते हैं। सूफी लोग 'इस्मेजलाल' या ईश्वर के अन्य सुन्दर नामों का प्रयोग जप के लिए करते हैं। ये नाम एक सहस्त्र से ऊपर हैं।

गायत्री साधना की तरह ही कर्म-मर्यादा के आधार पर प्राचीन काल में कुण्डलिनी साधना केवल गिने चुने ब्रह्मज्ञ ऋषि ही कर पाते थे, क्योंकि कुण्डलिनी एक शक्ति है और शक्ति सदैव पात्र के हाथ में होनी चाहिए। कुपात्र के हाथ में आने से हानि ही होती है। इस पुस्तक में कुण्डलिनी के षटचक्रों से पूर्व के सम्पूर्ण पृष्ठ साधक को **'योग्य-पात्र'** बनाने के लिए ही हैं।

७

संध्याकाल

जहाँ हम ऐन्द्रजालिक षटकर्मों के चक्कर में पड़ते हैं वहाँ ज्योतिषीय गणनायें अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। यदि हम ज्ञानमार्गी मन्त्रों की बात करें तो काल-गणना अपेक्षाकृत शिथिल रहती है परन्तु फिर भी काल-गणना के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। ज्ञानमार्गी मन्त्रों के लिए विद्वानों ने संध्या (Twilight) काल को सर्वोच्च मान्यता दी है।

अहो रात्रस्य या सन्धिः सूर्य नक्षत्र विवर्जिता।
सा तु संध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥

(दिन और रात के सन्धि काल को जो सूर्य नक्षत्र रहित है, को तत्व ज्ञानी मुनि संध्या कहते हैं।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि २४ घण्टे में दो ही संध्याकाल आते हैं—प्रातः तारों के लोप होने के समय से सूर्योदय तक, शाम को सूर्य छिपने से तारा दर्शन होने तक। यूँ षटकर्मों के आधार पर वशीकरण कर्म में दोपहर से पूर्व, उच्चाटन कर्म में दोपहर, शान्ति कर्म में तृतीय प्रहर, मारण कर्म में सायंकाल तथा अन्य सिद्धि कर्मों में आधी रात में भी उपासना आदि की जाती है। कुण्डलिनी विज्ञान आनन्दमय होते हुए भी ज्ञानमार्गी है अतः यहाँ उससे कोई तात्पर्य नहीं है।

कुछ विद्वान संध्याकाल को संध्या इसलिए कहते हैं कि 'सम्यग् ध्यायन्ति सम्यग् ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा संध्या' (जिसमें परमेश्वर का भली प्रकार ध्यान किया जाय वह सन्ध्या है)। दोनों ही विद्वानों की बातों में बल है, एक कहता है सन्ध्या वह समय है जब दिन-रात का सन्धिकाल हो, और दूसरा कहता है जब परमेश्वर का ध्यान करो तब ही सन्ध्या है। इसके स्पष्टीकरण में जाने के लिए हमें सन्ध्या की आवश्यकता पर ध्यान देना होगा। संध्या को 'ब्रह्म यज्ञ' कहा जाता है। यूँ तो योगी लोग जो कुछ करते हैं वह सभी यज्ञ है, दान है अथवा तप है, इसीलिए सामान्य लोगों और योगी लोगों की संध्या साधना में अन्तर पाया जाता है—

सामान्य संध्या

मन्त्र अधिकतर शब्दार्थ के आधार पर चुने हुए होते हैं।

बाह्य पवित्रता पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

भक्त ईश्वर से भिन्न-भिन्न आवश्यक वस्तुओं को बार-बार माँगता है जैसे कि एक व्यवसायहीन अपाहिज भीख माँगता है

कई मन्त्रों में ईश्वर को भयावह बताकर मनुष्य को धर्म मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया जाता है।

ईश्वर के सामने बैठकर दुखड़ा रोया जाता है और धनादि सांसारिक सुख की भीख माँगी जाती है।

अघमर्षणादि मन्त्रों में जगत् उत्पत्ति आदि का विचार कर ईश्वर की महानता का ध्यान किया जाता है।

प्राणायाम में वायु सेवन तथा ईश्वर गुण का ध्यान किया जाता है।

ईश्वर से प्रार्थना की जाती है कि सभी पदार्थ हमारे लिए शुभ हों।

भक्त मानता है—सम्पूर्ण सृष्टि मायाजाल एवं भ्रम है इसका त्यागकर परम प्राप्ति के लिए ईश्वर से बार-बार याचना करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है।

यौगिक संध्या

मन्त्र अधिकतर आत्मिक प्रभाव (शब्द तरंग) के आधार पर चुने हुए होते हैं।

आन्तरिक पवित्रता को प्राथमिकता दी जाती है।

तत्व योगी मानव योनि में पूरे किये जाने वाले कार्यों का विचार करता है तथा कर्त्तव्य कर्मों को विधि अनुसार करने की प्रेरणा प्राप्त करता है जैसे कि एक सुपुत्र पढ़ लिखकर परिवार एवं समाज के कार्यों में हाथ बँटाता है।

ईश्वर सदैव (कल्याणकारी) बताया जाता है धर्म का निर्वाह ज्ञान देकर कराया जाता है, भय देकर नहीं।

इसमें रोने के स्थान पर दुःख को कम करने के लिए कर्मठ होकर शारीरिक व मानसिक रूप में प्रयत्न करने की प्रेरणा दी जाती है।

इसमें संसार चक्र ज्ञान, तत्व ज्ञान तथा कर्मों से निर्लिप्त होने के बारे में विचार किया जाता है।

प्राणायाम में वायु सेवन करते हुए कुण्डलिनी क्रिया के आधार पर आत्मिक शक्ति की वृद्धि हेतु अभ्यास किया जाता है।

सभी पदार्थों से अधिक से अधिक आनन्द व सुख प्राप्त करने की विधियाँ जानने पर जोर दिया जाता है।

योगी जानता है—ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि भोगने के लिए दी है, विधि अनुसार विभिन्न पदार्थों का प्रयोग करते हुए आनन्द सहित दीर्घायु होकर निर्लिप्त रूप से अपने ध्येय 'मोक्ष प्राप्ति' में तत्पर रहना ही मानव जीवन का उद्देश्य है।

कर्मकाण्ड को प्राथमिकता देते हुए अप्राकृतिक और अस्वास्थ्यकारक नियमों का पालन करके भी शौच अशौच का विचार किया जाता है।

संध्या सामान्य भाषा में भी की जाती है क्योंकि जनसाधारण की आवश्यकता के अनुरूप भाव-श्रृंखला में संजोये शब्दों के आधार पर ही यह संध्या विधि तैयार की जाती है।

एकान्त स्थान के लिए गुफा, कमरे का कोना आदि अशुद्ध वायु वाले स्थान भी चुन लिए जाते हैं तथा सुबह के समय पूर्व की ओर और शाम के समय पश्चिम की ओर मुख करके बैठना शास्त्रीय समझा जाता है।

शारीरिक स्वास्थ्य को प्राथमिकता देते हुए प्राकृतिक नियमों के आधार पर शौच अशौच का विचार किया जाता है।

संध्या मन्त्र जिस भाषा में रचे गये हैं उसी भाषा, उच्चारण और लय में बोलने पर जोर दिया जाता है चूँकि वे आत्मिक प्रभाव के आधार पर शब्द श्रृंखला में संजोये होते हैं, चाहे उनका कुछ अर्थ बनता हो या नहीं।

एकान्त स्थान के लिए ऐसा स्थान चुना जाता है जहाँ शुद्ध प्राकृतिक वायु बह रही हो तथा उदय (प्रातः) अथवा अस्त (सायं) होते सूर्य की लाल किरणें मुख पर पड़ सकें, अतः प्रातः पूर्वाभिमुख बैठना सूर्य-रश्मि सेवन हेतु उपयुक्त समझा जाता है।

तात्पर्य यह है कि ज्ञानमार्गियों के लिए काल गणना के विषय में सर्वोचित समय प्रातःकाल में नक्षत्र लोप होने के समय से सूर्य की किरणें लाल रहने तक है और सायं काल में सूर्य की किरणें लाल होने से नक्षत्र दिखाई देने तक है क्योंकि—

उद्यन्नादित्य कृमीन् हन्तु निम्नोचन् हन्तु रश्मिभि (अथवर्वेद)

अर्थात् उदय होता एवं अस्त होता सूर्य अपनी किरणों से कृमियों (Germs) को नष्ट करता है।

माला—मन्त्र साधना में माला का बहुत महत्व है क्योंकि बिना माला के मन्त्र गणना, सम्भव नहीं हो पाती। प्रयोजन के अनुसार विभिन्न प्रकार की मालायें प्रयोग में आती हैं। कमल गट्टे की माला मारण, उच्चाटन, विद्वेषण आदि कर्मों में प्रयोग की जाती है। कुश की जड़ की गाँठों से बनी माला शांति कर्म में प्रयोग की जाती है। पुत्र-जीवा की माला सन्तान लाभ हेतु प्रयोग में आती है। चाँदी की माला सात्विक या राजसिक कर्म में प्रयोग की जाती है। लाल चन्दन की माला देवी की साधना में प्रयुक्त होती है। भैरवी की साधना में सुवर्ण, शंख, स्फटिक, मणि अथवा मूँगे की माला प्रयुक्त होती है। मूँगे की माला धन लाभ के प्रयोगों में प्रयुक्त की जाती है। रुद्राक्ष की माला सर्वश्रेष्ठ परम कल्याणकारी सौभाग्यवर्धक होती है, इसे मोक्षप्रद, सात्विक, सदाचारी कार्यों के लिए प्रयोग करते हैं। माला के अभाव में कुछ लोग अंगुलियों पर गिन कर गणना करते हैं अतः वह 'कर (हाथ) माला' कहलाती है।

प्रभाव के अनुसार मालाओं का श्रेणी विभाजन किया गया है—सबसे कम प्रभावी कर-माला है जिसका जप अँगुलियों की लाइनों पर किया जाता है। यदि अंगुलियों के

पर्वों पर जप किया जाय तो उसका फल अंगुलियों की लाइनों पर किये गये जप से आठ गुना अधिक माना जाता है। पुत्र-जीवा की माला पर किया गया जप दस गुणा, शंख माला का सौ गुणा, मूँगे की माला सहस्त्र गुणा, रत्न माला का दस सहस्त्र गुणा, स्वर्णमाला का करोड़ गुणा, कुश की जोड की माला का सौ करोड़ गुणा, रुद्राक्ष की माला पर किया गया जप अनन्त गुणा फल देता है, ऐसा माना जाता है। यह श्रेणी विभाजन किस माप दण्ड से किया है? यह बताना तो मुश्किल है। परन्त रुद्राक्ष के बारे में तो आप लोग जानते ही हैं कि रुद्राक्ष धारण करने वाला रक्त चाप, हृदय रोग आदि भौतिक व्याधियों से मुक्त हो जाता है, बशर्ते कि वह असली हो। रुद्राक्ष के दानों में विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ स्वतः ही निहित होती हैं। इसलिए माला के रूप में रुद्राक्ष का सर्वोच्च एवम् विशिष्ट स्थान है। क्योंकि वह ब्रह्म ज्ञान और भौतिक समृद्धि दोनों ही प्रदान करता है। केवल देवी साधना में रुद्राक्ष, कमल गट्टा एवं पुत्र-जीवा की माला का निषेध है। कुण्डलिनी के साधक रुद्राक्ष का प्रयोग कर सकते हैं।

हवन

साधना में हवन का अपना विशेष महत्व है इसमें प्रयुक्त होने वाली सामग्री में पड़ने वाली औषधियों का चुनाव बहुत सावधानी से करना चाहिए। हवन का महत्व वैज्ञानिक है। हवन से उत्पन्न सुगन्ध और धुँआ वायुमण्डल शुद्ध करता है। विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ होम करने से भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना हेतु वातावरण तैयार होता है।

हवन की वेदी गोल, चौकोर, त्रिकोणी आदि कई प्रकार की प्रयोग में आती है। सामान्यतः गोल या चौकोर वेदी का प्रयोग किया जाता है।

हवन के लिए काष्ठ (लकड़ी) जिन्हें समिधाएँ कहते हैं आम, गूलर, पीपल, फलास आदि की उचित रहती हैं।

हवन सामग्री जप संख्या के आधार पर तैयार की जाती है। जितनी संख्या में जप किया है उसका दसवाँ भाग हवन में आहुतियाँ दी जाती हैं। हवन सामग्री के लिए निम्नलिखित औषधियाँ पंसारी के यहाँ से लेकर कूट कर तैयार कर लें—

जौ (१ भाग), चावल (२ भाग), तिल (३ भाग), शक्कर (४ भाग), घी (१/४ भाग), गरी (१/४ भाग), छुहारा (१/४ भाग), किशमिश (१/४ भाग), बादाम (१/४ भाग) चिरोंजी (१/४ भाग), मुनक्का (१/४ भाग), मखाना (१/४ भाग), गूगल (१/४ भाग), चन्दन चूरा (१/४ भाग), जावित्री (१/४ भाग), लोंग (१/४ भाग), दालचीनी (१/४ भाग), अगर (१/४ भाग), जायफल (१/४ भाग), इलायची (१/४ भाग), आंवला (१/४ भाग), कपूर कपरी (१/४ भाग), इन्द्र-जौ (१/४ भाग), गिलोय (१/४ भाग), नाग केशर (१/४ भाग), बाल छड़ (१/४ भाग), पटोल-पत्र (१/४ भाग), पंवारबीज (१/४ भाग), मुलहटी (१/४ भाग), लाल चन्दन (१/४ भाग), असगंध (१/४ भाग), केशर (१/१० भाग), मोचरस (१/४ भाग), ब्राह्मी (१/४ भाग), शंख पुष्पी (१/४ भाग), पुष्कर-मूल (१/४ भाग), मजीठ (१/४ भाग), घाम-पुष्प (१/४ भाग), खस (१/४ भाग), गोखरू (१/४ भाग), शतावर (१/४ भाग), छरीला (१/४ भाग), देवदार (१/४ भाग), नागर मौथा (१/४ भाग)।

पूजन हेतु अन्य आवश्यक वस्तुएँ—सिंदूर, कपूर, पुष्प, रोली, मोली (कलावा), गंगाजल, अक्षत आदि सामान्य पूजन की वस्तुएँ हैं। विशिष्ट पूजन हेतु विशेष सामग्री का उल्लेख यथास्थान दिया रहता है। अर्घ्यदान हेतु ताँबे के पात्र (कलश) में अन्दर लाल चंदन लगा कर (पोत कर) जल भरें और उसमें निम्नलिखित वस्तुएँ डाल कर हवन की बेदी के पास रख दें—

१. तिल ५० ग्राम

२. चावल ५० ग्राम

३. कुशा के अग्र भाग १० ग्राम

४. शाली १० ग्राम

५. राई (काली) ५० ग्राम

६. लाल कनेर के फूल ५० ग्राम

७. लाल चन्दन ५० ग्राम

८. गौरोचन १० ग्राम

९. केशर १ ग्राम

१०. जावित्री १० ग्राम

११. बाँस के जोड़ पर लगने वाले जौ १० ग्राम

१२. जल शुद्ध ५ लीटर

हवन की प्रत्येक घृताहुति के पश्चात् बची हुई बूँद इस कलश के पाने में डालते जायँ फिर हवन के अन्त में इन एकत्र बूँदों का घी हाथ में मल कर होमाग्नि से तपाकर अपने चेहरे पर मलें।

पूजन के अन्त में घुटने धरती परे टिका कर हाथ में यह कलश लेकर सिर से ऊपर उठा कर सूर्य की ओर मुँह करके इस प्रकार अर्घ्य दें कि पानी की धार में से छन कर सूर्य की किरणों के सात रंग नग्न वक्ष आदि पर पड़ें। यह इन्द्र-धनुषी किरणें अतीव स्वास्थ्यवर्धक होती हैं।

मैंने देखा है, लोग बड़ी-बड़ी कठिन साधनाएँ करते हैं, बहुत सा धन व्यय करते हैं, समय का व्यय करते हैं, बहुत-सा श्रम करते हैं। दुनिया भर का आडम्बर करके अपने यहाँ पूजन-हवन-ध्यान आदि का आयोजन करते हैं, और उनमें छोटे-छोटे ऐसे 'पाइन्ट' छोड़ जाते हैं जो कि वास्तव में एक आयोजन को फलीभूत करते हैं। उनके न होने पर वह आयोजन कोरा कर्मकांड भर रह जाता है, आध्यात्मिक लाभ नहीं देता। ऐसे व्यर्थ आयोजनों से बचना चाहिए और महत्वपूर्ण सूत्रों पर ध्यान देना चाहिए। उदाहरण के लिए—हवन में ऐसी सामग्री का उपयोग करना जो दूषित औषधियों से युक्त न हो अथवा अनुपयोगी वस्तुओं से निर्मित न हो। सूरज को जल चढ़ाने के विचार से सादा पानी से अर्घ्य न देना। बिना उचित अनुपात के प्रसाद का पंचामृत या चरणामृत तैयार करना। हवन सामग्री में वस्तुओं का अनुपात ठीक न होना। मन्त्र का लय हीन न होना आदि। यहाँ मैं अधिकतर उन्हीं बातों की ओर संकेत कर रहा हूँ, जिनमें लोग अक्सर चूक जाते हैं।

सामान्य तान्त्रिक हवन पद्धति

तान्त्रिक पुस्तकों में अधिकतर **मन्त्रों** के प्रयोग अथवा सिद्धि काल में जप के पश्चात् जप संख्या की दशांश आहुतियों के हवन की बात सामान्यतः की जाती है, परन्तु हवन पद्धति कहीं नहीं बताई जाती। परिणामस्वरूप यज्ञ विधि न जानने के कारण लोग घास कूड़े के समान लकड़ी एकत्र कर, आग जला कर उन पर आहुतियाँ और घी आदि सामग्री डालकर अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु **"महर्षि यतीन्द्र तान्त्रिक अग्निहोत्र पद्धति"** में से 'हवन-पद्धति' दी जा रही है। साधक ध्यान रखें, जहाँ किसी विशेष प्रकार के हवन की व्यवस्था हो अथवा विशेष पद्धति वर्णित हो वहाँ उसे ही प्राथमिकता दें, अथवा किसी विज्ञ पुरुष की सलाह ले लें। सामान्य घरेलू यज्ञ करने के लिए सिद्ध मन्त्र की आहुतियाँ छोड़कर शेष पूरी पद्धति से हवन कर सकते हैं।

आचमन—निम्न तीन मन्त्रों से एक-एक करके हाथ की हथेली में थोड़ा पानी लेकर तीन बार में एक-एक मन्त्र बोलते हुए पी लें। मन्त्रों के बोलते समय गले में शुष्कपन न रहे यही इसकी भौतिक आवश्यकता है। जो लोग स्नान के तुरन्त बाद हवन में बैठ रहे हों, उन्हें आचमन आवश्यक नहीं है। आचमन की दूसरी आवश्यकता 'पवित्र हेतवे' तथा 'शुद्धि हेतवे' है। एक हवन से दूसरे हवन में आये व्यक्ति अथवा शुद्ध होकर आये व्यक्ति आचमन न करें तो कोई बाधा नहीं है। आचमन के लिए सीधे हाथ की हथेली में पानी लेकर मन्त्र पाठ करें—

१. **ॐ शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।संयोरभि स्त्रवन्तु नः॥**

अब हथेली के पानी को पी लें।

बायें हाथ से चम्मच द्वारा पुनः सीधी हथेली में उसी प्रकार पानी लें और दूसरे मन्त्र का पाठ करें—

२. **ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा।**
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षीं स वाह्याभ्यान्तरः शुचि॥

पुनः हथेली के पानी को पी लें।

एक बार फिर सीधी हथेली में पानी भरें और तीसरा मन्त्र बोलें—

३. **वेदनामपि वेदाय देवानां परमात्मने।**
आचमनम् कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धि हेतवे॥

इस पानी को भी पी लें।

अब थोड़ा पानी लेकर सीधे हाथ को धो लें।

आवाहन—आचमन से अपनी शुद्धि कर लेने के पश्चात् साधक अपने इष्ट देव अथवा देवी के आवाहन हेतु निम्न मन्त्रों का उपयोग करे। यदि सामान्य गृहशुद्धि हेतु यज्ञ किया जा रहा हो तो आवाहन और स्वागत मन्त्रों की आवश्यकता नहीं होती।

रोली, चन्दन अथवा पेवड़ी आदि का तिलक तैयार करके अनामिका (तीसरी अंगुली) के पोर में लगाये और मन्त्र पाठ करे—

४. **देवेश भक्ति सुलभ परिवार समन्वित,**
यावत्वां पूजयिष्यामि तावत् देव इहावह।

चन्दन लगी हुई अनामिका अँगुली से अपने मस्तक पर साधक तिलक लगा ले। अब साधक इष्ट का ध्यान करते हुए दोनों हाथ ऊपर करे और मन्त्र बोले—

५. **आगच्छवन् देव स्थाने चात्रस्थितोभव।**
यावत्पूजां करिष्यामि तावत् त्वं सन्निधौ भव॥

इष्ट के स्थान (आसन) की ओर संकेत करें जैसे किसी अतिथि के आने पर उन्हें बिठाने के लिए आप हाथ से संकेत करते हैं।

यदि भौतिक वस्तु का 'इष्ट' का आसन हो तो तिलक की रोली चन्दन दूसरे मन्त्र से आसन पर छिड़क दें।

स्वागत—दोनों हाथ जोड़कर, एक दो पुष्प हाथ में लेकर मन्त्र बोलें—

६. **स्वागतं देव देवेशि मद्भाग्यात् त्वमिहागता।**
प्राकृतं मामदृष्ट्वा त्वं बालवत् परिपालय॥

पुष्पों को इष्ट के आसन पर चढ़ा दें। यदि आसन साधक का मस्तक हो तो पुष्प को मस्तक से लगा कर हवन की वेदी के पास रख दें।

प्रार्थना—हाथों को ध्यान मुद्रा अथवा नमस्कार मुद्रा में किये हुए आठ मंत्रों का लय युक्त पाठ करें—

७. **ॐ विश्वानिदेव सवितुर्दुरितानि परासुव।**
यद्रभद्रन्तन्न आसुव॥

८. **हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**
सदाधार पृथ्वींद्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम॥

९. **ॐ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।**
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

१०. **यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।**
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

११. **येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।**
यो अंतरिक्षे रजसो विमानः, कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

१२. **प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।**
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयं स्याम् पतयो रयीणाम्॥

१३. **स नो बंधुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।**
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥

१४. **अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।**
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिम् विधेम्॥

अग्निहोत्र—समिधायें आवश्यकतानुसार वर्गाकार, त्रिभुजीय, षट्भुजीय आदि के आकार में वेदी में चुन कर थोड़ी सी रखें। सामान्यतः वर्गाकार में समिधायें लगाते हैं। खड़ी समिधायें वेदी में नहीं लगाते चूँकि चिता की वेदी खड़ी लकड़ियों वाली होती है। अग्न्याधान के लिए रुई की फूलबत्ती बना कर समिधाओं के मध्य वेदी में रख दें अथवा कपूर से अग्न्याधान करें।

माचिस की दो तीली एक साथ लेकर प्रज्वलित करें और निम्न मन्त्र बोलते हुए **कपूर अथवा घी लगी हुई रुई की फूलबत्ती को प्रज्वलित कर दें**—

१५. **ॐ भूर्भुवः स्वः**

१६. **ॐ भूर्भुवः स्वद्यौरिवभूम्ना पृथिवीववरिम्णा।**
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

अग्नि प्रज्वलित करने हेतु घृत की आहुति दें।

१७. **ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहितवमिष्टापूर्ते सँ ऽ सृजेथामयंच।**
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत॥

घृतयुक्त पतली समिधायें प्रज्वलित अग्नि पर इस प्रकार रखें कि ज्वाला प्रदीप्त हो। पहली घृतयुक्त समिधा निम्न मन्त्र से—

१८. **ॐ अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्धवर्धय**
चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्च सेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।
इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम॥

दूसरी समिधा इन दो मन्त्रों के पाठ के पश्चात् रखें—

१९. **ॐ समिधाग्निम् दुवस्यत घृतैबोर्धयतातिथिम्।**
अस्मिन हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम॥

तथा—

२०. **ॐ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।**
अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जात वेदसे इदन्नमम॥

अब तीसरी घृतयुक्त समिधा निम्न मन्त्र से—

२१. **ॐ तन्त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि।**
बृहच्छोचाय विष्ठय स्वाहा। इदमग्नये अंगिरसे इदन्नमम॥

पाँच घृताहुतियाँ निम्न मन्त्र से पाँच बार पाठ करके दें—

२२. **ॐ अयन्तइध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व**
वर्द्धस्वचेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया
पशुभिर्ब्रह्म वर्च सेनान्नाद्येन समेधय
स्वाहा। इदमग्नये जावेदसे इदन्नमम॥

जल प्रसेचन—पहले पूर्व की ओर, निम्न मन्त्र से—

२३. **ॐ आदितेऽनुमन्यस्व**

फिर पश्चिम की ओर—

२४. **ॐ अनुमतेऽनुमन्यस्व**

अब उत्तर की ओर—

२५. **ॐ सरस्वत्यै अनुमन्यस्व**

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल प्रसेचन करें—

२६. **ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।**
दिव्यो गंधर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचम् नः स्वदतु।

आधारावाज्याहुति के लिए घृत की आहुतियाँ निम्न मन्त्रों से दें।

उत्तर की ओर—

२७. **ॐ अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम॥**

फिर दक्षिण की ओर—

२८. **ॐ सोमाय स्वाहा। इदम् सोमाय इदन्नमम॥**

अब मध्य में दो आहुतियाँ—

२९. **ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदम् प्रजापतये इदन्नमम॥**

३०. **ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदम इन्द्राय इदन्नमम॥**

महा व्याहृत्याहुतियाँ भी घृत से दें—

३१. **ॐ भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम॥**

३२. **ॐ भुवर्वायवे स्वाहा। इदम्वायवे इदन्नमम॥**

३३. **ॐ स्वरादित्याय स्वाहा।इदमादित्याय इदन्नमम॥**

३४. **ॐ भूर्भुवः स्वरग्निवृदित्ययेभ्यः स्वाहा।**
इदमग्नि वाध्वादित्येभ्यः इदन्नमम॥

प्रातर्होम मन्त्रों से सामग्री एवम् घी की आहुतियाँ दें—

३५. **ॐ सूर्यो जयोतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥**

३६. **ॐ सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥**

३७. **ॐ ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥**

३८. **ॐ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा॥**

सायं कालीन होम मन्त्र (सामग्री एवं घी)—

३९. **ॐ अग्निः ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥**

४०. **ॐ अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्च स्वाहा॥**

४१. **ॐ अग्नि ज्योंतिः ज्योंतिरग्निः स्वाहा ॥**

४२. **ॐ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥**

नवग्रह आहुतियाँ मीठी खीर में घी मिला कर दें। अन्य साथी सामग्री तथा घी की आहुतियाँ दे सकते हैं—

४३. **जपा कुसुम संकाशं काश्य पेयं महाद्युतिम्।**
तमोऽरिं सर्व पापघ्नंप्रणतोऽस्मि दिवाकरम् स्वाहा ॥

४४. **दधि शंखमुषारामं क्षीरोदार्णव सम्भवम्।**
नमामि शशिनम् सोमम् शम्भोर्मुकुट भूषणम् स्वाहा ॥

४५. **धरणी गर्भ संभूतं विद्युत्कांति समप्रभम्।**
कुमारं शक्ति हस्तं ते मगलं प्रणमाम्यहम् स्वाहा ॥

४६. **प्रयंगुकलिका श्यामम् रूपेणाप्रतिमम् बुधम्।**
सौम्यं सोम्य गुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम् स्वाहा ॥

४७. **देवानां च ऋषीणां च द्युं कांचन सन्निभम्।**
बुद्धिभूतं त्रिलोकस्य तं नमामि बृहस्पतिम् स्वाहा ॥

४८. **हिम कुंद मृणालाभं दैत्यानां परमम् गुरुम्।**
सर्वशास्त्र प्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम् स्वाहा ॥

४९. **नीलंजन समाभासं रवि पुत्रं यमाग्रजम्।**
छाया मार्तंड सम्भूतम् तं नमामि शनैश्चरम् स्वाहा ॥

५०. **अर्ध कायं महावीर्यं चन्द्रादित्य विमर्दनम्।**
सिंहिकागर्भ संभूतं तं राहुँ प्रणमाम्यहम् स्वाहा ॥

५१. **पलाश पुष्प संकाशं तारका ग्रह मस्तकं।**
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् स्वाहा ॥

प्रातः सायं व्याहृत्याहुतियाँ (खीर घी एवं सामग्री से)—

५२. **ॐ भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।**
इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ॥

५३. **ॐ भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा।**
इदम्वायवे ऽपानाय इदन्नमम ॥

५४. **ॐ स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।**
इदमादित्याय व्यानाय इदन्नमम ॥

५५. **ॐ भूर्भुवः स्वरग्निवाव्यादितेभ्य प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा।**
इदमग्नि वादिव्यात्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्नमम ॥

५६. **ॐ आपोज्योतिरसोऽमृतम् ब्रह्म भूर्भुवः स्वरो स्वाहा ॥**

५७. **ॐ यां मेधां देव गणाः पितरश्चोपासते।**
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनम् कुरु स्वाहा ॥

५८. ॐ विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रम् तन्न आसुव स्वाहा॥

५९. ॐ अग्नेनय सुपथाराये अस्मान् विश्वानि देव वयुनाम्विद्वान।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम॥

सिद्धि-मन्त्र की दशांश आहुतियाँ—सामान्यतः घी एवं सामग्री का ही प्रयोग होता है, यदि जप के मन्त्र के साथ किसी विशेष पदार्थ की आहुति का उल्लेख हो तो जप कर्ता उस पदार्थ की आहुति दे तथा अन्य सहायक घी एवं सामग्री का उपयोग कर सकते हैं अथवा चुपचाप बैठे रहें। किसी विशेष मन्त्र का जाप पूरा हो जाने पर जप संख्या का दसवाँ भाग (जैसे १००० बार मन्त्र का जाप किया तो १०० बार उसी मन्त्र से) आहुतियाँ दी जायेंगी। आहुतियों में पल्लव स्वाहा का लगेगा अथवा फट् आदि का वह मन्त्र के साथ निर्णीत होता है। सभी आहुतियाँ प्रज्वलित अग्नि में दें, धुँआ सुलगती अवस्था में नहीं। सामान्य हवन में सिद्ध मंत्र के स्थान पर गायत्री मन्त्र का प्रयोग कर सकते हैं, उसकी ५, ७ अथवा ११ आदि आहुतियाँ दे सकते हैं—

६०. ॐ भू र्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गोदेवस्य धीमहि।
धियोयोनः प्रचोदयात् स्वाहा॥

(मन्त्र को उचित लय में ही बोलने का प्रयत्न करें)।

स्विष्ट कृति आहुति—पाकशाला में जो कुछ मिष्ठान्न प्रशाद स्वरूप तैयार किया गया हो उससे एक आहुति दें। चाहें तो मिष्ठान्न के साथ सामग्री का मिश्रण कर सकते हैं—

६१. ॐ यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यून मिहाकरम्।
अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहतं करोतु मे।
अग्नये स्विष्ट कृते सुहुतहुते सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां कामानाम्।
समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा।
इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्नमम॥

प्रजापत्याहुति—मौन रूप में बिना बोले केवल घृत से आहुति दें।

६२. ॐ प्रजापतये स्वाहा।
इदं प्रजापतये इदम् न मम॥

आशीर्वाद आहुति—(सामग्री से)

६३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नमः सर्वाधाराय भगवते अस्य मम (नाम-गोत्र) सर्व रोग विनाशाय ज्वल ज्वल एनं दीर्घायुष्यं कुरु कुरु स्वाहा।

यदि यज्ञ होता द्वारा आशीर्वाद किसी बच्चे को जन्म दिन आदि के अवसर पर दिया जाना हो तो बच्चे के ऊपर सामग्री घुमाकर आहुति दें। अन्य यज्ञ में बैठे सहायक चावल से बच्चे को अभिमन्त्रित करने के लिए 'स्वाहा' शब्द के साथ बच्चे पर चावल छोड़ें।

अब सभी सहायक हाथों में पुष्प दल लेकर (चावलों के समान ही) निम्न मन्त्र बोल कर बच्चे पर छोड़ें और यज्ञ होता बच्चे का तिलक करे अथवा पुष्प माला अर्पित करे।

६४. **सर्वाधाराय शांताय नमः परमब्रह्मणे।**
दीर्घायुष्यं प्रयच्छास्य सर्वान् रोगान् विनाशय॥

पूर्णहुति—निम्न तीन मन्त्रों से शेष सामग्री को तीन आहुतियों में ही समाप्त कर दें।

६५. **ॐ पूर्णादर्वि परापता सुपूर्णा पुनरापतविक्रीण व सतकृतोबभूव।**

६६. **ॐ पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।**
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

६७. **ॐ सर्वं वै पूर्ण ऽँ स्वाहा॥**

शेष घृताहुति—यदि घृत अधिक हो तो खड़े हो कर अन्यथा बैठ कर बर्तन टेढ़ा करते हुए धीरे-धीरे घृत की धारा वेदी में डालें।

६८. **ॐ वसो पवित्र मसि शतधारम् वसो पवित्र मसि सहस्त्र धारम्**
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोपवित्रेण शत धारेण शुध्वा कामधुक्षः।

उपस्थान—अग्नि होत्र काल में पानी के बर्तन में बूँद-बूँद कर छोड़े हुए घृत को लेने के लिये तर्जनी तथा मध्यमा अँगुली बर्तन में डालें फिर उनसे लगे हुए घृत को हथेली पर मल कर दोनों हाथ प्रज्वलित वेदी की ओर करके गरम करें और मन्त्र पाठ करते हुए चेहरे पर मलें।

६९. **ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रुणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतम दीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात॥**

७०. **देहि सौभाग्यं आरोग्यं देहि मे परमम् सुखम्।**
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जाहि॥

७१. **सर्व मंगलमांगल्ये शिवेसर्वार्थ साधिके।**
शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।

आरात्रिक (आरती)— वेदी अथवा दीपक पर हाथ तपा कर सारे शरीर पर छुआ कर अनुभव करें कि प्रज्वलित अग्निशिखा का सम्पूर्ण तेज मेरे में आ गया है।

७२. **घोराय घोरतमाय महारौद्राय वीरभद्राय**
ज्वालामालिनेसर्वदुष्टोपसंहर्त्रे हुम्. फट् स्वाहा।

समर्पणम्—एक दान से दूसरे दान के बीच के समय की आय की गणना करें और उस **आय के शतांश का अर्थ दान** निम्न तीन मन्त्रों में से किसी एक को बोलते हुए करें। सामान्य यज्ञ में—

७३. **हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्माणाः धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः तत ईश्वरं नमस्कुर्यात्॥**

मन्त्र अथवा तन्त्र सिद्धि यज्ञ में—

७४. **ॐ परब्रह्म परमात्मने नमः जगदुत्पत्ति स्थिति प्रलय कराय ब्रह्मा हरिहराय त्रिगुणात्मने सर्व कौतुकानि दर्शय दत्तात्रेयाय नमः तंत्रान् सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।**

अर्थ सिद्धि पूजा में—

७५. **श्री शुल्के महाशुल्के कमल दल निवासे श्री महालक्ष्मी नमो नमः।**

ॐ ह्री श्रीं क्रीं श्रीं क्रीं क्लीं श्री लक्ष्मी मम गृहे धन पूरये पूरये चिन्तायै दूरये दूरये स्वाहा ॥

शांति पाठ—यदि यज्ञ कर्त्ता साधक अकेला है तो वह ध्यान मुद्रा अथवा नमस्कार मुद्रा में बैठे। अन्यथा 'होता' तथा उसके सहायक हाथ में पुष्प लेकर शेष उपस्थित समुदाय पर पुष्प वर्षा करेंगे तथा अन्य लोग ध्यान अथवा नमस्कार मुद्रा में बैठे रहेंगे।

७६. **द्यौ शांतिरन्तरिक्ष ऽँ शांतिः पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्ति र्ब्रह्म शान्तिः सर्व ऽँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।**

क्षमा पाठ—(नमस्कार मुद्रा में)

७७. **भूमौस्खलित पादानां भूमिरेवावलम्बनम्।**
त्वायिजात पराधानां त्वमेव शरणं शिवे।

७८. **यदुक्तं यदभावेन पत्रं पुष्पं फलम् जलम्।**
निवेदितं च नैवेद्यं गृहाण त्वनुकम्पया॥

७९. **अपराध सहस्त्राणि क्रियन्ते हर्निश मया।**
दासोयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि।

८०. **आवाहनम् न जानामि न जानामि विसर्जनम्**
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि॥

८१. **मंत्र हीनं क्रिया हीनं भक्ति हीनं सुरेश्वरि।**
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्ण तदस्तु मे।

८२. **ज्ञानतो ऽज्ञानतो वा थ यन्मया क्रियते शिवम्।**
मम कृत्यमिदं सर्वंमिति देव क्षमस्व मे॥

विसर्जन—इष्ट देव का आवाहन किया गया हो तो विसर्जन होगा अन्यथा नहीं। (नमस्कार मुद्रा में)

८३. **गच्छ गच्छ परस्थाने स्वस्थाने परमेश्वर।**
यं हि ब्रह्मादयो देवाः न विदुः परमम् पदम॥

८४. **तिष्ठ तिष्ठ परस्थाने स्वस्थाने परमेश्वर।**
यत्र ब्रह्मा दयो देवाः सर्वे तिष्ठन्ति मे हदि॥

यदि 'इष्ट' देवी हो—

८५. **उत्तमे शिखरे देवि, भूम्यांपर्वत मूर्धनि।**
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथा सुखम्॥

किसी इष्ट का आवाहन न किये जाने पर निम्न मन्त्र बोल कर पूजा की पूर्णता करें—

८६. **ॐ देवागातुविदो गातु वित्वागातुमित**
मनसस्पत इमम् देव यज्ञम् स्वाहा वाते धाः॥

अर्घ्य समर्पण—यज्ञ का शेष जल सूर्य की ओर मुँह करके अर्घ्य रूप में चढ़ाने का विधान है। इस जल को गृह शुद्धि हेतु दीवारों आदि पर भी छिड़का जा सकता है। जल को विसर्जित करते समय मन्त्र पाठ करें—

८७. **एहि सूर्य सहस्त्रांशो तेजोराशे जगत्पते।**
अनुकम्पय मां देव गृहाणर्ध्यं नमो स्तुते॥

प्रशाद वितरण—स्विष्ठ कृत आहुति में प्रयुक्त मिष्ठान्न का प्रशाद वितरण करें। पहले कन्याओं को देकर तब अन्य लोगों को दें।

नोट—यदि स्थानीय भाषा में प्रार्थनायें करने का सुयोग हो तो विसर्जन से पूर्व कर सकते हैं। यदि 'इष्ट' पर धारणा (Concentration) का अभ्यास करना हो तो उस मूर्ति आदि की शुद्ध घी के दीपक से आरती उतार कर ही लगभग एक मीटर की दूरी पर बैठ कर प्रार्थना मन्त्रों के पश्चात् अग्न्याधान से पूर्व अभ्यास करें।

अनुपात विशेष

अष्टांग सामग्री—जो लोग अष्टांग हवन सामग्री प्रयोग करना चाहें (अष्टांग हवन की बात मन्त्र के साथ ही लिखी होती है, नहीं लिखी हो तो सामान्य हवन ही होगा।) वे जौ, चावल, तिल आदि के अनुपात का विशेष ध्यान रखें।

१. जौ—एक भाग

२. चावल—दो भाग

३. तिल (काले)—तीन भाग

४. शक्कर, बूरा—चार भाग

५. चन्दर चूरा सुगन्ध वाला (सामान्यत: बाजार में इत्र निकलने के पश्चात् का बचा हुआ छूँछ चन्दन चूरा मिलता है, वह व्यर्थ ही है)।

६. अगर

७. तगर

८. नागर मौथा

चंदन चूरा, अगर, तगर, नागर मौथा किसी विशेष अनुपात में नहीं हैं, फिर भी इन्हें जौ के बराबर मात्रा में ले ही लेना चाहिये। सभी वस्तुएँ सामग्री में मिला दें।

पंच मेवा—केशर तथा पंच मेवा भी सामग्री में मिलाने का विधान है। पंच मेवाओं में बादाम, नारियल, किशमिश, छुहारा और पिस्ता का नाम आता है अन्य मेवायें गौण हैं। पंच मेवायें समान अनुपात में ली जा सकती हैं, और सामग्री में मिला कर प्रयोग की जा सकती हैं।

पंचामृत—पंचामृत में दूध, दही, घी, मिश्री (चीनी) और शहद का मिश्रण होता है। उसका अनुपात निम्न प्रकार है—

१. दूध से आधा दही

२. दही से आधा घी

३. घी से आधी मिश्री (कूँजे वाली मिश्री ही विशेष रूप से प्रयोज्य है, उसके अभाव में चीनी का प्रयोग भी होता है)।

४. मिश्री से आधा शहद (मधु)

उचित अनुपात में मिश्रित योग ही 'अमृत' का कार्य करते हैं। अनुचित मात्रा में सेवन किये गये अमृत भी 'विष' बन जाते हैं।

गुरु मन्त्र

अन्य मन्त्रों की तरह ही गुरु मन्त्र भी एक सामान्य मन्त्र होता है परन्तु वह किसी व्यक्ति विशेष के लिये अन्य मन्त्रों से भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि **गुरु मन्त्र उस व्यक्ति का एक मात्र 'फ्रीक्वेन्सी मन्त्र' होता है।** जिस प्रकार दुश्मन के ट्रान्समीटर की फ्रीक्वेन्सी का पता लगा कर आप दुश्मन को बीसियों प्रकार से मात दे सकते हैं, इसी प्रकार आपके गुरु मन्त्र (अर्थात् आपकी फ्रीक्वेन्सी) का पता लग जाने पर कोई भी व्यक्ति आपको दूर बैठे कन्ट्रोल कर सकता है। यही कारण है कि गुरु मन्त्र को अत्यन्त गुप्त रखा जाता है, अन्यथा गुरु प्रदत्त सामान्य मन्त्र को गुप्त रखने की कोई आवश्यकता नहीं होती। चूँकि गुरु मन्त्र व्यक्ति का 'मेन फ्रीक्वेन्सी मन्त्र' होता है अत: कई प्रकार से गणना करके ही निकाला जाता है। 'मन्त्र गणना' के विषय में पहले ही कह चुका हूँ। पुनरावृत्ति का कोई लाभ नहीं है।

उपवास

तपस्या में उपवास का अपना महत्व है। बहुत से लोग पेट को सही रखने के विचार से अथवा स्वास्थ्य के विचार से उपवास की बात करते हैं, हमें ऐसे रोगियों के बारे में बात नहीं करनी है। **धर्म स्वस्थ व्यक्ति के धारण करने की वस्तु है।** स्वस्थ व्यक्ति का उपवास से क्या सम्बन्ध है? जिस ईश्वर की हम इतनी महिमा गाते हैं, उसी ईश्वर के बनाये इस पेट को हम क्यों खाली छोड़ें ? खाली छोड़ना ही यदि धर्म है तो ईश्वर इसे ठोस बना सकता था। थोड़ा सा सोचने की बात है, निश्चय ही हम लोग कहीं गलती पर हैं। इस पेट को खाली छोड़ने के पीछे अवश्य ही कोई महान उद्देश्य होगा।

उपवास का अर्थ है (उप + वास) पास बैठना। किसके पास बैठना—आत्मा के अथवा परमात्मा के? अब तक परमात्मा के नाम पर हम बहुत ठगी करते आये हैं अत: पहले आत्मा की बात ही कर लें। जब कोई व्यक्ति गहरे में अपने पास होता है (अपने ध्यान में मग्न होता है) तो वह दूसरे सारे कार्य (यहाँ तक कि अपने शरीर सम्बन्धी कार्य भी) भूल जाता है। जब आप अपनी दुकान में या आफिस में पहुँच जाते हैं तो बहुत से अपने घरेलू कार्य और शारीरिक कार्य (जैसे भूख लगना, पेशाब लगना आदि) भी भूल जाते हैं। जो व्यक्ति आत्म ध्यान (कुण्डलिनी क्रिया) में मग्न होता है वह अपने शारीरिक धर्म (भूख

आदि) भूल जाता है। ऐसे व्यक्ति को हम कहते हैं कि वह उपवास कर रहा है। इस उपवास में उसे अल्पाहार करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि 'ध्यान' करने में तीन चौथाई (३/४ भाग) समय प्राणायाम एवं एकाग्रता (Concentration) में लगता है जिसमें पेट की सारी पेशियाँ हिलती हैं। ऐसी दशा में जो लोग एकदम खाली पेट ध्यान करने (कुण्डलिनी जगाने) बैठते हैं उन्हें सूखी उल्टियाँ (उवाक) आने लगती हैं। इसी प्रकार जो पेट भर कर कुण्डलिनी जगाने बैठते हैं, उन्हें भी उल्टी होती हैं। यह क्रियात्मक (Practical) बात है। इसलिये आत्म ध्यान अर्थात् कुण्डलिनी साधना के समय यह आवश्यक है कि व्यक्ति अल्पाहार (एक कप दूध आदि) ले करके ही बैठे। इस आधार पर आप अपने 'उपवास' के महत्व और आवशकता की स्वयं परीक्षा कर देखें, कहाँ तक उचित है?

तन्त्र

तपस्या के अन्तर्गत ही तन्त्र का विषय भी आता है। पदार्थ विज्ञान एवं जीवशास्त्र के ज्ञान-विज्ञान पर आधारित वह व्यवस्था जो जन-कल्याण परम शिव का मार्ग तांत्रिक विधि (Technical system) से प्रशस्त करे तन्त्र कहलाती है। आज तक के उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य में वेदों को अन्तिम मान कर यह कहा जाता है कि अन्य सभी ज्ञान वेद से ही उद्भूत हैं परन्तु कई विद्वान तन्त्र का जन्म वेदों से भी पहले का मानते हैं। वैसे तांत्रिक कर्मकांड आदि को देखने से भी कुछ ऐसा ही आभास होता है कि हो न हो, यह वेद-ज्ञान के विकास से पूर्व की ही विधा है।

जो भी हो, तन्त्र का आविर्भाव वेदों से पहले हुआ हो या बाद में, यह निश्चित है कि तन्त्र भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्राचीनतम अंग है। 'आध्यात्म' संसार में केवल ज्ञान का ही प्रतिनिधि नहीं है, अपितु मुक्ति, मोक्ष और निर्वाण का भी एक मार्ग है इसीलिये कोई भी नया धार्मिक परिवर्तन 'आध्यात्मिक परिष्कार' के आधार पर स्थापित किया जाता है। जब वह अपनी स्पष्ट आकृति धारण करता है तो आध्यात्म से वह रूढ़ मत में, फिर अवर्णनीय रहस्यवादी अनुभव में, और फिर पूजा और कर्मकांड से योग में स्थानान्तरित हो जाता है, क्योंकि योग ही वह द्वार है जिसमें व्यक्ति विराट-पूर्णता में प्रवेश करता है।

हम देखते हैं कि विदेशी संस्कृति के सम्पर्क से जन मानस के चाहे जैसे संस्कार और आचार विकसित हुए हों परन्तु सभी प्रकार के तांत्रिकवाद ने भारतीय विचारधारा की सुस्थापित प्रणाली को ही अपनाया—वह थी प्राचीन सांख्य दर्शन के प्रकृति और पुरुष का द्वैत। सम्पूर्ण तांत्रिक साहित्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—सनातन और वाममार्गी। वाममार्गी साहित्य बौद्ध एवं ब्राह्मण दोनों प्रकार का है। तांत्रिकवाद के तत्व ज्ञान ने एक रोमांटिक अभिव्यंजनावादी कला को जन्म दिया जो असाधारण लालित्य और ओज प्रदर्शित करती है। इसके ध्यान, पूजा, मुद्रा आदि के विवरण 'साधन माला' और 'विष्णु धर्मोत्तरम्' में दिये गये हैं। तन्त्र ने सृष्टि और विनाश, जीवन और मरण, सुन्दर और

रौद्र की सदैव साथ रहने वाली शक्तियों की कल्पना से, भौतिक विषयी जीवन में दिव्य तत्व की व्यापकता की धारणा से, भोग और वैराग्य, सुन्दर और सत्य के बीच की खाई को पाटा है।

मध्य युगीन मन्दिरों की मूर्तियाँ यदि आप देखें तो आप पायेंगे कि मूर्ति अपनी ही छवि और कांति में मस्त है और अपने निकट उपस्थित लोगों की ओर से बिलकुल बेसुध हैं जो आँखों की पुतलियों की दशा से प्रकट होता है। यह उसकी अंतर्मुखता और तुरीयावस्था का प्रतीक है। उत्तर मध्य युग (लगभग ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी ई.) की शिव और पार्वती की संयुक्त प्रतिमाओं में मानवीय संवेदनशीलता और आत्मिक भाव मग्नता का, शारीरिक कमनीयता तथा आकार मात्र का और रूप के कड़े संयम का अद्‌भुत संयोजन मिलता है। यही कारण है कि एलोरा, बादामी और ऐलिफेंटा की प्रतिमाओं से वंग कलिंग, खजुराहो आदि की प्रतिमाएँ अधिक कामुक होते हुए भी भाव में फूल जैसी लगती हैं।

जगतगुरु शंकराचार्य की "आनन्द लहरी" में शिव के अंक में बैठी त्रिपुरसुन्दरी का जो चित्रण है उस रूप का ध्यान 'योग-समाधि' के लिये किया जाता है। **तन्त्र में काम वासना पर व्यावहारिक संयम और नियन्त्रण की, तथा नारी आराधना की एक विधि है जिसका मूल मानवीय अनुराग के दिव्यीकरण में है। ऐसे प्रेम का विवाह से मेल नहीं बैठता** क्योंकि विवाह के सामाजिक दायित्व स्त्री पुरुष की कामुक और सौन्दर्यमय अंतरंगता अनुभूतियों और संतृप्ति के सहज और स्वतः स्फूर्त में बाधक होते हैं। ऐसा प्रेम कुंठित आवेगों के दबाव और उनसे उत्पन्न शारीरिक, मानसिक तनाव और कसाव से मुक्त होता है, **वही प्रेम घनिष्ठतम अंतरंगता के क्षणों में सहज और अक्षुब्ध शांति और सर्वोच्च आत्मानुभूति के लिये द्वार खोलता है।** हिन्दू कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है "पराशक्ति और आत्मा के संयोग से उत्पन्न आनन्द का उपभोग करने वाला ही सच्चा सम्भोग-प्रेम पाता है, और तो केवल स्त्रियों के भोक्ता हैं। **जो पाँच प्रकार के इन्द्रिय विषयों में उनका यथार्थ अभिप्राय जानते हुए भाग लेता है, वही मुक्त है।"**

सिद्ध पंथ कहता है **"आत्मिक उन्नति उन्हीं उपायों से प्राप्त करनी चाहिये जो मनुष्य के पतन का कारण हैं"** सरह सिद्ध भी ऐसी ही बात करते हैं। "जो व्यक्ति ऐन्द्रीय जगत की पवित्रता में आनन्द नहीं लेता और केवल शून्य की चिंता करता है वह जहाज के काग की तरह है, जो आकाश में चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न उड़ जाए पर अन्त में उसे जहाज पर ही वापस आना पड़ता है।" लगभग सन् ६८७-७१७ ई. में सहजयान के एक आचार्य थे इन्द्रभूति। वे उड्डीयान के राजा थे। वे स्वयं संस्कृतज्ञ थे। उनकी पुत्री लक्ष्मींकरादेवी ने 'अद्वयसिद्धि' नामक ग्रन्थ द्वारा एक मत की स्थापना की जिसमें तपस्या, कर्मकांड और पूजा का निषेध करके मानव शरीर पर ध्यान जमाने पर जोर दिया था, क्योंकि इसी में सभी देवताओं को प्राप्त किया जाना था। बंगाल में आज भी ऐसे सहजयान सम्प्रदाय के लोग हैं। महायान सम्प्रदाय के धर्माध्यक्ष असंग (जो कि ईस्वी

चौथी शताब्दी के हैं) ने 'महायान सूत्रालंकार' में कई प्रकार के 'यौन-धार्मिक' कृत्यों के स्पष्ट विवरण दिये हैं। प्राकृत भाषा के ग्रन्थ 'गौडवहो' में पर्ण-शबरी का उल्लेख है। जिसे विंध्याचल के शबर लोग पूजते हैं। गुजरात में पाई गई गुप्तोत्तर कालीन प्रतिमाओं से सिद्ध होता है कि पार्वती ही शबर-कन्या के रूप में पूजित थीं जो कमर में सिंह-चर्म और सिर पर पत्तियों का मुकुट धारण किये हैं। महाभारत के हरिवंश पुराण में भी यही कहा है कि दुर्गा की उपासक शबर, बर्बर और पुलिन्द जैसी असभ्य जातियाँ थीं।

देवी पुराण 'ब्राह्मण शाक्त धर्म' का प्रधान ग्रन्थ है जिसकी रचना सातवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त में डा. आर. सी. हाज़रा मानते हैं। इसमें अनेक अवसरों के लिए धार्मिक कृत्यों में विवाहिता स्त्रियों और कन्याओं के देवी रूप में पूजन तथा मांस-मदिरा के सेवन की व्यवस्था है। भारत में पाँच हिन्दू तांत्रिकवाद हैं—वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर एवं गाणपत्य। इन सभी पर शांकर वेदान्त का भी प्रभाव है, मनोवैज्ञानिक शारीरिक अनुशासन का भी प्रभाव है और तांत्रिक सूत्रों और विधियों का भी प्रभाव है। हिन्दू ब्राह्मण धर्म (**जो तांत्रिकवाद नहीं मानते** पाँच रात्र, आगम शैव, और वैष्णव जैसे मतों) में भी तांत्रिकों की मन्त्र, यन्त्र, चक्र, न्यास, मुद्रा, दीक्षा, भूत शुद्धि, एवं मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा की विधियाँ अपना ली गईं। नालन्दा विहार के प्रधानाचार्य 'शान्त रक्षित' थे। जिनका कार्यकाल ७०६ से ८६२ ईस्वी माना जाता है। उन्होंने 'तत्व-संग्रह' ग्रन्थ लिखा जो संस्कृत और तिब्बती भाषा में उपलब्ध है। तिब्बत के राजा खीस्त्रोंगल्द-त्सन' ने शान्त रक्षित को तिब्बत बुलाया। वहाँ इन्होंने 'ब्साम-या' नामक स्थान पर ओदन्तपुरी बिहार के नमूने का एक विहार बनाया। कार्डायर की तांग्युर नामावली में शान्त रक्षित के शिष्यों के नाम मिलते हैं।

सातवीं और आठवीं शताब्दी में देवपाल और धर्मपाल के शासन काल में पूर्वी भारत में तांत्रिक संस्कृति और कला का पुनरुत्थान हुआ। उस समय बाराहमुखी, पर्ण शबरी, तारा वराली, वदाली, वार्ताल्ली, बज्रशारदा, अपराजिता आदि देवियों एवं वज्रपाणि, मंजुवर, यमान्तक, मारीचि, जम्भल, हेरुक, त्रैलोक्य, विजय आदि देवताओं का पूजन प्रारम्भ हुआ। साथ ही वज्रयान तांत्रिकवाद ने तिब्बत की संस्कृत व धर्म को पूरी तरह बदल डाला। जो धीरे-धीरे बंगाल, आसाम तथा नेपाल में भी फैल गया। दूसरी तीसरी शताब्दी ईस्वी के 'बौद्ध-तन्त्र' में प्रत्येक ध्यानी को 'बुद्ध-शक्ति' की उपासना हेतु विशेष मन्त्र, मुद्रा, मण्डल आदि दिये गये हैं ताकि मानव 'शून्य' की उपलब्धि कर सके—जहाँ मायामय संसार, समस्त सुख-साधन, तथा सुख और आनन्द स्वयं पूर्णतः अस्तित्वहीन हो जाता है। उनके इस अद्वैत का प्रतीक यब-युम आसन में हेरुक और प्रज्ञा नामक वज्रयान इष्ट देवों का परस्पर आलिंगन है। ऐसे ही आलिंगन सतयुग में शिव और शक्ति के, तथा द्वापर में राधा और कृष्ण के मिलते हैं।

धीरे-धीरे वज्रयान की इष्ट पूजा और कर्मकांड के स्थान पर 'सहज यौगिक ध्यान' का महत्व स्थापित हुआ तथा आंतरिक यौगिक अनुभूति के दृष्टिकोण से तन्त्रवाद की मुद्रा,

अंग, मंडल तथा धर्म के अन्य बाह्य रूपों की व्याख्या कर डाली गयी। इस विकसित तन्त्र का नाम दिया गया 'सहज सिद्धि'। इसमें हठयोग के सूक्ष्म और विस्तृत मनोवैज्ञानिक-शारीरिक अनुशासन पर जोर दिया गया और पूजा, कर्मकांड, संन्यास आदि को पूर्णत: अस्वीकार किया गया। सहजयान में परम सुख शून्यता एवं परात्परता की अभिव्यक्ति नारी है। सहजयान का संस्थापक मीन नाथ (अथवा मत्स्येन्द्रनाथ जिन्हें लुई-पा अथवा लुई पाद भी कहा गया है) को माना जाता है तथा बौद्ध धर्म के अवलोकितेश्वर तथा हिन्दू धर्म के शिव के समान समझा जाता है। वे दसवीं शताब्दी में जीवित थे। उनकी शिक्षा थी—ध्यान की समस्त विधियाँ व्यर्थ हैं, उनके रहते हुए भी सबको पीड़ित होना और मरना ही है, इसलिये समस्त योग बन्धनों तथा छलनामय ईश्वरीय देनों की झूठी आशा त्यागकर 'शून्यता' को अपनाओ।

गोरक्षनाथ अथवा गोरखनाथ का देवत्व नेपाल, तिब्बत, महाराष्ट्र, गुजरात और पंजाब की विविध जनश्रुतियों से प्रमाणित है ही। कबीर, पीपा, नानक तो उनके शिष्य थे ही। दादू और रज्जब भी उन्हें मानते थे। गोरखनाथ का बौद्ध नाम अनंग वज्र अथवा रमण वज्र भी था। बंगाल, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के विभिन्न उपाख्यानों में चौरासी सिद्धों और नौ नाथों का उल्लेख मिलता है। बंगाल के राजा गोविन्द्रचन्द्र की माँ मयनामती जिन्हें धारा नगरी के गंधर्वसेन की बेटी कहा गया है, को तिब्बत में तांत्रिक डाकिनी या अर्धदेवी माना जाता है और बंगाल के उत्तरी जिलों में देवी मानकर पूजा जाता है। गोंरखनाथ **सच्चा गृहस्थी उसे बताते हैं जो सूक्ष्म जगत को स्वेच्छा से जब चाहे छोड़ सके और जब चाहे उसमें आ सके, समस्त माया को नष्ट कर सके और आत्म ज्ञान अनुभव कर सके।** वे कहते हैं कि आत्म प्रकाश का आसन और प्राणायाम की योग क्रियाओं की अपेक्षा बहुत अधिक महत्व है। **आंतरिक प्रेरणा के बिना प्राणायाम और आसन आध्यात्म की राह में रोड़े बन जाते हैं और प्रार्थी पहली अवस्था से आगे नहीं बढ़ सकता।**

तांत्रिक वाङ्मय में अभिमुखियों के पुरुष-नारी संयोग की चार मुद्राएँ बताई गई हैं—

कर्म मुद्रा—शरीर और आचरण सम्बन्धी;
ज्ञान मुद्रा—भावना और आवेग सम्बन्धी;
महा मद्रा—अमूर्त और सार्वभौम;
फल मुद्रा—परात्पर अथवा निरपेक्ष;

युंग कहता है कि आद्यनारी (मानव प्रकृति में निहित अदम्य नारीत्व-भावना) को मुद्रा कहा गया है क्योंकि वह विशुद्ध चेतना है जो शून्य की सच्ची मुद्रा है। मुद्रा का अर्थ आनन्द (मुदम् तथा रतिम्) भी है जो सम्बन्ध और अनुभूति के प्रत्येक स्तर पर तब तक उद्भूत होता रहता है जब तक शून्यता तक नहीं पहुँच जाते। इसी सिद्धान्त पर अप्सरा योग प्रारम्भ हुआ। आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के समान ही 'सम्पुटिका' में कहा गया है कि **अतिश्रेष्ठ, शाश्वत** और **अविनाशी योग का उद्भव लैंगिकता से होता है।**

क्योंकि 'यौन' मानव स्वभाव का एक अनिवार्य अंग है जिसे दमित अथवा अस्वीकृत नहीं **किया जा सकता।** शशिभूषण दास गुप्त की पांडुलिपि में लिखा है—सत्य की अनुभूति के लिए यौन भावना को यौगिक क्रियाओं में परिवर्तित करना ही श्रेयस्कर है।

अप्सरा योग शरीर के भीतर जाग्रत किया जाता है। इन अप्सराओं के भिन्न-भिन्न नाम विभिन्न सम्प्रदायों में मिलते हैं। यथा—बौद्ध वज्रयान में प्रज्ञा, नैरात्मा और नैरामणि अथवा शून्यता; सहजयान में दोम्बी, चांडाली, रजकी और नटी; नाथ सम्प्रदाय में शबरी और अवधूतिका; हिन्दू तांत्रिक वाद में योगिनी और कुल-कुण्डलिनी शक्ति। युंग ने इन्हें अनिमाएँ अथवा शाश्वत नारियाँ अर्थात् ज्ञान मुद्राएँ कहा है। योग की भाषा में इन नारियों को ध्यान कराने वाली ललना, रसना और अवधूती कहा है। कुण्डलिनी तन्त्र इन्हें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहता है। इस प्रकार आप देखते हैं कि ये नारियाँ नहीं नाड़ियाँ अथवा मुद्राएँ हैं। सभी तांत्रिक मतों में ऐसे स्त्री प्रतीकों की रहस्यवादी अंतर्दृष्टि और शक्ति के दृष्टिकोणों से व्याख्याएँ करके योग पर जोर दिया गया है।

योग किसका—प्रकृति और ब्रह्म का, शिव और शक्ति का, नारी और पुरुष का? विभिन्न संस्कृतियों में सर्वत्र प्राप्य पुरुष और स्त्री के अंगों के प्रतीक आद्य आदर्श और परम्परायें हैं जो आज भी जीवित हैं। बहुत प्राचीन समय से ही यौन पूजा को वैध और अवैध करके अलग-अलग परखा गया है। भारत में भी यौन पूजा का अत्यन्त प्राचीन और अस्पष्ट इतिहास मिलता है। **समस्त उपासना का ध्येय आद्य पूर्णता की पुनर्स्थापना है जिसका महान प्रतीक भारत में 'मिथुन' है** उसे चाहे राधा कृष्ण के आलिंगन के रूप में दर्शायें, शंकर पार्वती के आलिंगन में दर्शायें, ॐ की आकृति में दर्शायें, अथवा हेरक और प्रज्ञा के गाढ़ालिंगन से दर्शायें।

द्वैत से अद्वैत में आने की स्थिति के बारे में बृहदारण्यक उपनिषद में सदियों पहले कहा गया है—"प्रियतमा के आलिंगन में बद्ध मनुष्य को भीतर या बाहर की कुछ सुध नहीं रहती।" ऐसे अद्वैत का रेखांकन 'ॐ' है और चित्रांकन 'अर्ध-नारीश्वर'। मैंने ब्रह्मचर्य वाले अध्याय में कुण्डलिनी की प्रक्रिया 'मूलाधार के सहस्त्रार में अमृत रस टपकने तक' की बात को बड़ी सामान्य भाषा में स्पष्ट करके यह समझाने का प्रयत्न किया है कि जो पुरुष अपने वीर्य को अपने ही अन्दर प्रयोग करेगा उसके लिए 'नारी' बे-मानी हो जाती है। नारी जब चाहे उसके पास जा सकती है परन्तु उसे नारी के पास भागने की आवश्यकता नहीं रहती। **नारी की लालसा (जिसे भोग लिप्सा कहा जाता है) अलग बात है और नारी को प्यार देना अलग बात है,** यह ध्यान रखते हुए मेरी बात को समझने का प्रयत्न करें। वीर्य की ऊर्ध्व गति करना जानने वाले पुरुष को आप यह भी कह सकते हैं कि ऐसा पुरुष आप ही अपनी नारी बन जाता है इसी भाव को शिव-पार्वती का अर्ध नारीश्वर (नारी नटेश्वर) चित्र प्रदर्शित करता है। जहाँ नारी और पुरुष दो नहीं हों, एक में ही हों, वही अद्वैत है।

यन्त्र

प्रकृति की आद्यशक्तियों के प्रतीक रूप में बनाई गई ज्यामितीय आकृतियाँ यन्त्र कहलाती हैं। यह मन्त्रों का चित्रण है। यन्त्र की आत्मा मन्त्र होती है और मन्त्र की आत्मा इष्ट। इसे हम ऐसे कह सकते हैं कि यन्त्र और इष्ट में इतना अन्तर है जितना शरीर और आत्मा में। शब्द कल्पद्रुम में कहा है—

यन्त्र मन्त्र मयं प्रोक्तं मंत्रात्मा देवतैव हि।
देहात्मनोर्यथा भेदो यन्त्र देवतयोस्तथा॥

सभी ज्यामितीय संकेत—बिन्दु, रेखा, वृत्त, त्रिभुज आदि का सांकेतिक मूल्य उनके आद्य नाद (Primary Notions) के आधार पर हैं। ये सभी चिह्न आपस में एक-दूसरे से ऐसे रूपों में जोड़े जा सकते हैं जिससे वे एक विशेष शक्ति या गुण का प्रतिनिधित्व कर सकें, जो इस सृष्टि में सम्भव है। यन्त्र का त्रि-आयामी चित्र (Three dimensional figure) 'मूर्ति' होती है। तात्पर्य यह है कि यन्त्रों व मूर्तियों द्वारा मनुष्यों, जानवरों एवं देवताओं के स्वभावों तथा सृष्टि के किसी भी रूप के आंतरिक भावों को प्रकट किया जा सकता है। हम विषय को संक्षिप्त करने के लिये यन्त्रों के प्रधान तत्वों पर ध्यान देते हैं।

बिंदु

कोई भी रूप बिन्दुओं से मिल कर ही बनता है। जब तक वस्तु का अस्तित्व नहीं है, अथवा अस्तित्व प्रारम्भ ही हुआ है, उसे बिन्दु द्वारा प्रकट किया जाता है।

रेखा

जब कोई बिन्दु किसी दिशा में आगे बढ़ता है तो रेखा बनाता है, जो गति का प्रकटीकरण करती है। इसे २ और ३ मूलांक के गुणांक से भी प्रदर्शित करते हैं। बिंदु का विस्तार ही रेखा बनकर 'चित्र' (या मूर्ति)' होता है। उदाहरण के लिए टी. वी. पर आप जो चित्र देखते हैं। वह केवल एक बिंदु का ही विस्तार होता है। एक बिंदु पूरी टी. वी. स्क्रीन पर इस प्रकार से बार-बार दौड़ लगाता है कि आपको एक चित्र दिखाई देता है।

वर्ग

कम से कम तत्वों वाली आकृतियों में त्रिभुज के बाद वर्ग का ही नम्बर आता है, जो पृथ्वी तत्व का चिह्न है। मूलांक '४' वर्ग के लिए प्रयुक्त होता है।

धन चिह्न (+) – धन चिह्न किसी बिन्दु के आकाश में प्रसार को प्रकट करता है, साथ ही आकाश के एकत्व में लय होने को भी।

त्रिभुज लपट

'ऊर्ध्व शिखर त्रिभुज' ऊर्ध्व गति अथवा विकास का प्रकटीकरण करता है। इस आग की उठती लपट, दीपक की लौ आदि द्वारा भी प्रदर्शित करते हैं। यह पुरुष लिंग (शिव लिंग) का भी प्रतीक है। इसका मूलांक ३ है।
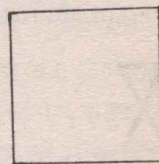
अधो शिखर त्रिभुत अधो शक्ति का प्रकटीकरण करता है, जिसकी गति जल की तरह सदैव नीचे की ओर ही होती है। यह प्रकृति की विशेष शक्ति है इसलिए

त्रिभुज

लपट
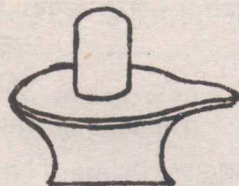
इसे स्त्री योनि से प्रकट करते हें। इसका मूलांक 2 है। इसे चाँद या तरंग से भी प्रदर्शित करते हैं।

वृत्त

वृत्ताकार घूमना रजसवृत्ति का गुण है और अपने में पूर्ण होने का प्रकटीकरण है। कुण्डलिनी जब जाग्रत हो जाती है तो प्राणी वर्तुलाकार हो जाता है। उसकी चित्त दशा इधर-उधर भटकती नहीं है और वह अपनी धुरी पर घूमता हुआ आनन्द लेता रहता है।

षटभुज सितारा

जब दो त्रिभुज जिनमें एक ऊर्ध्व शिखर और दूसरा अधोशिखर है (एक लिंग है और दूसरा योनि) एकं दूसरे में समा जायँ तो यह आकृति सितारा बनती है जिसका अर्थ उत्पत्ति है।

डमरू

जब यह दोनों त्रिभुत अलग होने लगते हैं तो संसार का विनाश प्रकट करते हैं। यह आकृति शंकरजी के डमरू जैसी बन जाती है। ऊर्ध्व शिखर पुरुष तथा अधो शिखर नारी शक्ति प्रतीक है। घर में ही पति-पत्नी अलग होने की स्थिति में आने लगें तो घर संसार का विनाश होने लगता है और यदि दोनों षटभुज सितारे के रूप में एक हो जायँ तो वंश वृद्धि (उत्पत्ति) होती है।

कमल दल

सभी संकेत संख्यायें जो कि विशेष गुण प्रकट करती हैं, यन्त्रों में वृत्ताकार पुष्प दलों के रूप में दिखाई जाती हैं। वे कमल कहलाते

हैं। किसी ग्रन्थि में से निकली हुई नाड़ी की संख्या को पद्म के दल से प्रदर्शित करते हैं।

चक्र

विभिन्न यान्त्रिक ज्यामितियों द्वारा बनाया गया विशेष गुण प्रकट करने वाला यन्त्र 'चक्र' कहलाता है। यह निर्मित (बनाया हुआ), अथवा कल्पित (माना हुआ) या दर्शित (दिखाई दिया हुआ अथवा जाना हुआ) हो सकता है।

यन्त्र—एक अथवा कई चक्र मिलकर जब कोई विशेष कार्य सम्पन्न करने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं तो 'यन्त्र' कहलाते हैं। इसीलिए चक्र को यन्त्र तथा यन्त्र को चक्र भी कह दिया जाता है। 'श्री यन्त्र' को 'श्री चक्र' भी कहते हैं।

'श्री चक्र'—जबलपुर के गढ़ा क्षेत्र में एक बाल ब्रह्मचारी सन्यासी ने पुष्य नक्षत्र में 'श्री यन्त्र' का पूर्ण मन्दिर बनाया है। ऐसा तान्त्रिक दृष्टि से पूर्ण मन्दिर विश्व में कहीं नहीं है। श्री यन्त्र को 'श्री विद्या चक्र' और देहाती भाषा में 'सुख पाने की विद्या का चक्कर' कहते हैं। यन्त्रज्ञों के अनुसार श्री यन्त्र अनन्त सिद्धियाँ देने वाला अद्‌भुत चमत्कारिक और शक्ति प्रदाता सर्वश्रेष्ठ यन्त्र है। इसके दर्शन की भी बहुत महिमा है। उपासना करने वाले तो अनन्त काल तक सुखानुभूति प्राप्त करते ही हैं। इसकी अधिष्ठात्री 'त्रिपुर सुन्दरी' है जिसे, पराम्बा, श्री राज राजेश्वरी, विद्या, पराशक्ति, चिद्‌शक्ति, इच्छाशक्ति, षोड़शी, गोपाल सुन्दरी, श्री राधा, पद्मावती, तारा, गायत्री, महामाया, कुण्डलिनी, शिव-शक्ति अथवा शक्ति, देवी आदि नामों से भी पुकारा जाता है। त्रिपुर-सुन्दरी साधना जबलपुर, तेवर, करनबेल, तिलवारा, गढ़ा तथा दक्षिण भारत के मलावार क्षेत्र में बहुत प्रचलित है। जैन धर्म के प्राचीन ग्रन्थों में त्रिपुर सुन्दरी को पद्मावती नाम दिया है। तन्त्र में इसे सभी देवताओं की 'चैतन्य शक्ति' के रूप में 'ब्रह्म-शक्ति' कहा गया है। इसकी महिमा का वर्णन करते हुए 'सुन्दरी-तन्त्र' में लिखा है—जिस घर में 'श्री यन्त्र' साधना होती है उस घर के व्यक्ति दीर्घजीवी, शौर्य-शक्ति सम्पन्न होकर आनन्द, मान और सम्मान पाते रहते हैं और जीवन के अन्त तक पाशमुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। यन्त्र ज्यामिति के आधार पर श्री यन्त्र का विवरण दिया जाय तो—

चतुर्भिः शिव चक्रैश्च शक्ति चक्रैश्च पंचभिः।
नव चक्रैश्च संसिद्धं श्री चक्रं शिवयोर्वपुः॥

श्री चक्र में चार चक्र शिव के और पाँच शक्ति के हैं। यह नौ चक्र आपस में एक होकर शिव-शक्ति का एक शरीर (अर्ध नारीश्वर) बनाते हैं। इसका प्रथम चक्र (आवरण) त्रैलोक्य मोहन चक्र है, द्वितीय श्री सर्वशापरिपूरक चक्र, तृतीय श्री सर्व संक्षोभण, चतुर्थ श्री सर्व सौभाग्यदायक, पंचम श्री सर्वार्थ साधक, षष्ठम् श्री सर्वरक्षाकर, सप्तम् श्री सर्वरोगहरः, अष्टम् सर्व सिद्धिप्रद, और नवम् सर्वानन्दमय चक्र है। इन सब चक्रों का चर्याकाण्ड करने के पश्चात् बीजाक्षरों का ध्यान किया जाता है। बीजाक्षर 'तन्त्राभिधान कोष' ग्रन्थ में दिये हैं। जप द्वारा मन्त्र सिद्ध करके मन्त्र के देवता 'शक्ति' की सिद्धि की जाती है।

'श्री चक्र का स्वरूप

चतुरस्त्र त्रिरेखाख्यं चारुत्रिबलयान्वितम्।
कलादल समायुक्तं कनकाष्टदलान्वितम्।
चतुर्दशारसहितं दशारद्वितयान्वितम्।
अष्टकोंणयुतं दिव्यमग्निकोण विराजितम्।
अष्टादश-सुममढियं चतुर्विंशति संधिकर्म।
श्री मद् बिन्दुगृहोपेतं श्री चक्रम॥

श्री यन्त्र के नौ चक्रों में ४३ त्रिकोंण, १८ मर्म और २४ संधियाँ हैं और चक्र के बीच में बिंदु है। आगम निगम ग्रन्थों में लिखा है कि जब पराशक्ति संकल्प बल से ब्रह्मांड में अपने स्वरूप का दर्शन करती है तो श्री चक्र की उत्पत्ति हो जाती है। जो श्री चक्र साधना की पूर्णता प्राप्त कर लेता है उसके लिये योगाभ्यास में कुछ शेष नहीं रहता। 'श्री यन्त्र का चिन्तन, ध्यान तथा चर्याकांड के अनुरूप साधना कर भगवान कामेश्वर और भगवती कामेश्वरी को संतृप्त करने से साधक को अद्वैत बोध होकर अपवर्ग (मुक्ति) प्राप्त होता है।' ज्ञानार्णव तन्त्र का यह कथन 'कुण्डलिनी की सम्भोग साधना' की ओर संकेत करता है जिसके लिये बहुत से मन्दिरों में देवदासी प्रथा प्रचलित रही थी।

श्री यन्त्र के बीच के बिंदु पर ध्यान करने की बात शास्त्रों में मिलती है उनके अनुसार ध्यान इस प्रकार करें—

बहुत सी मणियों से भरा हुआ अमृत का समुद्र है। उसके बीच सोने के वृक्षों का बाग है। उन वृक्षों में थाल के समान चौड़े फूल खिले हैं और उनके बीच में उन फूलों का मकरन्द रस भर गया है। उस स्वर्ण नन्दन कानन में कोयलों की मीठी तान सुनाई दे रही है। इस बाग के पास आकाश गंगा बह रही है जो इस बाग को सींचती है और शीतल रखती है। तोते की मादायें उन स्वर्ण वृक्षों के फलों को कुरेद देती हैं। ऐसे सुन्दर बाग के बीच में कदम्ब का वन है, वहाँ सिद्ध वैतालिक लोग बैठे हुए हैं, उनके बीच में २५ परकोटों का नगर है जिसके बीच में रत्न जड़ित सिंहासन है। सिंहासन पर 'श्री चक्र' विराजमान है। उस श्री चक्र के मध्य बिन्दु के स्थान पर पीताम्बरधारी कामेश्वर महात्रिपुर सुन्दरी नामक षोड़शी कामेश्वरी को गोद में लिये अदृश्य हो गये हैं। सिंहासन के चारों ओर ६४ विद्यायें और ६४ कलायें तथा इन्द्र आदि द्वारपाल बनकर खड़े हैं।

श्री मद् जगद्गुरु शंकराचार्य की साधना भूमि 'परमहंसी गंगा आश्रम श्री वनम्' में नव निर्मित मन्दिर का गर्भगृह तान्त्रिक विधि से तैयार कराकर अष्टधातु पर उत्कीर्ण श्री यन्त्र पर ही त्रिपुर सुन्दरी की प्रतिमा स्थापित की है। इस पुण्य कार्य को दक्षिण भारत के श्रृंगेरी पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज के कर कमलों से सम्पन्न कराया गया था। श्री यन्त्र को अष्ट धातु के अलावा स्वर्ण, रजत, ताम्र पत्रों पर उत्कीर्ण कराने की बात शास्त्रों में मिलती है। इसे भोजपत्र तथा स्फटिक मणि पर भी अंकित कराया जा सकता है। नीले रंग के कपड़े पर केशर से निर्मित श्री यन्त्रों का प्रयोग

ध्यान के लिए होता है। सामान्य दर्शन लाभ के लिए सफेद या नीले कागज पर केशर घोलकर बनाये श्री यन्त्र पूजन के पश्चात घर में रखे जा सकते हैं।

यन्त्रों में रंग संयोजन—यांत्रिक चित्रों के निर्माण के समय विभिन्न प्रकार के रंगों का प्रयोग किया जाता है। यदि आप कुण्डलिनी के षटचक्रों के रंग संयोजन पर ध्यान दें तो आप विभिन्न प्रकार के रंगों का उपयोग पद्म दलों, आधारों, त्रिभुजों, लिंगों, अक्षरों, आधार शक्तियों तथा इष्टों में पायेंगे। यह रंग यान्त्रिक भाषा में प्रकृति के तीन गुणों सत, रज और तम का प्रकटीकरण करते हैं। बहुत से स्थलों पर मिश्रित रंगों का उपयोग हुआ है, जैसे—बैंगनी, काला, कत्थई। यह सब मिश्रित रंग मूल रंगों के गुणों के आधार पर ही मिश्रित गुणों का (अपने रंग के मिश्रण के अनुपात में ही) प्रकटीकरण करते हैं।

प्रधान रंग तीन हैं—पीला, लाल और नीला, जो क्रमशः सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण को प्रकट करते हैं। कई स्थलों पर सतोगुण का प्रकटीकरण पीले के स्थान पर स्वर्णिम रंग द्वारा किया हुआ पाया गया है। इसी प्रकार आज्ञा चक्र में श्वेत लिंग दर्शाकर उसे सतोगुणी (योनि में प्रविष्ट वासना रहित लिंग) प्रकट करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार कुछ स्थलों पर श्वेत अथवा रजत (चाँदी—रौप्य) वर्ण द्वारा सतोगुण को भी प्रकट किया गया है। उगते हुए सूर्य का रंग उगते हुए सतोगुण का प्रकटीकरण करने अथवा शक्ति जागरण का प्रारम्भ करने में करते हैं, जबकि चन्द्र का प्रयोग अथवा चन्द्रमा के रंग का प्रयोग अमृत प्राप्ति का प्रकटीकरण करता है। केशर के रंग का प्रयोग भी सतोगुणी भाव प्रकट करता है।

लाल रंग रजोगुण का प्रकटीकरण करता है। कुछ विद्वान रजोगुण प्रकट करने में उस रंग का उपयोग उचित मानते हैं जो स्त्रियों के स्वस्थ रजःस्राव का रंग (वीर बहूटी के रंग) जैसा हो। उनके अनुसार रजःस्राव का रंग ही रजोगुणी है। कई स्थलों पर रजत अर्थात् चाँदी के रंग से रजोगुण प्रकट करते पाया गया है।

तमोगुण का प्रकटीकरण नीला रंग करता है। इसी सन्दर्भ में काला रंग भी तमोगुणी माना जाता है। चूँकि काला रंग नीले और लाल का एक विशेष अनुपात में मिश्रण है। जहाँ ऐसे ही अनुपात में तमोगुण और रजोगुण का कार्य हो रहा हो वहाँ काले रंग का उपयोग किया जाता है। षटचक्रों में मूलाधार पद्म के अन्दर श्याम वर्ण के लिंग को प्रदर्शित कर लिंग का वासना पूर्ण होना प्रकट किया है। काम पूर्ण वस्तु को नीले रंग से प्रकट करते हैं।

अन्य मिश्रित रंगों में बैंगनी (लाल + नीला), नारंगी (पीला + लाल), हरा (पीला + नीला), कत्थई (काला + लाल) आदि बहुत से रंग आते हैं जो अपने मूल रंगों के मिश्रण के अनुपात के आधार पर विभिन्न गुणों को प्रकट करते हैं। श्वेत रंग को सात रंगों का मिश्रण बताया गया है जिसमें मूल और मिश्रित दोनों ही प्रकार के रंग—बैंगनी (Violet), नीलाभ (Indigo), नीला (Blue), हरा (Green), पीला (Yellow),

नारंगी (Orange) तथा लाल (Red) क्रमशः पाये जाते हैं। यही इन्द्रधनुषी छटा है जो आनन्द पूर्ण भोग का प्रकटीकरण करती है। जब यह सारे रंग एक में समाहित हो जाते हैं तो वर्ण श्वेत बन जाता है, जो मोक्ष का प्रकटीकरण करता है। मोक्ष त्रिगुणातीत अवस्था है। अतः जहाँ त्रिगुणातीत अवस्था दर्शानी होती है वहाँ भी चित्रकार श्वेत रंग का उपयोग करते हैं।

कुण्डलिनी चक्र

हमारे शरीर में विभिन्न स्थलों पर सूक्ष्म नाड़ियों के गुच्छे तथा ग्रन्थियाँ हैं। इन्हें योग की भाषा में 'चक्र' कहा जाता है। जिनमें विभिन्न दलों के कमल माने जाते हैं। यह महत्वपूर्ण स्नायु व नाड़ी दल मेरु दण्ड पर पाँच, एक भ्रू मध्य और एक ब्रह्मरंध्र में माने गये हैं। इन स्थलों पर ध्यान करने से वहाँ रक्त संचार बढ़ जाने के कारण उनसे सम्बन्धित तन्तु, स्नायु, नाड़ियाँ और ग्रन्थियाँ अधिक शुद्ध होने लगती हैं जिससे उनमें संचित तनाव का कारण कम होने लगता है। इस अभ्यास से तत् सम्बन्धी गुणों की वृद्धि व्यक्ति में होने लगती है।

सर्प

कुण्डलिनी के चक्रों की भेदन प्रक्रिया में इन चक्रों के यांत्रिक चित्रों को समझने में 'यन्त्र-रहस्य' ज्ञान बहुत काम देता है। अंतर्वृत्त कुण्डलिनी शक्ति के प्रकटीकरण को प्रदर्शित करते हैं। पूँछ को निगलते हुए सर्प के भित्त चित्र वर्तुलाकार व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है। उस काल में 'कुण्डलिनी शक्ति जागरण' को फन उठाये हुए सर्प से सम्बोधित करते थे। कुण्डलिनी के मार्ग (सुषुम्ना-मेरुदण्ड) को सर्प की संज्ञा देते थे। इस प्रकार प्राचीन काल में कुण्डलिनी की प्रसुप्त एवं जाग्रत चेतना का उपयुक्त और उचित उदाहरण सर्प ही माना जाता था। उदाहरण सदैव एक ऐसी सामान्य वस्तु का दिया जाता है जिसके गुण अधिक से अधिक ऐसे उपमेय से मिलते हों जिसके बारे में अधिक से अधिक लोग जानते हों। यहूदी धर्म के कबाला दर्शन में 'ईडन-गार्डन' के सर्प के प्रसंग, तथा जोसेफ कैम्पबेल द्वारा अमेरिका के एक सम्प्रदाय के बारे में यह लिखा जाना कि 'पंख युक्त सर्प देवता मृत्यु का केंचुल उतार कर पुनर्जीवित हो उठता है।' आदि सर्प के कुण्डलिनी का प्रतीक माने जाने के उदाहरण हैं। आजकल कुण्डलिनी शक्ति के लिए हम विद्युत का उदाहरण देते हैं, परन्तु वास्तव में कुण्डलिनी इससे भी आगे की शक्ति है।

चित्र संख्या २७

■■
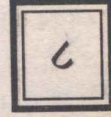
स्वाध्याय

नियम के अन्तर्गत 'तप' के पश्चात् नम्बर आता है 'स्वाध्याय' का। स्वाध्याय का अर्थ है स्व+अध्ययन। यह स्व-अध्ययन दो प्रकार है। एक, किसी विषय का स्वयं अध्ययन (self study) करना, तथा दूसरा, स्वयं का (आत्म) अध्ययन (study about self) करना।

स्वयं अध्ययन—कुछ लोग समझते हैं कि रामायण, बाइबिल, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहब, धम्मपद अथवा किसी भी विषय के ग्रन्थ को पढ़ लिया तो स्वाध्याय में स्वयं अध्ययन वाली क्रिया पूरी हो गई। नहीं; पढ़ना (reading) और अध्ययन (study) करना दो अलग-अलग बाते हैं। यहाँ हम अध्ययन की बात कर रहे हैं। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(१) किसी विषय का स्वयं अध्ययन करने के लिए उसके सैद्धान्तिक और क्रियात्मक दोनों पक्षों को अलग-अलग पढ़ें। यदि एक बार में समझ में न आये तो बार-बार पढ़ें। चाहे तो दोनों पक्षों के सूत्र (पाइन्ट्स) अलग-अलग लिख लें, जिससे प्रत्येक सूत्र पर पूरी तरह विचार किया जा सके।

(२) क्रियात्मक पक्ष के सारे पॉइन्ट व्यवहार में लाना हो सकता है आपके लिये आसान न हो, अत: कुछ विशिष्ट परन्तु सरल क्रियाओं को अपने अनुभव में लाने का प्रयत्न कीजिये। उनमें से कुछ क्रियायें अपने मित्रों को भी बता दीजिये, जिससे उनके अनुभव भी आपको मिल सकें।

(३) अब फिर विषय को एक बार आद्योपांत पढ़कर देखिये कि आपका क्रियात्मक पक्ष कहाँ तक सफल हुआ है। जो 'पॉइन्ट' अब भी छूट गये हैं उन्हें पुन: व्यवहार में लाकर देखिये।

(४) जो भाग उस विषय में आपकी क्रियात्मक पहुँच के बाहर हैं उस भाग पर जो कुछ पूर्वजों ने सैद्धान्तिक एवम् क्रियात्मक खोज की है, उसे खोज निकालिये। ऐसी खोजें अच्छे पुस्तकालयों, म्यूजियमों के शिलालेखों, पुरानी पांडुलिपियों तथा बहुत पुरानी प्रकाशित पुस्तकों की सहायता से की जाती हैं।

(५) अब उन पुरानी खोजों के आधार पर एक बार पुन: आपको क्रियात्मक ज्ञान का अवसर प्राप्त होगा। चाहें तो अपने मित्रों को भी साथ ले सकते हैं।

(६) यदि अपने 'विषय' में कहीं अटकते हैं और अध्ययन आगे नहीं बढ़ता तो उस विषय के विभिन्न विज्ञ पुरुषों की सहायता लेने में हिचकिचायें नहीं। आप सोचेंगे कि यह तो स्वाध्याय नहीं हुआ। महोदय जी ! यह भी स्वाध्याय के अन्तर्गत ही है, क्योंकि अध्ययन का विषय तो आपका अपना है। उसे पहले 'लिखी हुई पस्तक' से पढ़ रहे थे, अब 'बोलने वाली पुस्तक' से पढ़ रहे हैं।

(७) सारे अनुभव के पश्चात् आप अपने अब तक के संचित सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक ज्ञान के आधार पर अपने (पॉइन्ट) सूत्र तैयार कीजिये और उनका सारांश (Summary) तैयार कर लीजिये।

(८) अपने नित्य प्रति के कार्य में उस ज्ञान के आधार पर अनुभव एकत्र करते जाइये और देखिये कि जीवन व्यवहार में वह ज्ञान (जो आपने संचित किया है) कहाँ तक सही है?

(९) जिन पाइन्टों को आप जीवन व्यवहार में सही पायें उनके बारे में विज्ञ लोगों से इए ढंग से विवाद करें कि उनसे आपको ज्ञान मिले। इस ढंग से विवाद न करें कि वे आपके ज्ञान को मानते चले जायँ और आपकी प्रशंसा करने लगें। यह इस प्रकार होता है कि आपने अपने व्यवहार में यह पाया है कि दो और दो चार होते हैं, तो विज्ञ पुरुष के पास जाकर आप कहिये 'दो और दो पाँच' होते हैं। परिणाम, वह आपको गधा कहेंगे, आप उसे स्वीकार कीजिये और उनसे विनम्र निवेदन कीजिये कि कृपया मुझे समझा दीजिये कि दो और दो पाँच क्यों नहीं होते? तत्पश्चात् जो कुछ ज्ञान वहाँ से मिले उससे अपने संचित ज्ञान को मिलाकर देखिये और जहाँ आवश्यक हो सुधार कर दीजिये। इतना कर लेने के बाद जो कुछ आप उस विषय पर बोलेंगे अथवा लिखेंगे वह आपका अपना ज्ञान, अपना अनुभव होगा। वह चुराया हुआ ज्ञान नहीं होगा। यही आपके स्वाध्याय (self study) की सार्थकता है।

■■

९

आत्म-अध्ययन

आत्म-अध्ययन में शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक तीनों प्रकार का अध्ययन सम्मिलित है। शारीरिक अध्ययन दो प्रकार का है—व्यक्तिगत एवं सम्बन्ध गत।

व्यक्तिगत आत्म-अध्ययन—इसमें व्यक्ति के भौतिक शरीर से सम्बन्धित अध्ययन करना होता है। शरीर की आवश्यकताएँ क्या हैं और व्यक्ति का पर्यावरण, परिस्थितियाँ एवं वातावरण कैसा है ? इसके आधार पर ही व्यक्ति को जीवन से तालमेल बैठाना होता है। यह सब 'स्वाध्याय' (अपने आप अध्ययन) करके निकाले हुए जीवन निष्कर्ष होते हैं। इन्हें कोई दूसरा नहीं निकाल सकता। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की कुछ गुप्त परिस्थितियाँ होती हैं जिन्हें वह किसी से प्रकट नहीं करता। उनके हल वह स्वत: ही आत्म अध्ययन के आधार पर खोजता है। हाँ, कुछ विशेष परिस्थितियों के बारे में व्यक्ति किसी विज्ञ पुरुष से सलाह ले सकता है। परन्तु वह सलाह किस सीमा तक उचित है इसका आधार सलाहकार व्यक्ति के अनुभव और ज्ञान की सीमा पर निर्भर करता है। यही कारण है कि हम लोग विभिन्न विषयों के गुरु खोजते फिरते हैं।

गुरुपन 'दैवी गुण' होता है। आप देखेंगे कि एक ही विषय के दस ज्ञानी पुरुषों में एक या दो ही ऐसे होंगे जो उस विषय को बड़ी सुगमता से दूसरे को समझा सकें, यही 'गुरुपन' है। पुस्तकें इस विषय में अधिक सहायक नहीं हो सकतीं। क्योंकि पुस्तकें व्यक्ति की सामान्य परिस्थितियों के बारे में ही सलाह दे सकती हैं। पुस्तक को लिखते समय यह ध्यान दिया जाता है कि उसे किस स्तर के व्यक्ति वर्ग अथवा किन परिस्थितियों एवं वातावरण के व्यक्ति वर्ग के लिए लिखा जा रहा है ? यदि व्यक्ति की समस्या पुस्तक की सीमा के अन्दर आती है तब तो उसे उस पुस्तक से सहायता मिल जायगी अन्यथा व्यक्ति को भटकना पड़ेगा। यहाँ ऐसे ही कुछ (पॉइन्ट) निर्देश 'सामान्य आत्म-अध्ययन' के विषय में दिए जा रहे हैं जिन्हें समय-समय पर आप लोग स्वयं निरीक्षण करते रहें—

(१) अपने स्वास्थ्य के लिए आप क्या कर रहे हैं ?

(२) शौच, दन्त धावन, स्नान आदि स्वच्छ रखने वाली क्रियाएँ सम्पादित करने में आलस तो नहीं किया जा रहा। आप कहेंगे यह कोई पॉइन्ट है। पुस्तक बड़ों के लिए

लिखी जा रही है, और बच्चों वाले पॉइन्ट दे रहे हैं। जी यह पॉइन्ट बड़ों के ही काम का अधिक है। क्योंकि 'बड़े' अपने स्वास्थ्य की जितनी अवहेलना करते हैं, उतनी छोटे नहीं करते। दूसरे, 'बड़े' की अवहेलना से उत्पन्न हानि ठीक होने में अधिक परेशानी होती है, बच्चे का शरीर व मन इतना लचीला होता है कि वह बहुत कुछ झेल जाता है।

(३) पहिनने वाले कपड़ों के बारे में भी आप ध्यान दीजिए। कई लोग गन्दे और फटे कपड़े पहनकर चल देते हैं। इससे कोई तात्पर्य नहीं है कि आप कपड़ा सस्ता पहनते हैं या महँगा? कपड़े का साफ होना नितान्त आप पर निर्भर है। कई लोग ऊपर कपड़े साफ पहन लेते हैं और अन्दर के कपड़े गन्दे होते हैं। एक चिकित्सक होने के नाते मुझे अक्सर ऐसे पुरुषों और महिलाओं को देखना पड़ा जिनके अन्दर के कपड़े बहुत गन्दे होते थे। यह मात्र कपड़ों पर ध्यान न देने की बात है, न आलस की बात है और न निर्धनता की।

(४) फटे कपड़े आपके व्यक्तित्व का फटा रूप समाज के सम्मुख व्यक्त करते हैं। कपड़े का फट जाना, कोई बुराई नहीं है। परन्तु 'फटे' को उसी समय न सिलना बुराई है। आप कहेंगे कि कपड़ा फटते ही इतना समय नहीं होता कि उसे सिला जाय। तो एक बात बता दीजिए कि जब कोई तार आपकी चमड़ी को खुरच देता है (फाड़ देता है) तो उसकी मरहम पट्टी करने को आपके पास कहाँ से समय निकल आता है? अन्तर केवल इतना है कि आपने अपने दुःख को तो दुःख समझा, पर उस कपड़े के दुःख को नहीं समझा जो आपके सारे ऐब ढक रहा है। इतनी खुदगर्जी तो अनुचित है।

(५) कई लोगों के बालों में बहुत गन्दगी रहती है, सिर में बुरी गन्ध आती है, पास बैठना दूभर होता है, जुएँ भी होते हैं। बालों को ऊपर से कंघी करके 'हीरो' के समान बनकर चल देना ही उचित नहीं, उन्हें उपयुक्त सफाई और पौष्टिक आहार की भी आवश्यकता है जिससे बालों का जीवन बच सके।

(६) शरीर की सामान्य सफाई के बाद नम्बर आता है व्यायाम का। व्यायाम जो भी करें यह ध्यान दें कि शरीर के प्रत्येक अंग का व्यायाम थोड़ा-थोड़ा अवश्य हो जाय। आँख, कान, नाक, गला, कपोल आदि भी इसी श्रेणी में हैं, जहाँ लोग अधिकतर चूक जाते हैं।

(७) व्यायाम के बाद भोजन पर ध्यान दें। विरोधी भोजनों से अवश्य बचें। गर्म के ऊपर ठण्डा, ठण्डे के ऊपर गर्म, खुला तथा ऋतुओं का ध्यान रखे बिना खाना पीना सदैव अस्वास्थ्यकर है। बिल्कुल न खाना और अत्यधिक खाना दोनों ही बातें हानिकारक हैं। भोजन स्वादिष्ट हो अथवा न हो 'सम्यक्' ही करना चाहिए। चाहे किसी से नाराज होकर खाना न खायें अथवा किसी से शर्त लगाकर चौगुना भोजन करें, स्वास्थ्य के हिसाब से दोनों ही बातें गलत हैं। भोजन में एक और बात ध्यान रखने की है कि जिस प्रकार का आप कार्य करते हैं वैसा ही भोजन लें। शारीरिक श्रम करने वाले और मानसिक श्रम करने वाले के भोजन में अन्तर रहता है। स्वास्थ्य के विषय में शरीर की आवश्यकता सर्वोपरि है।

(८) भोजन के पश्चात् नम्बर है 'श्रम' का। आप कार्य कितना करते हैं, कैसा करते हैं? आपका शरीर जितनी ऊर्जा प्रतिदिन उत्पन्न करता है उससे अधिक श्रम शरीर को शीघ्र ही खोखला कर देगा। इसी प्रकार 'उत्पन्न ऊर्जा' से कम श्रम करने पर शरीर में 'मेद वर्धन' होगा जो अस्वास्थ्यकर होता है। यहाँ भी बुद्ध भगवान के सम्यक् उपदेश का ध्यान रखना है और श्रम उतना ही करना है जो शरीर के लिए स्वास्थ्यकर हो।

(९) अब निद्रा के विषय में सुनिये। कुछ लोग रात में बहुत जल्दी सो जाते हैं और सुबह ३-४ बजे से खटर-पटर प्रारम्भ कर देते हैं। कुछ रात में १२-१ बजे सोते हैं और सुबह ८ बजे तक खर्राटे भरते हैं। यह दोनों ही अपनी-अपनी परिस्थितियों में सही हैं। एक व्यक्ति के लिए ६ से ८ घण्टे की नींद सामान्यतः पर्याप्त होती है। जो भी व्यक्ति इतनी नींद एक नित्य क्रम में पूरी करता रहता है वह स्वस्थ रहेगा। नित्य क्रम से तात्पर्य यह है कि ८ घंटे की नींद पूरी करने में यदि आप इस तरह करें कि आज रात को ८ बजे सोकर ४ बजे जाग जायँ, कल १२ बजे सोकर सुबह ८ बजे जाग जायें, परसों दुपहर को २ बजे सोकर, रात १० बजे जाग जायें ऐसा क्रम अनुचित है। कोई सा क्रम अपनायें, प्रत्येक दिन उसे ही व्यवहार में लायें वही नित्य क्रम है। वर्ष में १-२ दिन यदि सभी नित्य क्रम टूट जाये तो विशेष हानि नहीं होगी।

दूसरा सूत्र (पॉइन्ट) है सम्यक् निद्रा का। सम्यक् निद्रा से तात्पर्य है कि उतनी निद्रा जितनी कि शरीर के लिए आवश्यक है। शरीर की आवश्यकता 'ऊर्जा' की आवश्यकता पर निर्भर करती है। यदि अधिक ऊर्जा चाहिए तो नींद भी अधिक चाहिए, यदि ऊर्जा कम चाहिए तो नींद कम चाहिए। आप कहेंगे हमें तो बहुत ऊर्जा चाहिए। नहीं, यह कहने की बात नहीं, आवश्यकता की बात है, और आवश्यकता आपके श्रम पर निर्भर करती है। **ऊर्जा नींद में, विश्राम में उत्पन्न होती है और भोजन से तैयार होती है तथा व्यायाम से सक्रिय होती है।** तात्पर्य यह है कि अधिक सोना भी अस्वास्थ्यकर है और कम सोना भी। वृद्ध पुरुषों के लिए ४ घण्टे नींद भी पर्याप्त है और नवजात शिशु के लिए १४ घंटे भी अपर्याप्त है। आप यह मत सोचना कि नवजात शिशु बिना श्रम किए २० घंटे सोता है। वह पूरे २४ घंटे श्रम करता है। उसकी एक-एक नाड़ी इतना श्रम करती है बढ़ने के लिए, जिसे आप सोच नहीं सकते। शिशु का श्रम सबसे अधिक है। आपकी ऊर्जा भी इसी प्रकार भोजन करने से लेकर उसे सप्त धातुओं (रस, रक्त, माँस, मज्जा, वीर्य, ओज, तेज) में बदलने तक की लम्बी प्रक्रिया के कारण और इन्द्रियों के अपने-अपने कार्य व्यवहार से उत्पन्न तनाव के कारण बहुत कम हो जाती है। इसके पश्चात् बहुत थोड़ी ऊर्जा बचती है जो आपके अपने व्यवसायिक तनाव के कारण व्यय होती है। कुण्डलिनी और योग के साधक को यही ऊर्जा बचा कर अपनी साधना में लगानी होती है। **ऊर्जा बचाने का एक बहुत बड़ा साधन 'तनाव मुक्त' होना है।**

संबंधगत आत्म-अध्ययन—अभी तक हमारा पूरा स्वाध्याय अपने शरीर से सम्बन्धित था। इस शरीर के कारण जो आपके सम्बन्धी हैं उनके प्रति भी आपको स्वयं

चुपचाप अध्ययनरत रहना है। शरीर नहीं होता तो कोई सम्बन्धी ही नहीं होता। आपका शरीर भारत में पैदा हुआ तो भारत आपका है। रूस में पैदा होता तो रूस आपका होता। शरीर मुईनुद्दीन के घर में पैदा हुआ तो मुईनुद्दीन आपका है। यदि यह रामसिंह के घर में पैदा होता तो रामसिंह आपका होता। तात्पर्य यह है कि संसार के सारे नाते-रिश्ते आपके शरीर से सम्बन्धित हैं। इनका अध्ययन 'सम्बन्धगत आत्म अध्ययन' है।

इस अध्ययन में ध्यान देने वाली बात यह है कि आपके सम्बन्धी आपके प्रति कैसा रुख अपनाते हैं और आप अपने सम्बन्धियों के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं? दोनों ही बातें सम्मिलित हैं। सम्बन्धियों में पास के सम्बन्ध माता, पिता, बच्चे, पत्नी, सास, श्वसुर, साले, साली और फिर उनके सम्बन्धी, तथा दूर के सम्बन्धी जैसे व्यवसाय से सम्बन्धित अधिकारी से लेकर चपरासी तक, जीवन रक्षक डाक्टर से लेकर धर्म रक्षक पुजारी तक, जैसे व्यक्ति ही सम्मिलित नहीं हैं, आपसे सम्बन्धित जानवर भी इसी श्रेणी में हैं और उन जानवरों से सम्बन्धित वस्तुएँ भी आपके अध्ययन क्षेत्र में आती हैं। वह घास भी जिसका आप दूध पीते हैं, दही खाते हैं, आप चौंकिये नहीं, आप घास का ही दूध पीते हैं। गाय या भैंस तो एक मशीन (माध्यम) भर है जो घास से दूध बनाती है, वह दरवाजा भी जो आपकी और आपके सामान की रक्षा करता है। आप इसी प्रकार अपनी दृष्टि को आगे बढ़ाते जायँ तो आप पायेंगे **सम्पूर्ण सृष्टि ही आपके अध्ययन का क्षेत्र है। सृष्टि का प्रत्येक कण अपनी अलग कहानी कहता दृष्टिगोचर होगा।** यदि आप अपनी दृष्टि को इतनी विस्तृत कर सकें तो आपको एक अद्‌भुत बात मिलेगी कि कण-कण में वही शक्ति व्याप्त है, जो आप में है, जिसे आप कुण्डलिनी नाम दे रहे हैं। जब तक आपकी दृष्टि इतनी विस्तृत न हो तब तक आप निम्नलिखित पॉइन्ट्स (सूत्रों) पर ध्यान दीजिए—

१. प्रत्येक कार्य को खेल समझ कर करें और उससे सम्बन्धित नियमों का पालन भी खेल समझ कर कड़ाई से करें क्योंकि एक नियम की छोटी सी ढील भी खेल का आनन्द बिगाड़ देती है।

२. सम्बन्धियों से कोई अपेक्षा न रखें। सम्बन्धों को बिगाड़ने वाली यह 'अपेक्षा' ही होती है। जो सम्बन्धी आपको जितना माने उसे उसका अहसान समझें।

३. जो कुछ भलाई आप किसी के प्रति कर सकते हैं, अधिक से अधिक करें, पर उसके बदले में कुछ पाने की आकांक्षा कभी मन में न रखें।

४. बातचीत सलीके से मुस्कुराकर, अत्यन्त प्रेम के साथ करें। इस बात की ओर ध्यान न दें कि कोई क्या कहेगा। कहने की परवाह पापी करता है।

५. कई बार आप ऐसा अवसर पायेंगे जहाँ आपको क्रोध आयेगा तो वहाँ पूरे जोर-जोर से क्रोध की एक्टिंग करें (क्रोध नहीं)। ऐसा क्रोध दिखायें कि सामने वाला घबरा जाय।

६. किसी दूसरे के सहारे जीने की आदत न डालें, नौकरों पर आश्रित रहना अथवा चाय, सिगरेट, शराब आदि पर आश्रित रहना परतन्त्रता है। आपको परतन्त्र नहीं स्वतन्त्र

होना है। जो भी आदत हो उसे इसी क्षण छोड़ दीजिये और देखिये आप कितने दिन तक उसके बिना रह पाते हैं।

७. दूसरों के साथ किये जाने वाले कार्यों को कराते समय दूसरे व्यक्ति के सुख-दुख, भाव-अनुभाव का ध्यान रखें। काम पूरा हो जाने पर उसके द्वारा की गई सहायता के लिये उसे धन्यवाद देना न भूलें।

८. कोई भी ऐसा व्यवहार जिससे किसी व्यक्ति को सुख पहुँचे या आनन्द मिले, करने में कोई बुराई नहीं है। यदि ऐसा करने में आपको भी आनन्द मिले तो 'सोने में सुहागा' है।

९. आपका कोई भी आनन्दपूर्ण कार्य ऐसा न हो जिससे किसी दूसरे व्यक्ति को हानि हो अथवा परेशानी हो।

१०. अभी तक सारी बातें व्यक्तियों से सम्बन्धित की गई हैं। अब वस्तुओं पर भी ध्यान दीजिए—वस्तुओं की उठा-पटक जोर-शोर से न करें। दरवाजे, खिड़की धीरे से खोलें—बंद करें। अपने पहनने वाली वस्तुएँ—कपड़े, जूते, टोपी आदि चमाचम रखें और सलीके से पहनें। कुछ लोग क्रोध में घर के दरवाजे को लात मार कर खोलते हैं। वे यह नहीं सोचते कि यदि दरवाजे को क्रोध आ गया तो वह पीछे लौट कर मारेगा, तब आपकी नाक का क्या होगा? वस्तुएँ धीरे से और सलीके से ही रखें। किसी भी वस्तु का दुष्प्रयोग न करें।

११. आपको हानि पहुँचाने वाले व्यक्तियों, जानवरों, कीड़े-मकोड़े आदि से बचने के उचित उपायों को काम में लायें। स्वामी दिगंबरानंद अधिकतर कहा करते थे—हन्ते को हनिए, पाप दोष न गिनिये।

■■

१०

मानसिक आत्म–अध्ययन

आप एक छोटा-सा पौधा लगाते हैं तो उसके लिये पहले उपयुक्त गमले (स्थान) का चयन करते हैं। फिर वहाँ की मिट्टी को ठीक करते हैं। उसमें होने वाले कंकड़ पत्थर निकालते हैं। खाद की व्यवस्था करते हैं। पानी की व्यवस्था करते हैं। तब एक पौधे को

चित्र संख्या २८
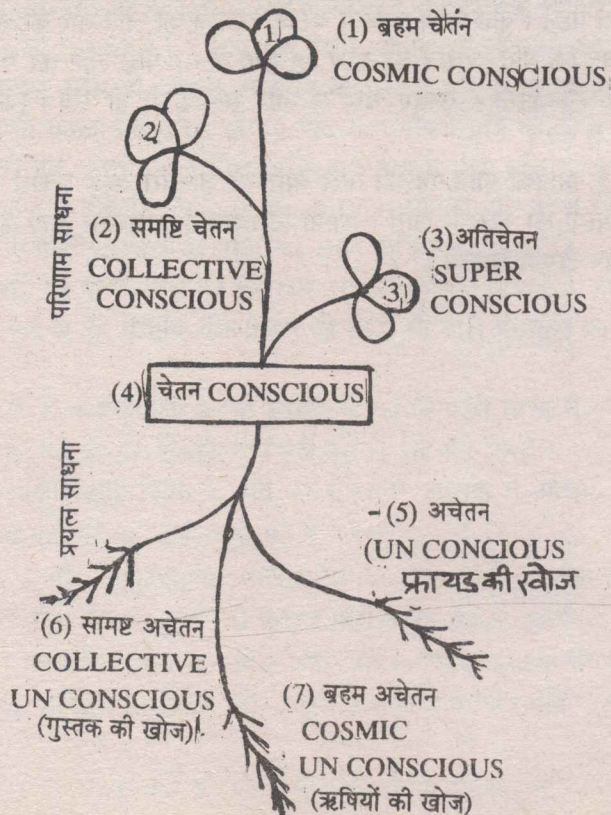
उस मिट्टी में रोपते हैं। यहाँ आप कुण्डलिनी जैसी महान शक्ति को अपने शरीर रूपी गमले में रोपने जा रहे हैं उसके लिये इस गमले को तैयार करने में हमें बहुत-सी बातों पर ध्यान देना है। गमले की तैयारी, सदैव पौधे के अनुरूप की जाती है। कुण्डलिनी नामक पौधा भी अन्य पौधे की तरह ही है जिसकी जड़ नीचे की ओर जाती है और फल ऊपर लगते हैं। तना और जड़ का संगम स्थल, जहाँ से जड़ प्रारम्भ होती है, या यूँ कहिये जहाँ से तना प्रारम्भ होता है हम वह स्थान मान लेते हैं जहाँ तक मिट्टी है। इस संगम स्थल को मनोवैज्ञानिकों ने 'चेतन मन' कहा है। दूसरे शब्दों में यूँ समझिए कि हमारे जीवन रूपी पौधे का प्रारम्भ मानसिक स्तर पर 'चेतन-मन' (Conscious Mind) से होता है। इस स्थान से तने वाला भाग ऊपर की ओर चलता है जिसे हम सिद्धि अर्थात् उपलब्धि कहते हैं, और जड़ वाला भाग नीचे की ओर चलता है जिसे हम साधना अर्थात् तपश्चर्या कहते हैं। जब जड़ रूपी साधना नीचे गहराई में उतरती जाती है तो वह तीन पड़ावों से होकर गुजरती है। इसमें पहले पड़ाव की खोज मनोवैज्ञानिक 'फ्रायड' ने की है। उसने इसे अचेतन मन (Unconscious Mind) कहा है। वह कहता है स्वप्न आदि क्रियाएँ इसी अचेतन मन में प्रस्फुटित होती हैं। जिस व्यक्ति की जड़ अचेतन मन तक पहुँच जाती है उसे एक उपलब्धि होती है। वह 'अति चेतन मन' की सिद्धि पर जाता है। 'अति चेतन मन की सिद्धि' पाने का तात्पर्य यह है कि जो कुछ अचेतन मन करता है उसका उस व्यक्ति को बोध होगा। अचेतन मन जो स्वप्न उत्पन्न कर रहा है उसका उस व्यक्ति को पता लगेगा। आप कहेंगे—वाह। स्वप्न तो हम प्रतिदिन देखते हैं और हमें याद रहता है कि हमने स्वप्न देखा तो हमें अचेतन मन सिद्ध हो गया। नहीं ! अचेतन मन जिस समय आपको स्वप्न दिखा रहा है, अति चेतन मन उसी समय आपको यह बता रहा है कि यह स्वप्न है। दोनों बातें एक साथ घटित होंगी। उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति स्वप्न में शेर मारने जाता है। वह शेर उसके सामने आ जाता है तो शेर कहता है (सपने के शेर बोलते भी हैं) कि तुम्हारी गोली चलाने से पहिले मैं तुम्हें खा जाऊँगा। यह व्यक्ति उस शेर से कहता है—यदि मुझे खाने आयेगा तो तू भी नहीं रहेगा क्योंकि मेरी आँख खुल जायगी, सपना टूट जायगा। यह सम्भावना है, ऐसे जाग्रत स्वप्न आपने भी देखे हों, जहाँ स्वप्न में आपको यह बोध रहा हो कि यह स्वप्न है। **'स्वप्न में स्वप्न का बोध रहना 'अति चेतन मन' का उदाहरण है।**

जब साधना की जड़ अचेतन मन से गहरी जाने लगे तो अगला पड़ाव 'समष्टि अचेतन मन' (Collective Unconscious Mind) का आता है। इसे मनोवैज्ञानिक गुस्तक जुंग ने खोजा था। जिस व्यक्ति की साधना की जड़ 'समष्टि अचेतन मन' तक पहुँच जाती है उसे 'समष्टि चेतन मन' की सिद्धि प्राप्त हो जाती है अर्थात् उस व्यक्ति का मन इतना चैतन्य हो जाता है कि जो सब को प्रतीत होगा वही उस व्यक्ति को प्रतीत होगा। जैसे एक व्यक्ति गुलाब का फूल सूंघता है, दूसरा व्यक्ति भी सूंघता है, दोनों को वह गंध एक जैसी ही प्रतीत होगी। प्रकाश यदि एक व्यक्ति को लाल दिखाई दे रहा है तो उसे देखने वाले दूसरे व्यक्ति को भी लाल ही दिखाई देगा। संगीत, रूप, रंग आदि सभी क्रियाएँ जैसी एक को अनुभव होंगी वैसी ही दूसरे को यहाँ तक कि समस्त प्राणी मात्र को वैसी ही अनुभव होंगी (अचेतन मन वाली क्रियाओं के अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को भिन्न-भिन्न होंगे, स्वप्न दो व्यक्तियों के एक जैसे नहीं होते)।

'समष्टि चेतन मन' की क्रियाओं को समझने के लिये भाषा की आवश्यकता नहीं पड़ती। भाषा के माध्यम से समझी जाने वाली क्रियाएँ व्यक्तियों तक ही सीमित रहती हैं। जानवरों और कीड़े-मकोड़ों तक नहीं पहुँचती। जबकि 'समष्टि चेतन मन' (Collective Conscious Mind) प्राणी मात्र का एक जैसा है। आप कहेंगे कि आपने फ्रायड को मात्र एक मनोवैज्ञानिक कहा और जुंग को महान् मनोवैज्ञानिक कहा है, ऐसा क्यों ? इसका कारण है—फ्रायड ने चेतन मन में रह कर ही 'अचेतन मन' का अनुमान किया था, अनुभव नहीं। यदि फ्रायड अचेतन मन का अनुभव कर लेता तो वह 'समष्टि अचेतन मन' का अनुमान कर लेता और वे बातें लिखता जो जुंग ने लिखी हैं। इसलिये जुंग मेरे विचार से क्रियात्मक रूप में फ्रायड से एक सीढ़ी आगे है। यदि जुंग 'समष्टि अचेतन मन' को अनुभव में ले आते तो वे 'ब्रह्म अचेतन मन' (Cosmic Unconscious Mind) का अनुमान कर लेते। हमारे ऋषि मुनियों में कुछ ऐसे हुए हैं जिन्होंने समष्टि अचेतन मन की सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् 'ब्रह्म अचेतन मन' का अनुमान किया है। जो 'ब्रह्म अचेतन' मन में उतर गया उसने 'ब्रह्म चेतन मन' (Cosmic Conscious Mind) की सिद्धि प्राप्त कर ली। 'समष्टि चेतन मन' प्राणी मात्र का एक सा था। 'ब्रह्म चेतन मन' सबका एक सा है। व्यक्ति का भी और पत्थर का भी, पानी का भी और आग का भी, अणु का भी और तरंग का भी। यह जो सूक्ष्म वस्तु सबको एक किये हुए है यही वह शक्ति है जिसे हम लोग कुण्डलिनी क्रिया द्वारा प्राप्त करने की साधना करते हैं। जहाँ सब कुछ एक ही हो जाता है उसे ही अद्वैत का अनुभव कहते हैं। यही हमारी साधना तपस्या के प्रारम्भ से लेकर उसके अन्त समाधि फलित होने तक की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके लिये सारे दर्शन आगम और तन्त्र शास्त्र भरे पड़े हैं जिसे प्राप्त करने में लोग पता नहीं कितने जन्म लगा देते हैं। यहाँ पर हम ऐसा साधना के प्रारम्भ काल की ही बात कर रहे हैं।

पूरी साधना चित्त की दशा परिवर्तन का कमाल है। जैसे कि आप सोते हुए आदमी को जगा दें तो आदमी वही रहता है केवल उसकी चित्त दशा बदल जाती है। हमें यहाँ पर जीवन के प्रत्येक कदम पर अपनी चित्त दशा को बदलते जाना है। बिना चित्त दशा बदले उससे अगले कदम को आप नहीं समझ सकेंगे। जैसे कि सोता हुआ व्यक्ति चित्त दशा बदले बिना (जाग्रत दशा में आये बिना) जागरण को नहीं समझ सकता। यहाँ पर हम ऐसी ही चित्त दशा बदलने वाली छोटी-छोटी क्रियाओं की प्रारम्भिक बातें बता रहे हैं, उनका अभ्यास प्रारम्भ करें—

१. जीवन में सामाजिक एवं व्यक्तिगत परिस्थितियों का समायोजन न हो पाने के कारण बहुत से संवेगात्मक क्षण आते हैं, उनमें आप केवल वांछनीय संवेगों को ही महत्व दें।

२. समय के अनुसार परिस्थितियाँ बदलती ही हैं। केशवदास जी कहते थे—

"केशव केसन असि करी जे अरि हू न कराहिं।
चंद्रबदन मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाँहि॥"

ऐसी ही बहुत सी कष्टदायक अनुभूति देने वाली नवीन परिस्थितियों से शीघ्रता से समायोजन स्थापित करना सीखें जिससे कोई "Generations Gap" वाली बात न कह पाये। बच्चों के साथ बच्चे और बूढ़ों के साथ बूढ़े बनें।

३. किसी भी बात के दो पक्ष होते हैं—धनात्मक (आशावादी) तथा ऋणात्मक (निराशावादी)। जीवन में सदैव धनात्मक पक्ष को ले कर चलें। धनात्मक की बात करें और धनात्मक ही कार्य करें।

४. प्रत्येक समाज अर्थात् 'व्यक्ति वर्ग' के अपने कुछ नियम होते हैं परन्तु व्यक्ति की इच्छायें एवं आवश्यकतायें सीमा एवं नियमों में न बँधने वाली होती हैं। आप जब तक समाज से ऊपर नहीं उठ जाते अपनी इन इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति में सामाजिक नियन्त्रण का सदैव ध्यान रखें।

५. आज का युग किसी एक विषय को पकड़ कर बैठने का नहीं है। आप 'Jack of all' बनने का प्रयत्न करें। एक विषय का विशेषज्ञ (Master of one) बनने से Jack of all (हरफन मौला) बनना अधिक श्रेयस्कर है जिससे आप सामाजिक, व्यवसायिक, शैक्षिक, नैतिक आदि सभी क्षेत्रों में समायोजन स्थापित करने में समर्थ बन सकें।

६. ऐसी आदतें विकसित करें जिससे आपका स्वयं का और दूसरों का हित हो।

७. यदि आप में लज्जालुपन है, आप एकाकी रहते हैं तो यह अच्छी आदत नहीं है। यह स्थिति आत्महत्या अथवा संन्यासीपन तक पहुँचाने वाली है। अत: एकाकीपन और लज्जा छोड़ कर क्रियाशील बनने का प्रयत्न कीजिये।

८. यदि आप 'अधिक क्रियाशील' होंगे तो कम क्रियाशील लोग आपके मार्ग में रोड़े लगायेंगे उनसे आपको सावधान रहना होगा। अधिक क्रियाशील व्यक्ति अधिकतर उद्दण्ड बन जाते हैं। उद्ण्डता से अपने को अवश्य बचायें रखें और नम्रता का व्यवहार करते रहें।

९. 'संवेदनशीलता' व्यक्ति की चैतन्यता की निशानी है, परन्तु 'अतिशय संवेदनशीलता' एक व्यक्तिगत दोष बन कर सामने आती है। अत: जरा सा किसी के कुछ कह देने पर गाल फुला लेना, अथवा किसी कार्य को अक्षम्य अपराध समझ कर दोषी व्यक्ति को सुधारने का अवसर न प्रदान करना एक अनुचित बात है। क्योंकि "To err is human." (गलती मनुष्य से ही होती है)।

१०. कुछ लोग निरर्थक अथवा अनावश्यक चिंताएँ किया करते हैं। निरर्थक वे जो भविष्य में आनी ही नहीं हैं, और अनावश्यक वे जो घटनाएँ होती हैं, परन्तु आप उनके लिये कुछ नहीं कर सकते। ऐसी दोनों ही चिंतायें अभी से त्याग दीजिये और केवल उतना ही सोचिये जिसके बारे में आप कुछ कर सकते हैं।

११. यदि आप में व्यावहारिक दोष हैं। जैसे—बातें करने में 'गाली शब्द' जाने अनजाने निकल जाना, कोई वस्तु देख कर उसे चुरा ले जाने का मन करना, बिना किसी विशेष कारण के भी झूठ बोल-बोल कर सच बोलने की आदत ही समाप्त कर लेना, कुछ व्यक्तियों को काम में लगे देख कर स्वयं पीठ घुमा कर खड़े हो जाना, अपना रौब दिखाने के लिये छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा और मार-पीट कर बैठना, आदि तो उन्हें आज, अभी और इसी क्षण से दूर करने के प्रयत्न में लग जाइये।

१२. कुछ लोग अनावश्यक क्रियाएँ करते हैं जैसे—बात करते-करते पैर हिलाते रहना, थोड़ी-थोड़ी देर बाद घड़ी देखते रहना, अकारण हाथ मलना, नाक में उँगली डालना, सही बात को भी कुतर्क द्वारा गलत सिद्ध करने का प्रयत्न करना, एक आदमी की बात पूरी

सुने बिना अपनी बात बोलना प्रारम्भ कर देना, अपने को छोड़ कर, दुनियाँ के प्रत्येक व्यक्ति को चरित्रहीन समझते रहना, जो कार्य आपने स्वयं नहीं किया उसे ही गलत समझना, किसी के अच्छे कार्य का भी मजाक उड़ाना, आदि इसी प्रकार के बहुत से दोषों से बचने के लिये प्रयत्न करना।

१३. **भय के समान 'अधर्म' कोई नहीं है और कमाल तो यह है कि अधिकतर धर्मों और सम्प्रदायों की नींव भय पर ही आश्रित है।** कोई दोजख का भय देता है, कोई नर्क का, कोई पाप का, कोई भगवान के देखने का। लोग सोचते हैं कि अनुशासन के लिये 'भय' आवश्यक है। नहीं ! **'भय' का अनुशासन टिकाऊ नहीं होता, 'समझ' से जो अनुशासन पैदा हो वही उचित और टिकाऊ होता है।** आप लोग अपने प्रत्येक कार्य में 'समझ' पैदा कीजिये और भय को निकाल दीजिये। भय का डंडा पशु के लिये होता है जो बात समझने को तैयार ही नहीं होता। आपमें तो शायद यह पशु-पन नहीं है, यदि किसी कोने में रह गया हो तो उसे निकाल दीजिये।

१४. ऐसे व्यक्ति जो कहते कुछ हैं, और करते कुछ हैं अथवा ऐसे व्यक्ति जो समाज के सम्मुख अपनी आदर्शवादिता की डींग मारते हैं और पर्दे के पीछे असामाजिक और अनैतिक कार्य करते और करवाते हैं ऐसे दोहरे व्यक्तित्व वाले लोगों से आप स्वयं चौकन्ने रहिये और अपने अन्दर ऐसा व्यक्तित्व न पनपने दीजिये।

१५. अपने आलोचकों से चिढ़िये मत। अच्छे बुरे का ज्ञान कराने में यह लोग बड़े सहायक होते हैं। यदि आलोचना न हो तो आप अपने सभी कार्यों को अच्छा ही समझते रहेंगे। जिस प्रकार आलोचकों से आपको अपनी कमियों का ज्ञान होता है, प्रशंसकों से अपनी विशेषताओं का ज्ञान होता है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ कमी होती है, और कुछ न कुछ विशेषता होती ही है। आलोचना के आधार पर अपनी कमी को अथवा दुर्गुण को पहचानिये। यदि आप अपनी कसौटी पर आलोचक को सही पायें तो अपनी कमी को दूर कर आलोचना का लाभ उठाइये। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने प्रशंसकों की संख्या बढ़ाने के लिये विभिन्न प्रकार की विशेषताओं का अपने में समावेश करने का प्रयत्न करिये।

१६. जीवन में आने वाले अंतर्द्वन्द्वों से अपने को मुक्त रखें तथा संवेगात्मक ग्रन्थियों को बिल्कुल भी पनपने न दें।

१७. जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं को अपने ही तरीके से हल करने के लिये अपनी समस्याओं के सम्बन्धि में अन्तर्दष्टि रखें।

१८. प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति और आकांक्षाओं में अन्तर होता है। यदि आप उनमें सामंजस्य न स्थापित कर सकें तो कम से कम उनकी पूर्ति में एक दूसरे को बाधक न बनने दें।

१९. अपने सम्मुख कुछ उपयुक्त लक्ष्य रखें जिनसे आपको आत्म संतोष एवम् आनन्द प्राप्त हो।

■■

११

आत्मिक स्वाध्याय

इस अध्याय में 'आत्मा से सम्बन्धित' ज्ञान को बढ़ाने तथा अनुभव करने के लिये उससे सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करना सिखाया जायगा। आत्मज्ञान के बारे में बहुत-सा मसाला वेदों, आगमों, पुराणों, लोक कथाओं, परामनोवैज्ञानिक परीक्षणों, पुरातत्व विभाग के द्वारा खुदाई में प्राप्त बहुत से तत्संबंधित शिलालेखों, लोक जीवन में घटने वाली विभिन्न घटनाओं आदि से प्राप्त होता है। जो, जहाँ, जिस समय प्राप्त हो उसे वहीं अपने 'आत्म तत्व दर्शन' के नियमों से मिला कर देखिये कि किस घटना अथवा विवरण का कहाँ तक मेल बैठता है। इस मेल-बेमेल का हिसाब लगाने के लिये यह आवश्यक है कि 'महर्षि यतीन्द्र दर्शन के ८० सूत्र' आपको अच्छी तरह ध्यान हों। इसका आशय यह कदापि नहीं है कि संसार के प्रारम्भ से अन्त होने तक का सारा साहित्य और घटना-क्रम इन सूत्रों के ही अन्तर्गत होना है, यह सूत्र इस विषय में सोचने के लिये आप जैसे शोध कर्त्ताओं को एक नई दिशा दे दें, यही बहुत है।

एक उदाहरण से इस बात को और स्पष्ट कर दिया जाय—'पद्म पुराण-सृष्टि खंड' (जिसे लोग अधिकतर झूठा और मन-गढ़न्त कह देते हैं, का ही वक्तव्य देकर आपकी शंका को दूर करते हैं) में कहा गया है "जो नित्य सदसत्स्वरूप अव्यक्त एवं सबका कारण है, वह ब्रह्मा ही महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त विशाल ब्रह्माण्ड की सृष्टि करता है। सबसे पहले हिरण्यमय अंड में ब्रह्मा जी का प्रादुर्भाव हुआ। वह अंड सब ओर जल से घिरा है। जल के बाहर तेज का घेरा, तेज के बाहर वायु का आवरण, वायु आकाश से और आकाश भूतादि से घिरा है। उक्त अंड को ही सम्पूर्ण लोगों की उत्पत्ति का आश्रय बतया गया है।"

अब इस वक्तव्य को आप अपनी कसौटी पर कसते जाइये कम से कम ९० प्रतिशत विवरण स्पष्ट हो जायगा। देखिये—जो नित्य (सदैव रहने वाला), सद सत्य स्वरूप (जो सदैव एक ही आकार में रहने वाला है, आकार न बदलने वाला है), अव्यक्त (जिसे पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाते), एवं सबका कारण (आधार—आत्मा न हो तो शरीर का निर्माण नहीं होता। पहले आत्मा आती है तब उसके ऊपर शरीर निर्माण गर्भ में प्रारम्भ होता है) है, वह ब्रह्म (आत्मा) ही महत्तत्व (तत्व Matter से भी आगे का अणु

Molecule या Atom) से लेकर विशेष पर्यन्त (किसी भी विशेष वस्तु वा जीव तक, जो हो सकता है) विशाल ब्रह्मांड (संसार) की सृष्टि करता है। सबसे पहले हिरण्यमय (तेजोमय, जिसका रंग सुनहरी है) अंड (आत्मा) में ब्रह्मा जी (आदि पुरुष) का प्रादुर्भाव हुआ। वह अंड (आत्मा) सब ओर जल [(ओज—जो आत्मा के चारों ओर मस्तिष्क के ब्रह्म रंध्र (Thalamus) में भरा हुआ है] से घिरा है। जल से बाहर तेज का घेरा [ओज के आगे मस्तिष्क से बाहर तेज (Aura) (जो कि अवतारों के चित्रों में उसे चेहरे के चारों ओर सफेद या सुनहरी प्रकाश का घेरा बनाकर दिखाते हैं) का घेरा] होता है, तेज के बाहर वायु का आवरण (तेज से आगे वायु है ही) वायु आकाश से (वायु के आगे आकाश है) और आकाश भूतादि से घिरा है (पूरा आकाश सम्पूर्ण प्रकृति से भरा हुआ है ही)।

तेज (Aura) के उदाहरण स्वरूप मिस्टर कोलिन विल्सन (Colin Wilson) ने अपनी पुस्तक ऑकल्ट (Ocult) (दिव्य दृष्टि) में लिखा है "दिव्य दृष्टि प्राप्त व्यक्ति को प्रत्येक मनुष्य के चेहरे के चारों ओर विभिन्न प्रकार के Aura (आभा) दिखाई देते हैं। हर मनुष्य के चेहरे और शरीर के चारों ओर व्यक्ति के मस्तिष्क में पैदा होने वाले अच्छे या बुरे विचारों के अनुसार विभिन्न रंगों और आकारों का घेरा दिखाई देता है।" मिस्टर किरलियन (Kirlian) नामक रूस के इलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियर ने मनुष्य शरीर से निकलने वाली चमकदार ऊर्जा तरंगों के फोटो लेकर दिखाये हैं। इस वैज्ञानिक ने विशेष उपकरणों की सहायता से मनुष्य की अंगुलियों से फुलझड़ी की भाँति सूक्ष्म चिनगारियाँ निकलती हुई देखी हैं। मास्को मैडीकल इन्स्टीट्यूट के प्रोफेसरों ने इन चिनगारियों में पाये गये अन्तर का निरीक्षण करके कैन्सर आदि रोगों की भविष्यवाणियाँ तक कीं और सफल हुए। मैकगिल यूनिवर्सिटी मोन्टीरियल, अमेरिका के प्रोफेसर **डॉ. बर्नाड** ने भी ऐसे ही अनुसन्धान किये हैं।

रूस में छपी 'Psychic Discoveries Behind The Iron Curtain जैसी पुस्तकें पढ़ने से ज्ञात होता है कि भारत के बाहर वैज्ञानिक लोग मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों के अनुसन्धान में कितने व्यस्त हैं? आजकल बड़े-बड़े मानसिक चिकित्सक Neuro Surgeons मन के सूक्ष्म सात पर्दों (जिनका विवरण 'मानसिक आत्म अध्ययन' नामक अध्याय में दिया है) को मानने लग गये हैं। योग की बहुत प्राचीन पुस्तकों में अन्तःकरण (मन) के सात आवरण की बात की गई है कि ज्यों-ज्यों भीतरी पर्दों में चेतना पैदा होती जाती है त्यों-त्यों ही व्यक्ति दूर-दूर तक की घटनाएँ देखने योग्य हो जाता है। यह बात भी अब Neuro Surgeons मानने लगे हैं1 तात्पर्य यह है कि इस 'एक' वक्तव्य को स्पष्ट समझने के लिए आपको ऐसे ही बहुमुखी ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है; यदि यह ज्ञान आज के वैज्ञानिक अनुसन्धानों आदि पर आधारित हो तो संदेह के लिए स्थान नहीं बचता। उपर्युक्त ब्रह्म पुराण के वक्तव्य में जिस प्रकार से स्पष्टीकरण किया गया है, ऐसे ही स्पष्टीकरण अन्य स्थलों पर करना आवश्यक है।

रूस और अमरीका की सरकारें असाधारण मानसिक शक्ति (E.S.P.) पर पिछले २०-२५ वर्षों से करोड़ों रुपया खर्च करके दिव्य दृष्टि पर अनुसंधान कर रही हैं। अमरीकन इंगो स्वान (Ingo Swan) तथा पैट प्राइस (Pat Price) के नाम तो इस

विषय में जगत प्रसिद्ध हैं ही, जिन्होंने वहाँ के मिलिट्री सी. आई. डी. तक को गुप्त भेद बताकर आश्चर्य में डाल दिया था। अमरीका में सबसे पहले १९५२ में डॉ. जे. बी. राहीन (J. B. Rahine) ने असाधारण मानसिक शक्तियाँ (Extra Sensory Perceptions) पर अनुसंधान प्रारम्भ किया था।

एक और उदाहरण—"आध्यात्मिक व गुप्त विद्यायें' नामक पुस्तक के 'वीर्य को नष्ट होने से रोकने के लिए वज्रोली मुद्रा' नामक शीर्षक से प्रकाशित विवरण को देखिये—"आध्यात्मिक और गुप्त शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए योगी अपने वीर्य की एक बूँद को भी नष्ट नहीं करते। गुप्त विधियों से योगी अपने वीर्य को गुप्तांगों से निकाल कर रीढ़ की हड़ी द्वारा खींचकर मस्तिष्क में ले जाते हैं। एक शुक्राणु Sperm स्त्री के अंडे में जाकर ताकतवर मनुष्य बन सकता है। एक बार सम्भोग करने पर मनुष्य के एक चम्मच वीर्य में ५ से ८ करोड़ वीर्य कीट होते हैं। योगी ऐसे करोड़ों वीर्य कीट अपने मस्तिष्क के आध्यात्मिक केन्द्र में पहुँचाकर इनका शोषण कर लेते हैं, जिससे उनमें इतनी अधिक आध्यात्मिक शक्ति, दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वीर्य को नष्ट होने से बचाने के लिए योगियों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

कुछ योगी ही निरन्तर प्रैक्टिस से वीर्य को नष्ट होने से बचाने में सफल होते हैं। डॉक्टर बन्द मूत्र से निकालने के लिए रबड़ और धातु के बने कैथेटर मूत्र मार्ग में प्रवेश किया करते हैं। कैथेटर एक ट्यूब होती है। योगी इस उद्देश्य के लिए चाँदी के विशेष प्रकार के कैथेटर बनवाते हैं। इस कैथेटर को मूत्र के छेद में पहले दिन एक इन्च अन्दर दूसरे दिन दो इन्च अन्दर प्रवेश करते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन प्रैक्टिस करके १२ दिन में १२ इन्च मूत्र प्रणाली में गुजार कर मूत्राशय तक पहुँचा लेते हैं। पहले दिन इस कैथेटर द्वारा प्रक्षालित जल (डिस्टिल्ड वाटर) को मूत्राशय में पहुँचाते हैं और उसके पश्चात् तेल और बाद में मधु चढ़ाने की प्रैक्टिस करते हैं। इन वस्तुओं को चढ़ाने में सफल हो जाने के पश्चात् अन्त में पारा चढ़ाने की प्रैक्टिस की जाती है। पारा सबसे भारी वस्तु है। योगी जब इन वस्तुओं को कैथेटर से चढ़ाने में सफल हो जाता है तो बाद में विशेष विधि से सांस अन्दर खींच कर कैथेटर के बिना ही मूत्र के छिद्र में बारी-बारी उपरोक्त वस्तुओं को चढ़ाता है। जो योगी पारे जैसी वस्तु को मूत्र प्रणाली में खींचकर चढ़ा सकता है, उसका वीर्य यदि निकल भी जाये तो निकलते हुए वीर्य को ऊपर खींच लेता है।

ऐसे योगी जो अपने वीर्य को नष्ट नहीं होने देते बल्कि उसको अध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए अपने मस्तिष्क में शोषण कर लेते हैं, उनके चेहरे व आँखों में विशेष प्रकार की ज्योति और तेज उत्पन्न हो जाता है। इन योगियों के शरीर से खुशबू आती है। इस प्रयोग की गुप्त विधियाँ सफल योगी अपने योग्य शिष्य को ही सिखलाते हैं। प्राचीनकाल में राजा भर्तृहरि इस विद्या के विशेषज्ञ मान जाते थे। **कई योगी स्त्री से सम्भोग करने पर भी वीर्य को इस विधि द्वारा नहीं निकलने देते। यह प्रैक्टिस सांस द्वारा ही की जाती है।** कोई योग्य योगी ही इस विधि को वर्षों के परिश्रम के पश्चात् सिखाता है। स्वयं अभ्यास करने से हानि हो सकती है। यहाँ जानकारी के

लिए योगियों की इस क्रिया का सिद्धान्त लिख दिया गया है। योग में इसको 'वज्रोली मुद्रा' कहते हैं।

वज्रोली मुद्रा के इस विवरण को पढ़ कर मुझे एक बच्चे की बाद याद आ गई। वह बच्चा एक दूसरे बच्चे को अपनी माँ के बारे में बता रहा था। सूसी ! मेरी माँ बहुत अच्छी है। वह भगवान से भी नहीं डरती, शेर तो कोई चीज ही नहीं। मेरी छोटी बहन है न, जिसको मेरी मम्मी दो दिन पहले अस्पताल से लाई है। मालूम है कितनी मुश्किल से लाई है? वहाँ की नर्स और डॉक्टर तो लाने ही नहीं दे रहे थे। वे कहते थे—इतनी सुन्दर गुड़िया को तो हम यहाँ ही रखेंगे। पर मेरी माँ तो भगवान से छीन कर लाई थी, तो उनके पास कैसे छोड़ देती? भगवान भी दे थोड़े ही रहे थे। अस्पताल में सीढ़ियाँ लगी हैं जो भगवान के पास तक जाती हैं। उन पर चढ़ कर मम्मी भगवान के कमरे में गईं तो वहाँ बहुत सारे बच्चे हैं, उनमें से मम्मी ने इस गुड़िया को उठा लिया तो भगवान बोले कि तुम कुछ भी ले जाओ पर इस गुड़िया को मत ले जाओ, ये तो यहाँ की सबसे सुन्दर गुड़िया है, पर मम्मी को तो वही पसन्द आई। फिर बहुत झगड़ा करके भगवान से ये गुड़िया लेकर आई हैं। हमारी दादी तो बेकार में मम्मी से लड़ती थीं कि भैया लेकर नहीं आईं। पहले तो मैं भी मम्मी से बोला नहीं था मैंने कहा भैया लेकर आओ तो घर में घुसने दूँगा पर जब मम्मी ने पूरी बात बताई तब मेरी समझ में आई कि मम्मी कितनी अच्छी हैं।

जिस तरह से इस बच्चें की कहानी सुनकर आप हँस रहे हैं और सोच रहे हैं "मम्मी कितनी अच्छी हैं?" उसी प्रकार कोई भी कुण्डलिनी और वज्रोली मुद्रा का जानकार उपर्युक्त वज्रोली कहानी को पढ़कर हंसेगा और कहेगा "योगी कितना ऊँचा है।"

"वज्रोली मुद्रा की विधि सैद्धान्तिक रूप में आपके सम्मुख ब्रह्मचर्य वाले अध्याय में प्रस्तुत की जा चुकी है। उससे मिलाकर आप सारी शंकाओं का निवारण करके वज्रोली की कहानी को सही रूप में समझ सकते हैं। इसकी क्रियात्मक विधि मुद्रा वाले अध्याय में दी गई है। संक्षेप में यहाँ इतना कह देना काफी होगा कि **वज्रोली मुद्रा अत्यन्त सरल विधि है और थोड़े से अभ्यास से सीखी जा सकती है।**

कई लोगों का यह भ्रम है कि 'आत्मिक स्वाध्याय' में केवल भारतीय लोग ही रुचि लेते हैं। 'आध्यात्म' मनुष्य मात्र की आवश्यकता है, जैसे भाषा। भाषा प्रत्येक विकसित अथवा अविकसित मानव की विधा है। इसका अनुभव उस समय होता है जब हम समूचे विकसित मानवों से अलग-अलग रह रहे आदिवासी जैसे समूहों का अध्ययन करते हैं। सन् १९६५ में जब मैं निकोबार द्वीप समूह पहुँचा तो मैं यह देखकर दंग रह गया कि वहाँ के नंगे रहने वाले लोग भी अंग्रेजी और हिन्दी ऐसे बोलते थे जैसे कि हमारे यहाँ का सामान्य व्यक्ति किसी विदेशी भाषा को बोल लेता है और अपनी निकोबारी भाषा को धारा प्रवाह बोलते थे। बाद में मुझे और दूसरे द्वीपों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ विभिन्न प्रकार की आदिम जातियों की आध्यात्मिक विकास की शैली देखकर यह सोचना पड़ा कि इस आदम खोर (Man eaters) लोगों में आध्यात्म का स्फुरण क्योंकर हुआ?

सिंगापुर की एक एयर होस्टेस मिस शुशि (जिनके यहाँ मुझे आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ) के भाई बहुत अच्छे आध्यात्मिक ज्ञानी थे। यह बात भी 1965 की है। उन्होंने मुझे डॉ. जे. बी. राहीन के जेनर कार्ड (Zener Cards) दिखाये। शुशि और वह दोनों इनके प्रयोग करने में सिद्ध हस्त थे और टेलीपैथी द्वारा एक दूसरे को संदेश प्रेषण किया करते थे। शुषि अपनी उड़ान के बीच भी इसी विधि से अपने भाई से बातें कर लिया करती थीं। डॉ. राहीन अमेरिका में नार्थ केरोलीना की ड्यूक यूनिवर्सिटी में १९३० में प्रोफेसर थे। १९३० से प्रचलित इस जेनर कार्ड विधि की अमेरिका के प्रोफेसर स्टील ने १९६९ ई. में वैज्ञानिक रूप देकर एक मशीन तैयार की। जिसमें एक ऐसा शीशा (Reflector) फिट था जो रेडियो जैसी तरंगों को सैकड़ों मील दूर तक पहुँचा देता था।

हॉलैण्ड के पीटर हुकोस (Peter Hwkos) दिव्य दृष्टि के विषय में अधिक प्रसिद्ध हैं। २२ जून १९४४ ई. में वे ३० फुट की ऊँचाई से गिर गये थे। सिर पर चोट लगने के बाद से वह 'दिव्य दृष्टि' वाले व्यक्ति बन गये और लोगों के विचारों को जानने लगे। यह बात जरमनी की है—उन्होंने एक व्यक्ति को (जो ब्रिटिश सी. आई. डी. का था) सावधान किया कि तुम्हें जर्मन सी. आई. डी. गोली मार देगी। कुछ दिन बाद ऐसा ही हुआ। हॉलैंड सी. आई. डी. को इन पर यह संदेह हुआ कि पीटर विदेशी सी. आई. डी. है। परिणाम यह हुआ कि उसे मारने की योजना बना दी गई और एक स्पेनी युवक उसे ऐसा तकिया देने गया जिसे सिर के नीचे लगाकर सोने पर व्यक्ति की साँस घुट कर मृत्यु हो जाय। तकिया हाथ में लेते ही पीटर के 'त्रिनेत्र Sixth Sense' ने काम प्रारम्भ कर दिया और पीटर ने जो स्पेनी भाषा नहीं जानता था स्पेनी में ही उस युवक को फटकारा और अपनी जान बचा ली। हमारे प्राचीन ऋषियों ने योग विद्या में निपुण व्यक्तियों को (विशेषकर ऐसे व्यक्तियों को जो अभी आगे बढ़ते जा रहे हैं) प्रदर्शन न करने का निर्देश इसी कारण दिया हुआ है जिससे वे ईर्ष्यालुओं के कुकृत्यों से बचे रहें। केवल योग भ्रष्ट व्यक्ति को ही योग की महिमा का प्रदर्शन करने का अधिकार दिया गया है।

लन्दन के डॉ. ब्रुन्टन (Brunton) सन् १८९८ ई. में पैदा हुए थे। वे भी गुप्त विद्याओं के अच्छे विशेषज्ञ (Mystics) माने जाते थे। उनकी पुस्तकें 'हिडिन टीचिंग्स बीयांड योगा' तथा 'ऐ सर्च इन सीक्रेट ईजिप्ट' के पढ़ने पर पता लगता है कि उन्होंने हिमालय के योगियों, तिब्बत के तान्त्रिक, ईरान ईराक, मिस्र के सूफियों से क्या कुछ सीखा है? लन्दन में छपी एक पुस्तक "Wonder Healers of Philipines" को देखने से ज्ञात होता है कि हांगकांग के पास फिलिपाइन्स के द्वीपों में सैकड़ों ऐसे प्रसिद्ध चिकित्सक हैं जो रोगियों की चिकित्सा बिना दवा खिलाये केवल आध्यात्मिक शक्ति से करते हैं, और चिकित्सा की कोई फीस (शुल्क) नहीं लेते। फिलिपाइन में आध्यात्मिक शक्ति से चिकित्सा करने वालों की एक रजिस्टर्ड यूनियन है। मलेशिया के डॉ. मार्क टंग जो ९९ वर्ष की आयु के होकर सन् १९७१ ई. में स्वर्गवासी हुए, अपनी 'Drugless Therapy' के लिए बहुत प्रसिद्ध हुए। आपने १९६३ में मेलबोर्न (आस्ट्रेलिया) में रहने

वाले एक स्त्री के कैंसर को अपने घर क्वालालंपुर में बैठकर (लगभग ६४३० मील दूर से) ठीक किया था। रोम (इटली) की रॉयल यूनिवर्सिटी में न्यूरोसाइकोलॉजी (मानसिक शक्ति) के प्रोफेसर Caligaris ने मस्तिष्क, आत्मा, मन आदि पर कई वर्षों तक खोज की है। उनका कहना है कि व्यक्ति के शरीर में बहुत से ऐसे मर्म स्थल हैं जिन पर दबाव डालने से अथवा उन्हें उत्तेजित कर देने से व्यक्ति दूरदर्शी बन जाता है।

लन्दन में १८८४ ई. में 'कालिज आफ साइकिक साइन्स' आध्यात्मिक विद्या की शिक्षा दे रहा है जिसके प्रेसीडेन्ट मिस्टर पाल बेयर्ड थे। अमेरिका में आध्यात्मिक शिक्षा देने के लिए Rosicrucians नामक सोसायटी Amorc Sanjose, California U. S. A. में है। इस संस्था के भूतपूर्व डायरेक्टर डॉ. लुईस आँखों की एक्सरसाइज द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त करने की विधियाँ सिखाते थे। मिस्त्र के क्रिस्टल-गेजर (क्रिस्टल का शीशा देखकर भविष्य बताने वाले) तो जगत प्रसिद्ध हैं ही। मलेशिया के ऐलोपैथिक डॉक्टर जो अब स्वामी शिवानन्द के नाम से जाने जाते हैं, ने सन् १९३६ ई. में ऋषिकेश में बहुत अच्छा आश्रम बनाया और ४-५ सौ पुस्तकें योग और गुप्त विद्याओं पर प्रकाशित की हैं। फ्रांसीसी मिस्टर कीरो (Chiero) जो हस्तरेखा के लिए विख्यात हैं, ने आध्यात्मिक शक्ति से बहुत से रोगियों को जीवन दान भी दिया था। उन्होंने ३० वर्ष तक भारत, मिस्त्र, यहूदियों, चीनी योगियों और यूनान के दार्शनिकों से गुप्त विद्याएँ सीखीं। इनका असली नाम काउन्ट लुईस हारमोन था। कीरो ने ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री लार्ड बैलफोर, महारानी विक्टोरिया, एडवर्ड सप्तम, यूरोप के बादशाह, रूस के जार (बादशाह), इटली के बादशाह हमबर्ट आदि के बार में सही भविष्य वाणियाँ की थीं।

श्रीमती Haloford Nelson ने Chiero की जीवनी लिखी है और वह बताती हैं कि श्रीकागलियास्ट्रो (Cogliostro) की आत्मा ही Chiero की आत्मा और Cagliostro के अन्दर यूनान के फिलास्फर डेमेट्रियस फेलकस (Demetrius Phalcus) की आत्मा थी। प्रसिद्ध माइनिंग इंजीनियर मेजर क्रास ने Chiero के अन्दर से निकलने वाली आध्यात्मिक तरंगों (G Rays) पर खोज की थी। मैडम बलावत्सकी (जिन्होंने 'थियोसोफिकल सोसाइटी' भारत में चलाई) भी कई बार Chiero को मिली थीं। क्योंकि Chiero दो बार मर कर जी उठा थां, और तीसरी बार उसकी मृत्यु १९६६ ई. में हुई। मिस्टर बटलर की पुस्तक How to Develope Clair Voyane (दिव्य दृष्टि कैसे विकसित करके) में अच्छे अभ्यास दिये गये हैं। टैलीपैथी (जिसके बारे में पहले लिखा जा चुका है) सीखने के लिए अमेरिका में E. S. P. Cards का सेट मिलता है।

समुद्री डाकुओं और जहाजों को लूटने वाले गिरोहों की रोमांचकारी घटनाओं में प्रसिद्ध डाकू विलियम और किड की घटना अद्‌भुत है। जिन्हें १९ मई १७०१ ई. में संगीन अपराधों के कारण फाँसी दी गई थी। यह दोनों सरकारी खजानों से भरे जहाजों को लूटकर विभिन्न द्वीपों में दबा दिया करते थे, और खजानों की रक्षा करने के लिए आस-पास उपस्थित व्यक्तियों को मारकर उनकी खोपड़ियाँ वहाँ बन्द कर देते थे, जो उस

खजाने की रक्षा करती रहती थीं। ऐसा ही डाकू कैप्टेन Cult (कल्ट) था जो १८ वीं सदी में बहुत प्रसिद्ध हुआ था। सर अर्थर कैनन डायल ने अफ्रीका की 'बोर' वार में मैडीकल डाक्टर के रूप में कार्य किया था। वे मृतात्माओं से बात-चीत करने में विशेषज्ञ माने जाते थे। वह अपने मृत बेटे की आत्मा से अक्सर बातें किया करते थे। मैडम एच. पी. बलावत्सकी के आध्यात्मिक विवरणों में भी ऐसे ही मृतात्माओं से बात-चीत करने के कई उदाहरण मिलते हैं, जो ऑकल्ट वर्ल्ड (Ocult World) नामक पुस्तक में 'थ्योसोफिकल पब्लिशिंग 'हाउस, लन्दन' ने प्रकाशित किये हैं। वर्जीनिया यूनिविर्सिटी के साइकैट्री एण्ड न्यूरोलोजी डिपार्टमेंट के चेयरमैन प्रोफेसर स्टेविनसन मृतात्माओं के बारे में अच्छी रिसर्च कर रहे हैं। किसी व्यक्ति के बारे में पूर्व जन्म की सूचना पाकर तुरन्त छानबीन प्रारम्भ करते हैं और सत्य प्रमाणित हो जाने पर ही उसे प्रकाशित करते हैं देहली की शान्ति देवी के के पुनर्जन्म की सच्चाई की खोजबीन करने सन् १९६१ ई. में डॉ. स्टेविनसन भारत आये थे। शान्ति देवी पिछले जन्म में मथुरा के श्री केदारनाथ चौबे की पत्नी थीं। इस बात के बहुत से साक्ष्य मिल गये थे। इसी प्रकार, १९१५ ई. में युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए एलबर्ट की आत्मा ने बेल्जियम में राबर्ट के शरीर में जन्म लिया था। डॉ. स्टेविनसन ने प्रमाण मिल जाने के उपरान्त रॉबर्ट के पुनर्जन्म के विवरण को प्रकाशित कराया था। उस समय राबर्ट छ: वर्ष का था।

सन् १९६५ में "Rajul was Gita" शीर्षक से "अमृत बाजार पत्रिका" दिनांक ८ नवम्बर ६५ तथा 'लिंक' दिनांक २१ नवम्बर ६५ में एक समाचार प्रकाशित हुआ था ज़िसके अनुसार—राजुल नामक बच्ची पिछले जन्म में 'गीता' थी। राजस्थान यूनिवर्सिटी के पैरासाइकोलॉजी डिपार्टमेंट के कुछ प्रोफेसर्स ने उसमें अधिक दिलचस्पी ली थी। उस दिलचस्पी का कारण यह था कि सारे साक्ष्य जुटाने के पश्चात् एक बात समझ में नहीं आ पा रही थी कि राजुल के जन्म दिनांक और गीता के मृत्यु दिनांक में ९ महा १७ दिन का अन्तर था इसका स्पष्टीकरण मैंने दोनों पत्रों के संपादकों को कार निकाबार से (पत्र सं. PM७—४/१८२५ CN ८८/६५ दिनांक १५ दिसम्बर १९६५) भेजा था कि यह ९ मास १७ दिन का अन्तर स्वाभाविक है; जिसमें ३६ घन्टे के लगभग 'ट्रान्जिट टाइम' में, और शेष साढ़े नौ माह गर्भ में यह आत्मा रही थी। ऐसा ही एक उदाहरण "महर्षि रमण से बातची" नामक पुस्तक में प्रश्न संख्या २७३ में प्रकाशित हुआ है जिसमें बच्चे के जन्म दिनांक व पूर्व जन्म के मृत्यु दिनांक में १० मास का अन्तर बताया गया है। 'यतीन्द्र दर्शन' के ८० सूत्रों को ध्यान में रखने वाले के लिए ऐसे प्रश्नों के उत्तर दे पाना अत्यन्त सरल है।

आप देखेंगे कि 'आत्मिक स्वाध्याय' कुछ पुस्तकें पढ़ लेने अथवा केवल 'स्वयं का अध्ययन कर लेने' जैसी बातों से पूरा नहीं होता। इसके लिए सम्पूर्ण संसार में चल रहे तत् सम्बन्धित घटना चक्रों पर सचेत दृष्टि रखनी होती है। विदेशों की अपेक्षा भारत में ऐसे संस्था अधिक हैं जो आध्यात्मिक विषयों में संलग्न हैं **परन्तु एकपक्षीय ढंग पर चलने के कारण उनकी शिक्षाएँ विश्लेषणात्मक एवं निष्पक्ष नहीं रह पातीं**। दूसरे शब्दों

में यह कहें कि वह शिक्षा किसी एक गुरु, महात्मा, अथवा तथाकथित 'भगवान' की अपनी विचारधारा का विज्ञापन भर रह जाती है। विज्ञापन इसलिए क्योंकि संस्थापक यदि निष्पक्ष रहे तो भारत में चेलों की संख्या नहीं बढ़ती, और यदि चेलों की संख्या न बढ़े तो धन एकत्र नहीं होता, और धन के बिना कोई संस्था चल नहीं सकती। विदेशों में रिसर्च के लिए जनता से तो अनुदान प्राप्त होता ही है सरकार भी अच्छी सहायता कर देती है। जिससे बहुत सी ऐसी संस्थायें अपना कार्य सुचारु रूप से चलाती रहती हैं तो बिना किसी राजनैतिक, धार्मिक या व्यक्तिगत दबाव के अपना कार्य करना चाहती हैं। भारत में सन् १९६५ में 'रिलीजस रिसर्च एकैडैमी' नाम से एक ऐसी ही संस्था की स्थापना की गई थी। इसके पश्चात् सन् १९६७ में सरकार निबद्ध संस्था 'धर्म तत्व दर्शन विश्विद्यालय' की स्थापना की गई थी। जिसके कई शोध कर्त्ताओं को ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि आदि की उपाधियों से विभूषित किया गया था और ध्वज प्रदान किये गये थे। ये ध्वज निवास तथा वाहनों आदि पर ऐसे ऋषि महर्षि लगा सकते थे।

ऋषि रिसर्च स्कॉलर होता था, महर्षि रिसर्च पूर्ण होने के पश्चात् कहलाता था, परमर्षि रिसर्च आथेन्टिकली प्रूव (प्रमाणित) हो जाने पर होता था और ब्रह्मर्षि किसी महर्षि की रिसर्च पर पुनः रिसर्च कर उसे प्रमाणित करता था। उस समय उसके परमाध्यक्ष डॉ. बी. बी. सिंह थे जिन्होंने अपने क्षेत्र में सर्वोपकारी पुस्तकालय एवं राष्ट्रीय इन्टर कालिज जैसी शैक्षिक संस्थायें भी सफलतापूर्वक चलाईं तथा क्षेत्रीय जनता को 'वीर चिकित्सालय' चला कर स्वास्थ्य लाभ प्रदान किया था। आध्यात्मिक क्षेत्र में वैज्ञानिक शोध के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि 'शोध संस्थान' आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक या व्यक्तिगत आदि किसी भी प्रकार के दबाव से मुक्त हो। ऐसे ही एक और नये शोध संस्थान "Institute of Cosmic Yoga and Motaphysical Researches (योग तत्व एवं आत्म ज्ञान अनुसंधान संस्थान) की स्थापना की गई है। इस संस्थान के सदस्य अपने नाम के साथ M. I. C. M. लिखते हैं। इसके डायरेक्टर, श्री एम. एल. गुलाटी, रिटायर्ड डी. एम. ई. (रेल्वेज), से २९, गोविन्दनगर, शाहगंज, आगरा में मिला जा सकता है।

■■

१२

ईश्वर प्रणिधान

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये हैं—

धृति, क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचं इन्द्रिय निग्रह।
धी विद्या सत्यं अक्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम्॥

मेरे पितामह स्वर्गीय मगन लाल जी ने 'अबला सुधार' नामक पुस्तक में इन दस लक्षणों को इस प्रकार बताया है—

प्रथम धृति को हैं कहते अर्थ सन्तोष है जिसका
क्षमा को दूसरा जानो है मीठा फल सदा तिसका
कहा दम तीसरा लक्षण बनाना निर्विकारी मन
है चौथा त्याग चोरी का औ पंचम है पवित्तर पन
विषय से रोकना इन्द्री छठा लक्षण बताया है
शास्त्रिादिक से लेना ज्ञान सप्तम धर्म गाया है
अष्टम् आत्मा का ज्ञान औ नौवाँ सत्य को जानो
क्रोध का हेतु होते भी उसी का त्याग दस मानो।

आप देख रहे हैं धर्म के इन दस लक्षणों में 'ईश्वर प्रणिधान' का कहीं नाम नहीं है, तो क्या यह अधर्म का लक्षण है ? महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है—

धर्म यो बाधते धर्मों न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मो मुनिपुंगव॥

अर्थात् जो धर्म किसी अन्य धर्म को बाधा दे वह धर्म कुधर्म है परन्तु जो धर्म सब मार्गों और अधिकारों के लिए अविरोधी हो वही सद्धर्म है। धर्म शब्द 'घृ' धातु से बनाया गया है जिसका अर्थ है 'धारण'। धर्म वह है जिसे धारण किया जाय, और जहाँ धारण किया जाय वह धर्म क्षेत्र। गीता में प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक की पंक्ति देखिये—

"धर्म क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः"

यदि आप रहस्यवादी गीता का अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि यह धर्म क्षेत्र जो दशों इन्द्रियों का आश्रय है, अपना शरीर ही है। धर्म के नियमों का धारण भी शरीर का ही काम है। ईश्वर प्रणिधान का सीधा अर्थ है 'ईश्वर अर्पण'। क्यों भई। हम तो 'धारणा' को धर्म कहते हैं अब ' अर्पण' को क्या कहें ? 'महा निर्वाण तन्त्र' कहता है—

"गृहस्थो ब्रह्मनिष्ठः स्याद् ब्रह्मज्ञान परायणः।
यद्यत्कर्म प्रवृर्वीत तद् ब्रह्मणि समर्पयेत्॥"

गृहस्थ को ब्रह्मनिष्ठ (ब्रह्मज्ञान के अनुसार आचरण करने वाला) और ब्रह्मज्ञानी (आत्म तत्व को जानने वाला) होना चाहिए, जो कुछ कर्म वह करे उसे ईश्वर को अर्पण करना चाहिए। गणेश गीता कहती है—

अस्मिश्चराचरे स्थित्यौ पुरोक्तेद्वे मयाप्रिय।
सांख्यानां बुद्धियोगेन वैधयोगेन कर्मणाम्॥

"अर्थात् इस चराचर जगत में दो प्रकार की स्थिति है। एक तो सांख्य योग वालों की जो ज्ञान योग द्वारा आसक्ति रहित होकर चित्त शुद्धि करते हैं, और दूसरी कर्म योग वालों की जो कर्म फल का त्याग कर चित्त शुद्धि करते हैं। दोनों की 'शेष अवस्था' में भिन्नता नहीं है।" जो सांख्य योग के आधार पर इस विषय को लेता है वह अपनी आत्मा को निर्लेप रखने के लिए कर्मों से आसक्ति का परित्याग यह सोचकर करता है कि इन्द्रियाँ अपने-अपने कर्मों में बरत रही हैं, मैं कुछ नहीं कर रहा और अपने कर्मों को 'कर्तव्य' (ड्यूटी) समझ कर पूरे करता है। जो कर्म योग के आधार पर इस विषय को लेता है वह आसक्ति का परित्याग करने के लिये यह सोचता है कि ईश्वर का कार्य ईश्वर को अर्पित। मेरा क्या है, मैं तो एक निमित्त मात्र हूँ। दोनों का आत्मिक परिणाम एक ही रहेगा—कर्म बन्धन से मुक्ति (यदि ध्यान नहीं रहा तो पुनः 'महर्षि यतीन्द्र दर्शन' के नियमों को पढ़कर देख लें।) इसी प्रकार मानसिक परिणाम भी एक ही रहेगा—मानसिक तनाव से मुक्ति।

शरीर मन के अधीन होता है, यदि मन तनाव मुक्त हो तो शरीर स्वतः ही तनाव मुक्त रहेगा। इसीलिये महर्षि पातंजलि के योग सूत्र में कहा है—"ततः प्रशान्त वाहिता संस्कारात् अर्थात् निरोध संस्कार से चित्त की प्रशांति होती है। यह 'निरोध संस्कार' अर्थात् संस्कार (आवरण) का निरोध अर्पण भाव के द्वारा किया जाता है जिससे चित्त में शांति रहती है। शांति प्राप्ति का एक और सूत्र पिछले अध्याय में दिया गया है 'समझौता वाद' जिसका परिणाम था—सन्तोष अर्थात् चित्त में शांति। अब आप उपर्युक्त धर्म के दस लक्षणों पर दृष्टिपात कीजिये। मनुस्मृति ने इन दस धर्म लक्षणों में 'धृति अर्थात् सन्तोष' को प्रथम स्थान दिया है।

ईश्वर प्रणिधान, ईश्वरार्पण, ब्रह्मार्पण सब पर्यायवाची हैं। परन्तु 'समझौता वाद' और 'ईश्वरार्पण' पर्यायवाची नहीं है। **'समझौता वाद' आपने अपने को परिस्थितियों के अनुरूप ढालने के लिए अपनाया है और "ईश्वरार्पण भाव" परिस्थिति को बे-असर**

करने के लिए। मूल परिणाम वही है—परिस्थिति दोनों में बे-असर हो जाती है परन्तु 'समझौता वाद' सांसारिक-भाव से सम्बन्धित है और 'ईश्वर अर्पण' आत्मिक-भाव से।
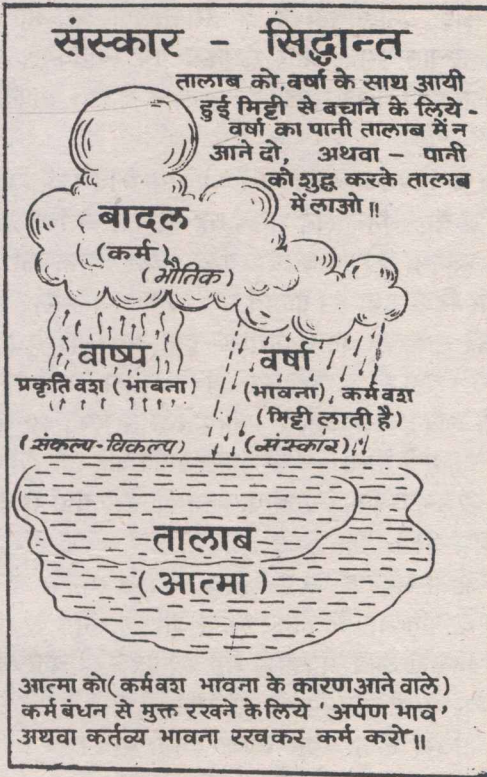
चित्र संख्या—२९

आत्मिक भाव का एक बड़ा सुन्दर और सरल अभ्यास है। 'जो भी कर्म करो ईश्वरार्पण अर्थात् आत्मार्पण होकर करो।' आत्मार्पण से तात्पर्य है अपनी ओर देखते हुए, अपने गुण-अवगुणों को परखते हुए कर्म करो। ध्यान रखना इस पूरे अध्याय में कहीं परमेश्वर, परमात्मा या परब्रह्म शब्द नहीं आया है। यह सब 'आत्मा' से सम्बन्धित बातें हैं। धोखा नहीं खा जाना अन्यथा प्रैक्टीकल में नहीं उतर सकोगे।

लोग अपने गिरहबान में झाँक कर नहीं देखते, सदैव दूसरों के दोष देखते हैं और उन पर टीका-टिप्पणी करते हैं। ऐसे परछिद्रान्वेषी व्यक्ति का चित्त कभी शांत नहीं हो पाता। तो क्या करें? दूसरों के दोष देखना बन्द कर दो। आप कहेंगे क्या पागलपन की बात है? दूसरा व्यक्ति मेरे सम्मुख गलती कर रहा है, मैं अच्छी तरह जान रहा हूँ कि वह गलत है, और मैं उसे देखूँ नहीं, तो मेरी 'परख-बुद्धि' का क्या लाभ है? परख-बुद्धि इसलिए है कि जो गलती दूसरी व्यक्ति कर रहा है उसे आप देखें, समझें और इस बात पर

ध्यान दें कि इस प्रकार की गलतियाँ आप से न हों। 'परख-बुद्धि' इसलिए नहीं है कि दूसरे की गलती को जगह-जगह गाते फिरें कि 'फलाना' अमुक गलती कर रहा है। यदि 'फलाने' से आपको कोई आत्मीयता है तो उस गलती की ओर उस व्यक्ति का ध्यानाकर्षित करो। तत्पश्चात् उसकी ओर से किये गये स्पष्टीकरण को समझो। यह आवश्यक नहीं है कि जो अपने गलत समझा है वह गलत ही हो। आपकी परख-बुद्धि भी गलत हो सकती है।

सुधारवादी बनने के विषय में योगारूढ़ जिज्ञासु के लिए स्पष्ट निर्देश है कि **किसी व्यक्ति को कीचड़ में से बाहर निकालते समय वह ध्यान रखो कि 'स्वयं कीचड़ में न गिर पड़ो।' योगच्युत महात्मा को ही कीचड़ में कूद कर व्यक्ति को कीचड़ से बाहर निकालने का अधिकार दिया गया है।** तात्पर्य यह है कि आपके लिए उचित यही है कि आप दूसरों के दोषों को समझकर आत्म निरीक्षण द्वारा अपने को सुधारें और दूसरे की शिकायत करना छोड़ दें। यहाँ मैं यह नहीं कर रहा कि "आप दूसरों के दोष देखना बन्द कर दें", क्योंकि यह तो आप हजारों वर्षों से अपने पूर्वजों से सुनते आ रहे हैं, उसका कोई परिणाम आपको अब तक नहीं मिला। मैं तो केवल इतना कह रहा हूँ कि आप जो कुछ दोष दूसरों के देख रहे हैं उन्हें कहना बन्द करके स्वयं को ऐसे दोषों से बचाना प्रारम्भ कर दें। इस बात का अभ्यास करें।

दूसरा अभ्यास 'आत्म-समर्पण' का है। ईश्वर के प्रति समर्पित होने का है। इसका प्रारम्भिक अभ्यास गुरु के प्रति समर्पित होकर किया जाता है। गुरु के प्रति विश्वास और श्रद्धा की योग मार्ग में कितनी आवश्यकता है यह हम पहले ही बता आये हैं। इसलिए सन्तों ने गुरु को परमेश्वर से भी ऊँचा मानने की प्रेरणा दी है—

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥"

तन्त्र मार्ग कहता है—

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तः, यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
ऽभयोरन्तरम् नास्ति गुरोरपि शिवस्य च॥

(जो गुरु है वही शिव है, जो शिव है वही गुरु है। गुरु और शिव इन दोनों में अन्तर नहीं है)।

वाम मार्गी कहते हैं—

गुरु देवः जगत् सर्व ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकम्।
गुरोः परतरम् नास्ति तस्मात् संपूजयेत गुरुम्॥

(अर्थात् गुरुदेव में ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव सहित सम्पूर्ण संसार समाया हुआ है। गुरु से परे कुछ नहीं है उनकी भली भाँति अर्चना करनी चाहिए)।

गुरु को परमेश्वर अथवा उससे भी एक कदम आगे मानने का एक कारण है—रास्ता चलते हुए कोई व्यक्ति गिर पड़े तो आप उसे तुरन्त उठाने पहुँच जाते हैं। वह

आपका आभार मानता है कि आप अपने कार्य को रोककर उसकी सहायता के लिए पहुँचे। गुरु भी अपने योग मार्ग पर आरूढ़ है, और एक जिज्ञासु को उठाने चला आता है। निश्चय ही कुछ न कुछ तो उसके मार्ग में व्यवधान आता ही है। यह तो हुई जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली बात। यदि गुरु ने आपको शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया तो वह आपकी इहलोक और परलोक दोनों की जिम्मेवारी उठाता है। यदि आपको दीक्षा दे दी तब तो बात ही दूसरी हो गई। दीक्षित-चेले और गुरु के सम्बन्ध पति-पत्नी के सम्बन्धों से भी अधिक गहरे होते हैं, बाप-बेटे के सम्बन्धों से भी अधिक दृढ़ होते हैं, फिर भी व्यवहार में मित्रवत रहते हैं। यदि इतना न हो तो दीक्षा का कोई लाभ नहीं मिलेगा।

अब एक समस्या व्यक्ति के सम्मख आती है—गुरु का चुनाव कैसे हो? आजकल बातें बनाने वाले, ढोंग दिखाने वाले, हवा के अनुरूप वेष बदलने वाले इतने गुरु हो गये हैं कि गुरु चुनना एक कठिन समस्या हो गई है। बहुत से व्यावसायिक (Commercial) गुरु ऐसे हैं जिन तक सामान्य व्यक्ति की पहुँच भी नहीं है, परन्तु वहाँ भी केवल व्यवसाय भर देखने को मिलता है। ऐसे वेषधारी ठगी साधुओं से तो बचना ही पड़ेगा जो शास्त्र की आड़ में धर्म का व्यवसाय कर रहे हैं। व्यवसायी उपदेश सदैव व्यवसाय बढ़ाने वाले ही होंगे आपको शान्ति देने वाले नहीं। विभिन्न शास्त्रों के पठन-पाठन में अनुरक्त होकर, शब्द योजना, सुन्दर भाषा और भाव माधुर्य युक्त होकर, रसीली कहानियों के साथ शास्त्र की व्याख्या करने के भिन्न-भिन्न उपाय आदि इन व्यवसायी शास्त्रज्ञों के 'मानसिक आमोद-प्रमोद' तथा आय के साधन मात्र हैं। बहुधा देखने में आता है कि लोग अज्ञानी होते हुए भी अपने को सर्वज्ञ मानकर अहंकारी हो जाते हैं और दूसरों को शिष्य बनाने में तत्पर रहते हैं। परिणाम—अंधे के कंधे पर अंधा चढ़े, दोनों मिल कुए में पड़े। ऐसे व्यक्ति 'गुरु की पदवी' का अपमान करते हैं। गुरु गीता तथा अन्य शास्त्रों आदि में गुरु के जो लक्षण दिये हैं, सामान्य व्यक्ति के लिए व्यर्थ हैं, क्योंकि उन लक्षणों के आधार पर चलें तो "एक भी व्यक्ति गुरु बनने योग्य नहीं है, अथवा प्रत्येक जादूगर या नट को गुरु बनाया जा सकता है।"

यही कारण है कि लोग वेषधारी और कपटी ठगों को गुरु बना बैठते हैं; फिर उनकी पोल कब पता लगती है, जबकि उसे सुधारने का समय नहीं बचता। गृहस्थाश्रम के भार को वहन करते हुए पूर्ण योगी वर्तमान काल में भी जहाँ-तहाँ देखने में आते हैं परन्तु उनको पहिचानना कठिन होता है क्योंकि वे आडम्बर रहित होते हैं। बाह्य व्यवहार से तो वह घोर संसारी ही दृष्टिगोचर होते हैं। यदि उनके पास पहुँच भी जाओ तो कभी-कभी वह आपकी वृत्ति से उलटी बातें करके यह शंका पैदा करते हैं कि 'हम तो गलत आदमी के पास पहुँच गये।' उदाहरणार्थ, यदि उन्होंने यह पहचान लिया कि आपकी वृत्ति ईश्वरवादी है तो वह कहेंगे "ईश्वर तो है ही नहीं।" और यदि उन्होंने आपकी वृत्ति में नास्तिकता देखी तो कहेंगे "कण-कण में भगवान है।" यदि आपकी वृत्ति ब्रह्मचर्य वाली है तो वे 'संभोग से

समाधि' की बात करेंगे। आप कहेंगे ऐसे व्यक्ति को क्या गुरु बनाना जो 'सत्य' नहीं बोलता।

गुरु के सम्मुख भी एक बड़ी समस्या आती है—उसे 'सत्य' को समझने वाला नहीं मिलता। सत्य को सीधा बोलने से काम नहीं बनता। सत्य को टेढ़ा (पालिश करके) बोलने से भी काम नहीं बनता। हमारे ढेरों पुराण और शास्त्र 'सत्य' को पालिश करके बोलने के ही उदाहरण हैं। वास्तव में 'सत्य' बोलने जैसी वस्तु नहीं है। वह अनुभव करके व्यवहार में लाने की वस्तु है। इसे एक उदाहरण से समझें—आप पानी पीते हैं, मैं पूछता हूँ—पानी का स्वाद कैसा है? आप कहते हैं खारा है, मीठा है, ऐसा है, वैसा है। सारी दुनियाँ के शब्द आप बोल दें, पर पानी का सही स्वाद आप नहीं बता सकते। फिर आप यही कहेंगे कि पानी का स्वाद देखना है तो स्वयं पीकर देखो, यह बताने की बात नहीं है। आप हमें जो 'खारा-मीठा' कह देते हैं और हम समझ लेते हैं वह इस कारण, क्योंकि हमने वह स्वाद स्वयं अनुभव किये होते हैं। परन्तु 'ईश्वर' के पानी का स्वाद, 'सत्य' के पानी का स्वाद आप बिना चखे ही शब्दों में जानना चाहते हैं। यह सम्भव नहीं है।

जो आपको सत्य का बोध कराना चाहता है उसे पहले आपको उखाड़ना पड़ता है जिससे वह आपके अन्तर मन की गहराई को नाप ले। तब उसे उस स्थिति से आपकी प्रवृत्ति का ध्यान रखते हुए ही आपको 'उठाना' प्रारम्भ करना पड़ता है। इस 'उठाने' से पूर्व बहुत से ऐसे प्रश्नों के उत्तर आपके बारे में जानने होते हैं जिन्हें आप बोलकर नहीं बता सकते। यदि बतायेंगे तो सही नहीं होंगे क्योंकि वे आप अपनी समझ के आधार पर बतायेंगे। ऐसे प्रश्नों के उत्तर 'गुरु' अपनी अर्न्तदृष्टि से आपसे प्राप्त करता है। वह पूछता नहीं है। अपितु कुछ ऐसा व्यवहार आपके साथ करता है कि उसके आधार पर आपके द्वारा किया गया व्यवहार उसके लिए 'प्रतिउत्तर' बन जाता है।

"स्वामी विवेकानन्द शारदा माँ से पूछने गये कि माँ मैं विदेश चला जाऊँ? माँ रसोई में थीं, अचानक बोलीं—वह तो बाद में बताऊँगी तू छुरी उठा ला जरा। स्वामी जी ने थोड़ी दूर पर सब्जी की टोकरी में पड़ी हुई छुरी उठा कर माँ शारदा को दी। हँस पड़ीं,—बोली, जा चला जा विदेश, तुझसे सबका कल्याण ही होगा; और छुरी वहीं रख दे। विवेकानन्द ने कहा—माँ आपने छुरी मँगाई और अब रखवा रही हो, क्या इसमें विदेश जाने का उत्तर था? शारदा बोली हाँ—तेरे छुरी उठाकर मुझे देने के ढंग में वह उत्तर था। छुरी उठाने में तूने हैंडिल (दस्ता) मेरी ओर किया और फल (ब्लेड) को स्वयं पकड़ा। तू चाहता तो फल को मेरी ओर और दस्ते को अपनी ओर करके भी मुझे छुरी दे सकता था। इससे तेरी वृत्ति का आभास मिल गया। अब मुझे तेरी ओर से चिंता नहीं होगी। तू सबका कल्याण ही करेगा।" यह एक छोटा उदाहरण मैंने दिया कि आपके जीवन व्यवहार के आधार पर ही 'गुरु' आपके व्यक्तित्व के स्तर को माप लेता है; आपके गलत बोले हुए एक शब्द से 'गुरु' आपकी पूरी जीवन कहानी जान लेता है।

ऐसी अन्तर्दृष्टि मनोविज्ञान का विषय है। परन्तु हमारा आध्यात्म 'परामनोविज्ञान' से भी एक सीढ़ी आगे जाता है। इसलिए आध्यात्मिक गुरु मनोवैज्ञानिक होने के साथ-साथ 'परामनोवैज्ञानिक' भी होता है। मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र जहाँ समाप्त हो जाता है, वहाँ से परामनोविज्ञान प्रारम्भ होता है। इससे आगे की सीढ़े पर 'आत्म ज्ञान' आता है। जिस प्रकार गुरु ने आपके मनोविज्ञान को अपनी अन्तर्दृष्टि द्वारा देखा था, इसी प्रकार थोड़ी और गहरी दृष्टि से गुरु आपके 'आत्म ज्ञान' को देखता है। यही दृष्टि 'दिव्य दृष्टि' नाम से जानी जाती है। ऐसे 'दिव्य दृष्टि' एवं 'अंतर्दृष्टि' युक्त गुरु (Guide) के प्रति यदि आप 'पूर्ण-समर्पित' न हों तो गुरु का बहुत सा समय व शक्ति आपको बार-बार परीक्षण (टैस्ट) करने में व्यय होगा, जिसका परिणाम यह होगा कि आप गुरु के ज्ञान का पूरा लाभ लेने से वंचित रह जायेंगे।

आप अपने घर में ही देखिये—यदि पति-पत्नी के बीच समर्पण न हो, एक दूसरे के प्रति विश्वास न हो और पति को या पत्नी को बार-बार एक-दूसरे को (टैस्ट) परीक्षण करने की आवश्यकता पड़ती रहे, तो उस घर में वह आनन्दपूर्ण वातावरण कभी नहीं बन सकता जो कि वास्तव में एक घर का 'आदर्श' है। कुल मिला कर बात यह है कि गुरु के प्रति 'आत्म-समर्पण' निष्ठा और विश्वास न होने से घाटे में शिष्य रहता है। गुरु गीता में गुरु के लक्षण बताते हुए कहा है—

अखण्ड मंडला कारंम् व्याप्तम्येन चराचरम्।
तत्पदम् दर्शितम् येन तस्मै श्री गुरुवेनमः ॥

अखण्ड मंडल आकार वाले इस चर-अचर संसार में जो व्याप्त (चल रहा) है उस मार्ग के जो दर्शन करावे (ज्ञान दे) ऐसे श्री (सौभाग्य) 'गुरु' को नमस्कार (समर्पण) करता हूँ।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितम् येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अज्ञान (आत्म ज्ञान हीन) रूपी अंधेरे (अज्ञान) के कारण अंधे (तमसाचारी) व्यक्ति की आँखों में जो ज्ञान (आत्म-ज्ञान) रूपी अंजन को सलाई (ज्ञान योग) से लगा देता है ऐसे सौभाग्य गुरु को नमस्कार (समर्पण) करता हूँ।

"श्री गुरु" सौभाग्यवान गुरु—गुरु सारे ही सौभाग्यवान होते हैं, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि उन्हें 'दैवी कृपा' प्राप्त होती है। दैवी कृपा को एक छोटे से उदाहरण से समझें—आपने देखा होगा; एक कक्षा में कई बच्चे पढ़ते हैं। उनमें यदि समझ के आधार पर वर्ग बनाये जायँ तो प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि विभिन्न स्तरों के वर्ग बन जायेंगे। अब यदि हम प्रथम श्रेणी के बच्चों में ही Merit तैयार करें तो सौ बच्चों की कक्षा में दो-तीन बच्चे ही ऐसे निकलेंगे जो बात को अति शीघ्रता से समझ लेंगे। कक्षा के सारे बच्चे ऐसी समझ वाले नहीं हो सकते। चाहे आप कितनी ही मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ उनके ऊपर

प्रयोग कर डालें। उनकी बुद्धि का यह विशेष गुण ही 'दैवी कृपा' है जो प्रत्येक बच्चे को नहीं प्राप्त है।

'दैवी कृपा' के नाम पर जो लोग अकर्मण्य होकर बैठ जाते हैं कि जब दैवी कृपा होगी तो सारे काम होंगे, अपने करने से कुछ नहीं होता, वे लोग ऐसी गलती कर रहे हैं जिसका सुधार नहीं है। उन्हें समझ लेना चाहिए कि दैवी कृपा 'पात्र' को ही प्राप्त होती है। **जो उठने की आकांक्षा करता है उसे ही उठाया जाता है। यह सृष्टि का स्पष्ट नियम है।** आप 'पात्र' बनना प्रारम्भ कीजिए, दैवी कृपा आपको अवश्य प्राप्त होगी।

गुरु गीता के आधार पर बनाये श्लोकों के सही रूप में व्यावहारिक अर्थ न कर पाने के कारण लोग गुरु और सद्‌गुरु का अर्थ परमेश्वर से लगा देते हैं। यह घोर अन्याय है। आपने देखा होगा कहीं-कहीं यह लिखा है कि चाहने वाले को गुरु आप ही आप मिल जाता है। यह ठीक वैसी ही बात है, जैसे हम लोग यह कह देते हैं कि लड़की हमारे घर में पैदा हुई है तो उसका वर उससे भी पहले भगवान पैदा कर देता है, देरी है केवल हमारे खोजने भर की। सम्बन्ध तो ईश्वर के यहाँ से पहले ही 'सैट' रहते हैं। यह बात कहाँ तक उचित है? मैं इस विवाद में तो नहीं पड़ना चाहता, परन्तु इतना आप तभी मानते हैं कि—

"जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया
दो घड़ा तैयार दूधों का तभी उसने किया"

वैसे मैं अपने और अपने दूसरे मित्रों के अनुभव से एक बात अवश्य जानता हूँ कि गुरुओं की एक लम्बी श्रृंखला आप जिज्ञासुओं के ज्ञान विकास हेतु प्रतीक्षारत है। देरी है केवल आपके आगे बढ़ने की। यह इस प्रकार होता है—

आप किसी भी गुरु (गुरु घंटाल नही) के पास जाकर योग प्रारम्भ करें। धारणा, ध्यान, समाधि (Concentration, Meditation and Liberation) आदि का अभ्यास करें। यदि कोई गुरु न मिले तो किसी भी आध्यात्मिक पुरुष को अपना गुरु मानकर इस पुस्तक की सहायता से योग प्रारम्भ करें [यह अवशयम्भ रखें कि इस पुस्तक में दी गई क्रियाएँ अन्य योग पुस्तकों की तरह धीरे-धीरे असर देने वाली नहीं अपितु शीघ्र प्रभाव देने वाली हैं अतः यदि कोई प्रतिकूल प्रभाव मालूम पड़े तो तुरन्त अभ्यास बन्द करके 'योग तत्व एवं आत्म ज्ञान अनुसंधान संस्थान' (Institute of Cosmic Yoga and Metaphysical Researches) के डायरेक्टर, श्री एम. एल. गुलाटी, रिटायर्ड डी. एम. ई. रेल्वेज, २९, गोविन्द नगर, शाहगंज, आगरा से अथवा I.C.M. के किसी भी सदस्य से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। इस संस्था के सदस्यों की पहचान यह है कि वे अपने नाम के आगे M. I. C. M. (Member of Institute of Cosmic Yoga and Metaphysical Researches) लिखते हैं] अथवा किसी अन्य योग शिक्षक से सलाह ले लें।

ज्यों-ज्यों आपकी प्रगति होती जाय, बताये गये नियम के अनुसार—'दैनिक प्रगति पत्रिका' में अपने प्रतिदिन के ध्यान व समाधि के अनुभव लिखते चले जायें। समाधि

(Liberation) की स्थिति में आपको भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं, स्थानों आदि के दर्शन होंगे। फिर कुछ दिन, माह अथवा वर्ष (भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न समय लगता है) के पश्चात् आप समाधि में एक ऐसे पुरुष या स्त्री के दर्शन करेंगे, जो आपके लिए गुरु का काम करेगा। आप उससे प्रश्न करेंगे और वह आपको उत्तर देगा। जब आपका अभ्यास और गहरा जायेगा तो इस गुरु के स्थान पर दूसरे गुरु के दर्शन होंगे, वह अपना ज्ञान देता जायगा। इस प्रकार एक के बाद एक गुरु आते चले जायेंगे और आपको आगे बढ़ाते जायेंगे, जिनमें से कई गुरुओं को तो आप पहिचान भी सकेंगे।

यहाँ बहुत से तार्किक एवम् बौद्धिक पुरुष (जिनके पास पुस्तकें अधिक होंगी पर बुद्धि कम) यह कहेंगे कि इस प्रकार के दर्शन मनोवैज्ञानिक (साइकोलॉजीकल) होते होंगे। उन्हें यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि मनोविज्ञान की सीमा ध्यान तक ही है। समाधि के अनुभव मनोविज्ञान को सीमा से परे के हैं—परा मनोविज्ञान से सम्बन्धित हैं। जब आप शरीर और मन से मुक्त हो जाते हैं तब समाधि फलित होती है। इसे ही मुक्ति (Liberation) की स्थिति कहा जाता है। ध्यान में आप कुछ कर रहे हैं तब आपको उसके परिणाम मिल रहे हैं, समाधि में आप कुछ नहीं कर रहे, अपितु वहाँ कुछ स्वतः ही हो रहा है और आप उसे अनुभव कर रहे हैं। अतः जो हो रहा है वह मनोविज्ञान के बाहर की घटना है।

प्रसंग वश, मेरे मित्रवर्य डॉ. सुभाष गुप्ता ने समाधि दर्शन से सम्बन्धित एक प्रश्न किया था कि समाधि अवस्था में दृष्टिगोचर होने वाले दृश्यों में और स्वप्नावस्था में दृष्टिगोचर होने वाले दृश्यों में क्या अन्तर है? हो सकता है समाधि दर्शन और स्वप्न दर्शन के अन्तर को आप पाठक लोग भी न समझ पा रहे हों, इसलिए इसे यहाँ स्पष्ट कर देता हूँ—दर्शन कई प्रकार से होते हैं। इन सबके मूल में आपकी चैतन्यता के स्तर का अन्तर आप पायेंगे। मूर्छावस्था तो चैतन्यता रहित अवस्था है ही। स्वप्नावस्था में आपकी चेतना दृष्टिगत रहती है अर्थात् अपनी आँखों से देखे जाने वाले दृश्यों तक उस चेतना की सीमा होती है अर्धचेतनावस्था (जिसे हिप्नोटिक अवस्था भी कहा जाता है) में आपकी चैतन्यता 'व्यष्टिगत' होती है। अर्थात् आपकी चेतना किसी एक पर केन्द्रित रहती है, हिप्नोटाइज करने वाले गुरु पर, शरीर में दूसरी आत्मा प्रवेश हो जाय तो उस पर, अथवा हिप्नोटाइज करने वाली वस्तु पर (किसी मूर्ति, व्यक्ति, चित्र अथवा वस्तु के देखते-देखते अथवा इसके बारे में सोचते-सोचते जो दर्शन होने लगते हैं वे हिप्नोटिक अवस्था के हैं और मनोविज्ञान की सीमा में हैं) समाधि अवस्था में आपकी चेतना 'समष्टिगत' होती है। सम्पूर्ण स्थावर, जंगम, दृष्टिगत, अदृष्टिगत सभी कुछ उसकी सीमा में आ जाता है। समाधि अवस्था में 'सोचने' जैसी कोई चीज नहीं होती, क्योंकि आपके विचार शून्य होने पर ही समाधि प्रारम्भ होती है। आपकी चेतना उस समय कहीं बँधी नहीं होती। वह मुक्त होती है। मुक्त चेतना का क्षेत्र असीम होता है। इसीलिये समाधि अवस्था को अति चेतनावस्था

(Super Conscious State) कहा जाता है। मेरे इस वक्तव्य को योगाभ्यासियों को समझने में देर नहीं लगेगी।

प्रत्येक संसारी गुरु के ज्ञान की सीमा होता है। इसी प्रकार समाधि में आकार आगे बढ़ाने वाले गुरुओं के ज्ञान की भी समा होती है। जैसे-जैसे आप इन गुरुओं की सीमा शक्ति पार करते जायेंगे दूसरे गुरु आपको **ग्रहण** (Take over) करते जायेंगे। आपको केवल इतना ध्यान रखना है कि किसी भी स्थान पर आप 'योग-भ्रष्ट' न हो जाय। जो संसारी गुरु आपको दूसरे गुरु के पास जाकर ज्ञान लेने से व्यर्थ ही रोके, समझ लेना वह गुरु पद के अयोग्य है। योग्य गुरु को यह कहने में कोई झिझक नहीं होगी कि अमुक विषय की उचित शिक्षा अमुक स्थान पर मिलेगी। अमुक विषय का अच्छा गुरु अमुक व्यक्ति है; अथवा अमुक विषय के बारे में मुझे केवल इतना ही ज्ञान है। ध्यान रखिये प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान की सीमा होती है। सर्वज्ञानी तो वे गुरु लोग भी नहीं होते जो हमें समाधि अवस्था में दर्शन देते हैं। समाधि के समय मिलने वाले गुरु ही 'सत्‌गुरु' की श्रेणी में आते हैं क्योंकि वे जैसे आज दिखाई देते हैं वैसे ही हजारों वर्षों बाद दिखाई देंगे। उनमें कोई परिवर्तन नहीं आता।

योग्य गुरु का कार्य शिष्य को आगे बढ़ाते जाना है न कि शिष्य को अपने से बाँध रखना। जो गुरु शिष्य को अपने से बाँधता है वह स्वयं अपने लिये गड्ढा खोदता है। क्योंकि किसी को भी बाँधने का अर्थ है पहले स्वयं बँधना। बंधन में तो आप पहले ही हैं। इतना सारा कर्मकांड और झंझट आप बंधन मुक्ति (Liberation) के लिये ही कर रहे हैं, और उसमें भी यदि आप बँध ही रहे हैं तो इससे बड़ी मूर्खता और क्या हो सकती है?

■■

१३

आसन

महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग का तृतीय अंग 'आसन' है जो कि अपने में एक बहुत विस्तृत विषय है। यहाँ हम जो आसन और व्यायाम देना चाहते हैं उनमें हमारा केन्द्र 'कुण्डलिनी' ही होगा.। आसनों को कई वर्गों में बाँटा गया है। उदाहरणार्थ—

लोलक आसन

जैसे—शीर्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, मयूरासन आदि जिनमें शरीर के विभिन्न भागों को सन्तुलित करना पड़ता है।

सामने झुकने वाले आसन

जैसे—पश्चिमोत्तानासन, जानुशिरासन, हलासन, पायहस्तानासन आदि।

पीछे झुकने वाले आसन

जैसे—भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, सुप्त वज्रासन, चक्रासन आदि।

बल पड़ने वाले आसन

जैसे—अर्ध-मत्स्येन्द्रासन, पूर्ण-मत्स्येन्द्रासन आदि।

कूल्हे, टाँग पैर के आसन

जैसे—पवन मुक्तासन, सेतु बन्धासन, गोमुखासन, मंडूकासन, भद्रासन, गोरक्षासन, आदि।

पेट सम्बन्धी

जैसे—अग्निसार क्रिया, उड्डुपान बन्ध, नौलि क्रिंया, महा मुद्रा, योग मुद्रा आदि।

विशेष आसन व्यायाम

जैसे—सूर्य नमस्कार, त्रिकोणाभ्यास, अर्चलभ्यास, स्वर्णाभ्यास, सरलेशासन आदि।

वीर्य स्तम्भक आसन

काम-सूत्रीय बाजीकरणासन।

इन समस्त व्यायाम, आसन, क्रिया बन्ध और मुद्राओं में से कुछ का ही प्रयोग कुण्डलिनी के लिए होता है। अन्य आसनादि आवश्यकतानुसार घटाये बढ़ाये जा सकते हैं। आवश्यकता से तात्पर्य है कि सामान्य स्वास्थ्यवर्धक व्यायाम और आसन करने ही पड़ेंगे; यदि शरीर में कोई रोग है तो उससे सम्बन्धित आसनादि करने ही पड़ेंगे। कुण्डलिनी के लिए आवश्यक वीर्य स्तम्भक आसनादि हमें करने ही होंगे। कुण्डलिनी चलाने के लिए ओज स्रावक आसनादि करने ही पड़ेंगे। कुण्डलिनी जागरण के समय अपने आप होने वाले आसन, मुद्रा, क्रिया आदि हमें करनी ही पड़ेंगी। ध्यान रहे—कुण्डलिनी जगाना एक तान्त्रिक तकनीकी (Technical) कार्य है, अतः सामान्य क्रिया है। चाहे उसे शक्ति पात से जगाया जाय, चाहे हठ योग, मुद्रा, सम्भोग, बन्ध, आसनादि की सहायता से जगाया जाय। प्रत्येक क्षण यह ध्यान भी रखना है कि हमारी कोई क्रिया शारीरिक या मानसिक ऐसी न हो जो इसे कुपित कर दे (अर्थात् हमारी सहन शक्ति से अधिक कुण्डलिनी जागरण के प्रारम्भ में ही रखना होता है बाद में जब कुण्डलिनी जागृत होने लगती है तो 'कुण्डलिनी योग' की प्रक्रियाएँ स्वयमेव होने लगती हैं। हमारा कार्य तो उस समय शरीर को ढीला छोड़ देना भर होता है। कुण्डलिनी के ऊर्ध्वगमन काल में आपको वे ही योग क्रियाएँ स्वतः होंगी जो आपकी सहन शक्ति के आधार पर आवश्यक और उचित होंगी, इसलिए विपरीत परिणामों की सम्भावना नहीं रहती। प्रारम्भ में जब कुण्डलिनी पहली बार क्रियाशील होती है तो किसी का सिर भारी होने लगता है किसी को तन्द्रा सी रहने लगती है। ये छुट-पुट कठिनाईयाँ शीघ्र ही ठीक हो जाती हैं।

कुण्डलिनी की अनुभूति जिज्ञासु की प्रकृति, ज्ञाननिष्ठा, एवं गुरु श्रद्धा की गहराई पर निर्भर करती है। इन अनुभूतियों द्वारा व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगता है और वह संसार में लोगों के बीच व्यवहार करते हुए आनन्द में रहता हुआ समाधि सुख प्राप्त करता है। कहा भी है—लोकानन्द समाधिसुखम्। जिस व्यक्ति ने इस स्थिति को प्राप्त कर लिया है उसे संसार से अलग होकार एकान्त में जाकर, आँखें बन्द कर समाधि लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह चाहे ध्यान करे, खाये, स्नान करे, अकेले में हो अथवा सबके साथ में हो वह सदैव आत्मानन्द और आत्म शांति का अनुभव करता रहता है। इस आत्मानन्द और शांति को प्राप्त करने का साधन शरीर है। शरीर को स्वस्थ रखने, आनन्द और उत्साह से भरने के लिए हमारा प्रथम कर्त्तव्य शरीर के विभिन्न अंगों

को रोगों से बचाना है। बीमारियाँ प्रकृति विरुद्ध व्यवहार करने से उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक अंग के कार्य व्यवहार की एक प्रकृति है, एक प्रक्रिया है, एक विधि है। प्रकृति अपनी कृति की रक्षा के लिए अपनी ओर से पूरा प्रयास करती है। आपका कार्य है 'प्रकृति को अपना कार्य करते रहने का अवसर प्रदान करना।' इसके लिए आपको अपने शारीरिक गठन और प्रधान अंगों में होने वाली विकृतियों के प्रति सजग रहना चाहिए।

महात्मा गाँधी ने अपने अनुभवों में यही लिखा है—'जाने अनजाने प्रकृति के नियमों को तोड़ने से ही बीमरी पैदा होती है इसलिए इसका इलाज भी यही होगा कि रोगी पुन: प्राकृतिक नियमों का पालन करना प्रारम्भ कर दे।' **'आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग'** को तो इस ओर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि हो सकता है कि एक व्यक्ति के बीमार हो जाने पर उसके पूरे परिवार की सारी अर्थव्यवस्था ही गड़बड़ा जाय। जो **मध्यम आय वाले हैं** वे यदि प्रकृति के नियमों का पालन करेंगे तो अपने परिवार की बहुत-सी परेशानियों तथा समय और धन के अपव्यय को बचा सकेंगे। **जो अमीर हैं, साधन सम्पन्न हैं** वे प्रकृति के नियमों का पूरी तरह पालन करके स्वस्थ रह कर ही अपने ऐश्वर्य और भोगविलास का आनन्द ले सकते हैं। जितनी अधिक जीवनी शक्ति आप में होगी उतना ही आप जीवन में आनन्द ले सकेंगे। चिकित्सा की दृष्टि से जीवन शक्ति वह शक्ति है जो शरीर के नये कोषों का निर्माण करती है, उनसे सुचारु रूप से कार्य कराती है और उनके अयोग्य हो जाने पर उन्हें विसर्जित करती है। तात्पर्य यह है कि हमारे स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी यही जीवनी शक्ति है। यही मनुष्य को रोगाक्रान्त होने से बचाती है। हम जीवनी शक्ति (Vita Force) को तीन भागों में बाँट सकते हैं—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक।

शारीरिक जीवनी शक्ति

यह व्यायाम से क्रियाशील होती है। नियमित और उपयुक्त व्यायाम, संधियों, पेशियों और बंधनियों को तनाव मुक्त करता है और उनमें संचित मल को निकालता है। साथ ही पेशियों के व्यायाम द्वारा फैलने, सिकुड़ने, दबने, खिंचने, ऐंठने आदि से उनकी मालिश भी हो जाती है। व्यायाम से श्वसन क्रिया पर भी असर पड़ता है, जिससे रक्त का बहाव तीव्र हो जाता है। जो कुछ मल पेशियों, बंधनियों आदि ने विसर्जित किया था उसे निश्चित मल-मार्ग तक पहुँचाना रक्त परिभ्रमण संस्थान का ही कार्य है। अपनी जीवनी शक्ति को क्रियाशील करके जितना अधिक हम जीवन में उसका प्रयोग करेंगे, उतनी ही हमें उसकी अधिक आवश्यकता होगी। उसे पूरा करने के लिये जीवन शक्ति उत्पन्न करने वाला 'पाचन तन्त्र' भी जोर शोर से कार्य करने लगेगा। सन्तुलित भोजन से हमें यह जीवनी शक्ति प्राप्त होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सन्तुलित भोजन से शक्ति प्राप्त

होती है तो ठूँस-ठूँस के खाने लग जाओ। चक्की से आटा प्राप्त होता है; तो यह नहीं कर सकते कि पूरी गेहूँ की बोरी एक साथ चक्की में डाल दो, सारे पाट जाम हो जायेंगे। उनमें थोड़ा-थोड़ा ही गेहूँ डालना होगा। पाचन तन्त्र के कार्य में वृद्धि हो जाने पर उत्तम आहार की उपयोगिता में वृद्धि होगी। बुरे आहार का प्रभाव न्यून होगा, तथा मल का उचित विसर्जन होगा। खान-पान पर नियन्त्रण रखने वाली बातें इसीलिये की जाती हैं।

भोजन सदैव सुपाच्य और पौष्टिक करना चाहिये। मौसमी फल और शाक-सब्जी का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करना आवश्यक है। ऋतु के अनुरूप प्रकृति सारे मौसमी फल आदि उत्पन्न करती है, वे सभी स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। जो भी खायें, खूब चबा कर खायें। आनन्द ले ले कर खायें। जल्दी-जल्दी में खाने से आप अधिक से अधिक ५ मिनट बचायेंगे और फिर ५ दिन तक डाक्टर से इलाज कराते फिरेंगे। ५ मिनट की बचत के बदले में ५ दिन की कठिनाई मेरे विचार से तो महँगी पड़ेगी। कई लोग दिन भर बकरी की तरह मुँह चलाते रहते हैं। कई लोग इधर आये तो कुछ मुँह में डाल दिया, उधर गये तो कुछ मुँह में डाल लिया, ऐसी आदत वाले हो जाते हैं। दोनों ही क्रियाएँ अनुचित हैं। एक नाश्ते से दूसरे नाश्ते या भोजन के बीच कम से कम ४ घण्टे का अन्तर होना चाहिये। जो स्वल्पाहर (नाश्ता) नहीं करते उन्हें एक भोजन से दूसरे भोजन के बीच कम से कम छः घण्टे का अन्तर रखना चाहिए। पानी भोजन से १ घण्टा पूर्व और १ घण्टा बाद खूब पीजिये। भोजन के तुरन्त पहले, तुरन्त पश्चात् अथवा बीच में पानी पीना उचित नहीं है। किसी भोजन अथवा स्वल्पाहार के बाद यदि दूध, चाय, काफी आदि पेय लेने हों तो कम से कम तीन घण्टे बाद ही लीजिये।

स्वास्थ्य के पुनरुद्धार के लिये भोजन सम्बन्धी यह नियम आपको दृढ़ संकल्प होकर पालन करने पड़ेंगे। मैं जानता हूँ, कहीं आपकी इन्द्रियाँ आपको इन्हें पालन करने में बाधा डालेंगी तो कहीं सम्बन्धी लोग। इन्द्रियों से अधिक सम्बन्धी लोग बाधा डालते हैं। कोई कहेगा, अरे ! आधा कप चाय तो चल ही जायगी। कोई कहेगा—एक पैग लेने में क्या हर्ज है? अच्छा तो मेरे स्वास्थ्य की खातिर ही ले लो। आप चाय, काफी कुछ नहीं लेते तो आपकी खातिर कैसे लें ! आप कहेंगे, अच्छा तो आप एक गिलास पानी दे दीजिए। वे कहेंगे—अच्छा तो जा एक 'कोका कोला' ले आ। यह सब औपचारिकताएँ (Formalities) आपके स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली हैं। जो भी हो अनियमित भोजन, आलस्य, संकल्प हीनता और लापरवाही हमारे स्वास्थ्य को क्षीण करने में विशेष भूमिका निर्वाह करते हैं।

सक्रियता

दूसरा महत्वपूर्ण सूत्र है सक्रियता का। गति और वेग का। आजकल बहुत से कार्य यन्त्र की सहायता से हो जाने के कारण व्यक्ति की गति और वेग में अन्तर आ गया है।

शरीर के नये कोषों के निर्माण और जीर्ण कोषों को विसर्जित करने में गति और वेग की अत्यन्त आवश्यकता होती है। यही कारण है कि जंगल का आदिवासी किसी भी शहरी से अधिक शक्तिशाली होता है। 'नन कौरी' आदि टापुओं में मैंने देखा है कि ११-१२ वर्ष की दो लड़कियाँ (अंडमान निकोबार द्वीप समूह में ११-१२ वर्ष की लड़की यहाँ की १८-२० वर्ष की लड़की जैसी लगती है) ४-५ मन के जंगली सूअर को मार कर उसकी टांगों के बीच में एक मोटा डंडा डाल कर कंधे पर उसे उठा कर ऐसे चली आती हैं जैसे वह १० किलो का सूअर हो। गति और वेग हमें श्रम से प्राप्त होता है। परन्तु श्रम में ऊर्जा व्यय होती है। इसीलिये **योगी को कुछ ऐसे श्रम ढूँढने पड़ते हैं जिनमें ऊर्जा का व्यय कम हो पर ऊर्जा सक्रिय अधिक हो। ऐसे श्रमों को हम 'व्यायाम' कहते हैं।** व्यायाम में भी ऊर्जा बहुत सीमा तक व्यय होती है। इसलिये हमारे ऋषियों ने कुछ ऐसे व्यायाम खोजे जिनमें ऊर्जा का व्यय और भी कम हो, परन्तु ऊर्जा का जागरण अधिक हो। ऐसे व्यायामों को 'आसन' कहा जाता है। आप कहेंगे कि यदि ऐसे आसन करने हैं जिनमें ऊर्जा कम से कम व्यय हो तब तो हमारा परावलम्बी होना, यन्त्रों द्वारा काम लेना तथा आराम पसन्द होना सही है। नहीं, आप अपने ध्येय को मत भूलिये। आपका ध्येय 'शक्ति' (जीवन ऊर्जा) को उत्पन्न करके उसे सक्रिय बनाना है।

परावलम्बी होकर आपकी ऊर्जा कुण्ठित होने लगती है। जिस स्थल पर ऊर्जा कुण्ठित होती है प्रकृति वहाँ ऊर्जा भेजती ही नहीं। डार्विन का विकासवाद का सिद्धान्त इसी का प्रमाण है। घोड़े के पैर में पहले अंगुलियाँ थीं ऐसे कुछ चिह्न मिले हैं। बाद में प्रकृति ने देखा कि घोड़े को अंगुलियों की आवश्यकता नहीं है और शनैः शनैः घोड़े के सुम बिना अंगुलियों वाले रह गये। यह प्राकृतिक विकासवाद है। जिधर आप बढ़ना चाहेंगे प्रकृति आपको बढ़ायेगी। हाँ यह बात अवश्य है कि प्रकृति की प्रक्रिया में आप मात्र एक 'इकाई' हैं। परन्तु प्रत्येक इकाई यदि यही सोच कर बैठ जाती है कि मात्र मेरे विकास से क्या होगा तो आज मानव इस विकसित स्थिति में नहीं होता। इस विकास को उत्तरोत्तर बढ़ाते जाना हमारा प्रकृति के प्रति (ईश्वर के प्रति) कर्तव्य है। **इस कर्तव्य को पूरा करने के लिये हमें पूर्णतः कर्तव्यनिष्ठ, दृढ़ संकल्प, पुष्ट मस्तिष्क और निरंतन प्रगतिशील विचारधारा वाला बन कर आत्म विश्वास और स्थिर बुद्धि से विजय की ओर अग्रसर होना है।**

गति और पुष्टि का अभाव डाक्टरों के टानिकों से कभी पूरा नहीं होता। बाजार में जितने टानिक हैं यदि यह कारगर होते तो अब तक प्रत्येक व्यक्त स्वस्थ हो गया होता। परन्तु मैं तो देख रहा हूँ कि ज्यों-ज्यों नये-नये टानिक बाजार में आ रहे हैं—त्यों-त्यों आदमी की कमजोरी बढ़ती जा रही है। इसका बुनियादी कारण है—शरीर की रोग एवं प्रतिरोध की क्षमता का कम होते जाना, जिसे हमने

जीवन शक्ति (Vital force) नाम दिया है। यह भोजन से उत्पन्न होती है, व्यायाम से सक्रिय होती है और विश्राम से संचित होती है।

विश्राम

अब विश्राम की बात समझ लीजिये। कोई भी यन्त्र चलते-चलते गरम हो जाता है। उसे ठंडा होने के लिये रोक दिया जाता है। चलते-चलते भी यन्त्र को ठंडा करते रहने के उपाय किये जाते हैं। डीजल इन्जन को ठंडा करने के लिए रेडियेटर में पानी भरते हैं जिससे इन्जन चलती हुई स्थिति में ठंडा होता रहे। हमारा शरीर यन्त्र भी ऐसा ही है। उसे भी ठंडा होने के लिये विश्राम चाहिये। जो कि हमें निद्रा द्वारा प्राप्त होता है। छुटपुट विश्राम हम लोग शरीर को ढीला छोड़कर भी प्राप्त कर लेते हैं। शरीर को कार्यरत रहते हुए भी विश्राम दिया जाता है, उसे बीच-बीच में तनाव मुक्त करके। तनाव मुक्ति मनोरंजन के साधनों द्वारा भी होती है। यदि विश्राम के क्षणों में निर्विचार रह सकें तो विश्राम और भी शीघ्र सिद्ध होता है। ऐसा विश्राम देने वाले व्यायाम का नाम 'सरलेशासन अंथवा शवासन' है जिसमें व्यक्ति पूर्णत: मुर्दे की तरह पड़ जाता है—निष्क्रिय, निर्विचार। इतना तो सामान्य जन भी जानते हैं कि गहरी निद्रा समस्त शारीरिक और मानसिक क्लान्ति हरने में समर्थ है। गहरी नींद आने का समय रात के 10 बजे से सुबह 4 बजे के बीच का है। मेरे इस आशय को वे लोग अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं जो शिफ्ट ड्यूटी (कभी सुबह की, तो कभी दोपहर की और कभी रात को ड्यूटी) करते हैं।

मानसिक जीवन शक्ति

मानसिक जीवन शक्ति ज्ञान से क्रियाशील होती है। उचित और स्पष्ट ज्ञान (जिसे विज्ञान कह सकते हैं) ही परस्थितियों के आधार पर व्यक्ति की बुद्धि को उचित-अनुचित कार्य करने के लिये प्रेरित करता है। कोई भी कार्य करें, उसके प्रति दृढ़ संकल्प होना आवश्यक है। संकल्प से बड़े-बड़े कार्य हो जाते हैं। इसीलिये हिन्दुओं में कोई भी पूजन आदि करते समय संकल्प करने का विधान है। यह संकल्प केवल 'वाणी' की वस्तु नहीं, 'मन' की वस्तु है। 'सशक्त मानसिक शक्ति' वाला ही दृढ़ संकल्प कर पाता है शेष के संकल्प अधूरे रह जाते हैं। दुर्बल शरीर और साधन रहित व्यक्ति भी यदि संकल्प कर ले तो कोई भी कार्य करने का साधन जुटा सकता है। बहुत से रोगी मनुष्य अपनी सशक्त मानसिक शक्ति के द्वारा ही निरोग हो जाते हैं, तो बहुत से जल्दी ही रोगों से छुटकारा पा जाते हैं। जिसे अपने ज्ञान पर विश्वास है, निष्ठा है, वही दृढ़ संकल्प कर पाता है। ऐसा ज्ञान वही होगा जो वैज्ञानिक विधि से अधिक से अधिक क्रियात्मक स्पष्टीकरण युक्त हो, और अपने अनुभवों के आधार पर संचित किया गया हो।

पढ़कर अथवा सुनकर एकत्र किये हुए ज्ञान की निष्ठा में और क्रियात्मक रूप से अनुभव किये गए ज्ञान की निष्ठा में अन्तर रहना स्वाभाविक है। किसी विषय में अभ्यास के पश्चात् ही मन दृढ़ होता है और दृढ़ मन वाला ही दृढ़ संकल्प कर पाता है। अत: अपने मन को दृढ़ बनाने के लिये ज्ञान को अधिक से अधिक क्रियात्मक रूप में ढालने का प्रयत्न करते रहें। विभिन्न सामाजिक कार्यों को करने से, दूसरों की भलाई के कार्य करने से, दूसरों की सहायता करने से, दूसरों को उत्तम विचार देने आदि जैसे बहुत से संसार परक कार्य आपके संचित ज्ञान को क्रियात्मक रूप देने के क्षेत्र बनते हैं। सादा रहन-सहन और उच्च विचार वाली कहावत यहाँ भी लागू होती है। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के आधार पर बड़े कारोबार की देखरेख के लिये हवाई जहाज, कोठी, नौकर आदि रखना विलासिता और भोग की श्रेणी में नहीं आता। यदि ये वस्तुएँ अपने को बड़ा प्रदर्शित करने के विचार से उपयोग में लाई जाती हैं, तो विलासिता और भोग की श्रेणी में आती हैं। यहाँ भी भावना प्रधान है। भावना का उद्गम स्थल मन होता है अत: मन को सशक्त बनाना हमारा कर्तव्य है।

अभय

मन को सशक्त बनाने का एक सूत्र और है—अभय ! भयभीत मनुष्य अपना साहस खो देता है। 'डर गया सो मर गया' वाली कहावत बिल्कुल सही है। भयभीत मनुष्य के रक्त के लाल कण बहुत जल्दी समाप्त हो जाते हैं। लाल कण न हों तो साहस स्वत: कूच कर जायेगा। इसीलिये रक्तपूर्ण मनुष्य साहसी होता है। एक रक्तहीन मनुष्य में यदि आप मनोविज्ञान के ढंग से साहस भर दें तो वह बहुत शीघ्र रक्तपूर्ण हो जायेगा। इसी सिद्धान्त पर बहुत सी बीमारियाँ आत्म सम्मोहन (Auto Suggestions) विधि से दूर की जाती हैं। आपत्तियाँ तो सब पर आती ही हैं। आपत्तियों में साहस से जो काम ले ले वह जीत जाता है और जो घबरा जाता है, भयभीत हो जाता है वह हार जाता है। जो ईश्वर पर विश्वास रखता है उसे भय नहीं होता। जो गुरु पर विश्वास रखता है उसे भय नहीं होता। जो पत्नी अपने पति पर विश्वास रखती है उसे भय नहीं होता। जो प्रेमिका अपने प्रेमी पर विश्वास रखती है उसे भय नहीं होता है। भयपूर्ण व्यक्ति किसी पर भरोसा नहीं कर सकता। **जो धर्म भय के नाम पर अनुशासन सिखाते हैं वे सही नहीं हैं। सही धर्म सदा निर्भय रहना सिखाता है।** आत्मा अमर है, ईश्वर सदैव साथ है, भगवान पर भरोसा रखो, यह सारी बातें मनुष्य को भयमुक्त करने के लिये ही हैं। **जो भयभीत करे वह 'धर्म' नहीं हो सकता। प्रतिदिन शेर के शिकार पर जाने**

वाले, युद्ध क्षेत्र में बम वर्षा के बीच जीने वाले, आकाश में हवाई जहाज चलाने वाले इस 'अभय' के अर्थ को सही रूप में समझ सकते हैं।

आत्मिक जीवनी शक्ति

आत्मिक जीवनी शक्ति कुण्डलिनी द्वारा क्रियाशील होती है। कुण्डलिनी जाग्रत करने में प्राणायाम का विशेष हाथ होता है। यह कुण्डलिनी की अभ्यास सारणी से ही ज्ञात हो जायेगा। इसमें शारीरिक व्यायाम नहीं रहते। प्राणायाम सारणी का अभ्यास अपनी आयु के अनुरूप 'व्यायाम सारणी' के साथ-साथ योग्य गुरु के निर्देशन में करना उचित रहता है। रोगी, वृद्ध पुरुषों और गर्भवती महिलाओं के लिये विशेष व्यायाम है। ऐसे व्यायाम नाड़ी शुद्धि एवम् मनः शुद्धि पर अधिक जोर देते हैं। आप लोग एक 'अभ्यास सारणी' कर लेने के बाद तुरन्त ही दूसरी 'अभ्यास सारणी' पर मत कूदिये। शरीर, मन और आत्मानुशासन प्राप्ति करने में धैर्य (Patience), नियमित एवम् विधिवत अभ्यास (Regular and Systematic Practice), ईश्वर एवम् गुरु में निष्ठा (Faith in God & Teacher) की अत्यन्त आवश्यकता है।

योगाभ्यासों का किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं होता है इन्हें तो स्वास्थ्य दान से सम्बन्ध है और स्वास्थ्य की आवश्यकता जीव मात्र को होती है। यह धर्म निरपेक्ष आवश्यकता है। आप यदि ध्यान दें तो आप कुत्ते, बिल्ली आदि जानवरों को भी अपने स्वास्थ सुधार के लिये शरीर को आगे-पीछे खींचते हुए आसनों की तरह करते देख सकते हैं। **यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि आदमी को धर्म निरपेक्ष का उदाहरण हमें कुत्ते-बिल्लियों से देना पड़ रहा है।** योगाभ्यास के अन्तर्गत खान-पान का ढंग, विभिन्न आसन व अभ्यासों के ढंग, श्वास लेने का ढंग, सोचने-विचारने का ढंग, बैठने-उठने का ढंग, बात करने का ढंग, संक्षेप में यूँ कहिये कि जीवन भर काम आने वाले प्रत्येक व्यवहार का उचित ढंग सिखाया जाता है। यह प्राकृतिक बात है कि जो आदतें अल्प-आयु में डाल दी जाती हैं वे टिकाऊ होती हैं। योगाभ्यास विनाशकारी आदतों को छुड़ाने में भी बहुत सीमा तक प्रभावी होते हैं। यहाँ पर जो 'योगाभ्यास सारणियाँ' मैं दे रहा हूँ, यह मेरे गुरुओं, महात्माओं, योगियों तथा मेरे द्वारा विभिन्न स्थानों आगरा, बरेली, अमृतसर, बम्बई, जामनगर, शिकोहाबाद आदि में सिखाये गये बहुत से जिज्ञासुओं के विशद अनुभवों का परिणाम हैं।

विषय को संक्षिप्त करने के लिये हम यहाँ पर योगाभ्यासियों के लिये केवल सारणियाँ तथा संक्षिप्त आवश्यक विवरण ही दे रहे हैं क्योंकि योगाभ्यासों पर विशद वर्णन एवं स्पष्टीकरण देने वाली बहुत सी पुस्तकें बाजार में उपलब्ध हैं, केवल उन अभ्यासों के करने का क्रम भिन्न-भिन्न हो सकता है। यह 'सारणीक्रम' अध्यात्मिक, मानसिक व शारीरिक शक्ति वृद्धि हेतु अनुभव गत है। साथ ही सुराक्षित और आज की आवश्यकता के अनुरूप भी है।

जहाँ समय का अभाव हो वहाँ अपने हिसाब से उचित योगाभ्यास छाँट लेने चाहिये। छाँटने की सामान्य विधि यह है कि कि जो अभ्यास (Exercise) आप कर रहे हैं उसके प्रभाव से कम दम विपरीत (Direct Opposite) प्रभाव देने वाला अभ्यास Exercise) उसके तुरन्त बाद करना चाहिए।

इस प्रकार के विपरीत अभ्यासों का सम्बन्ध रीढ़ की हड्डी से होता है। यदि आगे झुकने वाला कोई अभ्यास किया गया हो तो उसके तुरन्त बाद पीछे झुकने वाले अभ्यास करना आवश्यक होगा। जहाँ पर एक ही प्रकार के वर्ग के अन्तर्गत कई-कई अभ्यास इन सारणियों में दिये गये हों वहाँ उनमें से दो-चार व्यायाम करें फिर अगले दिन **अपने समय का ध्यान रखते हुए पिछले दिन किए हुए (इस वर्ग के) अभ्यासों के** स्थान पर जो पहले दिन छोड़े थे, उनमे से दो—चार अभ्यास कर लें; इस प्रकार सरणी में दिये सभी अभ्यासों का नम्बर एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर आ जायेगा। एक बात ध्यान रखने की है अपने को इस प्रकार सन्तुलित करें कि प्रतिदिन अन्य अभ्यासों के साथ-साथ अत्यावश्यक अभ्यास जैसेकि सर्वांगासन, शीर्षासन, सूर्य नमस्कार, प्राणायाम, सरलेशासन, ध्यानासन आदि अवश्य किये जा सकें।

प्राणायाम (Breathig exercises) और धारणा (Cencentration), ध्यान (Meditation), समाधि (Liberation) का आसन और व्यायामों से अलग समय में करें। यदि आसनादि सुबह करें तो ध्यान आदि शाम को। यदि सुबह का ही समय रखें तो आसनादि बाद में करें पहिले नहीं। उपयुक्त तो यह रहेगा कि सुबह 'संध्या' के समय और शाम को 'संध्या' के समय, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि के क्रियात्मक अभ्यासों को करें उसके पश्चात् आसनादि करें। 'प्रार्थना', प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि ये पाँच क्रियाएँ 'संध्या' के अन्तर्गत आती हैं। **प्रारम्भ में आसनादि शारीरिक व्यायाम अधिक रहते हैं, बाद में आसनादि गौण हो जाते हैं और 'संध्या' ही प्रधान रह जाती है।** ध्यान के आसन ध्यान में ही हो जाते हैं अतः उनका अभ्यास अलग करने की आवश्यकता नहीं है। यदि ध्यान

स्टूल, कुर्सी अथवा अन्य साधनों से किया जा रहा हैं तो अभ्यास भर के लिए ध्यानासन कर सकते हैं।

विभिन्न योग सारणियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की योग क्रियाओं का एक विशेष क्रम दिया गया है। इस क्रम को ब्रह्मर्षि 'बलदेव' (जिन्होंने वायु सेना की सेवा में रहते हुए बड़ी लगन और निष्ठा से योगाभ्यास किये और भटके हुए व्यक्तियों को वैज्ञानिक मार्ग दर्शन किया। यहाँ तक कि जहाज में उड़ान भरते हुए भी जप. नियम आदि को नहीं टूटने दिया), डॉ. गिरीन्द्र देव गहराना (काशी से योग प्रशिक्षण प्राप्त, अखिल भारतीय शिशु संगम समारोह, देहली में विभिन्न प्रान्तों के बच्चों को योग का मार्ग-दर्शन कराने वाले आचार्य), सर आर्थर एवलोन (जिन्होंने पश्चिमी होते हुए पूर्व की अनुपम विद्या कुण्डलिनी शक्ति पर 'सर्पेन्ट पावर' आदि बहुत सी प्रसिद्ध प्रस्तकें लिखीं), ऋषिकेष (हिमालय) के प्रसिद्ध स्वामी शिवानन्द (देश-विदेश में प्रसिद्ध हठ योग के महान आचार्य), गुरुकुल स्नातक डॉ. सुभाष गुप्ता (योग-तत्व एवम् आत्म ज्ञान अनुसंधान संस्थान, भारत के कार्यशील सदस्य), डॉ. जगदीश चन्द्र उपाध्याय (महर्षि यतीन्द्र योगाश्रम के सन् १९६६ ई. के विशेष जिज्ञासुओं में मान्य तथा आगरा कॉलेज के भौतिक विज्ञान के प्रसिद्ध प्रोफेसर जो बाद में नाइजीरिया भेजे गये थे), डॉ. राममूर्ति मिश्रा (जिनकी पुस्तक 'फन्डामेन्टल्स ऑफ योगा' जगत प्रसिद्ध है), कनिष्ठ पितामह परमर्षि चोखेलाल जी (आर्य समाज के प्रसिद्ध प्रचारक एवं योगाचार्य) आदि ने अपने स्वयं के अनुभवों तथा अपने मित्रों के अनुभवों में अत्यन्त उपयुक्त एवं प्रभावपूर्ण माना है। इस वर्षों के अनुभव सिद्ध क्रम को 'अजितेन्द्र सारणी' में स्पष्ट किया गया है।

सारणी निर्देश

'आसनों में प्राणायाम' के सम्बन्ध में एक सामान्य सिद्धान्त यह है कि आसन प्रारम्भ करते समय रेचक, आसन की पूर्ण (विराम) स्थिति में कुम्भक और आसन का अन्त करते समय पूरक की क्रिया की जाती है। उक्त चित्रमाला में आसन एवं मुद्राओं के साथ श्वास-प्रश्वास गति भी दर्शाई गई है, फिर भी 'आचार्य' के निर्देशों को सर्वोपरि मान्यता दी जानी चाहिए, क्योंकि आसन और मुद्राओं में प्राणायाम का अपना अलग महत्व है।

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक १

अजितेन्द्र सारणी (क्रम विशेष)

१. सुबोध तालिका	२. हिमांशु तालिका
१. मूल शोधन	१. स्वर्णाभ्यास
२. घ्राण नेति	२. सूर्य नमस्कार
३. हृद धोती	३. अलकाभ्यास
४. दत धोती	४. अर्चानाभ्यास
५. कुंजर क्रिया	५. सरलेशासन
६. शंख प्रक्षालन तथा अन्य शरीर शुद्धिकरण की क्रियाएँ।	६. शीर्षासन
७. प्रार्थना	७. सर्वांगासन
८. संध्या	८. मत्स्यासन
९. हवन आदि	९. सरलेशासन
३. हार्शिका तालिका	१०. सामने झुकने वाले आसन
१. औदरिक व्यायाम	११. पीछे झुकने वाले आसन
२. प्राणायाम	१२. ऐंठने वाले आसन
३. धारणा	१३. उत्तोलक आसन (शीर्षासन एवं सर्वाङ्गसन भी इसी श्रेणी में हैं परन्तु उन्हें रक्त परिभ्रमण के विशेष नियम के कारण पहले ही किया जाता है।)
४. ध्यान	
५. समाधि	१४ टांग और पैर के व्यायाम
४. दीपिका तालिका	१५. खड़े होर किये जाने वाले व्यायाम
१. आहार	१६. सरलेश आसन (देर तक)
२. आदतों का त्याग	
३. हृदय विकास	

स्वस्थ व्यक्ति के लिए योग व्यायामों का शारीरिक स्वास्थ्य के आधार पर वर्गीकरण करें तो आयु (Age) आदि को ध्यान रखते हुए निम्नलिखित वर्ग (Group) बनते हैं—

(१) १० से १५ वर्ष तक के बच्चों का वर्ग
(२) १५ से २५ वर्ष तक के किशोरों का वर्ग
(३) २५ से ३५ वर्ष तक के नव युवकों का वर्ग
(४) ३५ से ५० वर्ष तक के युवकों का वर्ग
(५) ५० से ७० वर्ष तक के प्रौढ़ों का वर्ग
(६) ७० से १०० वर्ष या अधिक आयु वाले वृद्धों का वर्ग
(७) महिलाओं के विशेष योग व्यायामों का वर्ग
(८) रोगों से सम्बन्धित विशेष योग व्यायामों का वर्ग

महर्षि 'यतीन्द्र' रेखा सारिणी

विभिन्न आसन एवं मुद्रायें

(योगशिक्षकों के लाभार्थ रेखा चित्र)

❊ शकुन्तला - रेखा चित्रमाला ❊

एकपाद शिरासन
(LEG HEAD POSE)
कुम्भक
कर्ण पीड़ासन
(EAR KNEE POSE)
कुम्भक
काकासन
(CROW POSE)
कुम्भक
गरुणासन
(EAGLE POSE)
कुम्भक
गोमुखासन
(COW HEAD POSE)
कुम्भक
चक्रासन
(WHEEL POSE)
कुम्भक
चक्रासन
(WHEEL POSE)
कुम्भक
जानु शिरासन
(HEAD KNEE POSE)
कुम्भक
तोलाङ्गुलासन
(BALANCE POSE)
कुम्भक
त्रिकोणासन
(TRIANGLE POSE)
सामान्य श्वास
धनुरासन
(BOW POSE)
कुम्भक
द्विपाद शिरासन
(TWO LEGS HEAD POSE)
कुम्भक
कान्तासन
(HAND MOVING EXER.)
सामान्य श्वास
कुक्कुटासन
(COCK POSE)
कुम्भक
कूर्मासन
(TORTOISE POSE)
कुम्भक

नाभिपीड़ासन
(NAVAL ANKLE POSE)
कुम्भक
निशासन
(NIGHT POSE)
सामान्य श्वास
नीलमासन
(HIP HAND POSE)
सामान्य श्वास
नेहासन
LEGS LIFT
सामान्य श्वास
नौलि क्रिया
(ABDOMEN MANIPULATION)
कुम्भक
पश्चिमोत्तानासन
HEAD KNEE POSE
II
I
कुम्भक
पर्वतासन
(MOUNT POSE)
सामान्य श्वास
पद्मासन
(LOTUS POSE)
श्वास निदेशानुसार
पवन मुक्तासन
(WIND RELEASING POSE)
सामान्य श्वास
पादान्गुष्ठासन
(TIP TOE POSE)
कुम्भक
पूर्ण मत्स्येन्द्रासन
कुम्भक
पूनम मुद्रा
कुम्भक
बकासन
(CRANE POSE)
कुम्भक
बद्ध पद्मासन
(BOUND LOTUS POSE)
कुम्भक
भद्रासन
(ANKLE KNEE POSE)
कुम्भक

भुजंगासन
COBRA POSE
मत्स्यासन
FISH POSE
I
II
मकरासन
I
II
मत्स्येन्द्रासन
SPINAL TWIST
मयूर आसन
PEACOCK POSE
I
II
मंडूकासन
FROG POSE
मंजू मुद्रा
योग दन्तआसन
YOGI'S STAFF POSE
योग मुद्रा
रमा मुद्रा
FRONT STRETCH POSE
(दृप्ति श्वास)
रनजीतासन
PALM NECK POSE
(गहरी श्वास)
रञ्जनी मुद्रा
ELBOW KNEE POSE
वज्रासन
KNEELING POSE
वातायनासन
KNEE FOOT POSE
विनीतासन
SIDE RELEXING POSE
(सामन्य श्वास)

रमा मुद्रा
(FRONT STRETCH POSE)
तृप्ति श्वास
रनजीतासन
(PALM NECK POSE)
गहरी श्वास
रजनी मुद्रा
(ELBOW KNEE POSE)
वज्रासन
(KNEELING POSE)
वातायनासन
(KNEE FOOT POSE)
विनीतासन
(SIDE RELEXING POSE)
सामान्य श्वास
वीरासन
(HEROIC POSE)
सामान्य श्वास अथवा कुम्भक
(SCORPION) वृश्चिकासन
रेचक कुम्भक पूरक
वृक्षासन
(TREE POSE)
रेचक के बाद कुम्भक, अंत में पूरक
वन्दासन (THIGH HEEL POSE)
एक एक करके एड़ी पर भार दें
शक्ति चालिनी मुद्रा
(NERVE POWER STIMULATION)
कुम्भक
शलभासन
(LOCUST POSE)
पूरक करके टाँगें उठायें
शवासन
(सरलेशासन)
(DEAD POSE)
सामान्य श्वास
शीर्षासन
(HEAD STAND POSE)
सर्वांगासन
(Shoulder Stand)
कुम्भक

सतासन
(CALF PILLOW POSE)
सामान्य श्वास
स्वर्णाभ्यास
(CHAKRIKA EXERCISE)
सिद्धासन
सुखासन (सरलासन)
(EASY POSE)
सुप्त वज्रासन
(LYING KNEELING POSE)
कुम्भक
सुप्त वज्रासन (पूर्ण)
(DIAMOND POSE)
कुम्भक
सूर्य नमस्कार
रेचक
पूरक
रेचक
पूरक
कुम्भक
1-12 , 2-11 , 3-10
4-9 ,
5
रेचक
पूरक
रेचक
6
7
8
सेतुबंधासन
BRIDGE POSE
कुम्भक
हलासन
(PLOUGH POSE)
I
II
III
हस्त पादासन
(HAND FOOT POSE)
रेचक के बाद कुम्भक

* सारिणी निर्देश *

'आसानों में प्राणायाम' के सम्बन्ध में एक सामान्य सिद्धान्त यह है कि आसन प्रारम्भ करते समय रेचक, आसन की पूर्ण (विराम) स्थिति में कुम्भक और आसन का अंत करते समय पूरक की क्रिया की जाती है। उक्त चित्रमाला में आसन एवं मुद्राओं के साथ श्वास-प्रश्वास गति भी दर्शाई गई है, फिर भी 'आचार्य' निर्देशों को सर्वोपरि मान्यता दी जानी चाहिए, क्योंकि आसन और मुद्राओं में प्राणायाम का अपना अलग महत्व है।

बच्चे के जन्म से लेकर १२ वर्ष तक का समय ऐसा है जिसमें व्यायामों का क्रम बड़ी शीघ्रता से बदलता है। इस आयु में बच्चे को योग-व्यायामों से मुक्त रखना ही उचित है। 'योग-व्यायाम' बच्चे की काम-शक्ति उभरने की उम्र आते-आते प्रारम्भ करा देने चाहिए। सामान्यतः भारत में लड़के-लड़कियों की ऐसी उम्र १०-१२ वर्ष के बीच पाई जाती है। इसलिए हिन्दुओं में यज्ञोपवीत १२ वर्ष की उम्र पर कराने की प्रथा है। लड़कियाँ भी प्रायः इसी उम्र के पश्चात् रजस्वला होने लगती हैं। **रिलीजस रिसर्च ऐकैडमी,** की सन् १९६६ ई. की षटमासिक रिपोर्ट में **श्रीमती मनोरमा देवी कुलश्रेष्ठ** (तत्कालीन प्रधान-साहित्याध्यक्षा) का एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें कहा गया है "चाहे आप १२ वर्ष के ही क्यों न हों, यदि आप शारीरिक सम्बन्धों में रुचि लेने लगे हैं—अर्थात् आपका मस्तिष्क आपके और आपके साथियों के शरीरांगों में हो रहे परिवर्तनों के बारे में सोच विचार करने लगा है जो निश्चय ही आपको 'आवश्यक जीवन दर्शन' का ज्ञान ले लेना चाहिए जो कि आपके जीवन में आने वाली सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान तथा जीवन के विभिन्न मोड़ों पर अपने पथ का स्वयं चुनाव कर पाने की बुद्धि देता है एवं प्रत्येक मनुष्य को जीने की कला सिखाता है।

आगे वह 'तत्व ज्ञान' सिखाने की उचित आयु की बात स्पष्ट करती हैं, **"सच पूछा जाय तो इस ज्ञान का सम्बन्ध बच्चे की आय से नहीं अपितु उसके मस्तिष्कीय विकास से है।** अतः यह ज्ञान बच्चे को जितना शीघ्र हो सके दे देना चाहिए, परन्तु उसके साथ उसके मानसिक विकास का भी ध्यान रखना चाहिए कि वह आपके द्वारा दिये गये ज्ञान को हृदयगम कर सके।"

बाल्यावस्था में बच्चे की शरीर-पुष्टि एक विशेष अनुपात में होती है। प्रत्येक माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों को अपने धार्मिक व्यवहार के अनुरूप ऐसी समय सारणी (Times Table) बना कर दें तो भौतिक, मानसिक एवं आत्मिक स्तर पर उन्हें पुष्ट बनाती चले। ऐसे ही समय-चक्र से स्वय माँबाप को भी चलना होगा जिससे बच्चों के सम्मुख एक 'आदर्श' उपस्थित हो और बच्चे अपने आप उसी गति (Routine) में बंध जायें। यदि माँ बाप स्वयं बच्चों के आत्मानुशासन तथा संयम का परिचय नहीं देंगे तो बच्चे कभी भी अच्छी उन्नति नहीं कर सकेंगे। कुछ माता-पिता धर्म के नाम पर बच्चों को बहुत अधिक संयम तथा अनुशासन में रखते हैं। वे अपने बच्चों को प्राकृतिक रूप से बढ़ने में बाधा डालते हैं। परिणामतः ऐसे बच्चों का आध्यात्मिक विकास एक दम रुक जाता है। मानसिक और शारीरिक विकास तो चलता ही रहता है। इस उम्र में बच्चे को स्वतन्त्र रूप से सोच-विचार करने तथा रचनात्मक कार्य करने की ओर प्रेरित करना

चाहिए। नर्क, दोजख, महाविनाश, प्रलय, मृत्यु, पाप आदि भयोत्पादक कहानियाँ तथा बातें इस उम्र में बच्चे को नहीं बतानी चाहिए।

आगे दी गई 'महर्षि यतीन्द्र योग व्यायाम तालिकायें' व्यक्ति के अवचेतन मन में छुपे हुए ज्ञान और शक्ति को सक्रिय बनाने में सहायक हैं। इनमें प्रत्येक सारणी में तीन स्तर दिये गये हैं। आप सर्वप्रथम अपनी आयु के उपयुक्त वर्ग की सारणी छाँटिये। उसमें सबसे पहले शक्ति के स्फुरण के लिए 'अंकर स्तर' के योग व्यायामों का अभ्यास कीजिए, उनमें पटुता आ जाने पर ही (समय का कोई प्रतिबन्ध नहीं) दूसरे स्तर पर शक्ति को जाग्रत करने के लिए 'शक्ति स्तर' के व्यायामों को प्रारम्भ करें। जब इनका भी अच्छा अभ्यास हो जाय तब तीसरे स्तर पर शक्ति को आगे बढ़ाने वाले युक्ति पूर्ण योग व्यायामों को करना चाहिए। जो कि 'युक्ति स्तर' की तालिका में दिये हुए हैं।

महर्षि 'यतीन्द्र' योग तालिका, क्रमांक २

जितेन्द्र-सारणी

(१० से १५ वर्ष तक स्वस्थ बच्चों के लिए योग व्यायाम)

१. 'अंकुर स्तर' (लगभग ६ सप्ताह तक)	२. 'शक्ति' स्तर (लगभग ६ मास तक)	३. 'युक्ति' स्तर (लगभग २ वर्ष तक)
सूर्य नमस्कार (३ बार)	सूर्य नमस्कार (६ बार)	सूर्य नमस्कार (८ बार)
अलकाभ्यास १० बार	अलकाभ्यास १० बार	अलकाभ्यास १० बार
सरलेशासन १ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मिनट)
सर्वांगासन (२ मि.)	सर्वांगासन (३ मि.)	शीर्षासन (२ मिनट)
पश्चिमोत्तानासन (३ बार)	पश्चिमोत्तानासन (५ बार)	सर्वांगासन (३ मिनट)
भुजंगासन (३ बार)	भुजंगासन (३ बार)	अर्धमत्स्येन्द्रासन (३ बार)
सरलेशासन (२ मि.)	धनुरासन (३ बार)	त्रिकोणासन (३ बार)
	पद्मासन (१ से २ मि.)	पाद हस्तासन (३ बार)
	सरलेशासन (५ मिनट)	चक्रासन (२ बार प्रत्येक)
		सरलेशासन ५ मिनट
		पद्मासन (३ मि.)
		सरलेशासन (५ मिनट)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक ३

मानेन्द्र-सारणी

(१६ से २५ वर्ष तक के स्वस्थ व्यक्तियों के लिए योग व्यायाम)

शरीर वृद्धि के सभी आसन तथा भारोत्तोलन आदि व्यायाम करने के लिए उपयुक्त आयु है।

१. 'अंकुर' स्तर (लगभग ६ सप्ताह)	२. 'शक्ति' स्तर (लगभग ६ मास तक)	३. 'युक्ति' स्तर (लगभग २ वर्ष तक)
अलकाभ्यास २०	सूर्य नमस्कार (१० चक्र)	सूर्य नमस्कार (१० चक्र)
स्वर्णाभ्यास १० चक्र	सरलेशासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)
सूर्य नमस्कार ६ चक्र	शीर्षासन (२ मि.)	शीर्षासन (३ मि.)
अर्चनाभ्यास १	सर्वांगासन (२ मि.)	सर्वांगासन (३ मिं.)
सरलेशासन (२ मि.)	मत्सायासन (२ मि.)	मत्स्यासन (२ बार)
सर्वांगासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मिनट)
मत्स्यासन (१ मि.)	हलासन (३ बार)	जानेशिरासन (३ बार)
सरलेशासन (१ मि.)	पश्चिमोत्तानासन (३ बार)	कूर्मासन (३ बार)
हलासन (४ बार)	त्रिकोणासन (२ बार)	त्रिकोणासन (३ बार)
भुजंगासन (४ बार)	भुजंगासन (२ बार)	धनुरासन (३ बार)
अर्धशलभासन (४ बार)	शुलभासन (२ बार)	पूर्ण सुप्त वज्रासन (१० से)
अर्धमत्स्यन्द्रासन (प्रत्येक ओर को २ बार)	धनुरासन (२ बार)	चक्रासन (३० से.)
पवन मुक्तासन (३ बार)	सुप्त वज्रासन (२ बार)	पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (२ बार)
पादांगुष्ठासन (३ बार)	चक्रासन (२ बार)	मयूरासन (२ बार)
सरलेशासन (२ मि.)	अर्धमत्स्येन्द्रासन (प्रत्येक ओर दो बार)	काकासन (२ बार)
	मयूरासन (२ बार)	अंजनेयासन (३० से.)
	काकासन (२ बार)	पादांगुष्ठासन (३ बार)
	सेतुबंधासन (२ मि.)	भद्रासन (२ मिनट)
	कर्णपीड़ासन (१ बार)	गोमुखासन (२ मिनट)
	भद्रासन (२ मि.)	मंडूकासन (२ मिनट)
	गोमुखासन (२ मि.)	कुक्कुडासन (२ मि.)
	मंडुकासन (२ मि.)	योग मुद्रा (सामने झुक कर, ३ बार)
	सरलेशासन (५ मि.)	बद्ध पद्मासन (३ मि.)
		सरलेशासन (५ मिनट)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक ४

गीतेन्द्र सारणी

(२६ से ३५ वर्ष तक के स्वस्थ व्यक्तियों के लिए योग-व्यायाम)

१. 'अंकुर' स्तर (लगभग ६ सप्ताह तक)	२. 'शक्ति' स्तर (लगभग ६ मास तक)	३. 'युक्ति' स्तर (लगभग २ वर्ष तक)
अलकाभ्यास २०	स्वर्णाभ्यास १० चक्र	स्वर्णाभ्यास (५ चक्र)
स्वर्णाभ्यास १० चक्र	सूर्य नमस्कार १० चक्र	सूर्यनमस्कार (५ चक्र)
सूर्य नमस्कार ५ चक्र	अर्चनाभ्यास (५ मि.)	अर्चनाभ्यास (५ मि.)
अर्चनपाभ्यास (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)
सरलेशासन (२ मि.)	शीर्षासन (१ मि.)	शीर्षासन (२ मि.)
सर्वांगासन (२ मि.)	सर्वांगासन (२ मि.)	सर्वांगासन (१० मिनट)
पश्चिमोत्तानासन (३ बार)	मत्स्यासन (१ मि.)	मत्स्यासन (२ मि.)
मत्स्यासन (१ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)	त्रिकोणासान (३ बार)
सरलेशासन (५ मि.)	हलासन (३ बार)	धनुरासन (३ बार)
	पश्चिमोत्तानासन (३ बार)	जानुशिरासन (३ बार)
	भुजंगासन (२ बार)	कूर्मासन (३ बार)
	शलभासन (२ बार)	पूर्णासुप्त वज्रासन (१० से.)
	त्रिकोणासन (२ बार)	चक्रासन (१० से.)
	धनुरासन (२ बार)	पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (२ बार)
	सुप्त वज्रासन (२ बार)	मयूरासन (२ बार)
	चक्रासन (२ बार)	काकासन (२ बार)
	अर्धमत्स्येन्द्रासन (प्रत्येक ओर को २ बार)	अन्जनेयासन (१० से.)
	मयूरासन (२ बार)	पादांगुष्ठान (३ बार)
	काकासन (२ बार)	कुक्कुडासन (२ मिनट)
	सेतु बन्धासन (२ मिनट)	योग मुद्रा (सामने झुकने वाली, ३ बार)
	कर्णपीडासन (१ मिनट)	बद्ध पद्मासन (३ बार)
	भद्रासन (१ मिनट)	सरलेशासन (१० मिनट)
	गोमुखासन (१ मिनट)	
	मंडूकासन (१ मिनट)	
	पद्मासन/सिद्धासन (१ मिनट)	
	सरलेशासन (१० मि.)	

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक ५

गिरीन्द्र सारणी

(३६ से ५० वर्ष तक के स्वस्थ व्यक्तियों के लिए योग व्यायाम)

इस आयु में कभी-कभी काम शक्ति क्षीण होने के संकेत मिला करते हैं। आप जानते हैं, काम क्षीण पुरुष कुण्डलिनी योग और सांसारिक भोग दोनों के ही अनुपयुक्त होता है अत: इन आसनों में काम केन्द्रों को चैतन्य प्रदान करने वाले आसनादि भी सम्मिलित होते हैं परन्तु यह आसन व्यक्ति को कामुक नहीं बनाते।

१. 'अंकुर' स्तर (लगभग ६ सप्ताह तक)	**२. 'शक्ति' स्तर (लगभग ६ मास तक)**	**३. 'युक्ति' स्तर (लगभग २ वर्ष तक)**
स्वर्णाभ्यास (१० चक्र)	स्वर्णाभ्यास (१० चक्र)	स्वर्णाभ्यास (१० चक्र)
सूर्यनमस्कार (१० चक्र)	सूर्यनमस्कार (१० चक्र)	सूर्यनमस्कार (१० ाक्र)
अर्चनाभ्यास (२ मि.)	अर्चनाभ्यास (३ मि.)	अर्चनाभ्यास ५ मिनट)
सरलेशासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)	त्रिकोणासन (६ बार)
सर्वांगासन (३ मि.)	शीर्षासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)
मत्स्यासन (१ मि.)	सर्वांगासन (५ मि.)	शार्षासन (५ मि.)
सरलेशासन (१ मि.)	मत्स्यासन (२ मि.)	सर्वांगासन (१० मि.)
पश्चिमोत्तानासन (४ बार)	सरलेशासन (२ मि.)	मत्स्यासन (२ मि.)
भुजंगासन (४ बार)	हलासन (३ बार)	सरलेशासन (२ मि.)
शुलभासन (४ बार)	पश्चिमोत्तानासन (४ बार)	मयूरासन (२ मि.)
वज्रासन (३ मि.)	भुजंगासन (३ बार)	हलासन (३ बार)
सुप्त वज्रासन (२ मि.)	शलभासन (३ बार)	पश्चिमोत्तानासन (३ बार)
अर्ध मत्स्येन्द्रासन (दोनों ओर २-२ बार)	धनुरासन (३ बार)	जानुशिवरासन (३ बार)
पवनमुक्तासन (६ बार)	अर्ध मत्स्येन्द्रासन (प्रत्येक ओर २ बार)	पाद हस्तासन (३) बार
सरलेशासन (१० मि.)	सेतु ब्रन्धासन (१ मि.)	भुजंगासन (३ बार)
	गोमुखासन (२ मि.)	शलभासन (३ बार)
	मंडूकासन (२ मि.)	धनुरासन (३ बार)
	सरलेशासन (१० मि.)	सुप्त वज्रासन (३ बार)
	सिद्धासन/पद्मासन (५ मि.)	चक्रासन (३ बार)
		अर्ध मत्स्येन्द्रासन (२ बार)
		सेतु बन्धासन (२ मि.)
		गोमुखासन (२ मि.)
		मंडूकासन (२ मि.)
		भद्रासन (२ मि.)
		गोरक्षासन (२ मि.)
		सरलेशासन (१० मि.)
		सिद्धासन/पद्मासन (१० मि.)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रामंक ६

वीर-सारणी

(५१ से ७० वर्ष तक के स्वस्थ व्यक्तियों के लिये योग व्यायाम)

शरीर की शिथिलीकरण क्रिया बढ़ जाने के कारण इस आयु में शरीर के कोषों में सक्रियता उत्पन्न करने वाले आसनादि करें।

१. 'अंकुर' स्तर	२. 'शक्ति' स्तर	३. 'युक्ति' स्तर
स्वर्णाभ्यास (५ चक्र)	स्वर्णाभ्यास (1० चक्र)	स्वर्णाभ्यास (५ चक्र)
अर्चनाभ्यास (२ मि.)	सूर्यनमस्कार (५ चक्र)	सूर्यनमस्कार (५ चक्र)
सरलेशासन (२ मि.)	अर्चानाभ्यास (५ मि.)	अर्चनाभ्यास (५ मि.)
सर्वांगासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)
मत्स्यासन (२ मि.)	शीर्शासन (२ मि.)	शीर्शासन (५ मि.)
सरलेशासन (१ मि.)	सर्वांगासन (४ मि.)	सर्वांगासन (५ मि.)
पश्चिमोत्तानासन (३ बार)	मत्स्यासन (२ मि.)	हलासन (३ बार)
भुजंगासन (४ बार)	सरलेशासन (१ मि.)	जानाशिरासन (२ बार)
अर्धशलभासन (४ बार)	पश्चिमोत्लासन (६ बार)	कर्णपीड़ासन (२ बार)
पवनमुक्तासन (६ बार)	हलासन (३ बार)	पश्चिमोत्तानासन (२ बार)
सरलेशासन (५ मि.)	भुजंगासन (३ बार)	भुजंगासन (३ बार)
सरलासन (५ मि.)	शलभासन (३ बार)	शलभासन (३ बार)
(रीढ़ की हड्डी सीधी रख कर करें)	अर्धमत्स्येन्द्रासन (२ बार)	धनुरासन (३ बार)
	सरलेशासन (१० मि.)	अर्धमत्स्येन्द्रासन (२ बार)
	सिद्धासन/पद्मासन (५ मि.)	सरलेशासन (१० मि.)
		सिद्धासन/पद्मासन (१० मि.)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक ७

मगन-सारणी

(७० से १०० वर्ष या अधिक के स्वस्थ व्यक्तियों, तथा किसी रोग के ठीक होने के पश्चात् आशक्त व्यक्तियों के लिए आसन—प्राणायाम। विभिन्न रोगों के उपचार हेतु योग्य आचार्य का निर्देशन लें।)

१. 'अंकुर' स्तर (लगभग ६ सप्ताह)	२. 'शक्ति' स्तर (लगभग ६ मास)	३. 'युक्ति' स्तर (लगभग २ वर्ष)
स्वर्णाभ्यास (५ चक्र)	स्वर्धणाभ्यास (५ चक्र)	स्वर्णाभ्यास (५ चक्र)
अर्चनाभ्यास (२ मि.)	अर्चनाभ्यास (२ मि.)	अर्चनाभ्यास (२ मि.)
सरलेशासन (५ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)
भुजंगासन (गहरी श्वास के साथ ५ बार)	सर्वांगासन (३ बार)	मत्स्यासन (१ मि.)
	मत्स्यासन (१ मि.)	सरलेशासन (२ मि.)

पद्म मुद्रा

गरुड़ मुद्रा

वनमाला मुद्रा

कौस्तुभ मुद्रा

उन्मादिनी मुद्रा

सर्व विद्राविणी मुद्रा

सर्वमहांकुशा मुद्रा

सर्वाकर्षिणी मुद्रा
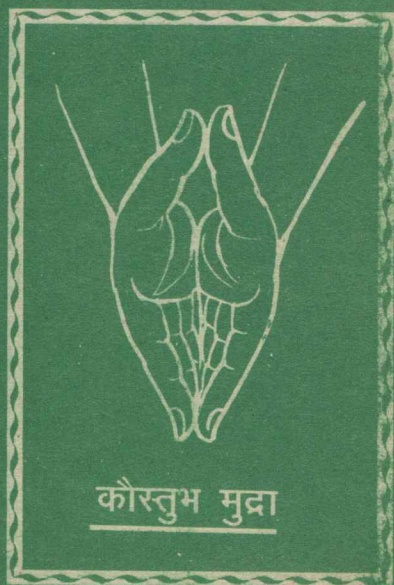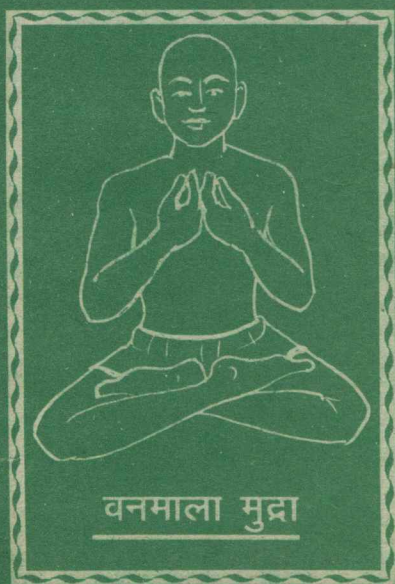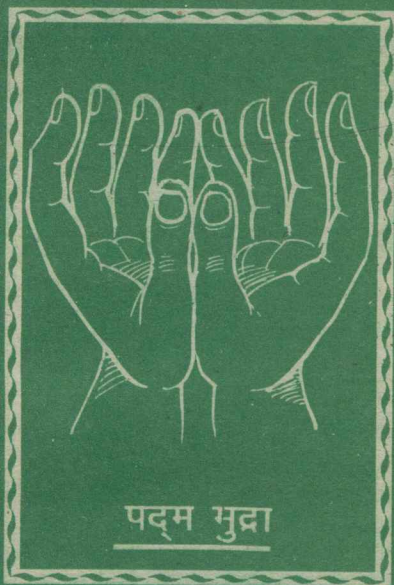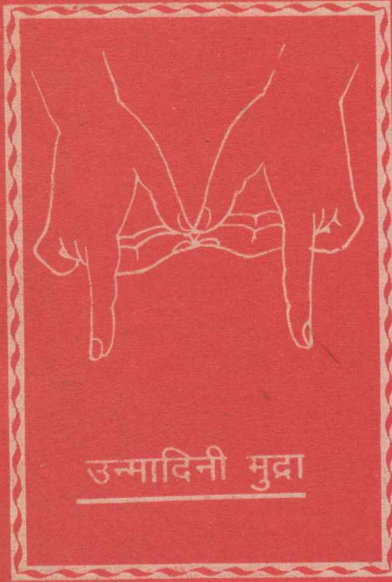
त्रिखण्डा मुद्रा

व्याख्यान मुद्रा

लक्ष्मी मुद्रा

खड्ग मुद्रा

ज्ञान मुद्रा

श्रीवत्स मुद्रा

दुर्भा (दौर्गी) मुद्रा
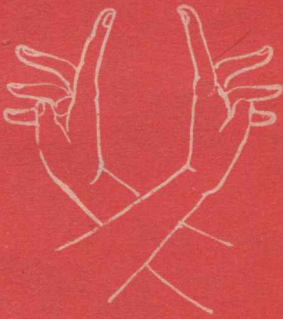
बिल्व मुद्रा
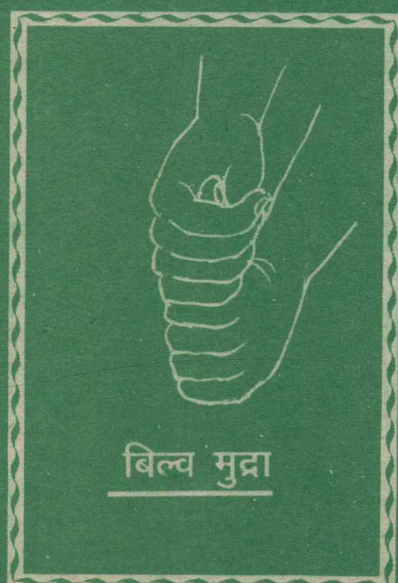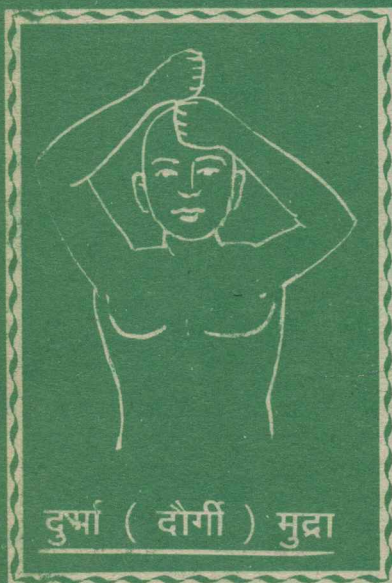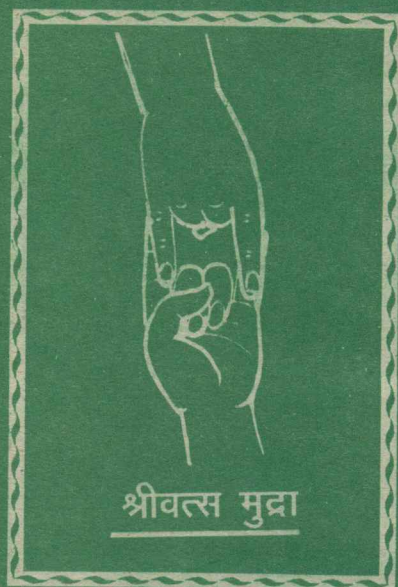
वाराह मुद्रा

शंख मुद्रा

वेणु मुद्रा

गदा मुद्रा
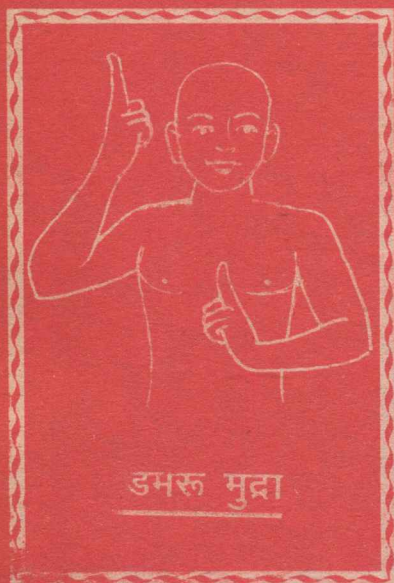
डमरू मुद्रा

चर्म मुद्रा

पाश मुद्रा

अंकुश मुद्रा

बीजपूर मुद्रा

लड्डूक (मोदक) मुद्रा

चक्र मुद्रा

नारसिंही मुद्रा

संरक्षिणी (मुशल) मुद्रा

दन्त मुद्रा

परशु मुद्रा
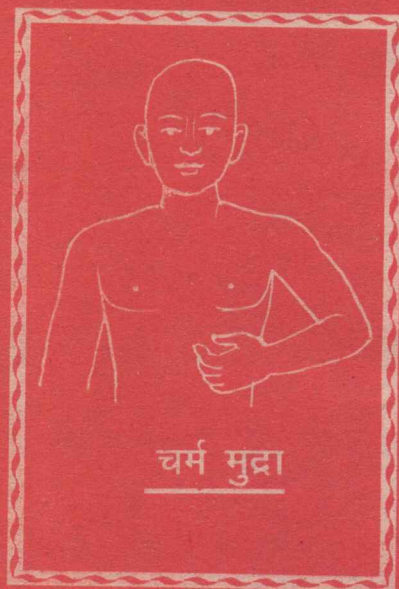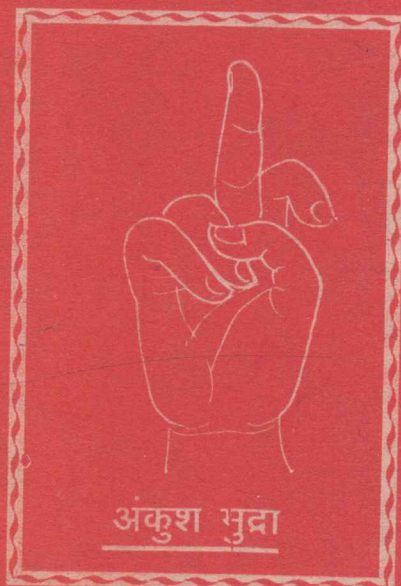
विघ्न मुद्रा
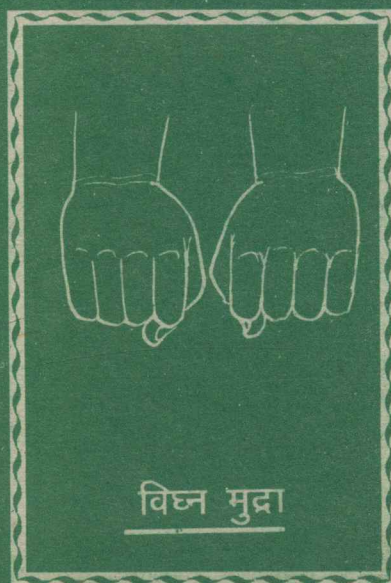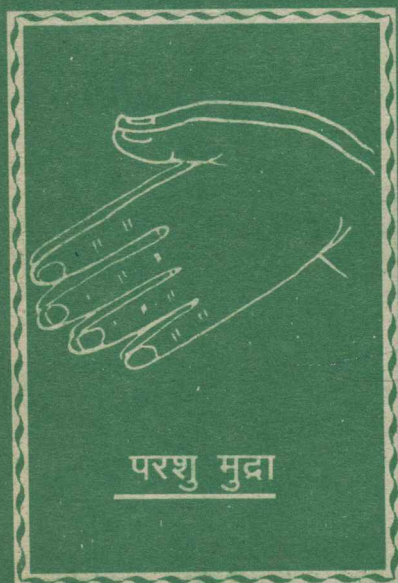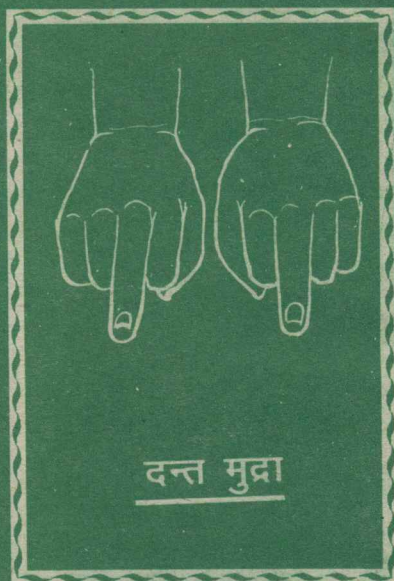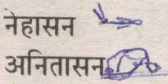
पवनमुक्तासन (६ बार)	सरलेशासन (२ मि.)	पश्चिमोत्तानासन (६ बार)
सरलासन (५ मिनट रीढ़ सीधी रखकर)	पश्चिमोत्तानासन (४ बार)	भुजंगासन (३ बार)
सिद्धासन (५ मिनट)	भुजंगासन (३ बार)	अर्धशलभासन (४ बार)
सरलेशासन (१० मि.)	अर्धशलभासन (४ बार)	शलभासन (३ बार)
सरलेशासन (५ मिनट)	सिद्धासन (१० मि.)	धनुरासन (३ बार)
ममता-वाणी अभ्यास	सरलेशासन (१० मि.)	सरलेशासन (१० मि.)
	सरलेशासन (५ मि.)	सरलेशासन (१० मि.)
	वीणा-वाणी अभ्यास	मौन अभ्यास (१ घण्टा)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक ८

शकुन्तला सारणी

(स्वस्थ गर्भवती महिलाओं के लिए विशेष योग व्यायाम)

१. (१ से ३ मास तक)	२. (३ से ५वें मास तक)	३. (३ से ७ वें मास तक)
नेहासन अलकासन	नेहासन अनितासन	नेहासन अनितासन विनीतासन मंजू मुद्रा

४. (७ से ९ वें मास तक)	५. (९वें मास से प्रसव तक)
सतासन वंदनासन मंजू मुद्रा नेहासन विनीतासन	मंजू मुद्रा वंदनासन सतासन टहलना

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक ९

सुनीता सारणी

(प्रसवोपरान्त शरीर को सुडौल बनाने के लिए महिलाओं के व्यायाम)

१. प्रसव के तुरन्त बाद	२. प्रसव के दूसरे दिन से १० वें दिन तक	३. दसवें दिन से ४५ वें दिन तक	४. ४५ वें दिन से ३ मास तक
निशासन	निशासन अलकासन कान्तासन	ऊषासन पुनम मुद्रा रमा मुद्रा कान्तासन अलकासन	नीलमासन पूनम मुद्रा इन्दू मुद्रा रमा मुद्रा रनजीतासन रजनी मुद्रा

महर्षि 'यतीन्द्र' योग अभ्यास तालिका, क्रमांक १०

नीति स्मृति

(आयु के उपयुक्त 'योग व्यायाम सारणी' का अभ्यास करते समय अपने 'स्तर' के अनुरूप इन नियमों का सतत अभ्यास करते जाइये)

१. अंकर स्तर (६ सप्ताह)	२. शक्ति स्तर (६ मास)	३. युक्त स्तर (२ वर्ष तक)
१. धार्मिक पुस्तकों का पठन पाठन	१. धार्मिक पुस्तक जो पढ़ें उसके अर्थ पर ध्यान दें।	१. धार्मिक पुस्तक का अर्थ समझ कर आचरण में लाये।
२. संध्या/पूजा/ध्यान (आपके धर्म-नियमों के आधार पर)	२. संध्या, पूजा, ध्यान आदि जो करें उस पर मनन करें।	२. संध्या, पूजा, ध्यान आदि का वैज्ञानिक विवेचन करें।
३. गाली देने की आदत कम करें।	३. गाली बिल्कुल न दें, और ममता-वाणी का अभ्यास करें।	३. 'वीणा-वाणी' का अभ्यास करें।
४. काफी, चाय, सिगरेट, शराब आदि की आदत कम करें।	४. धूम्रपान व मद्यपान बिल्कुल न करें। मासाहार से शाकाहार की ओर अग्रसर हों।	४. पूर्ण शाकाहारी बन जाँय तथा रुचिपूण भोजन करें।
५. सप्ताह में कम दिन केवल पानी और फलों के रस पर रहें।	५. सप्ताह में एक दिन फलों के रस व पानी पर रहें।	५. सप्ताह में एक दि केवल एक द्रव फल का रस अथवा पा या दूध पर रहें।

६. सप्ताह में एक बार किसी समाजोत्थान अथवा धर्मोत्थान करने वाली संस्था को सहयोग दें।	६. सप्ताह में एक बार अपनी हृदय शुद्धि हेतु अपने ही तरीकों से समाज को आवश्यकता के अनुरूप लोगों की सेवा करें।	६. हृदय (मन) शुद्धि के लिए अधिक से अधिक सेवा के अवसर स्वयं खोजिये तथा धार्मिक सामाजिक संस्थाओं की सहायता कीजिए।
७. जहाँ तक हो अपना कार्य स्वयं करें।	७. जहाँ तक हो अपना कार्य स्वयं करें।	७. अपने करने योग्य सारे क़ार्य स्वयं ही करें।
८. तेज मिर्च, मसाले, खटाई वाली वस्तुएँ कम खायें।	८. तेज मिर्च, मसाले, खटाई वाली वस्तुयें बिल्कुल त्याग दें।	८. मिर्च, मसाले, खटाई वाली वस्तुयें बिल्कुल प्रयोग न करें।
९. अलग से नमक/चीनी न माँगें।	९. जो जैसा है वैसा ग्रहण करें।	९. जो जैसा है वैसा ग्रहण कर सन्तुष्ट हों।
१०. आय में से रुपये में १ पैसा (१ प्रतिशत) उचित कार्य हेतु प्रदान करें।	१०. एक प्रतिशत उचित कार्य हेतु अवश्य दान करे।	१०. एक प्रतिशत दान अवश्य करें।
११. सोने से पूर्व आत्मविश्लेषण द्वारा अपनी होने वाली गलतियों पर ध्यान दें।	११. सोने से पूर्व आत्म विश्लेषण द्वारा अपनी होने वाली गलतियों पर ध्यान दें।	११. सोने से पूर्व आत्म विश्लेषण द्वारा दिन में हुई गलतियों पर ध्यान दें।
१२. अपने नियमों का पालन दृढ़ता से करें।	१२. अपने नियमों को कर्त्तव्य समझ कर पालन करें।	१२. अपने नियमों को खेल के नियमों की तरह तनाव रहित होकर पालन करें।

इन विभिन्न सारणियों में आप अधिकतर सामान्यत: प्रयोग में आने वाले आसन एवं व्यायाम पायेंगे। बीच-बीच में कुछ नये आसन और व्यायाम आपको मिलेंगे जो कि नये विकसित विज्ञान की देन हैं और प्रचीन योग- पुस्तकों में उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे नये योग व्यायामों एवं अभ्यासों के स्पष्टीकरण आगे दिये गये हैं। बहुत से आसनादि के कई-कई नाम प्रचलित हैं उन्हें भी विभिन्न नामों से दे दिया गया है। हिन्दी के कम जानने वाले व्यक्तियों के लाभार्थ आसानों एवम् व्यायामों की अंग्रेजी अर्थ देने वाली एक तालिका भी अन्त में दी गई है। बहुत से उपयोगी व्यायाम प्राचीन पुस्तकों में बिना नाम के दिये गये

हैं। पहिचान (Indentification) के लिए उनके एक विशेष मनोरजंनात्मक आधार पर नामरकण करके स्पष्ट कर दिया गया है।

अर्चनाभ्यास

इसे केन्द्रकाभ्यास अथवा नाभिका भी कहा जाता है, क्योंकि यह शरीर के केन्द्र 'नाभि' को यथा स्थान रखने में अत्यन्त सहायक है। अर्चना-मुद्रा के कारण इसे अर्चनाभ्यास कहा जाता है।

अभ्यास विधि—सीधे तन कर खड़े हो जायें। दोनों पैरों की एड़ी के बीच मे लगभग २" स्थान रखें। श्वास गति सामान्य रहेगी। अब धीरे-धीरे गिनती बोलते हुए (जोकि लगभग १-१ सेकेंड बाद बोलें) दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाते चलें। **इन दोनों हाथों पर इतना तनाव दें मानो १०-१५ किलो का वजन लटका हुआ है।** इसी दबाव के साथ, एक सैकेंड में एक, दूसरे सेकेंड में दो, तीसरे सेकेंड में तीन बोलते हुए तीस गिनते-गिनते हाथों को पृथ्वी के समानान्तर लें और बिना रुके उसी गति से अगले तीस तक बोलते हुए हाथों को सिर के ऊपर आपस में मिला दें। दोनों बाहें कानों से सटी हुई एक दम सीधी और तनी हुई रहेंगी। हाथ की अंगुलियाँ दाहिने हाथ की अंगुलियों के पीछे की ओर और बाँया अँगूठा दाहिने हाथ की अंगुलियों के आगे की ओर, तथा बायें हाथ के अँगूठे के ऊपर दाहिने हाथ का अँगूठा रहेगा। इस प्रकार दोनों हाथ मिले हुए ऊपर की ओर अधिक से अधिक शक्ति से तने रहेंगे।

इसी अवस्था में श्वास गति सामान्य रखते हुए आप धीरे-धीरे सामने की ओर झुकिये। झुकने की गति वही रहेगी जो हाथों को उठाते समय उनकी गति रही थी, बहुत धीरे-धीरे। आपके हाथ पृथ्वी के समानान्तर आने में तीस सेकेंड लगने चाहिए। अब अगले तीस सेकेंड में हाथों से पैर के अँगूठे पकड़ने के लिए धीरे-धीरे बिना घुटने मोड़े हुए झुकना है। पैर के अँगूठे पकड़ लेने पर ५ से १० लम्बी और गहरी साँसें लीजिए अर्थात् एक साँस लेने पर छोड़ने में (बिना रुके) ५ से १० सेकेण्ड का समय लगे। इस प्रकार दो मिनट तक १०-१२ साँसें लीजिए (प्रारम्भ में छः साँसे १ मिनट में लेकर, अगली क्रिया करें)।

अब हाथों को पुनः अपनी अवस्था में वापस लाने के लिए दोनों हाथ आपस में उसी प्रकार मिला कर धीरे-धीरे पूरे एक मिनट में सीधे होना है। हाथ सिर के ऊपर तने रहेंगे। अब हाथों को खोलकर दायें-बायें पूरे तनाव के साथ धीरे-धीरे पूरे १ मिनट में अपनी जाँघों तक लायें। इस प्रकार एक अर्चनाभ्यास पूरा हुआ।

स्वर्णाभ्यास

इसे चक्रिका अथवा चक्राभ्यास एवम् पूर्णाभ्यास भी कहते हैं। सम्पूर्ण शरीर का अभ्यास एक साथ इसमें सम्मिलित होने के कारण इसे स्वर्णाभ्यास कहा गया है।

अभ्यास विधि—दोनों पैर लगभग 1 फुट की दूरी पर रखकर खड़े हों। अपने हाथ कुहनी से मोड़कर छाती पर लायें। कुहनी कंधों की सीध में हों। श्वास सामान्य रहेगी।

अब ऐडी उठाकर सीधे हाथ को पृथ्वी के समानान्तर (हथेली पृथ्वी की ओर) रखते हए पूरी लम्बाई में घुमाते हुए जितना पीछे की ओर ले जा सकें ले जाइये और उसी गति से घुटनों को भी मोड़ते जाइये। अधिक से अधिक मुड़ने के लिए पश्चात् अपनी स्थिति पर वापस आइये। इस समय मुड़े हुए घुटने धीरे-धीरे सीधे कर दीजिए और ऐडी भी धीरे-धीरे नीचे कर दीजिए। इसी प्रकार अब ऐडी उठाकर बाँई ओर के हाथ को पृथ्वी के समानान्तर घुमाते हुए पीछे की ओर ले जाइये, जितना ले जा सकते हों। इसके साथ ही दोनों घुटने, मोड़ते जाइये। पुनः अपनी स्थिति में आने के लिए हाथ को घुमाते हुए कुहनी मोड़कर हाथ छाती पर गर्दन के नीचे ले आइये, घुटने सीधे करते आइये और ऐडी भी धीरे-धीरे पृथ्वी पर टिका दीजिए। इसमें गर्दन और चेहरे की स्थिति को और स्पष्ट कर दिया जाय—यदि आप बाँई ओर को हाथ घुमाते हैं तो चेहरा दाहिनी ओर को जायेगा और जब आप दाहिनी ओर को अपना हाथ घुमाते हैं तो चेहरा बाँई ओर को जायगा। जब हाथ सामने आता है तो चेहरा भी सामने आ जाता है। इस प्रकार इस स्वर्णाभ्यास का एक चक्र पूरा होता है। आप देखेंगे कि इस अभ्यास में शरीर के अधिकतम अंगों का व्यायाम हो जाता है।

डॉ. प्रवीण चन्द्र कुलश्रेष्ठ (जो कि दूरदर्शन पर भी अपना योग प्रचार कार्य दे चुके हैं, तथा व्यक्तिगत रूप से भी योग प्रचार कार्य करते रहते है) ने एक बार मेरे बम्बई निवास पर सपरिवार दर्शन दिये। उनके द्वारा निर्देशित उक्त व्यायाम को तब से ही मै अपनी बम्बई, हाशीमारा, जामनगर, आगरा आदि स्थानों की योग कक्षाओं में 'कम समय में सम्पूर्ण शरीर का व्यायाम' कराने के लिए सफलता से प्रयोग करता रहा हूँ। इसने अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

ममता-वाणी—किसी के प्रति हृदय में प्यार भरी उमंग के साथ जो वाणी (शब्द) बोली जाती है वह ममता भरी वाणी होती है। उस भाषा के एक-एक शब्द से अपनत्व प्रकट होता है। लोग अपनों के प्रति तो ऐसी भाषा का प्रयोग अधिकतर करते ही रहते हैं। क्यों न आप ऐसी ही वाणी बोल कर सभी को मोहित करना सीखें?

वीणा-वाणी—'वीणा' की वाणी संगीतमय होती है, यदि उसके तार न बहुत कसे हों और न बहुत ढीले। अपने मन की वीणा के तार भी इतने ही कसे रखिये कि जीवन संगीतमय बनता जाय। अपनी वाणी को ममतामयी बनाते समय उसे निष्प्रभावी होने से बचाना भी आवश्यक है। श्रद्धेय कनिष्ठ पितामह श्री दीन दयाल जी कहा करते थे—

न इतना मीठा बन कि खा जाँय लोग बिन भूखे।
न इतना कड़वा बन कि जो चक्खे वो थूके॥

जब बोलें तो कम बोलें और जितना बोलें ममतापूर्ण बोलें। यही वीणा-वाणी है।

नेहासन

किसी दीवार से डेढ़-दो फुट की दूरी पर घुटने मोड़ कर पीठ के बल लेट जाइये। जब दोनों पैरों को उठाकर दीवार पर टिका दीजिए। इस स्थिति में दो मिनट रहिये और प्रतिदिन 2-2 मिनट बढ़ाकर 10 मिनट पर स्थिर हो जाइये।

सतासन

सातवें महीने बाद पैरों में अधिकतर सूजन आ जाती है तब पीठ के बल विश्राम करते समय पैरों के नीचे गोल या चपटे तकिये लगाकर शरीर को ढीला छोड़ दें और देर तक इसी अवस्था में विश्राम करें।

अलकासन

पीठ के बल सीधे लेट जाइये। शरीर के अंग-अंग को ढीला छोड़कर सरलेशासन की मुद्रा बना लीजिए। अब एक-एक करके सभी शरीरांगों की माँस पेशेयाँ सिकोड़िये और ढीली छोड़िये। योनि प्रदेश की पेशियाँ कई बार सिकोड़ें व ढीली छोड़ें।

अनितासन

पीठ के बल लेट जाइये, घुटने मोड़ लीजिए, अपने कूल्हों का भार ऐडियों पर ले आइये और दोनों हाथ घुटनों पर रख लीजिए। थोड़ी देर बाद दोनों हाथ घुटने से हटाकर नीचे पेट को सहारा दें। थोड़ी देर बाद ऐड़ी कूल्हे से सटाते हुए घुटने बाहर की ओर खींचे। थोड़ी देर बार धीरे-धीरे लम्बी साँस खींचते हुए घुटने मिला दीजिए और पैर फैलाकर लेटे रहिये।

विनीतासन

दाहिनी करवट से लेट जाऐं। अब दाहिनी टाँग को उठाकर चारों ओर घुमायें। फिर बाँई करवट लेट जाऐं और बाँई टाँग को उठाकर गोल-गोल घुमायें। टाँगों को ऊपर-नीचे भी चलायें।

वन्दनासन

सरलासन में (पालथी लगा कर) बैठें। थोड़ी-थोड़ी देर बाद जाँघों से एड़ियाँ दबायें।

मन्जू मुद्रा

टाँगें चौड़ी करके फैलाकर बैठें। दोनों हाथ तानकर दायें-बायें फैलायें व घुमायें। सातवें मास के पश्चात् ऐसे ही हल्के व्यायाम करें।

निशासन

बिल्कुल सीधे लेट कर पूरे शरीर को ढीला छोड़ दें और लम्बी-लम्बी श्वास बिना रुके हुए लेती रहें। प्रसव के तुरन्त बाद प्रारम्भ करे।

उषासन

सीधी, चित्त, पीठ के बल लेट जाऐं। दाहिना पैर जितना उठा सकें उठायें। अब धीरे-धीरे उसे नीचे ले आयें, और बायाँ पैर उसी प्रकार उठायें, फिर उसे धीरे-धीरे नीचे ले आयें। इस प्रकार दस बार करें।

नीलमासन

पीठ के बल सीधी लेट जाँय। घुटने मोड़ लें। कूल्हों को हाथों से सहारा दें और ऊपर की ओर उठायें। फिर धीरे-धीरे नितंब नीचे ले आयें। इस प्रकार कई बार करें।

पूनम मुद्रा

सीधी पीठ के बल लेट जाऐं। हाथों को छाती पर रख लें। अब गर्दन को ऊपर उठाकर ऐड़ी देखने का प्रयत्न करें। प्रसव के दस दिन बाद करें।

इन्दु मुद्रा

पैर लम्बे करके बैठ जाऐं। अब हाथों को लम्बा करके पैर के अँगूठे पकड़ने का प्रयत्न करें। इसी मुद्रा में ४-५ लम्बी साँस लें। गर्दन ऊपर रखें।

रमा मुद्रा

पेट के बल उल्टी लेट जाइये। हाथों को सिर के आगे फैला दीजिए। ठोड़ी (चिबुक) पृथ्वी से ऊँची रखिये। अब ४-५ गहरी श्वास लीजिए।

रनजीतासन

टाँगें लम्बी करके बैठ जाइये। अब हाथों को गर्दन के पीछे बाँध लीजिए (अंगुलियाँ आपस में फँसा दीजिए)। अब अपने सिर को घुटने तक झुकाइये। ऐसा दस बार करिये।

कान्तासन

टाँगें लम्बी करके बैठ जाऐं। दोनों बाहें एक-एक करके गोल-गोल घुमायें।

रजनी मुद्रा

टाँगें लम्बी करके बैठ जाऐं। दोनों हाथ गर्दन के पीछे बाँध लें। अब सीधी कुहनी को बाँयें घुटने से छूने के लिए झुकें। फिर सीधी हो जाऐं। अब बांई कुहनी को दाहिने घुटने से छूने के लिए झुकें। फिर सीधी हो जाऐं। ऐसा दस बार करें।

सौन्दर्यवर्द्धक विशेष व्यायाम एवं नियम

जनसाधारण की मान्यता है कि "किसी योगी को अपने शरीर व रूप पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, वह तो विलासी और भोगी व्यक्तियों की आवश्यकता है।" यह भ्रामक धारणा न संन्यासियों के हित में है और न योगी के हित में। क्योंकि यदि वे शरीर में भगवान का वास मानते हैं अथवा वे उसे ईश्वर कृति मानते हैं तो उसे मन्दिर की तरह सजा-सँवार कर रखना उनका कर्त्तव्य बन जाता है। यदि वे इसे केवल आनन्द मनाने लायक बनाये रखने के लिए ही सजाना-सँवारना आवश्यक समझते हैं तो आनन्द सदैव सजी-सँवरी वस्तु को देखकर या पाकर ही प्राप्त होता है। इसीलिए आप प्रत्येक आनन्द मनाने के अवसर पर विशेष सजावट का प्रबन्ध करते हैं।

योगी एक ऐसा व्यक्ति होता है जो प्रकृति की एक-एक वस्तु का पूर्णातिपूर्ण आनन्द लेता है। किसी वस्तु से अथवा व्यक्ति से किस प्रकार अधिक से अधिक आनन्द वह प्राप्त कर सकता है यह एक योगी को जानना अत्यावश्यक है। यहाँ हम एक उदाहरण आपके कमरे के फर्नीचर का देते हैं—कमरे में सोफा भी है, पलंग भी है, डायनिंग टेबुल है, उसकी कुर्सियाँ हैं, **प्रत्येक वस्तु का अपना उचित उपयोग है।** उन सबको जितनी सुन्दर और चमकदार दशा में आप रखेंगे उससे आपके व्यक्तित्व की छाप मिलेगी। **जिस ढंग**

से आप उनका उपयोग करेंगे उससे भी आपके व्यक्तित्व की छाप मिलेगी। साथ ही उनकी आयु बढ़ेगी। जब अन्य व्यक्ति और आप स्वयं इन वस्तुओं का अधिक से अधिक समय तक सुरुचिपूर्ण सलीकेदार उपयोग कर पायेंगे तो उतने ही समय तक आपको आनन्द की प्राप्ति होती रहेगी।

जिस प्रकार हमारे कमरे की शोभा सुन्दर फर्नीचर से है उसी प्रकार हमारे शरीर की शोभा विभिन्न शरीरांगों से है। केश (बाल), माथा (कपाल), कपोल (गाल), नेत्र, गला (आवाज), दाँत आदि कुछ ऐसे शरीरांग हैं जो हमारे व्यक्तित्व का परिचय दूर से ही देते हैं। अत: इनकी सान्दर्य सज्जा का ध्यान रखना हमारा परम कर्त्तव्य है। यूँ तो योगासनों और प्राणायाम द्वारा सम्पूर्ण शरीर को लाभ मिलता ही है फिर भी इन शरीरांगों के लिए कुछ विशेष व्यायाम एवम् नियमों का पालन करना उचित रहता है। कुण्डलिनी योग के जिज्ञासु के लिए इस शरीर सौन्दर्य सज्जा की सीमा स्वस्थ जीवन यापन तक ही है, न कि प्रदर्शन योग्य शरीर बनाने तक। सामुद्रिक शास्त्र जाने वाले लोग व्यक्ति के अवयवों को देखकर दूर से ही उसके भूत-भविष्य को वृतांत बना देता है। इससे सिद्ध होता है कि अपने अवयवों को सुव्यवस्थित एवं सुगठित रखना कितना आवश्यक है क्योंकि वे हमारे जीवन-व्यवहार का खुला विज्ञापन बन जाते हैं।

भुजाएँ

भुजाओं के लिए विभिन्न प्रकार के योगासन एवम् व्यायाम तो हैं ही, एक और नया व्यायाम है जो भुजाओं के स्नायुओं को विशेष स्फूर्ति देता है, इसे 'उर्वशी' आसन कहते हैं।

उर्वशी आसन

सीधे खड़े होकर दोनों हाथ ढीले छोड़ दें। अब अँगुलियों से कंधों तक दोनों हाथों में थरथराहट (कम्पन) पैदा करें। हाथों की अँगुलियाँ इतनी तेज कँपाये कि हवा में फरफराहट होने लगे। ऐसा एक्र मिनट करें फिर हाथ पृथ्वी के समानान्तर कंधों की सीध में फैला दें और एक मिनट तक फिर उसी तरह कंपन पैदा करें। अब दोनों भुजाएँ सिर से ऊपर तान दें और एक मिनट तक कंपन पैदा करें तत्पश्चात् वापस पहली स्थिति में आ जाऐं। अब कंपन के साथ-साथ भुजाओं को गोल-गोल ऊपर-नीचे घुमाएँ। अब एक हाथ ऊपर की ओर जाये तो दूसरा नीचे की ओर आये, इससे शरीर का सन्तुलन बना रहेगा। यह भी एक मिनट करें। यह थरथराहट भरी भुजाएँ और टाँगें नृत्य की एक विशेष भंगिमा हैं, इसलिए इसे 'उर्वशी' आसन कहा जाता है।

केश (बाल)

ईसा से २९६ वर्ष पूर्व तक बाल कटवाने का बिल्कुल रिवाज नहीं था, प्राचीन युग के इस विवरण के प्रमाण पत्थरों की मूर्तियाँ देती हैं। न्यूयार्क के मिस्टर चार्ल्स की पुस्तक "हिस्ट्री आफ द हेयर"

में बड़े रोचक विवरण दिये गये हैं। बाल कटवाने के लिए सबसे पहले रोमन निवासी तैयार हुए थे। आधुनिक फैशन उन्हीं की देन है। रोम के नाइयों की सैलून में

अमीरों को आराम देने के लिए गरम व ठण्डे पानी के स्नान-गृह, मालिश करने, मदिरा पान करने के प्रबन्ध रहते थे। अनेक नाई अपनी सैलूनों में ग्राहकों को सेवार्थ सुन्दर बालायें नौकर रखते थे। प्राचीन काल में बालों को सजाने और काटने वालों का बड़ा आदर किया जाता था। शनैः शनैः पुरुष और महिलाएँ अपने बाल नये-नये फैशनों में कटवाने लगे। कई पुरुष दाढ़ी मुड़वाने लगे। आज भी बहुत से ब्यूटी-सैलूनों में बालों को सुन्दर ढंग से सँवार कर बदसूरत स्त्री को भी अप्सरा बना दिया जाता है। बालों को स्वस्थ व सुन्दर बनाये रखने के लिए विभिन्न युक्तियाँ हजारों वर्षों से प्रयोग की जा रही हैं। कवि केशव ने असमय में पके बालों से दुखित होकर लिखा है—

केशव केसन असि करी जो अरि हू न कराहिं।
चन्द्रग बदन मृग लोचनी बाबा कहि-कहि जाहिं॥

(मेरे असमय ही सफेद हुए बालों ने मेरे साथ बड़ी दुश्मनी की है कि चंचल सुन्दर-सुन्दर किशोरियाँ मुझसे 'बाबा' कह कर जाती हैं।)

बालों को स्वच्छ रखना परम आवश्यक है। किसी शैम्पू आदि की अपेक्षा मुल्तानी मिट्टी और छाछ (मट्ठे) से बाल धोना अधिक स्वास्थ्यप्रद है। बालों में तेल जब भी लगायें सूखे बालों में ही लगायें और तेल लगाते समय अँगुल के पोरों से सिर की त्वचा की अच्छी तरह मालिश करें। भोजन में हरी शाक-भाजी का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करें। अधिक धूप या अधिक ठण्ड में बालों को अवश्य ढाँक कर रखें। बालों को पर्याप्त रक्त और आवश्यक रस पहुँचाने के लिए शीर्षासन, सर्वांगासन, ताड़ासन अदि अधिक लाभदायक हैं।

माथा (कपाल)

माथे पर प्राकृतिक चमक रहने से चेहरे का आकर्षण कई गुना बढ़कर व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता है। चेहरे को आकर्षक बनाने के लिए लोग विभिन्न प्रकार के लेवेन्डर, क्रीम, पाउडर आदि प्रयोग में लाते हैं। वे सब ऐसे हैं जैसे कहीं औपचारिकतावश आपकी खातिर की जा रही हो। खातिरदारी का आनन्द तब तक नहीं होता जब तक कि मेहमान और मेजबान दोनों के दिलों में प्रेम न हो। मेरे वरिष्ठ पितामह स्व. खुशी लाल जी कहा करते थे—

ऊपर से खातिर क्या करना, जब अन्दर मेल मिला ही नहीं।
बाहर के तेल से क्या होगा, जब अन्दर तेल रहा ही नहीं॥

तात्पर्य यह है कि चेहरे की प्राकृतिक चमक बनाये रखने के लिए शरीर का प्राकृतिक तेल बनाये रखना आवश्यक है। यह प्राकृतिक तेल वही ओज है जिसका उपयोग हम कुडलिनी योग में करते हैं। ओज का सामान्य निर्माण शरीर के अन्य रसों की तरह ही होता रहता है। रस उत्पन्न होने में पेट की शुद्धता और सक्रियता का अनन्य सम्बन्ध है। अतः जो व्यायाम पेट के विकारों को दूर कर उसे सक्रिय रखते हैं वे सभी माथे पर स्वाभाविक चमक लायेंगे।

माथे पर अधिक चमक उन व्यायामों से आयेगी जो अधिक ओज पैदा करें। इस सम्बन्ध में कपाल-भाँति प्राणायाम का विशेष महत्व है। कपाल-भाँति प्राणायाम का प्रारम्भ तृप्ति प्राणायाम से होता है। रात को सोते समय गीले कपड़े से माथे को धीरे-धीरे रगड़ने से अथवा कपड़े की गीली पट्टी रख कर सोने से भी माथा चमकने लगता और उस पर पड़े हुए तनाव और झुर्रियों के निशान भी समाप्त हो जाते हैं।

कपोल (गाल)

बहुत फूले हुए अथवा पिचके हुए गाल या झुर्रियों वाले गाल अस्वस्थता के द्योतक हैं और चेहरे को अनाकर्षक बनाते हैं। युवावस्था के मुहाँसे कभी-कभी जीवन भर के लिए गालों पर अनाकर्षक गड्ढों के रूप में अपनी छाप छोड़ जाते हैं। लम्बी बीमारी, पेट की खराबी और उम्र की वृद्धि अपनी छाप गालों पर झुर्रियों के रूप में छोड़ती हैं और गालों की स्वाभाविक लालिमा को नष्ट कर देती हैं। इसे सन्तुलित भोजन, आवश्यक उपचार और नियमित व्यायाम से दूर किया जा सकता है। रात को सोते समय नीबू मिले पानी से चेहरे को धोकर, कोई पतला कपड़ा गीला करके गालों पर रखें और उसे गालों की गर्मी से ही सूखने दें तो दो-तीन मास में ही गालों की झुर्रियाँ ठीक हो जातीं हैं और गाल आकर्षक, स्वस्थ, चिकने और चमकीले बने रहते हैं। इस सन्दर्भ में सर्वांगासन, नौकासन, भुजंगासन, पश्चिमोत्तानासन आदि व्यायाम उचित रहते हैं अब गालों की दूसरी समस्या जो पायरिया, वृद्धावस्था अथवा रक्त की कमी के कारण 'गाल पिचक जाने' की होती है उस पर विचार करते हैं। दाँतों की कमी या उसके रोग के बारे में तो किसी डैन्टिस्ट (Dentist) से ही सलाह लेनी होगी। वैसे गालों को समानुपातिक बनाने में यह पंजाबी व्यायाम लाभप्रद होगा।

परविन्दर (व्यायाम)

१. **जसवीर मुद्रा**—गाल के एक ओर इतनी हवा भरें कि गालों की चमड़ी में तनाव उत्पन्न होने लगे। फिर उस हवा को बिना मुँह खोले नाक से निकाल दें। अब दूसरे गाल में हवा भर कर फैलायें और उसी प्रकार निकाल दें।

2. **हरजीत मुद्रा**—अब दोनों गालों में एक साथ हवा भरें और मुँह चिढ़ाने की तरह अपना मुँह चलायें और कई बार ऐसा करें।

३. **जीत मुद्रा**—दोनों होठ दाँतों से दबा कर होठों के ऊपर और नीचे के खाली स्थान में हवा भर कर अपना मुँह हनुमान जी की तरह बना लें। ऐसा बार-बार हवा भरकर और निकाल कर करें परिविन्दर व्यायाम की तीनों मुद्राएँ तीन-तीन मिनट प्रतिदिन करें।

दाँत

दाँतों का स्वास्थ्य उनके एनामिल पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यह एनामिल मीठी, तीक्ष्ण और खट्टी वस्तुओं के अधिक प्रयोग से कमजोर हो जाता है। अतः ऐसी वस्तुएँ कम से कम खायें और इन्हें खाने के बाद, तुरन्त हल्के गरम पानी से दाँतों की सफाई कर दें। सुबह और रात को सोते समय भी दाँत अवश्य साफ करें। दाँत साफ करते

समय १-२ मिनट मसूड़ों की मालिश भी करें । अत्यन्त ठण्डी या गरम वस्तु न खायें बारीक पिसे नमक से दाँत साथ करना अधिक स्वास्थ्यप्रद है । दाँतों का हिलना, पायरिया, मसूढ़ों से खून आना तथा दाँतों के सामान्य स्वास्थ्य के लिए 'राज-मुद्रा' एक अच्छा व्यायाम है ।

राज-मुद्रा—आपने शायद ध्यान दिया हो कि पुराने लोग मल-मूत्र त्याग करते समय बोलते नहीं थे । आज भी बहुत से भारतीय उसका भाव समझे बिना इस नियम का पालन करते पाये जाते हैं । वास्तविकता यह है कि मल या मूत्र त्याग करते समय दाँतों की जड़ों में एक प्रकार की रासायनिक क्रिया होती है । यदि इन अवसरों पर दाँतों को जमाकर जोर से दबाये रखें तो दाँतों का क्षरण रुकता है और दाँत भिड़ाकर उन्हें दबाकर रखना ही 'राज-मुद्रा' है ।

आँख

आँखों को 'दिल की खिड़की' कहा जाता है अर्थात् जो भाव आपके हृदय में है उसे आपकी आँखों से पढ़ा जा सकता है, अथवा यूँ कहिये कि आपकी आँखों से आपके दिल में झाँका जा सकता है । किसी की आँखें मृग के समान चंचल होती हैं तो किसी की बुझी हुई और निराशापूर्ण । किसी की आँखें चमकीली होती हैं तो किसी की गम्भीर । व्यक्तित्व को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, दृश्य दर्शन के लिए, भावाभिव्यक्ति के लिए आँखें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । आँखों को तेज रोशनी, धूप, धूल, धुआँ, चोट आदि से तो सभी बचाते ही हैं; कम प्रकाश में बहुत पास अथवा बहुत दूर से पुस्तक पढ़ने से भी आँखों को बचायें । आँखों में नींद आने पर अथवा जलन सी अनुभव होने पर पुस्तक न पढ़ें । आँखों को स्वस्थ रखने के लिए विशेष व्यायाम इस प्रकार हैं—

शिप्रा-क्षालन—यह नेत्र प्रक्षालन है परन्तु थोड़ा सा अन्तर है । नेत्र-प्रक्षालन ताजे अथवा बासे पानी से किया जाता है और शिप्रा-क्षालन झूठे से । सुबह उठते ही एक लोटा पानी लें । उसमें से एक घूँट मुँह में भर लें और शेष पानी से दोनों आँखों में छींटे मारें । बाद में मुँह में भरे पानी को कुल्ला करके थूक दें । अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में एक द्वीप है ननकौरी, वहाँ के आदिवासी लोगों की आँखें स्वच्छ रखने का सूत्र मैंने बड़े अजीब ढंग का देखा । वे लोग सुबह उठते ही अपने थूक को अपनी आँखों में काजल की तरह लगाते हैं बाद में मैंने इस विधि को कुछ तान्त्रिक पुस्तकों में भी देखा । यह 'शिप्रा-क्षालन' नेत्र-प्रक्षालन तथा इस आदिवासी विधि का मिला-जुला रूप ही प्रतीत होता है । जो भी हो, सामान्य नेत्र-प्रक्षालन से अधिक प्रभावपूर्ण है ।

शकुनाक्षि व्यायाम—शकुन कहते हैं पक्षी को । इस व्यायाम में आँखें तोते पक्षी की तरह बिना गर्दन घुमाये इधर-उधर चलाई जाती हैं । नेत्र रोगों में तो यह व्यायाम लाभप्रद है ही, त्राटक करने वालों के लिये भी लाभप्रद है । इसके तीन सहायक अभ्यास हैं—

चन्द्र कला अभ्यास—किसी भी आसन में बैठकर अथवा खड़े होकर सामान्य श्वांस-प्रश्वास के साथ ही अभ्यास करें । आँखों के बिल्कुल सामने, आँखों की ऊँचाई पर

ही इच्छित दूरी पर कोई बिन्दु मान लें या बना लें। दूसरा बिन्दु दाहिने कान की सीध में बना लें। तीसरा बिन्दु बांयें कान की सीध में बना लें। अब आँखों की पुतलियाँ सामने के बिन्दु पर जमा दें। पुनः झटके से दाहिनी ओर (बिना गर्दन हिलाये) घुमा दें। फर झटके से पुतलियों को सामने के बिन्दु पर लायें। इस प्रकार एक मिनट तक करें। इसी प्रकार पुतली सामने के बिन्दु पर जमाकर झटके से बाई ओर के बिन्दु की ओर घुमायें। फिर सामने के बिन्दु पर पुतलियाँ ले जाएें। ऐसा कई मिनट करें। तत्पश्चात् पुतलियों को दाहिनी ओर से बाँई, ओर, बाँई ओर से दाहिनी ओर झटके से 1 मिनट तक घुमाते रहें।

पुष्पाभ्यास—इस अभ्यास में दाहिनी और बाँई ओर पुतलियाँ घुमाने के स्थान पर ऊपर नीचे घुमाई जाती हैं। पहले पुतलियाँ सामने स्थिर करें। फिर झटके से ऊपर की ओर देंखें एक मिनट तक ऊपर व सामने पुतलियाँ चलायें। फिर नीचे व सामने पुतलियाँ चलाने का 1 मिनट तक अभ्यास करें। तत्पश्चात् पुतलियों को झटके से ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर एक मिनट तक चलायें।

कुसुमाभ्यास—इस अभ्यास में पुतलियाँ नीचे के बिन्दु से बाँई ओर ऊपर की ओर तब दाहिनी ओर फिर नीचें की ओर गोल-गोल घूमती हैं। दूसरी बार पुतलियाँ नीचे के बिन्दु से दाहिनी ओर, फिर ऊपर, तब बाँई ओर, और फिर नीचे की ओर गोल-गोल घुमायें। यह एक चक्र कहलाता है। ऐसे बारह चक्र पूरे करें।

इस प्रकार शकुनाक्षि व्यायाम आँखों से सम्बन्ध रखने वाली समस्त रस ग्रन्थियों और नस नाड़ियों को स्वस्थ रखता है।

नाक

नाक का सम्बन्ध श्वास से होने के कारण प्राणायाम के साधक के लिए स्वच्छ और स्वस्थ नाक का होना अति आवश्यक है। जहाँ तक नाक की बनावट का प्रश्न है वह कैसी भी हो सकती है, परन्तु जहाँ उसके कार्य का प्रश्न है, वह उचित होना ही चाहिए। नाक पैरों में लगी सर्दी या गर्मी से अधिक प्रभावित होती है अतः नाक स्वस्थ रखने के लिए पैरों को तीव्र सर्दी या गर्मी से बचाना आवश्यक हो जाता है। आयुर्वेद में कहा गया है कि सरसों के तेल में नमक मिलाकर तलवों पर रगड़ने से नाक टपकना बन्द हो जाता है। इस उदाहरण से नाक और पैरों का सम्बन्ध प्रकट होता है। सामान्यतः सुदर्शन प्राणायाम नाक स्वस्थ रखने में सहायक होता है।

सुदर्शन प्राणायाम—यह प्राणायाम कपालभाति एवं तृत्प प्राणायाम का मिला-जुला रूप है। प्रातः काल, सूर्योदय से पूर्व (जिसे ऊषाकाल भी कहते हैं) १५ मिनट तक गहरी और तीव्र गति से श्वास लेना ही सुदर्शन प्राणायाम है। इसमें स्वर आदि का कोई बन्धन नहीं होता।

स्वर यंन्त्र

स्पष्ट उच्चारण, गम्भीर वाणी और स्नेहिल स्वर 'वीणा-वाणी' की प्रथम आवश्यकता है। इस सबके लिए दाँत, जीभ, तालू, ओष्ठ आदि स्वस्थ रहना आवश्यक हैं। मूँह के

लगभग सभी अंगों का सम्बन्ध मनुष्य की पाचन शक्ति से होता है। इसलिए पाचन शक्ति सुधारने वाले सभी व्यायाम मुँह के विभिन्न अंगों को स्वस्थ रखते हैं। स्वर यन्त्र सर्दी लगने अथवा तीखा या अधिक खट्टा भोजन कर लेने से कुपित हो जाते हैं। सामान्यतः गुनगुने जल में नमक मिलाकर गरारे करने से मुँह की दुर्गन्ध तथा गले की खराश आदि में लाभ मिलता है फिर भी अम्बा गर्जन तथा सरोज लहरी व्यायामों का अपना विशेष स्थान है।

अम्बा गर्जन—'द फोर एपीज' के अनुसार अम्बा देवी ने दुष्टों को मारते समय सिंह के समान गर्जना की थी। ऐसी ही गर्जना करने से गले के स्वर यन्त्र का मल निष्कासित होता है। इसके लिए किसी भी आसन में सुखपूर्वक बैठें। जीभ पूरी बाहर निकालें और गले से शेर की तरह ५-६ बार दहाड़ें।

सरोज लहरी—इस आसन में बैठकर स्वर यन्त्रों को कँप-कपाते हुए नाक से स्वर निकाले। इस प्रकार देर तक गुनगुनाते हुए ध्वनि-लहरी पैदा करें जैसे कि कमल के हिलने से पानी में हल्की-हल्की लहरें उठती हैं।

महर्षि 'यतीन्द्र' सौन्दर्य व्यायाम तालिका, क्रमांक ११

मोहन तालिका

(उचित योग-व्यायाम सारणी से पूर्व आवश्यक सौन्दर्यवर्धक व्यायाम किये जा सकते हैं।)

क्रमांक	प्रत्यंग	व्यायाम
१.	बाल (केश)	शीर्षासन सर्वांगासन ताड़ासन
२.	माथा (ललाट)	तृप्ति प्राणायाम कपालभाति प्राणायाम
३.	आँख (अक्षि)	शिप्रा प्राणायाम शकुनाक्षि व्यायाम चन्द्रकलाभ्यास पुष्पाभ्यास कुसुमाभ्यास
४.	नाक	सुदर्शन प्राणायाम

५.	गाल (कपोल)	परविन्दर व्यायाम जसवीर मुद्रा हरजीत मुद्रा जीत मुद्रा
६.	दाँत	राज मुद्रा
७.	स्वर यन्त्र	अम्बा गर्जन सरोज लहरी
८.	भुजाएँ	उर्वशी आसन
९.	नितम्ब	अलकाभ्यास

■■

प्राणायाम

शारीरिक तप के अन्तर्गत 'प्राणायाम' अन्तिम चरण है और अष्टांग योग के क्रम में यह चतुर्थ अंग है। प्राणायाम का अर्थ है प्राण का आयाम, अर्थात् प्राण वायु का विस्तारण। विस्तारण का सामान्य अर्थ यहाँ है कि जिस मात्रा में हम प्राण वायु सामान्यतः ग्रहण करते हैं उससे अधिक मात्रा में ग्रहण करने के लिए फुफ्फुस का क्षेत्र विस्तृत करना। हम जो श्वास लेते हैं। इसमें हमारे फुफ्फुस पूरी तरह नहीं फूलते। उनमें लगभग एक तिहाई स्थान ऐसा रह जाता है जिसमें और हवा भरी जा सकती है। धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा उस स्थान को फूलने योग्य बनाने का कार्य प्राणायाम द्वारा किया जाता है। फेफड़े इतनी पतली झिल्ली से बने होते हैं, और उनमें इतनी पतली-पतली धागे के रेशे जैसी मुलायम ढेर सारी नस-नाड़ियाँ होती हैं कि तनिक दबाव से ही फट सकती हैं या टूट सकती है; अतः फेफड़ों से सम्बन्धित कोई भी क्रिया बड़ी सावधानी से करने की आवश्यकता होती है। प्राणायाम की वैज्ञानिकता समझने के लिए हृदय और श्वसन तन्त्र की सामान्य कार्य विधि को समझना आवश्यक है।

प्राणायाम साधकों के जानने योग्य

२५ वर्ष की आयु के नारी पुरुष की सामान्य श्वास-क्षमता में अन्तर

क्रमांक	माप के अंग	नारी	पुरुष
१.	कुल फुफ्फुस क्षमता		
	लघु	२.७५ qts.	३.७५ qts.
	औसत	३.७० qts.	5.६७ qts.
	दीर्घ	५.७० qts.	७.९२ qts.
२.	विराम काल में श्वास प्रति मिनट	२०-२२	१४-१८
३.	प्राण वायु आकर्षण प्रति श्वास		
	विश्राम काल में	०.३० qts.	०.६८५ qts.
	हल्का कार्य करने में	०.८६ qts.	१.४८ qts.
	भारी कार्य करने में	०.७७५ qts.	१.७९ qts.
	गहरी से गहरी (सम्भव) श्वास लेने में	२.६४ qts.	४.३२ qts.

नारी-पुरुष के अंतरांगों में अन्तर

(जिनके कारण सामान्य शारीरिक आवश्यकताओं में अन्तर रहता है ।)

क्रमांक	अन्तरांग	नारी	पुरुष
१.	मस्तिष्क का भार	३७·०४ oz.	३८·८ oz.
	लधु	४४·८९ oz.	४९·३८ oz.
	औसत	५४·८५ oz.	६०·०० oz.
	दीर्घ	८ oz.	१० oz.
२.	हृदय का भार	०.७२९ gal.	१·२५ gals.
३.	कुल रक्त	१.९३ sq. yds.	२·२१ sq. yds.
४.	चर्म का धरातल	५४%	६०%
५.	जल (शारीरिक भार से)	३६%	४२%
६.	माँस पेशियाँ (")	२८%	१८%
७.	चर्बी-भेद (")	१८%	१८%
८.	हड्डी (")	२४ inches	२८ incches.
९.	मेरु दंड की औसत लम्बाई	४२,००,००० से	४६,००,००० से
१०.	लाल रक्त कोशिकायें (प्रति घन मिमी)	५४,००,००० तक	६२,००,००० तक

हृदय

हृदय एक पम्प है जो रुधिर को वाहिकाओं में प्रवाहित करता है। वह वक्ष के मध्य में संयोजी ऊतक के खोल में बन्द है और औसतन प्रति मिनट 70 बार धड़कता है। जो रुधिर वाहिकायें (नसें) हृदय तक रुधिर ले जाती हैं वे सामान्यतः शिरायें कहलाती हैं और जो रुधिर को हृदय के बाहर ले जाती हैं वह धमनियाँ कहलाती हैं। हृदय के ऊपर के दो कक्ष अलिन्द कहलाते हैं और नीचे के निलय। बायें निलय से महाधमनी निकलती है जो फेफड़ों को छोड़कर पूरे शरीर में रुधिर वितरित करती है। हृदय के नीचे की सभी शिरायें लघु महाशिरा में और हृदय के ऊपर की शिरायें उच्च महाशिरा में मिल जाती हैं। यह दोनों शिरायें हृदय के दाहिने अलिन्द में मिलती हैं। फुफ्फुस परिपथ फेफड़ों को खून देती है। इसमें दायें निलय की फुफ्फुस धमनी, फेफड़ों की कोशिकायें और फुफ्फुस शिरायें होती हैं जो बायें अलिन्द में रुधिर ले जाती हैं। इस प्रकार हृदय के दाहिने भाग में शरीर से कम ऑक्सीजन वाला खून आता है और बायें भाग में फेफड़े से ऑक्सीजन पूर्ण खन आता है। हृदय हाथ की मुट्ठी के बराबर एक पेशीय अंग है। अलिन्द और

निलय के बीच एक कपाट होता है। इस कपाटों से रक्त केवल अलिन्द से निलय की ओर ही जाता है। प्रत्येक निलय और उससे निकलने वाली धमनी के बीच में अर्ध चन्द्र कपाट होता है जो रक्त को केवल निलय से धमनी की ओर जाने देता है। हृदय की धड़कन एक पेशीय गुण है। हृदय के प्रत्येक कक्ष में धड़कन की ताल समान नही होती। यदि हृदय रुकने लगे तो मनुष्य में भी अलिन्द से अलग गति पर धड़क सकता है। हृदय की कार्य तन्त्री निम्न चित्र से समझने का प्रयत्न करें।

फुफ्फुस (फेफड़ा)

फुफ्फुस रक्त को अधिक आक्सीजन युक्त करके वापस हृदय में भेज देते हैं और शरीर के विभिन्न कोषों से लाये गये कार्बन युक्त रक्त से कार्बन निकाल कर कर्बन डाई ऑक्साइड के रूप में प्रश्वास द्वारा बाहर फेंकते हैं। इसकी वैज्ञानिकता समझने के लिए संक्षेप में श्वसन तन्त्र की क्रिया विधि देखिये—

वायु नासरंध्रों या मुख द्वारा अन्दर खींचने पर ग्रसनी में चली जाती है। ग्रसनी से मुख्य श्वास नली निकलती है जो स्वर यन्त्र से आरम्भ होती है और वक्षीय गुहा के पास समाप्त होती है। स्वर यन्त्र की दीवारों में उपास्थि की पट्टियाँ हैं तो स्वर तन्तुओं को आधार देती हैं, इसी प्रकार की उपास्थि श्वास नली में भी अधूरे छल्लों जैसी होती है। इन छल्लों का 3/4 भाग ही पूरा होता है जिससे श्वास नली को संकुचित किया जा सकता है। श्वास नली अंत में दो श्वसनियों (ब्रोन्कियों) में विभाजित हो जाती हैं जो एक-एक फुफ्फुस में चली जाती है। श्वसनियाँ और भी छोटी-छोटी पतली-पतली नलिकाओं में विभक्त हो जाती हैं। अति सूक्ष्म श्वसनिकाओं में दीवारें पतली होती हैं और उनमें उपास्थि नहीं है।

हमारे साँस लेते ही वक्ष का आयतन बढ़ने से वक्षीय गुहा तथा फेंफड़ों में दाब कम हो जाता है जिसके कारण साँस अन्दर जाती है। साँस छोड़ने पर वक्ष का आयतन घट जाता है। वक्षीय गुहा तथा फेफड़ों में दाब बढ़ जाता है और हवा फेफड़ों से बाहर धकेल दी जाती है। वक्षीय गुहा के पूरी तरह बन्द होने पर भी इसका आयतन घट बढ़ सकता है।

श्वास प्रश्वास में ऑक्सीजन (प्राण वायु)

हमारे वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसें हैं जिसमें नाइट्रोजन ७९%, ऑक्सीजन २०% और कार्बन डाइ-आक्साइड ०.०४% है, शेष पानी तथा गैसें हैं। उच्छ्वसित (छोड़ी हुई) साँस में नाइट्रोजन तथा अन्य गैसें तो उतनी ही रहती हैं परन्तु आक्सीजन १६% के लगभग रह जाती है और कार्बन डाइ-आक्साइड ४% हो जाती है। शेष वाष्प आदि होती हैं।

रुधिर और श्वास का सम्बन्ध—ऑक्सीजन को ग्रहण करने और कार्बन डाइ-आक्साइड को निकालने के लिए खून फेफड़ों और ऊतक कोशिकाओं के बीच बिचौलिये का कार्य करता है। फेफड़ों तक आने वाले रुधिर में वायु कोष्ठिकाओं से छोड़ी हुई हवा में, कम आक्सीजन होती है और कार्बन डाइ-आक्साइड अधिक होती है। फेफड़ों
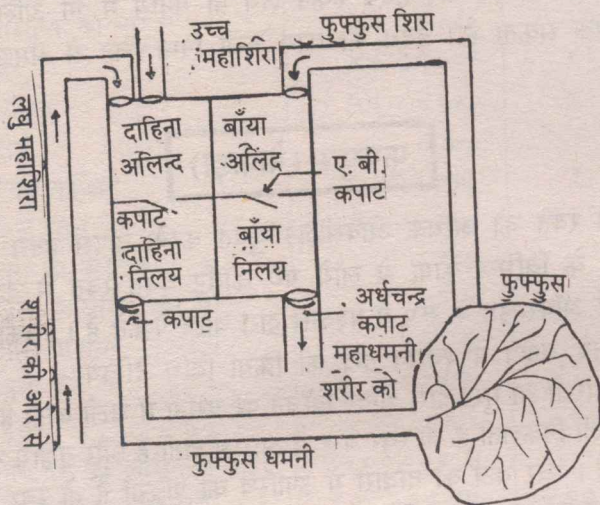
चित्र संख्या—३०

की कोशिकाएँ तथा वायु कोष्ठिकायें दोनों की दीवारें पतली होने के कारण ये गैसें भेद कर रुधिर के अन्दर बाहर आ जा सकती हैं। वायु कोष्ठिका की हवा में ऑक्सीजन अधिक होने के कारण फेफड़े की कोशिकाओं के रक्त में ऑक्सीनज मिल जाती है। रक्त में मिलते ही यह प्लाज्मा में विलीन हो जाती है और अधिकांश आक्सीजन लाल कोशिकाओं की दीवारों को भेद कर हीमोग्लोबिन के साथ संयुक्त होकर एक शिथित मेल बनाती है। जब ऑक्सीजन युक्त रक्त ऊतकों तक जाता है, क्योंकि उन्हें रासायनिक क्रिया के लिये ऑक्सीजन की सदैव आवश्यकता रहती है। ऊतक कोशिकाएँ लगातार कार्बन डाइ-आक्साइड उत्पन्न करती हैं जो कोशिकाओं से ऊतक तरल की ओर और तरल से रक्त को दे दी जाती है।

श्वास का नियन्त्रण

हृदय की धड़कन पर कोई नियन्त्रण नहीं है परन्तु श्वसन पर एक सीमा तक नियन्त्रण किया जा सकता है। अधिकतर श्वास तालबद्धता के साथ स्वचालित ढंग से चलती रहती है। विश्राम अवस्था में श्वास की गति 16 से 18 श्वास प्रति मिनट होती है। प्रश्वसन अधिकतर रासायनिक रूप से नियन्त्रित होता है और उच्छवसन (प्रश्वास) तन्त्रिकायिक रूप से। श्वास के नियन्त्रण के लिए ऑक्सीजन की अपेक्षा कार्बन डाइ-आक्साइड अधिक आवश्यक है। यदि ऑक्सीजन कम हो तो श्वास की गति बढ़

जाती है। यह रुधिर वाहिकाओं में पाये जाने वाले ग्रहीता की प्रतिवर्ती क्रिया द्वारा होता है जो केन्द्रों की क्रिया को तेज कर देते हैं। छींक और खाँसी प्रतिवर्ती क्रियाएँ हैं जो नाक या श्वास नली में उत्तेजना या क्षोभ के कारण होती हैं। क्षोभकों को निकाल फेंकना ही इनका कार्य है। जमुहाई, उसाँस और हिचकी ये साँस के प्रतिवर्ष (रिफ्लैक्स एक्शन) हैं।

जमुहाई रुधिर परिवहन को उत्तेजित करती है इसीलिये यह शरीर में तनाव लाती है। बोलना और गाना स्वर तन्तुओं के स्पंदन के कारण होता है और ये तन्तु उच्छ्वसित वायु से सक्रिय हो जाते हैं। ललाट और ऊर्ध्वहनु अस्थि में हवा से भरे कुछ विवर हैं (इनका कार्य अज्ञात है) ये पतले मार्गों द्वारा नाक की नलियों से जुड़े रहते हैं। कभी-कभी इन मार्गों से कीटाणु विवरों में आकर प्रदाह या संदूषण पैदा कर देते हैं। छाती और पेट के अन्दर दाब परिवर्तन के कारण श्वास क्रिया शिरा के रक्त और लसिका (Lymphatic) प्रवाह में सहायक होती है। साँस लेते समय छाती की गुहा में दाब कम हो जाता है परन्तु उदर की गुहा में बढ़ जाता है। पतली दीवार वाली शिरायें और लसिका वाहिकायें दाब परिवर्तन के कारण इसका उल्टा होता है। जब वाहिकायें फैलती हैं तो इनमें और अधिक लसिका प्रवेश करते हैं, और जव वे दबाई जाती हैं तो रक्त ऊपर धकेल दिया जाता है। पम्प करने की इस प्रक्रिया द्वारा रक्त को हृदय तक पहुँचने में सहायता मिलती है।

प्राणायाम और स्वर योग

हृदय और फेफड़े की कार्य विधि द्वारा इनके सम्बन्ध के बारे में जानकारी मिलती है कि फेफड़े यदि तेजी से कार्य करें तो हृदय तन्त्र का कार्य तेज हो जाता है। यदि हृदय तेजी से धड़कने लगे तो श्वास-प्रश्वास में अन्तर आ जाता है। यदि श्वास-प्रश्वास को तालबद्ध बना दिया जाय तो हृदय का रक्त परिभ्रमण वाला कार्य भी तालबद्ध हो जाता है। यदि हम चाहते हैं कि रक्त का परिभ्रमण शरीर में तेजी से हो तो श्वास-प्रश्वास को तेज कर दिया जाता है। इस नियम को आधार मानकर ही विभिन्न प्रकार के प्रणायामों की विधियाँ ऋषियों ने खोजी हैं। जिस प्रकार से सामान्य श्वास-प्रक्रिया में फेफड़ों का बहुत-सा भाग पिचका हुआ रह जाता है उसी प्रकार सामान रक्त परिभ्रमण के कार्य में शरीर में बहुत से ऐसे 'सैल' रह जाते हैं जहाँ रक्त नहीं पहुँच पाता। यदि रक्त का परिभ्रमण कार्य तेज कर दिया जाय तो ऐसे 'सैल' सक्रिय हो उठते हैं और शरीर को अतिरिक्त ऊर्जा प्राप्त होने में सहायता मिलती है। भस्त्रिका एवं कपाल भाँति प्राणायाम कुछ ऐसी ही क्रिया करते हैं।

फेफड़ों की तरह शरीर में बहुत सी रक्त वाहिनी नलियाँ पूरी तरह नहीं खुलती हैं, पिचकी सी रहती हैं, यदि वे पूरी फूल जायँ तो अपेक्षाकृत अधिक रक्त 'सैलों' तक पहुँचाया जा सकता है। इन फेफड़ों और नलियों को अपनी पूर्ण अवस्था तक खोलने के लिये लयबद्ध प्राणायाम किया जाता है। जिसका प्रारम्भ 'तृप्ति प्राणायाम' से होता है।

तेजी से होने वाले प्राणायाम प्रारम्भ में ही करने से ऐसी नलियों को फाड़ देंगे। लयबद्धता का अपना अलग महत्व है।

योग विशेषज्ञों की मान्यता है कि जो श्वास हम भीतर ग्रहण करते हैं, उसमें ऑक्सीजन आदि के साथ जीवनदायिनी (लाइफ एनर्जी) कास्मिक पावर भी होती है जिसे हम प्राण तत्व कहते हैं। यूँ तो आक्सीजन को प्राण वायु नाम दिया गया है परन्तु योग में प्राण का अर्थ 'कास्मिक एनर्जी' माना जाता है। प्राण-शक्ति हमारे शरीर के कोषों को यथा स्थान बाँधे रहती है अन्यथा वे बिखरने लगती है क्योंकि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति शरीर के कोषों को भी अपनी ओर खींचती है। ज्यों-ज्यों शरीर में प्राण-शक्ति की कमी होती जाती है पृथ्वी की आकर्षण शक्ति उन्हें ढीला करती जाती है।

"प्राण-शक्ति की कमी होने पर ही व्यक्ति बूढ़ा होता है।" इस मान्यता को आधुनिक ज्ञान के आधार पर, वैज्ञानिक न होते हुए भी नकारने का कोई कारण नहीं है। बहुत सी बातें आज से कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिक मान्यता की सीमा में नहीं थीं, जो आगे चलकर स्पष्ट हुईं। सेब के फल तो न्यूटन से पहले भी पेड से गिरा करते थे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण ही। परन्तु इस बात को वैज्ञानिक मान्यता 'न्यूटन' ने दी। सृष्टि में जो कुछ युगों से होता आ रहा है उसके सन्दर्भ में हमारा आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान अभी बच्चा है। तात्पर्य यह है कि प्राणायाम की बात करते समय वायु और उसमें अंतर्निहित प्राण-शक्ति (ऑक्सीजन नहीं) की इस भिन्नता को ध्यान में रखना आवश्यक है। **प्राणायाम शरीर में व्याप्त प्राण-शक्ति को उत्प्रेरित, संचारित, नियन्त्रित, नियमित और अनुपातिक बनाता है।**

स्वर योगियों की एक और मान्यता है कि हमारा शरीर एक ब्रह्माण्ड के समान है। जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वह सभी कुछ पिण्ड (शरीर) में है। ब्रह्माण्ड के सूर्य चन्द्र भी पिण्ड में अवस्थित हैं। दाहिने स्वर से सम्बन्धित नाड़ी 'सूर्य शक्ति' से ओत-प्रोत है और बायें स्वर से सम्बन्धित नाड़ी चन्द्रमा की शक्ति युक्त है। यदि हम पिण्ड के ऐसे ग्रहों को अपने अनुकूल बना सकें तो ब्रह्माण्ड की प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल बन जाती हैं। हमारे शरीर में एक नाड़ी साढ़े तीन कुण्डली मार कर नाभि के नीचे बैठी है जिसमें से दस नाड़ियाँ निकलती हैं। इन दस नाड़ियों में से तीन नाड़ियाँ महत्वपूर्ण हैं—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इड़ा नाड़ी नाक के बाँये स्वर (नथुने) में खुलती हैं और पिंगला दाहिने स्वर में सुषुम्ना दोनों के बीच में रहती हैं। उष्णता उत्पन्न करने के लिये सूर्य स्वर (पिंगला) से श्वास लेना उपयुक्त रहता है और शीतलता उत्पन्न करने के लिये चन्द्र स्वर से श्वास ली जाती है। इसलिये योग-मनीषी, पूजा, उपासना, दान, यज्ञ, योग, मन्त्र, व्यापार, यात्रा, दीक्षा, विद्यारंभ, विवाह, मकान, मन्दिर निर्माण आदि के कार्य चन्द्र (इड़ा-बाँये) स्वर में करने की सलाह देते हैं क्योंकि इन कार्यों में विवेक, बुद्धि और गम्भीरता की आवश्यकता होती है।

व्यायाम, तोड़-फोड़, स्त्री-भोग, शिकार आदि उत्तेजक कार्यों को सूर्य (पिंगला-दाहिना) स्वर में करने की सलाह देते हैं। 'शिव स्वरोदय' में कहा गया है कि सम्पूर्ण शास्त्र, पुराण, स्मृति, वेदांग आदि सभी, स्वर ज्ञान के आगे तुच्छ हैं। स्वर ज्ञान नास्तिकों के चमत्कार दिखाता है और आस्तिकों का विश्वास दृढ़ करता है, क्योंकि स्वर-योगी परोक्ष-ज्ञान को जानने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं और प्रकृति के गुप्त रहस्यों को समझने लगते हैं। स्वर योग के आदि आविष्कारकर्त्ता भगवान शिव को माना जाता है। मेरे अपने ज्ञान के आधार पर मैं शंकर जी को ही 'आत्मयज्ञ' अथवा 'ब्रह्म-योग' का आदि आविष्कारक एवं प्रचारक मानता हूँ। आयुर्वेद (जिसके प्रणेता भगवान धन्वन्तरि माने जाते है) प्राणायाम को स्वास्थ्य लाभ हेतु मान्यता देता है और 'वात, पित्त, कफ,' इन तीन दोषों को सम्पूर्ण रोगों का मूल मानता है। यदि यह तीनों शरीर में अपनी आवश्यक आनुपातिक स्थिति में हों तो शरीर स्वस्थ रहेगा। इसमें 'वात' को 'वायु' कहते हैं जो योग में 'प्राण' कही गई है। इस प्रकार वायु पाँच प्रकार की हैं—

प्राण

जो कंठ से हृदय तक व्याप्त है, और श्वास-प्रश्वास (ऑक्सीजनादि ग्रहण करने) में सहायक होती है।

अपान

जो विसर्जन संस्थान के क्षेत्र में रहती है और मल-मूत्र के निष्कासन के लिये बड़ी आँत को बल देती है। योगी इस क्षेत्र को मूलाधार भी कहते हैं।

समान

जो हृदय से नाभि तक के क्षेत्र में रहती है। यह प्राण-शक्ति तथा पाचन संस्थान को नियन्त्रित करती है तथा विभिन्न रस ग्रन्थियों को उत्प्रेरित कर रस निर्माण में सहायता देती है।

उदान

जो कंठ से मस्तिष्क तक के क्षेत्र में व्याप्त है। यह प्राण-शक्ति कंठ के ऊपर के अंगों आँखों, कान, नाक, मस्तिष्क आदि का नियन्त्रण करती है।

व्यान

जो शरीर की अन्य शक्तियों और शरीर की वायु में सहयोग स्थापित कर सारे शरीर की गतिविधियों का नियमन और नियन्त्रण करती है। इसका प्रधान क्षेत्र नाभि से विसर्जन संस्थान तक है। योगी इसे स्वाधिष्ठान का क्षेत्र मानते हैं।

महाराज मनु का कहना है कि इन पंच प्राणों के आयाम (प्राणायाम) द्वारा इन्द्रियों के मल उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे अग्नि से धोंकने पर धातुओं के मल नष्ट होते हैं—

दह्यन्ते ध्यायमानानाम् धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निज्यहात्॥

अभी जो हमने पंच प्राणों की बात की है इसमें व्यान वायु ही सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करने वाली वायु है जो नाभि क्षेत्र है। यहाँ 'स्व का अधिष्ठान' होने के कारण

इसके क्षेत्र को 'स्वाधिष्ठान' कहा गया है। नाभि जीवन का प्रधान केन्द्र है। बच्चा जब पैदा होता है तो नाभि द्वारा ही वह अपनी माँ से जुड़ा रहता है या यूँ कहिये कि बच्चे के जीवन का प्रारम्भ उसकी नाभि से ही होता है इसलिये शरीर में नाभि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्राणायाम के अभ्यास द्वारा हम अपने इस नाभि केन्द्र को विकसित करते हैं। गहरी साँस वाले प्राणायाम नाभि केन्द्र पर चोट करते हैं।

चित्त दशा और प्राणायाम

"प्राणायाम का चित्त दशा पर अद्भुत प्रभाव होता है" इस शक्ति को समझने के लिये हमें इसे पलट कर पढ़ना पड़ेगा। **"चित्त दशा का प्राणायाम पर अद्भुत प्रभाव होता है।"** देखिये कैसे—जब आप क्रोधित होते हैं तो आपकी श्वास-प्रश्वास की गति और होती है, जब आप शांत होते हैं तो साँस की गति और होती है। जब काम-वासना युक्त होते हैं तो श्वास गति अलग होती है, जब बीमार होते हैं तो श्वास गति अलग होती है। इसका तात्पर्य यह है कि साँस का स्पन्दन आपकी चित्त दशा के अनुसार परिवर्तित होता जाता है। प्रकृति के विलोम नियम से चित्त दशा को बदला जा सकता है। जब हम मधुर भावों से परे, प्रेममय, आनन्दपूर्ण होते हैं तो श्वास के स्पंदन संगीत पूर्ण, लयबद्ध होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि **यदि हम अपनी श्वास को संगीत जैसा लयबद्ध कर सकें तो हमारी चित्त दशा आनन्द पूर्ण, प्रेममय, मधुर भाव युक्त हो सकती है।** इस प्रकार की साँस मन के विचारों को भी प्रभावित करती है, जब तक यह लयबद्ध और सम रहेगी, मन के विचार एक दम बन्द रहते हैं। ऐसी सम साँस को 'सुषुम्ना'की साँस कहा जाता है। अर्थात् जब सुषुम्ना में साँस चलती है तो मन निर्विचार हो जाता है। मन के निर्विचार होने पर समाधि प्रारम्भ होती है। **शरीर के जीवन केन्द्रों को विकसित करने के लिये लयबद्ध** (Rhythmic breathing) **श्वास, गहरी** (Hitting breath) **श्वास आवश्यक है।** शरीर में सात जीवन केन्द्र माने गये हैं। योग की भाषा में इन्हें चक्र कहते हैं। यथा—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र। इन चक्रों का विस्तृत विवरण आगे के अध्यायों में आप पायेंगे।

हालाँकि योग भारत की परम्परागत निधि है परन्तु विदेशियों ने इससे बहुत लाभ उठाया है। योगासन और प्राणायाम को वहाँ के फिजियोथेरेपिस्ट डाक्टरों ने रोगोपचार के लिये प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। विभिन्न प्रकार के प्राणायामों द्वारा दमा तथा फेफड़ों के रोगों को विदेशों में दूर करते हैं। गर्भस्नायुविकार का प्रसव कष्ट रहित बनाने में प्राणायाम की सहायता लेते हैं। मन: चिकित्सक अपने रोगियों को योग की शिथिलीकरण विधियों द्वारा लाभ पहुँचाते हैं। यह एक अच्छी बात है कि भारत में योग के प्रति पुन: एक चेतना जाग्रत हुई है—देर आयद, दुरुस्त आयद।

हानिप्रद श्वास क्रिया

स्वाभाविक और प्राकृतिक श्वास-प्रश्वास क्रिया ही योग सम्मत श्वास-प्रश्वास विधि है। अधिकांश लोग गलत ढंग से श्वास लेने के कारण ही अस्वस्थ रहते हैं।

आपने कई बच्चों को मुँह से श्वास लेते हुए देखा होगा। यह एक बड़ी हानिकारक आदत है। यह श्वास शरीर में अपने साथ धूल, धुआँ और रोगों के कीटाणु भी ले जाती है। मुँह से साँस लेने वाले जल्दी-जल्दी गले और नाक के रोगों से पीड़ित होते रहते हैं। प्रकृति ने नाक को श्वास लेने के हिसाब से ऐसा बनाया है कि अन्दर आने वाली श्वास नाक में उगे बालों से छनकर अन्दर आये और नाक की श्लेष्मिक त्वचा साँस को इतना गर्म कर दे कि वह श्वास नली व फेफड़ों को कोई हानि न पहुँचा सके। मुँह से श्वास लेने पर यह दोनों क्रियाएँ पूरी नहीं हो पातीं और दूषित श्वास फेफड़ों तक पहुँच जाती है। यह तो हुई फेफड़ों की बात, अब व्यक्तित्व की बात लीजिए। कहना न होगा कि किसी व्यक्ति की बुद्धि कमजोर रह जाती है। वह बेवकूफ सा नजर आता है। ऐसे व्यक्तियों के चेहरे की बनावट में भी अन्तर आ जाता है। नाक अविकसित रह जाती है, जबड़ा आगे को बढ़ जाता है, चेहरा लम्बा, मुँह छोटा, दाँत एक के ऊपर एक चढ़ा; तात्पर्य यह है कि मुँह से साँस लेने वाले व्यक्ति का चेहरा दूर से पहचाना जा सकता है।

नाक से श्वास लेने में भी एक दोष रह जाता है, उस पर हम सभी को ध्यान देना चाहिए। व्यक्ति की सामान्य श्वास ऐसी होती है जो केवल फेफड़ों के ऊपरी भाग में पहुँचती है। दाहिने फेफड़े में तीन भाग होते हैं और बायें फेफड़ें में दो। साँस लेने में केवल वक्ष ही फैले तो समझो श्वास उथला है। पूर फेफड़े को ऐसी वायु नहीं भर पाती, इसी प्रकार, जब साँस बाहर छोड़ते हैं, तब पूरी गन्दी वायु फेफड़े से बाहर नहीं आ पाती और अधिकांश कार्बन फेफड़ों में जमा रह जाता है। फेफड़ों में बचा यह कार्बन हमें मारता तो नहीं परन्तु हमें थकान और आलस्य युक्त बनाये रहता है। यहाँ तक कि चेहरे और शरीर की कांति में भी अन्तर लाता है।

'कुम्भक' की आवश्यकता

यदि हम अपेक्षाकृत गहरे श्वास लें, तब सम्पूर्ण रूप से प्राण-वायु न अन्दर आ पाती है और न कार्बन युक्त वायु पूरी तरह बाहर निकल पाती है। इसके लिये प्राणायाम विधि बड़ी लाभप्रद होती है क्योंकि 'कुम्भक' इस कार्य के सम्पादन में अच्छा सहायक होता है। पूरी श्वास बाहर फेंककर साँस को रोक रखने से फेफड़ों में संचित कार्बन को बाहर आने में वर्षों से संकुचित भाग भी फूलने के लिए बाध्य कर दिया जाता है। फेफड़ों में वर्षों से जमे कार्बन को निकाल फेंकने के लिए तीव्र गति के श्वास व्यायामों का प्रयोग किया जाता है। ऐसे प्राणायामों में श्वास की आँधी उठाई जाती है। आप नित्य प्रति देखते हैं कि जहाँ पर सामान्य वायु प्रवाहित होती रहती है वहाँ का वातावरण पूर्णरूपेण शुद्ध नहीं रह पाता क्योंकि गली-कूचों में कुछ न कूड़ा-कर्कट आदि तथा दूषित वायु रहती ही है। फलत: बीमारियाँ फैलती हैं। लेकिन जब वहाँ आँधी आ जाती है तो गली-कूचों की गन्दी वायु-धूल और कूड़ा-कर्कट भी साथ में उड़ा ले जाती है। फलत: पूरा वातावरण शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार आँधी के समान तीव्र गति से किया गया प्राणायाम फेफड़े शुद्ध कर अपेक्षाकृत अधिक रक्त शुद्ध करता है।

कुम्भक का तीसरा लाभ समझने के लिए हमें शरीर के नाड़ी तन्त्र को संक्षेप में जानना होगा। सम्पूर्ण नाड़ी तन्त्र दो विभागों में विभक्त है—मस्तिष्क, मेरुदण्ड विभाग और सहानुभावी विभाग।

मस्तिष्क-मेरुदण्ड विभाग—यह मस्तिष्क से रीढ़ की हड्डी तक फैला हुआ है। इसकी बहुत-सी शाखाएँ विभिन्न संधि-स्थलों से निकलकर सारे शरीर में जाल की तरह फैली हुई हैं। इस विभाग का कार्य शरीर के बाहर के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना है। जैसे—देखना, सुनना, स्पर्श करना, चबाना, सूँघना। मस्तिष्क विभाग के द्वारा जीव बाह्य जगत से सम्बन्ध बनाये रखता है। मस्तिष्क के प्रमुख तीन भाग हैं—(१) प्रमुख मस्तिष्क (Cerebrum) जो खेपड़ी में ऊपर मध्य और पिछले भाग तक फैला हुआ है। (२) छोटा मस्तिष्क (Cerebellum) जो कि खोपड़ी के नीचे वाले पिछले भाग में रहता है। (३) मेडुला ऑबलांगाटा (Medula Oblangata) जो कि मेरुदण्ड का प्रारम्भिक भाग है और छोटे मस्तिष्क के सामने से प्रारम्भ होता है। प्रमुख मस्तिष्क बुद्धि सम्बन्धी कार्य करता है। छोटा मस्तिष्क इच्छानुवर्तित माँसपेशियों में गति संचार करता है। मेडुला ऑबलांगाटा से ज्ञान तन्तु निकल कर शाखाओं-प्रशाखाओं में विभक्त होकर शरीर के प्रत्येक भाग में फैल जाते हैं। मेरुदण्ड (जो कि रेलगाड़ी की तरह कई हड्डियों का जोड़ है) में से थोड़ी-थोड़ी दूर पर ज्ञान नाड़ियों की शाखायें फूटती हैं जो अपनी प्रशाखायें ज्ञानेन्द्रियों, छाती, पेट और श्वास-अवयवों आदि में फैला देती हैं।

सहानुभावी विभाग—जिस प्रकार मस्तिष्क मेरुदण्ड विभाग की शाखाएँ सारे शरीर में फैली हुई हैं, उसी प्रकार सहानुभावी विभाग की शाखाएँ भी सारे शरीर में फैली हुई हैं। यह विभाग शरीर के अन्दर की समस्त क्रियाओं से सम्बन्ध रखता है जैसे—शरीर का विकसित होना, श्वसन क्रिया, पाचन, मल, विसर्जन, रुधिर संचरण, पाचक-रसों का निर्माण, पसीना आदि का उत्सर्जन।

इस विभाग में नाड़ी गुच्छक (Ganglia) की दो शाखाएँ मेरुदण्ड के (दाहिने और बाँयें) दोनों ओर हैं। इन्हें योग की भाषा में 'पिंगला' और 'इड़ा' कहते हैं। सिर, गले, छाती, पेट आदि में अन्य नाड़ी गुच्छक भी हैं। ये सभी गुच्छक एक दूसरे से तन्तुओं द्वारा जुड़े रहते हैं। साथ ही इनका सम्बन्ध 'मस्तिष्क-मेरुदण्ड विभाग' के ज्ञान-तन्तुओं और शक्ति-तन्तुओं द्वारा बना रहता है। इन्हीं गुच्छकों से निकल कर अग्रलिखित तन्तु शरीर के अवयवों और रुधिरवाही नालियों आदि तक में जाल की भाँति फैले रहते हैं। कई स्थानों पर ये तन्तु एकत्रित होकर गुच्छा सा बनाते हैं जो नाड़ी-ग्रन्थि (Plexuses) कहलाते हैं। इन्हीं का योग में 'चक्र' कहा गया है।

नाड़ियाँ

मेरुदण्ड के अन्तिम सिरे पर जहाँ पुच्छास्थि है, योग शास्त्रानुसार वही मूलाधार चक्र का स्थान है। कुण्डलिनी-योग का प्रारम्भ यहीं से होता है। इस स्थल से २४ प्रधान नाड़ियाँ निकली हैं। दस नाड़ियाँ ऊपर की ओर, १० नाड़ियाँ नीचे की ओर, और दो-दो

नाड़ियाँ दाहिने और बायें तिरछी होकर गई हैं। 'प्रश्नोपनिषद' १०१ नाड़ियाँ मानता है और कहता है क इनकी शाखा नाड़ियाँ ७२ हजार हो जाती हैं जिनमें 'ब्यान' नामक प्राण विचरण करता है। इनकी आगे चलकर और भी प्रशाखायें प्रस्फुटित होती हैं और इस प्रकार सम्पूर्ण नाड़ियाँ, शाखा तथा प्रशाखाएँ मिलाकर ७२, ७२, १०, २०१ नाड़ियाँ होती हैं। 'सुश्रुत संहिता' २४ नाड़ियों को ही प्रधान मानती है। इन २४ नाड़ियों में से तीन इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना सर्व प्रमुख है। सुषुम्मना मेरुदण्ड के अन्दर है और इड़ा, पिंगला मेरुदण्ड के बाँई ओर, दाहिनी ओर। श्वासोच्छवास क्रिया में इन तीनों नाड़ियों का महत्वपूर्ण स्थान है। शरीर की अन्य नाड़ियाँ सुषुम्ना (जिसे 'सूक्ष्मणा' भी कहा जाता है) द्वारा संचालित और सम्बन्धित होती हैं।

ऊपर की ओर जाने वाली १० नाड़ियाँ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, श्वास-प्रश्वास, हँसना-रोना, भूख-प्यास, जमुहाई आना, कहना, सुनना, समझना आदि क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए शरीर की चेतना और गति को सक्रिय रखती हैं। नीचे की ओर जाने वाली दस नाड़ियाँ—अधोवायु तथा मल मूत्र विसर्जन, वीर्य, रज का समयानुसार उत्सर्जन, पित्ताशय की सहायता से अन्न-जल का पाचन, निष्कासन, और शरीर निर्माण हेतु आवश्यक तत्वों से सन्तुलित निर्माण करती है। जो चार नाड़ियाँ दाहिनी और बाँई ओर तिरछी जाती हैं इनमें धमनी और शिरायें हैं जिनसे लाखों और करोड़ों की संख्या में शाखा-प्रशाखाएँ फूटती हैं और पूरे शरीर में अपना जाल फैलाती हैं। इनमें रक्त प्रवाह बड़ा तीव्र और व्यवस्थित रहता है। ये नलिकायें सूक्ष्म होकर एक-एक रोम कूप से सम्बद्ध हैं। ऐसी ही सूक्ष्म नलिकाओं से स्वेद विसर्जन होता है तथा स्नान, उबटन, तेल मालिश, चन्दन आदि का लेपन तथा बाह्य रोगोपचारों का शरीर को लाभ मिलता है। यही नलिकायें रक्त में हृदय द्वारा पैदा किये गये कम्पनों को शरीर के रोम-रोम तक पहुँचाती हैं और उन्हें कम्पायमान करती हैं।

रक्त के कम्पन हृदय की चाल पर निर्भर करते हैं और हृदय की चाल श्वास-प्रश्वास की स्थिति पर निर्भर होती है। तात्पर्य यह है कि लयबद्ध प्राणायाम होने पर शरीर का रोम-रोम लयबद्ध किया जा सकता है। ऐसी स्थिति का उपयोग अजपा-जाप वाले करते हैं। जिसमें कि जो कंपन अथवा तरंगें शब्दों और मन्त्रों के माध्यम से वातावरण में पैदा की जाती हैं ठीक ऐसी ही तरंगें शरीर के रोम-रोम को लयबद्ध रूप में कम्पायमान करके वातावरण में पैदा कर दी जाती हैं। यही बिना जाप किया हुआ जाप है। अजपा-जाप की विधि का प्रयोग मेरे पितामह के एक भाई स्व. झांझन लाल् जी किया करते थे। अजाप-जाप करते-करते ध्यान मुद्रा में ही उनका देहावसना हुआ था।

रसवाही स्रोत

शरीर के अन्दर जितने भी अभिवहनशील छिद्र हैं वे स्रोत कहलाते हैं। इनमें शिरायें और धमनियाँ नहीं गिनी जातीं। प्राण को ग्रहण कर शरीर को सुव्यवस्थित रखने

वाले स्रोत २२ प्रकार के हैं जैसे—प्राणवाही, अन्नवाही, उदकवाही, मांसवाही, मेदवाही, मूत्रवाही, पुरीषवाही, शुक्रवाही, आर्तववाही आदि-आदि।

अजपा-जाप की बात तो दूर है सामान्य जप भी पूरक और रेचक् की अपेक्षा कुम्भक में करना अधिक लाभप्रद रहता है क्योंकि उस स्थिति में मंत्र की सही आवृत्ति (Frequency) तरंगित होती है अन्यथा श्वास तरंगें भी उसमें सम्मिलित हो जाती हैं। जब तक कुम्भक नहीं आता तब तक तालबद्ध श्वास से काम चलाया जाता है। यदि आप अपने चारों ओर ध्यान दें, तो पायेंगे कि सूर्य के चारों ओर ग्रहों का घूमना, ज्वार-भाटा आना, ऋतुएँ बदलना, शरीर का जीवन-मरण आदि सभी कुछ तालबद्ध है, एक विशेष नियम के अन्तर्गत है, और एक विशेष ताल में पुनरावृत्त होता रहता है। ताल का महत्व 'सूक्ष्म' तो है ही, 'स्थूल' भी है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने खोज की है कि एक विशेष ताल में संगीत बजाने पर गायें अधिक दूध देती हैं। ऐसे ही एक प्रकार के संगीत द्वारा बहेलिये मृगों को पकड़ते हैं। तालयुक्त संगीत का प्रभाव खेत की फसल पर भी देखा गया है। मन्त्रों के तालबद्ध उच्चारणों के प्रभाव तो जगत् प्रसिद्ध हैं ही। तालबद्ध मार्चिंग करते हुए यदि कोई पल्टन (प्लाटून) किसी पुल को पार करे तो पुल टूट सकता है। इसीलिये पुल पार करते समय सिपाही कदम से कदम मिला कर मार्चिंग नहीं करते हैं। प्रकृति के इस तालबद्धता के नियम का लाभ उठाने के लिये हमें स्वयं तालबद्ध होना पड़ता है।

योगी की अन्त: प्रकृति का बाह्य प्रकृति से सम्बन्ध करने के लिये उसका तालबद्ध होना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि हमारा शरीर तरंगें ही ग्रहण करता है और तरंगें ही प्रसारित करता है। तालयुक्त श्वास इसके लिये प्रथम सीढ़ी है। योगी तालयुक्त श्वास द्वारा अधिक प्राण खींचने और उन्हें अधिकृत करने के लिये प्रकृति के तरंग युक्त प्रवाह को आसानी से समायोजित कर लेता है। उससे उसे एक ऐसी शक्ति मिलती है जो बहुत से समायोजित कर लेता है। उससे उसे एक ऐसी शक्ति मिलती है जो बहुत से मानसिक प्रयोगों (जैसे आकर्षण, वशीकरण, सम्मोहन, रोगोपचार, मेस्मरिज्म) में साधन के रूप में उपयोग में लाई जा सकती है, जो कि आजकल, पाश्चात्य देशों में अत्यन्त आश्चर्य और रोचकता उत्पन्न कर रही है।

हठ योग

हठ योग के बारे में लोगों की धारणा है कि जो योग 'हठ' पूर्वक किया जाय वह हठ योग है; और इस सन्दर्भ में लोग आसन और नेति धोति कठिन योग क्रियाओं को हठ योग समझते हैं।

वे नहीं जानते कि 'हठ योग' शब्द हिन्दी का नहीं है, अपितु बीज वर्ण 'ह' और 'ठ' को मिलाकर बनाया हुआ शब्द है। 'ह' का अर्थ है 'सूर्य' और 'ठ' का अर्थ है 'चन्द्र'। पीछे हम सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर की बात कर आये हैं, उसी प्रसंग में 'ह' से तात्पर्य पिंगला नाड़ी से है और 'ठ' से तात्पर्य इड़ा नाड़ी से। इन दोनों के योग से जो स्वर चले

वह सुषुम्ना है । प्राणायाम में हम लोग अपने स्वर को सुषुम्ना में चलाने का अभ्यास करते हैं । इस प्रकार प्राणायाम ही 'ह' और 'ठ' का योग अर्थात् 'हठ' योग है, जो कि सम्पूर्ण शरीर में पर्याप्त शुद्ध रक्त प्रवाहित कर नाड़ी चक्रों को चैतन्य बनाता है और व्यक्ति की विभिन्न शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है ।

स्थूल रूप से हठ योग अथवा प्राणायाम क्रियाँ तीन भागों में पूरी की जाती है—

(१) रेचक—श्वास बाहर छोड़ना ।

(२) पूरक—श्वास अन्दर खींचना ।

(३) कुम्भक—श्वास को रोक रखना ।

कुम्भक दो प्रकार का होता है—

(१) **बहिः कुम्भक**—श्वास को बाहर निकाल कर बाहर ही रोक रखना ।

(२) **अन्तः कुम्भक**—श्वास अन्दर खींचकर श्वास को अन्दर ही रोककर रखना ।

इस प्रकार इन चार क्रियाओं—बाह्य कुम्भक, पूरक, अन्तः कुम्भक और फिर रेचक के अन्तराल में परिवर्तन करने के विभिन्न तालों में श्वास क्रिया सम्पूर्ण की जाती है । हठ योग के अनुसार व्यक्ति के नासाछिद्रों में एक धनात्मक है और दूसरा ऋणात्मक । समस्त प्रकृति में ऐसी धनात्मक और ऋणात्मक धाराओं का प्रभाव देखा जा सकता है । व्यक्ति के नासाछिद्र वायु को धनात्मक और ऋणात्मक बनाते हुए उसे नियन्त्रित और सन्तुलित अनुपात में बनाये रखने में सक्षम होते हैं । यदि किसी व्यक्ति की श्वास क्रिया दोषपूर्ण हो, किसी नासाछिद्र में कोई रचनात्मक दोष हो अथवा रोग हो तो दोनों नासाछिद्रों की वायु के अनुपात में व्यवस्था में परिवर्तन ला देगा । श्वास-प्रश्वास की सम्पूर्णता और सही अनुपात बनाये रखने के उद्देश्य का विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का प्रादुर्भाव किया गया है । भारत में प्राणायाम विधियाँ आयुर्वेद के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए बनाई गई हैं, अतः व्यक्ति के वात, पित्त अथवा कफ प्रधान होने के आधार पर कुछ निषेध भी बताये गये हैं—

प्राणायाम निषेध

वात प्रधान—जिनके शरीर वायु, बादी, मोटापा, कब्ज, परिश्रम न कर पाने वाले हों उन्हें प्लाविनी शीतली, कण्ठ वायु उदर पूरक, सीतकारी प्राणायाम विपरीत प्रभाव देंगे ।

पित्त प्रधान—जो अधिक गर्मी और अपेक्षाकृत अधिक प्यास अनुभव करें उन्हें ग्रीष्म ऋतु अथवा गर्म स्थलों में भस्त्रिका, अग्नि-प्रदीप्त, नाड़ी अवरोध, सूर्य भेदी, हृदय स्तम्भक मुख प्रसारण, सर्वांग स्तम्भक या एकांग स्तम्भक प्राणायाम हानिप्रद रहेंगे ।

कफ प्रधान—जो अधिक सर्दी न सह सकें, वे कम से कम सर्द ऋत में शीतकार, शीतली, सीत्कार आदि प्राणायाम न करें ।

दुर्बल शरीर वाले—ऐसे व्यक्ति सर्व प्रथम शरीर को स्वस्थ एवं पुष्ट बनाने पर ध्यान दें और समर्थ होने पर भी प्राणायाम का अभ्यास करें । दुर्बल और पित्त प्रधान व्यक्ति के लिये वर्जित प्राणायाम हानिप्रद रहेंगे ।

पूर्ण निषेध—भूख से पीड़ित (चाहें एक या दो दिन का उपवास ही किया हो), भरे पेट पर, ज्वर पीड़ित अथवा गर्भवती महिलाओं के लिये प्राणायाम वर्जित है ।

स्वर साधना

पीछे हम सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर के बारे में बहुत कुछ बता आये हैं । अब इन स्वरों की साधना विधि का वर्णन करते हैं । इस साधना में प्रधानत: दो बातों पर ध्यान देना है—

(१) **स्वर नियन्त्रण**, अर्थात् आवश्यकतानुसार स्वर का परिवर्तन करना ।

(२) **स्वर उपयोग**, अर्थात् सामान्य जीवन में स्वरों का उपयोग कहाँ और कैसे किया जा सकता है ।

स्वर नियन्त्रण

सामान्यत: स्वर परिवर्तन हेतु निम्नलिखित विधियाँ ही प्रयोग में लाई जाती हैं—

प्रमिला विधि—जो स्वर चलाना हो उसी नासारंध्र पर एकटक ध्यान करें । आवश्यक स्वर खुल जायेगा ।

रूपम विधि—जो स्वर चलाना हो उसके विपरीत करवट लेकर लेट जायँ और पसली के नीचे तकिया रख लें । तो इच्छित स्वर चलने लगता है ।

हेमन्त विधि—जो स्वर चलाना हो उसके विपरीत नासारन्ध्र में रुई तथा कपड़े की गोली बनाकर लगा लेने से इच्छित स्वर चलने लगता है ।

नीलम विधि—चालू स्वर से साँस भर कर उस स्वर को अँगूठे से बन्द कर लें और बन्द स्वर से भरी हुई साँस को बाहर निकालें । कई बार ऐसा करने से स्वर परिवर्तन हो जाता है ।

सुरेन्द्र-विक्रम विधि—जो स्वर चल रहा हो उस ओर की भुजा के गड्ढे (काँख)एमें बन्द स्वर वाले हाथ की मुट्ठी बनाकर जोर से थोड़ी देर तक दबाये रखें तो स्वर में परिवर्तन हो जाता है ।

अन्य विधियाँ—दौड़ने, परिश्रम करने, प्राणायाम करने आदि से भी स्वर परिवर्तन हो जाता है ।

स्वर उपयोग

किस स्वर में किस प्रकार के कार्य किये जा सकते हैं यह हम पहिले ही बता आये हैं । अब उनके कुछ उपयोग बताते हैं—

(१) दिन में बाँया स्वर चलायें और रात में सूर्य स्वर; परन्तु भोजन करते समय और पानी पीते समय थोड़ी देर के लिये बाँयास्वर चलायें । ऐसे योगी व्यक्ति से काल भी भय खाता है ।

(२) दीर्घायु प्राप्त करने के लिये सामान्यत: दिन में चन्द्र स्वर और रात में सूर्य स्वर चलाने का विधान है ।

(३) मेरे पूज्य पितामह के एक भाई स्व. सेवती लाल जी दण्ड, मुग्दर, कसरत प्रेमी पहलवान थे। मृत्यु के पूर्व लक्षण जानने के लिये 'स्वर' देखा करते थे। उनके कुछ सूत्र देखिये—

३ वर्ष बाद मृत्यु होगी यदि दोनों स्वर एक साथ चौबीसों घण्टे चलते रहें।

२ वर्ष बाद मृत्यु होगी यदि दो दिन रात अर्थात् ४८ घण्टे सूर्य स्वर चले।

१ वर्ष बाद मृत्यु हो यदि सूर्य स्वर ७२ घण्टे अर्थात् तीन दिन-रात तक चले।

१ मास पश्चात मृत्यु हो यदि हमेशा चन्द्र स्वर ही चले, सूर्य स्वर बोले ही न।

१ मास पश्चात् मृत्यु हो यदि १६ दिन तक सूर्य स्वर ही चलता रहे।

१५ दिन के पश्चात् मृत्यु हो यदि निरन्तर सूर्य स्वर चले और चन्द्र स्वर चले ही न।

(४) वात दर्द उठने के समय जो स्वर चल रहा हो उसे बन्द कर दें तो वात व्याधि का शमन होता है।

(५) आधासीसी दर्द प्रारम्भ होते समय जो स्वर चल रहा है उस ओर के स्वर को (रुई और कपड़े की पोटली लगाकर) बन्द कर दें, साथ ही उस ओर के हाथ की कुहनी कस कर बाँध दे। दर्द बन्द हो जाने पर कुहनी खोल दें और नाक की डाट थोड़ी देर बार निकालें।

(६) नारी को कामदेव के समान मोहित करने वाला सम्भोग वह व्यक्ति कर पाता है जो उस समय स्वयं सूर्य स्वर चलाये, और स्त्री से चन्द्र स्वर चलवाये। यदि स्त्री को बाँई ओर लिटाकर पुरुष दाहिनी ओर लेटकर थोड़ी देर बात-चीत या प्रेम-क्रीड़ा करे, तो स्त्री का दाहिना पार्श्व दबा रहने के कारण चन्द्र स्वर चलने लगेगा और पुरुष का का बाँया पार्श्व दबा हुआ रहने के कारण सूर्य स्वर चलने लगेगा। संभोग काल में स्त्री को वामांग रखने का एक मात्र यही वैज्ञानिक कारण है। इसी आधार पर पत्नी को वामांगी माना जाता है।

(७) पुत्र प्राप्ति के लिये पुरुष का स्वर और स्त्री का बाँया स्वर चलाते हुए रजोदर्शन के पश्चात् पाँचवें दिन संभोग करना चाहिए। स्त्री वामांगी हो तो पुरुष का सूर्य स्वर तथा स्त्री का चन्द्र स्वर चलेगा। जैसा कि ऊपर कहा है।

(८) संभोग के प्रारम्भ में पुरुष के सूर्य स्वर चल रहा हो और वीर्य पतन होते ही चन्द्र स्वर चलने लगे तो गर्भ धारण नहीं करा पायेगा।

(९) जिस पुरुष के संभोग काल में दोनों स्वर चलें तो उसकी सन्तान कुरूप व अंगहीन होगी। ऐसे स्वर 'संभोग समाधि' में प्रयुक्त होते हैं।

प्राणायाम विधियाँ

उपर्युक्त विवेचन से आपको यह ज्ञात हो गया कि प्राणायाम, हठ योग आदि पर्यायवाची ही हैं। साथ ही आप यह भी जान गये होंगे कि साधारण समझी जाने वाली

श्वास क्रिया हमारे स्वास्थ्य पर, हमारे वातावरण पर और हमारे व्यक्तित्व पर कितना प्रभाव डालती है ? देश काल परिस्थितियों के आधार पर ऋषियों ने लगभग 50 प्रकार के प्राणायाम बताये हैं। यहाँ हम केवल स्वस्थ मनुष्यों के उपयोग में आने वाले तथा कुण्डलिनी साधना में प्रयुक्त होने वाले प्राणायामों की ही चर्चा करेंगे।

प्राणायाम और योगाभ्यास के सम्बन्ध में प्रायः ऐसी चेतावनी देखने को मिलती है कि 'बिना योग्य गुरु के योग नहीं करें। बात एक सीमा तक उचित भी है क्योंकि आगे चलकर कुछ ऐसी क्रियाएँ आती हैं जो पुस्तक से समझ पाना असम्भव है। इसी प्रकार कुछ जिज्ञासुओं के क्रिया-परिणाम ऐसे आते हैं जो पुस्तक में दिये गये परिणामों से मेल नहीं खाते। ऐसी स्थिति में जो व्यक्ति प्राणायामादि कर चुका है वह उन्हें उचित रूप से समझ कर आगे का निर्देशन जिज्ञासु को दे सकता है। बहुत से लोग कहते हैं कि इन चेतावनियों के पीछे गुरुडम का भाव होता है कि लोग शिष्य बन कर गुरुजी की पूजा करें। यदि ऐसा हो, तब भी व्यक्तिगत प्रशिक्षण (Personal Coaching) के महत्व को मानना ही पड़ेगा।

यूँ तो मेरे पास चिकित्सा के लिये कई बार ऐसे रोगी भी आये जो मात्र स्वास्थ्य सुधार हेतु किसी योग शिक्षक के पास गये और उनके गुरु ने ऐसी क्रियाएँ कराईं कि वे निरोग होने के स्थान पर और अधिक रोगी बन गये। यदि डॉक्टर और वैद्य लोग योग क्रियाओं की जानकारी जनता को दें तो अधिक लाभप्रद रहेगा क्योंकि उन्हें शरीर का अच्छा ज्ञान होता है। विदेशों में डाक्टर लोग यौगिक क्रियाओं के तत्व महत्व को समझ कर आधुनिक शरीर विज्ञान के आधार पर उनका सामंजस्य स्थापित करने के पश्चात् जन सामान्य के आगे उन्हें प्रकाशित करते हैं। इससे दो लाभ होते हैं—एक तो जनता विश्वास और धैर्य के साथ उन्हें प्रयोग में ला सकती है, दूसरे अनावश्यक जुड़े सिद्धान्तों के निकाल देने के कारण, तथा देशकाल परिस्थिति के आधार पर पुनर्लेखन के कारण ये क्रियाएँ बोधगम्य हो जाती हैं।

प्राणायाम की क्रियाएँ देने से पूर्व उनमें प्रयोग होने वाले कुछ बन्ध और मुद्राएँ समझना आवश्यक है। अभी हम प्राणायाम तथा श्वसन क्रिया के बारे में बहुत कुछ बता आये हैं फिर भी यहाँ हम पाठकों को ध्यान दिलाना चाहते हैं कि श्वास द्वारा वायु हमारे पेट में भी आती-जाती है। श्वास द्वारा आने वाली वायु यूँ तो सिर्फ फेफड़ों तक ही सीमित रहती है, परन्तु फेफड़ों और उदर के बीच एक बड़ी पेशी है जिसे 'महाप्राचीर' (Diaphragm) कहते हैं जो छाती के अंगों को पेट के अंगों से अलग करती है। दोनों फेफड़े इसी महाप्राचीर पेशी पर टिके हुए होते हैं। जब हम उदर को सिकोड़ते हैं तो महाप्राचीर भी सिकुड़ती है फलतः उस पर टिके हुए दोनों फेफड़ें भी सिकुड़ते हैं और श्वास बाहर की ओर निकल जाती

है। जब हम पेट फुलाते हैं तो महाप्राचीर भी फैलती है और उस पर टिके फेफड़े भी फैलते हैं फलतः श्वास अन्दर की ओर खिंच आती है। इस प्रकार आप देखते हैं कि उदर की पेशियों का हमारी श्वास क्रिया में विशेष हाथ है। विभिन्न मुद्राओं और बन्धों से छाती और उदर की आवश्यक पेशियों का नियन्त्रण किया जाता है।

सामान्य बन्ध

यह एक प्राकृतिक नियम है कि जहाँ भी आप कोई बन्ध लगाते हैं वहाँ वह वस्तु अधिक मात्रा में एकत्र होने लगती है जिसके प्रति बन्ध लगाया गया है। यदि आप बहते पानी को रोकें तो बाँध लगाने वाले स्थल पर पानी का दबाव बढ़ता जायेगा। यदि हवा को रोकें तो उसका दबाव बढ़ता जायेगा। प्राणायाम के समय **बन्ध लगाकर हम अन्दर की वायु का दबाव विभिन्न स्थलों पर बढ़ाकर उन्हें शक्तिकृत करते हैं।** और उस एकत्र शक्ति से आवश्यक कार्य कर सकते हैं। स्थिति के अनुसार बन्ध कई प्रकार के हैं—

मूल बन्ध

मल-मूत्र विसर्जन संस्थान की वायु को स्तंभित करने का नाम 'मूल बन्ध' है। बाँयें पैर की एड़ी गुदा और लिंग/योनि के मध्य भाग (सीवन) में दृढ़ता से लगाकर उस क्षेत्र को ऊपर की ओर सिकोड़ें और इस प्रकार धीरे-धीरे अधोगत (अपान) वायु को बल के साथ ऊपर की ओर खींचें। सिद्धासन के साथ मूल बन्ध आसानी से लग जाता है। थोड़ा अभ्यास हो जाने पर एड़ी को सीवन स्थान में लगाये बिना यह बन्ध लगाया जा सकता है।

उड्यान बन्ध

दोनों जाँघे वज्रासन की स्थिति में मोड़कर बैठें। अब पेट को (नाभि से नीचे और ऊपर पसली तक) पीठ से ऐसा मिलायें कि पूरे पेट में गड्ढा सा दिखाई देने लगे। पेट को अधिक से अधिक अन्दर की ओर खिंचा हुआ रखें यही उड्यान बन्ध है। योगी मानते हैं कि इस बन्ध के लगाने से प्राण एक पक्षी की तरह सुषुम्ना की ओर उड़ने लगता है इसलिये इसे उड्यान बन्ध कहा जाता है। इस बन्ध को आवश्यतानुसार दूसरे आसनों के साथ भी सम्पन्न किया जा सकता है।

जालंधर बन्ध

छाती की हड्डी और गर्दन के जोड़ पर एक गड्ढा है उसे कंठ कूप कहते हैं। इस बन्ध को लगाने के लिये गर्दन को सिकोड़ कर ठोड़ी दृढ़तापूर्वक कंठ कूप में इस प्रकार जमायें कि छाती आगे की ओर निकली रहे। इस बन्ध के द्वारा कंठ स्थान के नाड़ी समूह को बाँधा जाता है।

महा बन्ध

बायें पैर की एड़ी सीवन स्थल पर लगाकर बाँयी जाँघ पर दाहिना पैर रखें। जिस स्वर से साँस आ रही हो उसी से पूरक करें और जालंधर बन्ध लगा दें। अब मूल द्वार से

अपान वायु को ऊपर की ओर खींचते हुए मूल बन्ध भी लगा दें। अपना ध्यान सुषुम्ना में लगाते हुए कुम्भक करें। तत्पश्चात् जिस स्वर से पूरक किया था उसके विपरीत स्वर से रेचक कर दें। इस प्रकार दोनों स्वरों से अनुलोम विलोम रीति से समान संख्या में प्राणायाम करें।

महा वेध

महाबन्ध की विधि में बताये अनुसार जालंधर और मूलबन्ध लगाकर कुम्भक करें। दोनों हथेली भूमि पर नितम्बों के इर्द-गिर्द जमाकर हाथों के बल अपने नितम्बों को उठा-उठाकर जमीन में मारें। इस स्थिति में ध्यान करें कि प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर रहा है और कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो रही है। तत्पश्चात् वायु को महाबन्ध के अनुसार ही रेचक कर दें।

इस बन्ध को सिद्धासन के स्थान पर पद्मासन में भी लग सकते हैं। महाबन्ध, महामुद्रा और महावेध तीनों के अभ्यास से कुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत होती है।

तान्त्रिक बंध

प्रसंग वश यहाँ यह और स्पष्ट कर दूँ कि तान्त्रिक कर्मों में कुछ विशेष बन्ध प्रयोग मे आते हैं चूँकि उनके अनुष्ठान अधिकतर 'गुप्त' होते हैं। पंच 'मकार' पूजा करने वालों के यहाँ तो 'मुँह बन्द कान खुले' वाली कहावत चलती ही है परन्तु यज्ञशाला (दुर्ग) तथा यज्ञ होता (भक्तों) की रक्षा हेतु दुर्गा की अध्यक्षता में दिक्बंध करना आवश्यक ही है।

दिक्बन्ध (दिशाबंध)—यज्ञशाला अथवा दुर्ग के रक्षार्थ विभिन्न दिशाओं में रक्षक तैनात करना जो पशु (विधर्मी) को सीमा तक न पहुँचने दें अथवा उसके सीमाँत पर पहुँचने से पूर्व ही दुर्ग की अधिष्ठात्री देवी को सूचित कर दें।

द्वार बंध—द्वार की रक्षार्थ विभिन्न प्रकार के योद्धा तथा रक्षक नियुक्त करना जो उचित अनुचित व्यक्तित्व का निरीक्षण करने के पश्चात् ही व्यक्ति को यज्ञशाला अथवा दुर्ग में आने दें तथा पशु को अन्दर आने से रोकने में समर्थ हों।

सीमा बंध—दुर्ग के द्वार से न घुस सकने वाले पशु (शत्रु) सीमायें तोड़ कर घुसने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें रोकने तथा सीमा पर कड़ी नजर रखने के लिए 'सीमा बन्ध रक्षक' नियुक्त करना।

इन तीनों प्रकार के कार्यों के लिए सामान्य हिन्दु जन 'गणेशार्चन' करते हैं। 'हिन्दू कौमारी तन्त्र' में यह तीनों कार्य शालपर्णी, शील भद्र और नैन तारा देवियों के द्वारा कराये गये हैं और इनके दुर्ग की अधिष्ठात्री 'दुर्गा' को माना गया है। गुरुमुखी में लिखे हुए 'सतनामी विन्दर जीत तन्त्र' में जसवीराचार्य तथा हरजीताचार्य ने भी अपने इन्द्रा दुर्ग की रक्षा हेतु परिविन्दर (प्रवीन्द्र) और जसविन्दर (यशवीन्द्र)

नामक देवियों को दिक्बंध तथा सीमाबंध के लिए उचित माना है। प्राकृत भाषा में पाये गये अति जीर्ण ग्रन्थ 'महेशाशोक' में 'चन्द्रेश' तथा 'मृगेश' नामक देवताओं का नाम द्वार बंध के निमित्त, तथा 'मुकेशमुनेश' तथा 'प्रतापेटेन' नामक देवताओं का नाम 'सीमा बंध' के निमित्त, और दिक्बंध के निमित्त संजय, दिनेश आदि देवों के नाम मिलते हैं। 'प्रर्दापाल का तन्त्र' में भी दिक्बन्ध हेतु दो देवियों के नाम मिलते हैं जो स्पष्ट नहीं है। 'मुबिलाचंक' में दुर्गाधिष्ठात्री 'सुवर्णार्चना' मानी गयी है जबकि अन्य तीन देवियों से वह छोटी है। वैसे तो सतयुग से ही 'छोटा' सदैव खटपटी रहता आया है और 'बड़ा' गम्भीर। यदुवंशी परिवार में श्रीकृष्ण तथा आदित्य परिवार के देवों में विष्णु इसके उदाहरण हैं।

मुद्रा (Postures)

हठयोग में विभिन्न प्रकार की मुद्राएँ विद्युत शक्ति जाग्रत करने के लिए उपयोग में लाई जाती हैं। कुछ उपयोगी मुद्राएँ इस प्रकार हैं—

महामुद्रा

'विश्वदीपक तन्त्र' में महामुद्रा को कुण्डलिनी योग के लिए उपयुक्त एक मात्र मुद्रा कहा गया है। 'विनोद रहस्य' में इसकी विधि निम्न प्रकार है—

प्रथम विधि—मूल बन्ध लगाकर बायें पैर की ऐडी से सीबन दबा लें। दाहिने पैर को लम्बा करके उसकी अँगुलियों को दोनों हाथ से पकड़ लें। पाँच घर्षण (लम्बी और गहरी साँस ले) करके बाँयी नासिका से पूरक करें और जालंघर बंध लगा दें। थोड़ी देर बाद दाहिने पैर से सीवन दबा कर दाहिने स्वर से पूरक करते हुए बायें पैर को लम्बा कर दोनों हाथ से पकड़ें। बाद में बायें स्वर से रेचक कर दें तो यह दाहिनी महामुद्रा होगी।

द्वितीय विधि—'मृत्युंजय तन्त्र' में महामुद्रा की एक और विधि दी है। साधकों के लाभार्थ उसे हम यहाँ दे रहे हैं—बायें पैर की ऐडी को सीवन (गुदा और लिंग के मध्य का भाग) में बलपूर्वक जमाकर दाहिने पैर को लम्बा कर दें। अब धीरे-धीरे पूरक करके मूल और जालंधर बंध लगा दें। दाहिने पैर का अँगूठा दोनों हाथों से पकड़ें और मस्तक को घुटने पर जमाकर कुम्भक करें। कुम्भक के समय वायु को कोष्ठ में फुलायें और ऐसी भावना करें कि प्राण कुण्डलिनी को जाग्रत करके सुषुम्ना में प्रवेश कर रहा है। तत्पश्चात् मस्तक को शन: शन: रेचक करता हुआ उठा लें और यथा स्थिति बैठ जायें। इसी प्रकार दूसरे अंग से करें। धीरे-धीरे प्राणायाम की संख्या एवं समय में वृद्धि करते जायें। यह मुद्रा मंदाग्नि, अजीर्ण, प्रमेह, उदर रोगों का शमन कर क्षुधा की वृद्धि तथा कुण्डलिनी जाग्रत करती है।

वज्रोली एवं अश्विनी मुद्रा

पुष्ट शरीर वाली छरहरी, कामिनी युवती को अश्विनी कहा जाता है। भगवान विष्णु ने अपनी पत्नी रेणु को अश्विनी कहा था जिसके नाम पर उससे उत्पन्न दो जुड़वाँ बच्चों को 'अश्विनी कुमार' कहा गया। ये अश्विनी कुमार बहुत अच्छे चिकित्सक थे। अश्विनी घोड़ी को भी कहते हैं। वास्तव में घोड़ी की तरह कूदने वाली युवती को इसी सन्दर्भ में अश्विनी कहा जाता है। इस अश्विनी मुद्रा के प्रारम्भिक अभ्यास में व्यक्ति अपने विसर्जन संस्थान को घोड़ी की योनि की तरह सामान्य रूप में बार-बार सिकोड़ता है। इसकी विधि बहुत कुछ अलकासन से मिलती है। घेरण्ड संहिता के अनुसार—**सिद्धासन अथवा पद्मासन में बैठ कर योनि/लिंग एवं गुदा को घोड़ी योनि की तरह बार-बार संकोचन करें**। जननांगों को पुष्ट करने तथा अर्श के रोग को दूर करने एवं वीर्य की ऊर्ध्व गति कराने में सहायक है। अपान वायु को शुद्ध कर प्राण का उत्थान करती है। यही मुद्रा पुरुष करे तो वज्रोली कही जाती है। इस मुद्रा के गहराई तक प्रभाव देने वाले अभ्यासों में प्राणायाम भी किया जाता है जो गुप्तांगों के सन्दर्भ में गुप्त रूप से उपयुक्त पात्र को ही बतलाया जाता है।

शक्ति चालिनी मुद्रा

शक्ति चालिनी से तात्पर्य यहाँ 'कुण्डलिनी-शक्ति चालिनी' से है—सिद्ध अथवा पद्मासन में बैठकर हथेली पृथ्वी पर जमा कर पच्चीस बार नितम्बों को पृथ्वी पर उठा-उठा कर मारें। तत्पश्चात् दोनों नासारंघ्रों से अथवा जो स्वर चल रहा हो उससे पूरक कर प्राण और अपान वायु को मिलाने का प्रयत्न करते हुए जालंधर बन्ध लगाकर कुम्भक करें। कुम्भक के समय अश्विनी मुद्रा करें। अब जालंधर बन्ध खोल कर यदि दोनों नासारंध्रों से पूरक किया हो तो दोनों से रेचक करें अवा पूरक के विपरीत नासारंध्र से रेचक कर दें। घेरण्ड संहिता में इस मुद्रा को करते समय बालिश्त भर चौड़ा चार अंगुल लम्बा कोमल श्वेत वस्त्र नाभि पर कटि सूत्र (करधनी) से बाँध कर सारे शरीर पर भस्म मल कर बैठने की बात कही गई है। यह मुद्रा रोगनाशक, स्वास्थ्यवर्धक और कुण्डलिनी जाग्रत करने में सहायक है।

षटमुखी मुद्रा

पद्मासन या सिद्धासन में बैठें। दोनों अँगूठों से दोनों कान, तर्जनियों से दोनों आँखें, मध्यमाओं से दोनों नाक के छिद्रों को बन्द करें। दोनों अनामिका और कनिष्ठाओं को होठों पर रखें।

योनि मुद्रा

सिद्धासन में बैठकर षटमुखी मुद्रा लगायें और साथ ही 'काकी मुद्रा' (जीभ को कौए की चोंच के समान गोल बनाएँ) करें, उसके द्वारा श्वास खींच कर अपान वायु से मिलायें। तत्पश्चात् ॐ का उच्चारण करते हुए ऐसी भावना करें कि उसकी ध्वनि के साथ

मिलकर वायु कुण्डलिनी को जाग्रत करके षटचक्रों का भेदन करती हुई सहस्त्र दल कमल में जा रही है। इस मुद्रा से अन्तर्ज्योति का साक्षात्कार होता है।

योग मुद्रा

'ममतानुपम सिद्धान्त' में पेट के रोगों में लाभ दिलाने के साथ-साथ कुण्डलिनी जागरण हेतु 'योग मुद्रा' की विधि इस प्रकार दी है—मूल बन्ध के साथ पद्मासन से बैठ कर दोनों नासारंध्रों से पूरक कर जालंधर बन्ध लगा दें। फिर दोनों हाथों को पीठ के पीछे करके दाहिने हाथ से बायें हाथ की कलाई पकड़ लें। अब शरीर को आगे की ओर झुकायें। पेट को एड़ियों से दबाते हुए सिर को जमीन पर टिका दें। इस प्रकार यथा शक्ति कुम्भक करने के पश्चात् सिर को जमीन से उठाकर सीधे हो जायें और दोनों नासारंध्रों से रेचक कर दें।

शाम्भवी मुद्रा

मन को शीघ्र स्थिर करने के लिए "अतुलामृतानिता' नामक विलोची ग्रन्थ में शाम्भवी मुद्रा को महत्वपूर्ण बताया गया है—मूल बन्ध और उड्डयान बन्ध के साथ सिद्ध अथवा पद्मासन में बैठें। अब नासिका के अग्र भाग पर अथवा भ्रू मध्य में ध्यान जमाएँ। यही शाम्भवी मुद्रा है।

तड़ागी मुद्रा

एक अन्य विलोची ग्रन्थ 'राजेन्द्र कुसुमावली' में वायु विकार दूर करने के लिए तड़ागी मुद्रा की विधि इस प्रकार दी है—सरलेशासन में चित्त लेट कर चालू स्वर से पूरक कर पेट को वायु से भर लें। अब कुम्भक करके पेट को इस प्रकार हिलावें जैसे जल हिलाते हैं। फिर सावधानी से वायु को रेचक कर दें।

योग में प्रयुक्त होने वाली अन्य मुद्राएँ

वज्रासन में बैठकर होने वाली अन्य सरल मुद्राओं में चिन मुद्रा, चिन्मय मुद्रा, आदि मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा आदि के नाम आते हैं। यह अँगुलियों की विभिन्न दशाओं की मुद्राएँ हैं और अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं।

अब कुछ ऐसी मुद्रायें दे रहे हैं जो दक्षिण मार्गी तान्त्रिकों में प्रयुक्त होती हैं—

दक्षिण मार्गी तान्त्रिक मुद्राएँ

'गायत्री सिद्धि' में जप के पूर्व और जप के पश्चात् दिखाई जाने वाली कुछ गुप्त मुद्राओं का वर्णन है। ये लोग मुद्रा का अभिप्राय केवल हाथ द्वारा विभिन्न आकृतियाँ दर्शाना मानते हैं और यह मुद्रा-प्रदर्शन एकान्त में देवता की मूर्ति के सम्मुख किया जाता है। किसी दूसरे व्यक्ति के उपस्थित होने पर मुद्रा प्रदर्शन वर्जित होता है। जप के पूर्व की मुद्रायें निम्न हैं—

१. **सुमुखम् मुद्रा**—प्रत्येक हाथ की अँगुलियों और अँगूठों के पोरों को अलग-अलग मिलाकर दोनों हाथों के दसों पोरों को आपस में मिला दें।

२. **सम्पुटम् मुद्रा**—दोनों हाथों की हथेली कलाई के पास मिला दें और दसों अँगुलियों के पारों को भी आपस में मिला दें।

३. **विततम् मुद्रा**—दोनों हाथों की हथेलियाँ मुँह की ओर रखकर पाँचों अँगुलियों को मिलाये हुए कर-पृष्ठ भाग को देवता की ओर प्रदर्शित करें।

४. **विस्तृतम् मुद्रा**—विस्तृतम मुद्रा में हाथों की दूरी आपस में बढ़ा दें।

५. **द्विमुखम् मुद्रा**—दोनों हथेलियों को चन्द्र पर्वत पर (कनिष्ठका अँगुलियों के नीचे हृदय रेखा के नीचे से कलाई प्रारम्भ होने तक का क्षेत्र) मिलायें और कनिष्ठका तथा अनामिका अँगुलियों के पोरों को आपस में मिलायें। शेष मध्यमा, तर्जनी और अँगूठे को ऊपर की ओर सीधा रखें।

६. **त्रिमुखम् मुद्रा**—द्विमुखम् वाली मुद्रा में केवल दो अँगुलियों के पोरों को आपस में मिलाया गया था। उसी मुद्रा में कनिष्ठका, अनामिका और मध्यमा के पोरों को भी आपस में मिला दें।

७. **चतुर्मुखम् मुद्रा**—इस मुद्रा में चारों अँगुलियों के पोरों को द्विमुखम् की तरह मिला दें। अँगूठे सीधे खड़े रहेंगे।

८. **पंचमुखम् मुद्रा**—पाँचों अँगुलियों के पोरों को दूसरे हांथ की पाँचों अँगुलियों के पोरों से द्विमुखी मुद्रा की तरह मिला दें।

९. **षणमुखम् मुद्रा**—इस मुद्रा में हाथों की हथेली नहीं मिलानी चाहिए। परन्तु सभी अँगुलियों के पोरों को इस प्रकार मिलाना है कि अँगुलियाँ फैली रहें।

१०. **अधोमुखम् मुद्रा**—अँगुलियों के पृष्ठ भाग को द्वितीय पोर पर से मोड़कर आपस में मिलायें।

११. **व्यापकांजलिकम् मुद्रा**—दोनों हाथों की हथेली खुली और अँगुलियाँ फैली हुई रहेंगी तथा टथेलियाँ चन्द्र पर्वत पर मिली रहेंगी।

१२. **शकटम् मुद्रा**—इस मुद्रा में दोनों हाथों की अँगुलियों को आधा-आधा मोड़कर अँगूठों के पोरों को इस तरह मिलायें कि हथेलियों के सामने का भाग पृथ्वी की ओर रहे।

१३. **यमपाशम् मुद्रा**—दोनों हाथों की तर्जनी अँगुली का हुक सा बनाकर आपस में अण्टा डाल दें। शेष अँगुलियाँ अधमुड़ी सी स्वाभाविक रूप में हो जायेंगी।

१४. **ग्रन्थितम् मुद्रा**—दोनों हाथों की दसों अँगुलियाँ आपस में गुथ जाऐं और हथेलियाँ दूर-दूर रहें।

१५. **उन्मुखोन्मुखम् मुद्रा**—सुमुखम् मुद्रा में एक हाथ नीचे और एक ऊपर होने से यह मुद्रा बन जाती है।

१६. **प्रलम्बम् मुद्रा**—दोनों हाथों की हथेलियाँ और अँगुलियाँ सीधी रहेंगी और अँगुलियों के पोर पृथ्वी की ओर रहेंगे। पाँचों अँगुलियों के बीच खाली स्थान नहीं रहेगा।

१७. **मुष्टिकम् मुद्रा**—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर आपस में मुट्ठियाँ मिला दें।

१८. **मत्स्यः मुद्रा**—एक हथेली के पृष्ठ भाग पर दूसरी हथेली रखें। अँगुलियाँ सीधी और परस्पर मिली हुई परन्तु अँगूठे फैले हुए रहें।

९. **षणमुखम् मुद्रा**—इस मुद्रा में हाथों की हथेली नहीं मिलानी चाहिए। परन्तु सभी अँगुलियों के पोरों को इस प्रकार मिलाना है कि अँगुलियाँ फैली रहें।

१०. **अधोमुखम् मुद्रा**—अँगुलियों के पृष्ठ भाग को द्वितीय पोर पर से मोड़कर आपस में मिलायें।

११. **व्यापकांजलिकम् मुद्रा**—दोनों हाथों की हथेली खुली और अँगुलियाँ फैली हुई रहेंगी तथा टथेलियाँ चन्द्र पर्वत पर मिली रहेंगी।

१२. **शकटम् मुद्रा**—इस मुद्रा में दोनों हाथों की अँगुलियों को आधा-आधा मोड़कर अँगूठों के पोरों को इस तरह मिलायें कि हथेलियों के सामने का भाग पृथ्वी की ओर रहे।

१३. **यमपाशम् मुद्रा**—दोनों हाथों की तर्जनी अँगुली का हुक सा बनाकर आपस में अण्टा डाल दें। शेष अँगुलियाँ अधमुड़ी सी स्वाभाविक रूप में हो जायेंगी।

१४. **ग्रन्थितम् मुद्रा**—दोनों हाथों की दसों अँगुलियाँ आपस में गुथ जाऐं और हथेलियाँ दूर-दूर रहें।

१५. **उन्मुखोन्मुखम् मुद्रा**—सुमुखम् मुद्रा में एक हाथ नीचे और एक ऊपर होने से यह मुद्रा बन जाती है।

१६. **प्रलम्बम् मुद्रा**—दोनों हाथों की हथेलियाँ और अँगुलियाँ सीधी रहेंगी और अँगुलियों के पोर पृथ्वी की ओर रहेंगे। पाँचों अँगुलियों के बीच खाली स्थान नहीं रहेगा।

१७. **मुष्टिकम् मुद्रा**—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर आपस में मुट्ठियाँ मिला दें।

१८. **मत्स्यः मुद्रा**—एक हथेली के पृष्ठ भाग पर दूसरी हथेली रखें। अँगुलियाँ सीधी और परस्पर मिली हुई परन्तु अँगूठे फैले हुए रहें।

१९. **कूर्मः मुद्रा**—दोनों हाथों की कनिष्ठका और अँगूठे के पोर एक दूसरे से मिलायें और शेष अँगुलियों को अधमुड़ा रखें।

२०. **वाराहकम् मुद्रा**—बायें-हाथ की चारों अँगुली अधमुड़ी अवस्था में करके दाहिने हाथ की तीन अँगुली (तर्जनी को छोड़कर शेष) बाँये हाथ की मुड़ी अँगुलियों में घुसा दें। अब तर्जनी (दाहिनी) और बायें अँगूठे को सीधा करके मिला दें दाहिना अँगूठा बायें अँगूठे की जड़ पर रखें।

२१. **सिंहाक्रान्तम् मुद्रा**—दोनों हाथों की हथेली, कुहनी मोड़कर इस प्रकार सामने की ओर करें कि वे कानों के इर्द-गिर्द कानों के पास रहें।

२२. **महाक्रान्तम् मुद्रा**—सिंहाक्रान्त मुद्रा में ही हथेली को अपने कानों की ओर मोड़ दें (Palm facing ear side)।

२३. **मुग्दरम् मुद्रा**—बायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ की कुहनी रखकर अग्रबाहु को खड़ी करके मुट्ठी बाँध लें।

२४. **पल्लवम् मुद्रा**—हाथ कुहनी पर से मोड़कर सामने हथेली करें और अँगुलियाँ खुली रखें।

जप के बाद की मुद्राएँ

कन्नड़ ग्रन्थ 'सुरेन्द्र पुष्पालोकदस्सी' में जप के पश्चात् आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करने का विधान है—

सुरभिर्ज्ञान वैराग्येयौनिः शंखोऽथं पंकजम् ।
लिंग निर्वाणमुद्राष्यै जपा च प्रदर्शयेत् ॥

१. **धेनु मुद्रा (सुरभिः मुद्रा)** —

अन्योन्याभिमुखी श्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथैव तर्जनीमध्या धेनु मुद्रा समीरित ॥

दोनों हाथों की सब अँगुलियों को परस्पर इस प्रकार मिलायें कि एक हाथ की कनिष्ठका दूसरे हाथ की अनामिका से मिल जाय, और एक की तर्जनी दूसरे की मध्यमा से मिला दें, शेष आपस में मिला दें तो गाय के चार थन जैसे बन जाते हैं। यही धेनू या सुरभि मुद्रा है।

२. **ज्ञानम् मुद्रा**—तर्जनी अँगुली और दक्षिण हाथ के अँगूठे के पोरों को हृदय के सम्मुख मिला दें। बायें हाथ की तर्जनी का पोर उसके अँगूठे के पोर से मिला कर बायें घुटने पर रखें। शेष अँगुलियाँ सीधी रखें। यह ज्ञान मुद्रा श्री रामचन्द्र को बहुत प्यारी है—

तर्जन्यङ्गुष्ठकौ सत्कावग्रतो हृदि विन्यसेत् ।
वामहस्ताम्बुजं वामे ज्ञान मूर्द्धनि निन्युसेत् ॥
ज्ञान मुद्रा भवेदेषा, रामचन्द्रस्य प्रेयसी ॥

३. **वैराग्य मुद्रा**—तर्जनी और अँगुष्ठ के पोरों को मिलाकर शेष अँगुलियों को सीधाकर दोनों घुटनों पर हाथ रखें तो मुक्तिप्रद वैराग्य मुद्रा होगी।

वैराग्या ह्यस्ति मुद्रा च मुक्ति साधन कारिका ।
शातर्जन्यङ्गुषठकौ सक्तौ जान्वन्ते च विविर्दिशेत ॥

४. **योनि मुद्रा**—

मिथः कनिष्ठिके वद्धवा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोर्ध्ववसंश्लिष्टे दीर्घमध्यमयोरथ ।
अंगुष्ठाग्राद्वेयेन्यस्य योनिमुद्रे समीरिता ॥

दोनों कनिष्ठिका, दोनों अनामिका और दोनों मध्यमाओं को बद्ध करके दोनों तर्जनियों को लम्ब मान करके मिला दें तथा दोनों अँगूठों को बराबर जोड़ कर तर्जनियों से सटा दें, तो योनि के आकार वाली मुद्रा बन जाती है।

५. **शंख मुद्रा**—

वामाङ्गुष्ठन्तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानां रतो मुष्टिमडगष्ठन्तु प्रसारयेत् ॥

वामाङ्गुल्यस्तथा शिलष्टासंयुक्तास्यु: प्रसारिता: ॥
दक्षिणांगुष्ठं संस्पृष्टा मुद्रैषा शंख मुद्रिका ॥

बायें अँगूठे को सीधे हाथ की मुट्ठी में दे दें। मुटठी खड़ी रखें। बायें हाथ की अन्य अँगुलियाँ खड़ी करके आपस में सीधे अँगूठे से मिला दें, तो यह शंख के आकार की मुद्रा बन जाती है।

६. **पंकजम् मुद्रा या पद्म मुद्रा**—दोनों हाथों को सामने करके अँगुलियों को ऊपर की ओर करके खुली सी कर लें। दोनों अँगूठों और कनिष्ठा को पूरी लम्बाई में मिला दें तो कमल के फूल जैसी आकृति बन जाती है—

७. **लिडगम् मुद्रा**—

हस्तोतु सम्मुखो कृत्वा संहप्रोन्नतांगुली।
तलान्त मिलितांगुष्ठौ कृत्वैषा पद्ममुद्रिका ॥

तथा—

उच्छ्रितं दक्षिणांगुष्ठं वामांगुष्ठेन बंधयेत्।
वामांगुलीदक्षिणाभिरंगुलीभिश्च बन्धयेत्।
लिंगमुद्रेयमाख्याता शिव सान्निध्यकारिणी ॥

दाहिना अँगूठा खड़ा करके बायें अँगूठे से बद्ध कर दें। तत्पश्चात् बायें हाथ की अँगुलियों को दाहिने हाथ की अँगुलियों से बाँध लें। यह लिंग मुद्रा है जो शिव का सान्निध्य करती है।

८. **निर्वाणम् मुद्रा**—

अधोमुखम् वामकरम् तदूर्ध्व दक्षिषन्तया।
उत्तानं स्थापयित्वा च संयुक्तांगुलिकौ तदा।
हस्तौ तु मुष्टिकौ कृत्वा श्रोत्र पार्श्वे च कारयेत्।
तर्जन्यौ दर्शमेदूर्ध्वयेषा निर्वाण सस्मृता ॥

बायें हाथ को अधोमुख और उसके ऊपर दाहिने हाथ को उत्तानमुख रखकर दोनों की अँगुलियाँ मिलाते हुए दोनों हाथों को मुट्ठी बाँध कर कान के पास कर लें और दोनों तर्जनी अंगुलियाँ ऊपर की ओर सीधे रखें।

वाममार्गी तन्त्र मुद्राएँ

तन्त्र मार्ग में दो प्रकार की दीक्षा मानी गई है—

(१) **होत दीक्षा**—जिसमें हवन-यज्ञ आदि प्रधान होते हैं।

(२) **योजनिका दीक्षा**—जिसमें सम्भोगादि क्रियाएँ प्रधान होती हैं।

सन् १९६२ ई. में बंगलौर (मैसूर राज्य) में मुझे एक तान्त्रिक संस्था के 'भैरवी चक्र' को देखने व समझने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहाँ मैंने देखा कि इन तन्त्रिकों में गुप्त भाषा तथा गुप्त संकेतों का बहुतायत से प्रयोग होता है। ये लोग पंचमकार साधना करते हैं। ये पाँच मकार हैं—मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन। इसी क्रम में ये लोग तीर्थ मद्य

को कहते हैं, पुष्प माँस को, तृतीया मीन (मछली) को, चतुर्थी मुद्रा (संकेत) को, और पंचमी मैथुन (सम्भोग) को कहते हैं। गुरु को कौलाचार्य या आर्द्रवीर तथा साधक को शाम्भव, गण, भैरव, एवम् साधिका को देवी, शाम्भवी, भैरवी आदि कहते हैं। यदि इनकी सभा में कोई विधर्मी आ जाय तो शुष्क पशु, विमुख, दुर्मुख या कंटक नाम देते हैं। वैसे अपने नये सदस्य को ये 'पशु' ही कहते हैं। इनके विचार से तन्त्र ज्ञान से रहित मनुष्य पशु के समान हैं। उसे वे दीक्षा देते हैं। विश्वसार तन्त्र में लिखा है—

दीप्येत ज्ञान-सद्भावः क्षीयते पशुवासना।
दान-क्षपण संयुक्ता दीक्षा तेनेह कथ्यते॥

(इससे ज्ञान और सद्भाव प्रदीप्त होता है। पशु-वासना क्षीण होती है। दान और त्याग भावना बढ़ती है। इसलिए इसे दीक्षा कहते हैं।)

पशु-भाव दूर करने के लिए तीन प्रकार की दीक्षा दी जाती है—शाम्भवी, कुण्डलिनी और मान्त्री। **शांभवी** में साधक अपने को संज्ञाशून्यता की स्थिति में लाकर महामाया की शक्ति से ओत-प्रोत होना सीखता है जो संज्ञा शून्यता की स्थिति में सम्भोग करने से प्राप्त होती है। **कुण्डलिनी में साधक अपनी शक्ति को शिव से जोड़कर स्वयं 'शिव' हो जाता है। मान्त्री** में साधक अपनी शक्ति को ब्रह्मांड में प्रसारित कर ब्रह्मांडीय शक्ति को अपने में समाहित करना सीखता है। 'बलदेवकान्तानुशीलन' में तान्त्रिक सम्भोग के बारे में कहा है—

वित्तिः प्राङ्मैथुनात् भोग-मैथेन रागिणः।
उपादानं तु भोगानां प्राप्यते परिधावतः॥
स भविष्यद्भवफलं कुरुते कर्मतद्भवः।
प्रति संधिः पुनर्जातिः जरामरणमाविदः॥

(तान्त्रिक विधि से मैथुन करने से पूर्व भोग और मैथुन की तृष्णा प्रत्येक समय व्यक्ति के मन पर छाई रहती है और उसकी प्राप्ति के लिए वह निरन्तर भागता रहता है। भविष्य में भोग सुख की प्राप्ति के लिए बार-बार कर्मों में प्रवृत्त होता है और जरा, मरण और जन्म के चक्र में चलता रहता है)। परन्तु जो तान्त्रिक विधि को अपनाता है उसके लिए—

"मैथुनस्य परावृत्तौ विभुत्वं लभ्यते परम्"

मैथुन शिवत्व को प्राप्त करने का मार्ग बन जाता है।

'शकुन्यतीन्द्रानुवर्तन' में कहा गया है कि 'शिवमचित्तैकाग्रता समाधिः' अर्थात् शिवत्व की ओर चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। जिस प्रकार बौद्धतंत्र 'शील' से काया शुद्धि मानता है उसी प्रकार 'समाधि' से चित्त-शुद्धि होती है। चित्त शुद्धि होने पर परम ज्ञान अर्थात् प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। तन्त्र के आधार पर संभोग समाधि की तैयारी है। अर्थात् जितना अधिक आनन्दपूर्ण सम्भोग होगा उतनी ही अधिक आनन्दपूर्ण समाधि होगी। व्यावहारिक शब्दों में आप यह कह सकते हैं कि जितना अधिक समय सम्भोग में

आप लगायेंगे उतने ही अधिक लम्बे समय तक आपका चित्त शिवत्व की ओर अग्रेषित होगा। दूसरी ओर, उतने ही अधिक लम्बे समय तक आप पुनः सम्भोग के लिए लालायित नहीं होंगे, अर्थात् आप अधिक समय तक ब्रह्मचर्य धारण करने में समर्थ हो सकेंगे। इसलिए जहाँ तन्त्र यह कहता है कि सम्भोग समाधि की तैयारी है वहीं वह यह भी कहता है कि ब्रह्मचर्य संभोग की तैयारी है। **जो ब्रह्मचारी नहीं रह सकता वह संभोग नहीं कर सकता। इसलिए तन्त्र में जितना आवश्यक एक सम्भोग है, उससे सौ गुना आवश्यक ब्रह्मचर्य है। लोग तन्त्र और सम्भोग की बात आने पर तन्त्र की पद्धति को बिना जाने ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं,** इसलिए अप्रासंगिक होते हुए भी मैंने इसे यहाँ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

तन्त्र की आन्तरिक साधना के अंग

मन्त्र, तन्त्र, मुद्रा शक्ति और तत्व हैं। मन्त्र और तन्त्र हम पीछे स्पष्ट कर आये हैं। शक्ति और तत्व की बातें आगे के अध्यायों में आयेंगी। अब इनकी मुद्राएँ देखिये—जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ मुद्रा का अर्थ है संकेत अथवा **प्रतीक** इसी आधार पर रुपये को मुद्रा अथवा मुहर कहा जाता है। वह किसी विशेष राजा अथवा राज्य का 'प्रतीक' होता है। एक का अंक (१) लिंग की मुद्रा का प्रतीक है। शून्य (०) योनि की मुद्रा है। दस (१०) का अंक समस्त विश्व (समष्टि) की मुद्रा है।' संभोग की मुद्रा है। एक कान की लौर (नीये का भाग) पकड़ कर खींचने का अर्थ है 'कोई खतरा नहीं, आ जाओ"। ठोड़ी पर हाथ रखने का अर्थ है 'इस समय मुझसे बात मत करो'। एक आँख हाथ से बन्द करने का अर्थ है 'मैं तुमसे एकान्त में बात करना चाहता हँ।' दिल पर हाथ हाथ रखने का अर्थ है "भैरवी चक्र होने वाला है।" अन्य मुद्राएँ इस प्रकार हैं—

पुरुषत्रिक मुद्रा

यह मुद्रा एक लिंग व दो अंडकोष का प्रतीक है—दाहिने हाथ की कनिष्ठा व अनामिका को आधी मोड़ दें। मध्यमा, तर्जनी और अँगूठे को सीधा रहने दें।

तान्त्रिक योनि मुद्रा

दोनों हाथ की अनामिका और कनिष्ठा अँगुलियों का मोड़ लें। तर्जनी व मध्यमा सीधी रखें। अब दाहिने हाथ का अँगूठा व तर्जनी बायें हाथ के अँगूठे व तर्जनी से मिलायें तो योनि की मुद्रा बन जाती है। साधक या साधिका उसमें से इष्ट देवी या देवता के दर्शन करते हैं।

नारी पुरुष मुद्रा

दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर उसकी तर्जनी और अँगूठे के पोर को मिला दें। शेष, मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा को तर्जनी के साथ-साथ ही मुड़ने दें। इस प्रकार अँगूठे और तर्जनी द्वारा योनि को प्रकट किया जाता है और उसके ऊपर की तीन अँगुलियाँ पुरुषत्रिक का प्रतीक हैं।

पुरुषाग्रह मुद्रा

तर्जनी और मध्यमा के बीच में से अँगूठे को सीधा करके निकाल दें। ऐसी मुद्रा पुरुष द्वारा स्त्री को संभोग का आग्रह करने के लिए दिखाई जाती है। इसके लिए पुरुष द्वारा पृथ्वी के समानान्तर हाथ रखते हुए नमस्ते की मुद्रा भी दिखाई जाती है।

महिला मुद्रा

नारी-पुरुष मुद्रा यदि कोई स्त्री किसी पुरुष को इस ढंग से दिखाये गये अँगूठा और तर्जनी वाला भाग (योनि भाग) पुरुष की ओर हो तो वह स्त्री द्वारा पुरुष से मैथुन के आग्रह की मुद्रा बन जाती है।

प्राणायाम से पूर्व के निर्देश

(१) स्थान सीलन व दुर्गन्ध से रहित, हवादार परन्तु गर्मी-सर्दी से रहित, मच्छर, मक्खी, चींटी आदि से रहित हो जहाँ बैठकर प्राणायाम करना हो।

(२) पृथ्वी पर बैठना हो तो कुश का आसन, मृग चर्म, ऊनी कम्बल आदि किसी कुचालक (Bad Conductor) वस्तु का प्रयोग करें जिससे शरीर के अन्दर पैदा होने वाली विद्युत पृथ्वी में न चली जाऐं यदि चौकी पर बैठना हो तो एक से तख्ते वाली, लगभग २ वर्ग फुट से बड़ी चौकी का प्रयोग करें।

(३) प्राणायाम करते समय मुँह सूर्य की ओर रखें अर्थात् प्रातः में पूर्व की ओर और सायंकाल में पश्चिम की ओर।

(४) प्राणायाम के साधक को सात्विक भोजन जैसे दूध, घी, हरी सब्जी, फल आदि का सेवन अधिक उपयोगी है। तामसी भोजन जैसे माँस, प्याज, लहसुन, तम्बाकू, शराब आदि शरीर की विद्युत ऊर्ज़ा की तरंग पैदा होने में देर लगाते हैं।

(५) प्राणायाम के साधक को ब्रह्मचर्य की जितनी आवश्यकता है हम बता ही आये हैं। सम्भोग काल में भी वीर्य की अधोगति का निषेध है।

(६) यदि व्यवस्था हो सके तो योग के कमरे को तथा उससे सम्बन्धित वस्तुओं को सामान्य जन से बचा कर रखें क्योंकि उन वस्तुओं तथा स्थान में आपकी विद्युत तरंगों का समावेश हो जाता है।

(७) मासिक धर्म तथा गर्भावस्था के दिनों में प्राणायाम निषेध है।

(८) किसी प्रकार का भय अथवा चमत्कार जैसा अनुभव होने पर भयाक्रान्त न हों और अपने सद्गुरु के सिवाय दूसरे को न बतायें।

(९) किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त होने पर उसका उपयोग यश, माया, भोग आदि के लिए न करके परमोद्देश्य के लिए ही उसका उपयोग करने का प्रण करें।

(१०) प्राणायाम की वर्णित विधि में अपनी ओर से कोई जोड़-तोड़ न करें।

(११) आसन और मुद्राओं का प्रयोग प्राणायाम को अधिक लाभदायक बनाता है।

(१२) यम-नियम से सम्बन्धित विषयों का क्रियात्मक अभ्यास ही शरीर को कुण्डलिनी-योग के उपयुक्त बनाता है। बिना यम-नियम साधन के आसन और प्राणायाम आध्यात्म के मार्ग में रोड़े बन जाते हैं।

(१३) शरीर जड़ और क्षीण होने वाले तत्वों से निर्मित है। इनमें गति क्षमता व ऊर्जा उत्पन्न करना प्राणायाम का काम है। इससे इन तत्वों अर्थात् शरीर कोषों की आयु बढ़ती है। क्षीण कोषों को बाहर निकालने और नये कोषों तक जीवन पहुँचाने का का काम एक गिलास पानी करता है। इसलिए योगासन, प्राणायाम आदि से पूर्व एक गिलास पानी पीने और अन्त में पेशाब करने का विधान है।

(१४) आवश्यक क्रियायें बिना किसी दबाव या कसाव के सम्पन्न करने के लिए कसे वस्त्र पहनना मना है। कम से कम वस्त्र पहनें और वक्ष स्थल ढका रखें।

(१५) ज्वर पीड़ित, क्षुधा पीड़ित (जिसे बहुत भूख लगी हो), एक दम खाली पेट तथा भरे पेट की दशा में प्राणायाम आदि निषेध हैं।

(१६) वज्रासन, कमलासन, वीरासान, सुखासन, पद्मासन, स्वास्तिकासन या सिद्धासन में प्राणायाम अधिक लाभप्रद होता है।

(१७) सूर्यास्त पूर्व भोजन और ब्रह्म मुहूर्त में प्राणायाम करना विशेष लाभप्रद है। तात्पर्य यह है कि लगभग १० घण्टे का अन्तर भोजन और प्राणायाम में हो जाय।

प्रयोजन के आधार पर प्राणायाम

प्रयोजन के आधार पर आपने पुस्तकों में कई प्रकार के प्राणायाम देखे होंगे। जैसे—श्वास व्यायाम (सामान्य प्राणायाम), बुद्धि विकासिनी श्वास व्यायाम, ध्वनि विकासी प्राणायाम, दुर्गन्धित श्वास निवारक प्राणायाम, अनहदी प्राणायाम (वीर्य निरोधक), ज्वर निवारक प्राणायाम, वीर्य स्तम्भक प्राणायाम (इसे ऊर्ध्वरेत: प्राणायाम भी कहते हैं)। सुखदी प्राणायाम (श्रम हर प्राणायाम भी कहते हैं)

रक्त संचार विकासिनी प्राणायाम, सर्वांग स्वास्थ्य प्राणायाम, शक्ति संचारक प्राणायाम, शीत निरोधक प्रणायाम, तीव्र ऊष्मक प्राणायाम, रक्त शोधक प्राणायाम, आँव निवारक (अमाशय रोग हरण) प्राणायाम, आशीर्वाद प्राणायाम, क्षुधा निवारक प्राणायाम, ताप वर्धक प्राणायाम, पित्त नाशक प्राणायाम, कफ नाशक प्राणायाम, पित्त वर्धक प्राणायाम, ई. एन. टी. (जीभ, गला, नाक, कान, तालू स्वस्थ रखने के लिए) प्राणायाम, दंत रोग निवारक प्राणायाम आदि।

इस 'प्राणायाम' विषय पर बड़े-बड़े मूर्घन्य विद्वानों की पुस्तकें आप पढ़ सकते हैं, परन्तु प्राचीन पुस्तकों के समझने के लिए उनकी योग भाषा कुछ अलग ही चलती है। 'गोपालांकुर अंकिता विनोद', 'पुनमाशोक हठ', 'मनोहर जनक श्वास', उमेशाशा तन्त्र, अरविन्दाविनाशार्चना, नौनिहालाकाश्सुदर्शन, देवेन्द्र महेशारविंद जगदीश, संजयाजयारडी-पीडी, वीनाशोकमीरौषा, वीर्सत्यर्मेश्ब्रह्म, लकुलीश तन्त्र, प्राग्वेद कालीन संस्कृति,

बेमकडफइजेज तन्त्र सार (जो कनिष्क के पिता ने लिखा), आदि अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में 'हठ योगी भाषा' कुछ इस प्रकार की है—आदित्य प्राणायाम (जिसे विष्णु प्राणायाम या सूर्य प्राणायाम भी कहा गया है) जो पित्तवर्धक प्राणायाम है, करने की प्राचीन विधि देखिये—

तर्जनी से चन्द्रावरोध कर पूरी शक्ति से पिंगला पूरक करो, जालंधर बंध से अंत: कुम्भक उचित अनुपात में करो। तत्पश्चात् सूर्यावरोध कर तेजी से इड़ा में रेचक कर दो।

इसका अर्थ आज की भाषा में इस प्रकार बनता है—बाँयें नासारंध्र को तर्जनी अँगुली से दबा लें। दाहिने नासारंध्र से पूरी शक्ति से (आवाज के साथ) श्वास को पेट फेफड़े और गले तक खूब भर लें। अब श्वास रोक कर जालंधर बंध लगा दें। अन्त: कुम्भक में अनुभव करें कि रोकी हुई श्वास नस नाड़ियों में होती हुई पैरों के नाखून, हाथों की अँगुलियों के पोरों और प्रत्येक माँसपेशी में भर रही है। जब कुम्भक का समय अनुपात के आधार पर पूरा हो जाय अथवा साँस रोके रोके घबराहट होने लगे तब दाहिने नासारंध्र को तर्जनी से दबा लें और बायें नासारंध्र से पूरी शक्ति से (आवाज करते हुए) रोकी हुई श्वास बाहर निकाल दें।

उन्हीं की भाषा में अर्थ इस प्रकार बनता है—तर्जनी से चन्द्र स्वर अर्थात् इड़ा नाड़ी का रास्ता बन्द करो। पिंगला नाड़ी खुली छोड़ कर पूरी शक्ति से सूर्य से पूरक कर लो। जालंधर बंध लगाकर अंत: कुम्भक द्वारा श्वास को नस नाड़ियों में प्रवाहित करो। अन्त: कुम्भक का समय रेचक, कुम्भक, पूरक के अनुपात को ध्यान में रखते हुए अथवा शरीर सामर्थ्य का ध्यान रखते हुए रखें। बाद में पिंगला नाड़ी अर्थात् सूर्य स्वर को बन्द करके इड़ा नाड़ी खोल कर तेजी से चन्द्र स्वर से रेचक कर दो।

संसार में प्रत्येक दस-पन्द्रह मील के बाद जन-भाषा में अन्तर आ जाता है। यही बात समय के बारे में भी लागू होती है। प्रत्येक दस-पन्द्रह वर्ष बाद जन-भाषा में अन्तर होन लगता है। मैं हिन्दी, अवधी, ब्रज या अंग्रेजी किसी भी एक भाषा की ही बात कर रहा हूँ। नदी से इस पार जो हिन्दी भाषा बोली जाती है उसमें और नदी के उस पार बोली जाने वाली हिन्दी भाषा में अन्तर हो जाता है। नंदी के इस पार कहेंगे 'कहाँ जातुऐ', तो दूसरी पार वाले बोलेंगे 'कहाँ जाँतुऐ'। आज से बीस वर्ष पूर्व लिखी गई पुस्तक की हिन्दी और आज की हिन्दी में आपको स्पष्ट अन्तर प्रकट होगा। हमें जो योग विषयक पुस्तकें प्राप्त होती हैं उनमें स्थान के कारण तथा समयान्तर के कारण भाषा में अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों पहलुओं को ध्यान में रखकर ही प्राचीन लिपि की पुस्तकों को पढ़ना और समझना पड़ता है।

एक तिब्बती पुस्तक में लिखा था कि विष्णु के पैर के अँगूठे के नाखून से गंगा निकली परन्तु उस पुस्तक के आवरण पर शंकर जी का चित्र था जिनके सिर में से गंगा प्रवाहित हो रही थी। एक पौराणिक कथा के अनुसार गंगा ब्रह्मा के कमण्डल से निकली

और शिव की जटाओं में जाकर ठहरी। इन सबका आप अर्थ लगाने बैठें तो आश्चर्य मे रह जायेंगे क्योंकि तीनों बातें एक दम सही हैं। अब पूछिये, कैसे ?

ब्रह्मा के समय में ब्रह्मा का राज्य कश्यप क्षेत्र (जहाँ आज भी कैस्पियन सागर है) से हिमालय तक था। प्राचीन ईरान के कपाडोसिया प्रान्त में इन्द्र और वरुण की शपथ के शिलालेख मिले हैं। वरुण को पाश्चात्य विद्वान 'लार्ड क्रियेटर', देव कर्तार, अर्थात् ब्रह्मा कहते हैं। तात्पर्य यह है कि गंगोत्री ब्रह्मा के राज्य क्षेत्र में थी। बाद में जब विष्णु ने अपना राज्य अलग किया (बारह आदित्य भाइयों में ब्रह्मा सबसे बड़े और विष्णु सबसे छोटे थे) तो गंगोत्री ब्रह्मा के राज्य से विष्णु के राज्य क्षेत्र में आ गई। विष्णु का राज्य जहाँ समाप्त होता था, शंकर का राज्य, वहाँ से प्रारम्भ होता था, अर्थात् विष्णु के राज्य की अन्तिम सीमा, पैर का नाखून और शंकर जी के राज्य का प्रारम्भ सिर की जटायें, जहाँ थीं, वहीं से गंगा का उदभव हुआ। ऐसे अनेक रूपकों तथा मानवीकरणों से हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं।

कई स्थानों पर, किसी विशेष घटना को समय की आवश्यकता के अनुरूप रंग कर भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उदाहरणार्थ—बहुत कम लोगों ने यह सुना होगा कि राधा और कृष्ण का विवाह हुआ था। लोक दृष्टि में राधा का विवाह कृष्ण के मामा से हुआ था और राधा, कृष्ण की मामी थीं। 'नित्यदम्पति' (श्री राधा कृष्ण परिचय) का उद्धरण मैं एक शास्त्रीय विशेषांक 'कल्याण' पृष्ठ ५१२ से उद्धृत कर रहा हूँ—

"समाज की दृष्टि में श्री राधा नित्य कुमारी रहीं, किन्तु श्रुतियों के संरक्षक को मर्यादा की रक्षा तो करनी ही थी। श्याम सुन्दर की वे अभिन्न सहचरी होकर शास्त्र-दृष्टि से धरा पर उनसे अभिन्न हों, यह कैसे हो सकता था। नन्दनन्दन ने उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया और उस पाणिग्रहण के पुरोहित साक्षी थे स्वयं जगत्-सृष्टा लोक पितामह।

श्री राधा लोक दृष्टि से नन्दनंदन से कुछ बड़ी थीं। वन में ब्रजेश्वर नन्दराय जी अपने कुमार के साथ गये थे। सम्भवतः गायों का निरीक्षण करना था उन्हें। श्री वृषभानुजी भी पहुँचे थे इसी कार्य से और वन तथा गौओं के अवलोकन का कुतूहल लिये उनकी लाड़िली भी उनके साथ आयीं थीं। सघन मेघों से सहसा आकाश आच्छादित हो गया, लगता था कि शीघ्र ही वर्षा होगी। श्री ब्रजेश्वर को लगा कि बच्चों को घर चले जाना चाहिए। उन्होंने कीर्ति कुमारी को पुकारा—"बेटी तू घर चली जा। देख, वर्षा होने वाली है।" कन्हाई को अपने साथ ले जा। मैं तेरे बाबा के साथ-साथ थोड़ी देर में लौटता हूँ।"

ब्रजेश्वर का अनुरोध संकोचमयी वृषभानुनंदिनी ने स्वीकार कर लिया। मोहन को साथ लेकर लौटी, किन्तु एकान्त में उन दोनों का नित्य स्वरूप छिपा कैसे रह सकता है ? नन्दनन्दन का बाल रूप अदृश्य हो गया और वे नित्य किशोर रूप प्रकट हो गये। कीर्ति कुमारी की मूर्ति भी अब किशोरी मूर्ति हो चुकी थी। इसी समय गगन से अपने उज्ज्वल हंस पर बैठे ब्रह्मा उतरे। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"श्रुति की मर्यादा आज सौभाग्य भूषित हो जाय और इस सेवक को भी सुअवसर प्राप्त हो। ब्रजधरा पर आप दोनों का सविधि परिणय कराने की अनुमति मिले मुझे।"

मन्द स्मित से दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। पुष्पित लतायें झुक उठीं। जिनका संकल्प कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि करता है, उनके लिए—उनके विवाह के लिए योगमाया को सामग्री प्रस्तुत करने में कितने क्षण लगते थे। अग्नि प्रज्जवलित करके ब्रह्मा जी ने मन्त्र पाठ किया। अग्नि की सात प्रदक्षिणा कराईं। पाणिग्रहण, सिंदूरदान आदि संस्कार सविधि सम्पन्न हुए। नित्य-दम्पति एक आसन पर आसीन हुए। धन्य हो गये सृष्टिकर्त्ता के आठों लोचन। वे हाथ जोड़े अपलक देख रहे थे इस अनुपम सौन्दर्य राशि को। वर वधू वेश में यह युगल-मूर्ति........।"

इस कहानी में एक बड़ी सामान्य घटना का वर्णन किया गया है जो एकान्त पाकर किशोर वय के बाल प्रेमियों के बीच घटित हो सकती है। परन्तु आज के सामाजिक आदर्शों और मानदण्डों का ध्यान रखते हुए टीकाकार ने इस घटना को विशेष रंगाई-पुताई करके प्रस्तुत किया है।

ऐसी कहानियों को पढ़ने और उनके अर्थ निकालने का प्रश्न इतना गम्भीर नहीं है, जितना कि योग और प्राणायाम जैसी विधियों के अर्थ लगा लेने का। क्योंकि यहाँ तो उस अर्थ के आधार पर सम्पूर्ण जीवन ही दाँव पर लग जायेगा। मनमाने अर्थ से कोई हानि न हो पाये इसलिए यह आवश्यक है कि इस विषय की प्राचीन पुस्तकें पा जाने पर भी किसी विद्वान के निर्देशों का पालन करना चाहिये। जिस व्यक्ति ने दस विधियों को क्रियात्मक रूप में करके देखा हो वह ग्यारहवीं विधि के क्रियात्मक रूप को उसे बिना किये ही समझ और समझा सकता है परन्तु जिसने **क्रियात्मक ज्ञान नहीं लिया वह हजारों विधियाँ पढ़ लेने पर भी, एक भी विधि का क्रियात्मक अन्तर नहीं समझ सकता, समझाना तो दूर की बात है। योग के विषय में जो विधि अधूरी हो अथवा जिसका वक्तव्य स्पष्ट न हो उसे न अपनाना ही अधिक श्रेयस्कर रहता है** आगे हम कुछ प्राणायाम विधियाँ अत्यन्त सरल व बोधगम्य भाषा में दे रहे हैं। पीछे हम सुदर्शन प्राणायाम तथा तृप्ति प्राणायाम की बातें कर आये हैं। सुदर्शन प्राणायाम को यथास्थान दे दिया गया है।

तृप्ति प्राणायाम

वैवस्वत मनु के एक पुत्र शर्याति थे। इन्होंने गुजरात प्रान्त में खंभात की खाड़ी के पास अपना आनर्त राज्य स्थापित किया था। शर्याति के एक पुत्र आनर्त नाम का था और पुत्री सुकन्या थी। जो भृगु के पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याही गई थी। च्यवन आनर्त के राज्य के दामाद भी थे और पुरोहित भी। तृप्ति प्राणायाम उन्हीं की खोज है। औषधि के क्षेत्र में अपने अद्‌भुत अवलेह 'च्यवन प्राश' के कारण वे जगत् प्रसिद्ध हैं।

विधि—गहरी श्वास लें (पेट भर कर श्वास लें) और गहरी श्वास निकालें (पेट खाली करके श्वास पूरी बाहर निकाल दें) बिना रुके, तुरन्त, फिर पूरी श्वास पेट भर करले और बिना रुके पूरी श्वास बाहर कर दें। इस श्वास से तृप्ति का अनुभव होता है अत: यह तृप्ति प्राणायाम कहलाता है। पूरी श्वास भरना और फिर पूरी श्वास बाहर निकाल देना यह एक प्राणायाम होता है। इसे किसी भी आसन में किया जा सकता है।

सुवर्णा प्राणायाम

पद्मासन या सरलासन में बैठकर हाथ घुटनों पर रख लें। आँखें बन्द कर लें अथवा नाक की नोंक पर दृष्टि रखें। पीठ, गर्दन और रीढ़ एक दम सीधी रहे। अब पेट को फुलायें। थोड़ी देर बाद पेट को पिचकाऐं और अन्दर की ओर घुमायें। इस अभ्यास को ५ बार खाली पेट करें। अब पेट को पिचकाते हुए धीरे-धीरे नाक द्वारा श्वास बाहर निकालें। जितना अधिक पेट पिचकायेंगे फेंफड़े उतने ही खाली हो जायेंगे। तत्पश्चात् धीरे-धीरे नाक से श्वास अन्दर भरते हुए पेट को फुलाते चलिए। इससे फेफड़ों का निम्न भाग वायु पूरित हो जाता है। अब भी श्वास बराबर अन्दर खींचते रहें और पेट को थोड़ा-सा पिचका कर छाती को फुलायें (सीना चौड़ा करें) इससे फेफड़ों का मध्य भाग वायु पूरित हो जायेगा। अब भी श्वास भीतर की ओर खींचते रहे और अब कंधों को अधिक से अधिक ऊँचा उठाते चलें। पेट स्वत: ही अन्दर की ओर जाने लगेगा। इस क्रिया से फेफड़ों का ऊपरी भाग वायु पूरित हो जायेगा। इस (कंधे उठी हुई) दशा में ५ सेंकिड तक श्वास रोककर (अन्त: कुम्भक करके) धीरे-धीरे श्वास को गहराई से बाहर फेंकते हुए पेट को बहुत अन्दर की ओर पिचका दीजिये। साथ ही शरीर को ढीला छोड़ते जाइये।

राहुल्शेफाली प्राणायाम

किसी भी आसन में सुखपूर्वक बैठकर बाँया हाथ घुटने पर रखें और दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा अँगुलियाँ दोनों भृकुटी के मध्य, मस्तक पर रखें। अँगूठा दाहिने नासारन्ध्र पर और अनामिका अँगुली बाँये नासारन्ध्र पर रखें। आँखें बन्द कर लें। अब दोनों नासारन्ध्रों से धीरे-धीरे पूरा श्वास बाहर निकाल दें। इसके पश्चात् अँगूठे से दाहिने नासारन्ध्र को दबाकर बन्द कर दें और बाँये नासारन्ध्र से धीर-धीरे परन्तु गहरा श्वास भीतर खींचना प्रारम्भ करें (अधिक अच्छा हो, श्वास खींचते समय, मन में एक समान लय और अन्तराल में एक-दो-तीन-चार बोलते हुए ८ तक गिनें। इससे श्वास खींचने के समय की गणना हो जायेगी) अब पूरा श्वास भर लेने के बाद बाँये नासारन्ध्र पर रखी अनामिका अँगुली से बाँया नासारन्ध्र भी बन्द कर दें। अब दोनों छिद्र बन्द करके श्वास को चार की गिनती तक रोके रखिये। तात्पर्य यह है कि साँस खींचने से साँस रोके रखने का समय आधा होगा। अब दाहिना नासारन्ध्र खोलकर धीरे-धीरे आठ तक गिनते हुए पूरा श्वास बाहर निकाल दें और बाँया छिद्र बन्द रखें। जब पूरी श्वास गिनते हुए पूरा श्वास बाहर निकाल दें और बाँया छिद्र बन्द रखें। जब पूरी श्वास बाहर निकल जाय तो दाहिने नासारन्ध्र से पुन: श्वास भरना प्रारम्भ करें और आठ तक गिनते जायँ। फिर अँगूठे से दाहिना नासारन्ध्र बन्द करके (दोनों नासारन्ध्र बन्द होने से) अन्त: कुम्भक चार गिनने तक करें। अब बाँया नासारन्ध्र खोलें (दाहिना बन्द रखें) और धीरे-धीरे गहराई से आठ गिनने तक श्वास बाहर निकाल दें। यह एक 'राहुल्शेफाली प्राणायाम' हुआ। इस प्राणायाम को विधि के आधार पर वैकल्पिक तथा अनुलोम विलोम प्राणायाम भी कहते हैं क्योंकि इस विधि में जिस स्वर से रेचक किया जाता है उसी से पूरक किया जाता है, परन्तु पूरक के बाद उसी नासाछिद्र से रेचक नहीं किया जाता।

योग की भाषा में राहुल्शेफाली प्राणायाम विधि का संक्षिप्तीकरण देखिये—सूर्य और चन्द्र से रेचक करें। चन्द्र से पूरक करके अन्त: कुम्भक करें, फिर सूर्य स्वर से रेचक कर दें। अब सूर्य स्वर से पूरक करके अन्त: कुम्भक करें। तत्पश्चात् चन्द्र स्वर से रेचक कर दें। अनुपात ८ : ४ : ८ का रखें।

स्वर्णा प्राणायाम

स्वर्णा और सुवर्णा में अन्तर केवल 'बाह्य कुम्भक' का है । शेष विधि उसी प्रकार है—दोनों नासारन्ध्रों से गहराई से श्वास बाहर कर दें। फिर अँगूठे से दाहिना नासारन्ध्र बन्द कर बाँये स्वर से चार तक गिनते हुए पूरक करें। अब अन्त: कुम्भक में सोलह तक गिनें। आठ तक गिनते हुए दाहिने स्वर से रोचक करें। अब दोनों नासारन्ध्र बन्द करके बाह्य कुम्भक करने के लिए चार गिनने तक श्वास बाहर ही रोके रखें। अब दाहिने नासारन्ध्र से ४ गिनने तक पूरक करें (अब आप वहीं हैं जहाँ से प्राणायाम प्रारम्भ हुआ था)। यहाँ पर समय का अनुपात ४ : १६ : ८ : ४ : : ४ : १६ : ८ : ४ का रहा है।

भारतीय महासागर में जो असंख्य छोटे-छोटे द्वीप समूह हैं उनमें एक द्वीप 'सुम्बा' है। द्वीप के बीच में एक बड़ी झील है जिसमें वहाँ के विभिन्न झरनों का जल एकत्र हो जाता है, इस झील का नाम 'स्वर्णा झील' है। यह पूरा द्वीप चुम्बक पत्थर का है इसलिए वहाँ न जलयान जाते हैं न लोहा लगी हुई नावें। यहाँ अन्य द्वीपों की तरह कन्याओं का बाहुल्य है और वे आकर्षक उठाव वाली, तपाये सोने के समान रंग वाली, सभ्य संस्कृति, कला प्रेमी तथा प्राकृति भाषा बोलने वाली होती हैं। वहाँ प्रति ५० नारियों के बीच एक पुरुष होता है जो महा-साधना में रत रहता है। उन्हीं की साधना का एक भाग यह 'स्वर्णा प्राणायाम' है। कुछ शास्त्रीय पुस्तकों में इसे नाड़ी शोधन प्राणायाम भी कहा गया है, क्योंकि इस प्राणायाम से नाड़ियों अर्थात् स्नायु मण्डल की शुद्धि होती है। जिस व्यक्ति को ब्लड प्रैशर का रोग हो वह कुम्भक न करे, केवल पूरक और रेचक ही करे।

कालिका प्राणायाम

पुण्यजन राक्षसों का राजा मधु (जो यादवों की शाखा में कुन्त राज्य का स्वामी था) लंका के रावण के रंगमहल में से रावण के नाना सुमाली के बड़े भाई माल्यवान की पुत्री कुम्भीनसी को चुरा लाया था। बाद में रावण के क्रोध से बचने के लिए उसने राक्षस धर्म स्वीकार कर लिया था, अन्यथा वह दैत्य था। रक्ष धर्म की दीक्षा स्वरूप कुण्डलिनी जागरण के लिये उसे कालिका प्राणायाम की दीक्षा दी गई थी। इससे उसकी कुण्डलिनी तो बाद में जाग्रत हुई पहले उसका कब्ज समाप्त हुआ, पाचन शक्ति तीव्र हुई, मोटापा और अतिरिक्त चर्बी पिघल जाने से वह बहुत वर्षों तक तरुण ही बना रहा।

विधि—उपयुक्त आसन में बैठकर बायें नासारन्ध्र को तर्जनी अँगुली से दबा लें। दाहिने नासारन्ध्र से पूरी शक्ति से ध्वनि के साथ श्वास खींचे। जब श्वास पूरी भर जाय तो गले में जालंधर बन्ध लगाकर अन्त: कुम्भक करते हुए भावना करें कि रुकी हुई समस्त श्वास शरीर की नस नाड़ियों से होकर पैर के नाखूनों, हाथों के नाखूनों तथा रोम-रोम तक पहुँच गई है। जब घबराहट सी अनुभव होने लगे तो दाहिने नासारन्ध्र को तर्जनी से दबा

लें और बाँये नासारन्ध्र से (ध्वनि के साथ) रुकी हुई श्वास बाहर फेंक दें। इस विधि से शरीर में पित्त की वृद्धि होती है अत: इसे कहीं-कहीं पित्तवर्धक प्राणायाम भी कहा गया है।

ज्वालाशान्ति प्राणायाम

बात बहुत प्राचीन काल की है। एक बार रावण दानव-मकराक्ष के चंगुल में आ गया। मकराक्ष ने रावण की बलि जल-देव के सम्मुख देने का आयोजन कर लिया। रावण के साथ एक दैत्य बाला उसकी अभिसार सखी भी थी जिसने समुद्र में तूफान आ जाने पर रावण को डूबते से बचाया था ऐसी अभिसार सखी भी रावण के साथ ही बलि के यूप में जल-देव की मूर्ति के सम्मुख बाँध दी गई थी। रावण के सहायक उसे बचाने के लिए बहुत देर में पहुँच पाये। रावण ने समय बिताने के लिए बलि से पूर्व मन्त्र पाठ स्वयं करने का बहाना बनाया परन्तु फिर भी काम नहीं बना और रावण की बलि देने के लिए दानव मकराक्ष हाथ में खड्ग लेकर अपने पुरोहित 'चरक' के साथ आ धमका। रावण की अभिसार सखी ने यहाँ पर भी अपनी जान देकर अपने रमण को बचा लिया। वह बोली "रावण मेरा रमण है इसे अपने सामने मरते हुए मैं नहीं देख सकती। इसलिए दानवेन्द्र मकराक्ष पहले मेरी बलि दें। अपनी माँ को खो कर मैंने इसकी प्राणरक्षा की थी।" मकराक्ष के पास अधिक कहानी सुनने को समय नहीं था अत: उसने अपनी महिषी (रानी) को संकेत दिया। चरक के हाथ उठाकर मन्त्र उच्चार किया—"कुमारी मनूंढां कन्यामालभेत।" और यज्ञपूत खड्ग दानव महिषी ने दैत्य बाला की गर्दन पर मार दिया। यूप को उखाड़ने और बन्धन युक्त होने के रावण के सारे प्रयत्न निरर्थक गये। उसके नेत्रों में अन्धकार छा गया। इतनी देर में ही रावण के सहायक वहाँ पहुँच गये और रावण ने अन्त में मकराक्ष को बलि के धधकते कुण्ड में फेंक दिया। ऐसी बहुत सी दन्त कथायें 'कुण्डलिनी तन्त्र रहस्य' में दी गई हैं।

अपनी प्राणदायिनी अभिसारसखी के इस प्रकार मरने का रावण को इतना दु:ख हुआ कि वह उच्च रक्त चाप (High Blood Pressure) का रोगी बन गया। शंकरजी ने उसे 'ज्वाला शांति प्राणायाम' सिखाया, जिससे वह सभी पित्त विकारों से मुक्त हो गया। उसका शरीर और मन शान्त हो गया, चेहरे पर कान्ति और आभा प्रस्फुटित होने लगी।

विधि—किसी भी सुखकर आसन में बैठें। अपनी जीभ के दोनों किनारे उठाकर, बीच में गहरी नाली जैसे बनाकर होठों को थोड़ा सा बाहर निकाल लें। इस समय जीभ का आकार कौए की चोंच के समान हो जायेगा इस नलकी जैसे भाग से जीभ पर से श्वास धीरे-धीरे अन्दर की ओर खींचिये। जब पेट में श्वासपूरी तरह भर जाय तो मुँह को बन्द कर कुम्भक किये रहें। जब घबराहट सी प्रतीत होने लगे तो श्वास को नाक से बाहर निकाल दें। ध्यान रखें श्वास जीभ से लें और नाक से बाहर निकालें।

सुनीत ग्रीन्द्र प्राणायाम

ज्वाला शान्ति और इस प्राणायाम में केवल इतना अन्तर है कि इसमें कुम्भक नहीं है। जीभ से श्वास अन्दर खींचते समय सीटी जैसी ध्वनि करते हुए श्वास भरें और बिना रोके, तुरन्त नाक द्वारा बाहर निकालें।

ये दोनों प्राणायाम पित्त का शमन करने वाले हैं अतः इन्हें पित्तनाशक प्राणायाम भी कहते हैं। यह प्राणायाम कफ प्रकृति के लोगों के लिए उपयुक्त नहीं है। पित्त प्रकृति वाले कभी भी कर सकते हैं। ग्रीष्म ऋतु में तरावट पाने के लिए यह उत्तम श्वास व्यायाम है।

रमेश मोहन प्राणायाम

कैस्पियन सागर के पास एक स्थान बाकू है। उसके पास बेरखा नदी है। इस नदी के तट पर सतयुग में सुषा नगरी थी जिसे उसके संस्थापक के नाम पर मन्युपुरी भी कहते थे। एक दिन अचानक बाकू में ज्वालामुखी फट पड़ा। यदि आप पर्शिया के नक्शे को ध्यान से देखें तो वहाँ दजला और फरात नामक नदियाँ पायेंगे। उनमें आज भी ग्लेशियर्स (बर्फ के पहाड़) जमते हैं। बाकू ज्वालामुखी के फटने से उस स्थान का तापक्रम अचानक इतना अधिक बढ़ा कि सारे बर्फ के ग्लेशियर्स पलक झपकते पिघल गये। वहाँ का सारा वातावरण जलमग्न हो गया और महाप्रलय का तांडव प्रारम्भ हो गया। हजारों लोग पानी में डूब मरे। बाइबिल तथा अवेस्ता में इस प्रलय को 'नूह' कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण तथा मत्स्य पुराण में भी इस प्रलय के बारे में बताते हुए लिखा है कि "प्रलयकाल में मनु के हाथ एक मछली आ गई उसकी पूँछ पकड़ कर वे प्रलय के जल से बाहर निकल पाये।" सम्भवतः प्रलय के समय मनु ने मत्स्य जाति के किसी नेता की सहायता से अपने परिवार की प्राणरक्षा की थी। बेबीलोनियन दन्त कथा के अनुसार प्रलय से पूर्व इस क्षेत्र में मत्स्य लोगों का ही राज्य था, जो प्रसिद्ध नाविक थे। ऐसी बहुत सी पुरातन सूचनायें मेरी दूसरी पुस्तक 'कुण्डलिनी तन्त्र रहस्य' में पढ़ सकते हैं। इस महाप्रलय से प्रभावित लोगों में सील और सर्दी ने बीसियों प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न कर दीं।

मनु ने उस काल में ऐसे ताप वर्द्धक प्राणायाम का प्रचार किया जो आकस्मिक शीत से रक्षा कर, अपना प्रभाव तत्क्षण ही परिलक्षित करने लगे, गरिष्ठ पदार्थों तथा अधिक खाये हुए भोजन को भी पचाने की शक्ति दे, अत्यधिक ठण्डे स्थानों पर भी पसीना निकाल दें और शीत के प्रभाव से उत्पन्न श्लेष्मा को नष्ट कर दे।

विधि—किसी भी सुखमय आसन में बैठें। दाहिनी तर्जनी से दाहिना स्वर बन्द करके बाँये स्वर से धीरे-धीरे लगातार इतनी श्वास खींचते जायँ कि वह पेट छाती और गले तक पूरी भर जाय। अब जालंधर बंध लगाकर पूरी शक्ति से जब तक श्वास अधिक से अधिक देर तक रोक सकें, रोके रहें। घबराहट होने पर बाँये स्वर को बन्द करके दाहिने स्वर से रेचक करें। तत्पश्चात् कुछ देर रुक कर सामान्य श्वासें लें। तब पुनः इसी प्रकार प्राणायाम करें। यहाँ आप देखेंगे कि शरीर में गर्मी पैदा करने वाला भाग इस प्राणायाम का कुम्भक है। इस कुम्भक का समय धीरे-धीरे अभ्यास से बढ़ायें। श्वास को कंठ से

ऊपर न चढ़ने दें अन्था अचेत हो जाने की आशंका है। पित्त प्रकृति के व्यक्तियों के लिये ग्रीष्म ऋतु में यह प्राणायाम करना उचित नहीं है।

नीलम चैतन्य प्राणायाम

एक यूरोपियन महिला एलेक्जेन्ड्रा डेविड नील चौदह वर्ष तक तिब्बत में रही और वहाँ के पहाड़ों की गुफाओं और देहातों में रहने वाले बुद्ध भिक्षुओं से ज्ञान प्राप्त करके लामा योगी बन गई। उसने तिब्बत और हिमालय में बर्फ से ढके पर्वतों में नंगे घूमने वाले योगियों और साधुओं के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक तथ्य प्रस्तुत किये हैं। लद्दाख क्षेत्र में ससपोल के समीप ऐसे नंगे योगी बहुत हैं जो बर्फीले मौसम में भी सर्दी अनुभव नहीं करते। वहीं के एक योगी की तापबर्धन प्राणायाम विधि एलेक्जेन्ड्रा डेविड नील के अनुसार इस प्रकार है—खड़े-खड़े अथवा किसी मुखमय आसन में बैठें। दाहिनी तर्जनी से बाँया स्वर बन्द कर लें और दाहिने स्वर से शीघ्रता से रेलगाड़ी के इंजन की तरह छुक.......छुक.......छुक.......छुक.......जैसी तेज आवाज करते हुए श्वास खींचे और छोड़ें। श्वास को प्रारम्भ में धीमी ठोकर और लम्बी आवाज में निकालें। ठोकर की शक्ति का आभास नाक के सामने लगी हुई हथेली से होगा। बाद की श्वासों को शनः-शनः छोटी और तीव्र ठोकरदार जल्दी-जल्दी निकालें और भरें। ऐसी श्वासें 1 मिनट तक लेकर पुनः कम शक्ति वाली और लम्बी आवाज वाली श्वासें (जैसी प्रारम्भ में ली थीं) लेते हुए शनः शनः सामान्य श्वास पर आ जायँ।

यह प्राणायाम फेफड़ों में जमे बलगम को बाहर निकालने, भूख बढ़ाने, काम वेग शांत करने तथा शरीर में ताप उत्पन्न करने में अत्यन्त उपयोगी है। मौसम बदलने के समय उत्पन्न श्वास संस्थान के अवरोधों को दूर करने के लिय यह प्राणायाम लाभदायक है। इसमें तापवर्धक कार्य पूरक और रेचक द्वारा सम्पन्न होता है। कुम्भक तो इस विधि में है ही नहीं।

पुष्प गिर्राज प्राणायाम

दीपिकांचल, प्रमोदवीं, विष्णु, विमलेश, धर्मेन्द्रोम, मुकेशाचला, अरुणांजू, विजयानन्द, शुभाजयभारताभासीम्याशा, जगदीश्वीणारविंमीरा, देवेन्द्रूषा, तथा महेशाशोक आदि प्राचीन ग्रन्थों में इस प्राणायाम की विधि थोड़े-थोड़े हेर-फेर से दी गयी है।

पीछे हमने बेरखा नदी के तट पर बसी सुषा नगरी की बात की है। प्रलय काल में इस नगरी में ऊँचाई अधिक होने के कारण जल नहीं पहुँचा। परन्तु चारों ओर प्रलय जल होने के कारण यह नगरी भी पूरी तरह उजड़ गई और वर्षों तक उजाड़ और वीरान पड़ी रही। यहाँ तक कि कालान्तर में इस पर पाँच फुट मोटा धूल का स्तर जम गया। प्रलय से पूर्व इस नगरी के वैभव का वर्णन पुराणों तथा पर्शिया के इतिहास में किया गया है। बहुत काल बाद दक्ष की पुत्री अदिति का सबसे बड़ा पुत्र 'वरुण' इस सुषा नगरी में आया। उसने धूल मिट्टी दूर करे, रुके जल को नहरें खोद कर समुद्र तक पहुँचाया, ऊँची-नीची भूमि को समतल किया और इस क्षेत्र में आदित्यों (आदिति से उत्पन्न आदित्य कहलाये) की

बस्तियाँ बसाईं और सुमेरु जाति को जन्म दिया। यही सुमेरु सभ्यता ईरान की प्राचीन शासक थी।

संसार के पुरातत्वविद डा. फ्रेंक और लेंग्डन आदि कहते हैं कि प्रोटोइलामाइट सभ्यता का ही विकसित रूप सुमेरु सभ्यता है। इस प्रोटोइलामाइट सभ्यता के बारे में पुरातत्वविद नहीं जान सके कि कहाँ से आई थी ? यह हमारे पुराणों में है। आप ध्यान से उन्हें पढ़ें तो पायेंगे कि यह 'चाक्षुष' जाति थी। सुमेर-सभ्यता काल की देन 'पुष्प गिर्राज प्राणायाम' है।

उन दिनों उस क्षेत्र का वायुमण्डल कफोत्पादक था जिसके कारण लोग बहुधा जुकाम से पीड़ित रहते थे। रात को सोतें समय उन लोगों के नासारन्ध्र अवरुद्ध हो जाते थे। नाक में माँस बढ़ जाता था। फेफड़ों में बलगम जमता था तथा जुकाम पुराना पड़ जाने के कारण अधिकतर लोगों की नाक से दुर्गन्ध आती थी। ऐसे समय में श्वास मार्ग शुद्ध, स्वस्थ और सुगम बनाने के लिये यह विधि कफ़नाशक सिद्ध हुई।

विधि—किसी भी सुखमय आसन में बैठ कर बाँये हाथ की बीच की दो अँगुलियों (मध्यमा और अनामिका) से दाहिने नासारन्ध्र को दबा कर तेज गति से शरीर के अन्दर की सारी वायु बाँये नासारन्ध्र से बाहर फेंके, और बाँये नासारन्ध्र से ही तुरन्त (बिना रुके) शीघ्रता से साँस भर लें। अब दाहिने नासारन्ध्र को खोल दें; और उसी हाथ के अँगूठे से बाँये नासारन्ध्र को दबाकर दाहिने नासारन्ध्र से तीव्रता से श्वास बाहर फेंक दें और तुरन्त ही तेज गति से उसी रन्ध्र से पुन: साँस भर लें। यह एक प्राणायाम हुआ।

बाबूरतन प्राणायाम

प्रीत्विशाल्कविताशौमेश, अखिलेश्राजेश्वरींनोजशिखा नीलिमानुपमा निशि तन्त्र, वेदृचाशिखा, मीर्रकिश्सौरभ गौरव, मुकुल्सुशील, ओम्भगवतीदिनेश गायत्री, निशिराज देवल तथा हरेन्द्रपूर्वादित्य आदि ग्रन्थों में उपर्युक्त प्राणायाम विधि को धीमी गति से करके नाड़ी शोधन की बात की है। राम कमल, भानु महाराज, हर्श्रींचंद, उमेद भगवान, देवकी श्रीध्वज, तथा कृष्ण यदु आदि के भी नाड़ी शोधन हेतु 'पुष्पगिर्राज प्राणायाम' की धीमि विधि को उपयुक्त एवं प्रभावशाली माना है जो कि 'बाबूरतन प्राणायाम' नाम से जानी जाती है।

विधि—किसी भी सुखमय आसन में बैठकर (जिसमें रीढ़, गर्दन और वक्षस्थल एक रेखा में सीधे रहें) दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिने नासारन्ध्र को दबा लें और बाँये नासारन्ध्र में धीरे-धीरे साँस खींचें कि वह फेफड़े पेट और पेट के नीचे मूलाधार तक भर जाय। अब साँस को बिना रोके तुरन्त बाँये नासारन्ध्र से ही धीरे-धीरे पूरी बाहर निकाल दें। थोड़ी भी हवा अंदर न छोड़ें। तत्पश्चात् बीच की दोनों अँगुलियों (मध्यमा और अनामिका) से बाँये नासारन्ध्र को बन्द करके दाहिने नासारन्ध्र से बहुत धीरे-धीरे पूरी श्वास अंदर भर लें। फिर बिना रुके उसी नासारन्ध्र से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकाल दें, थोड़ी भी अन्दर न छोड़ें। यह एक प्राणायाम हुआ।

साँस की दुर्गन्ध रोकने के लिये, अंगों में स्फूर्ति भरने तथा शरीर की रक्तवाहिनी, नलिकायें शुद्ध और स्वस्थ रखने में इस प्राणायाम का विशेष हाथ होता है। रक्त वाहिनी नलिकाओं में दोष उत्पन्न होने से रक्त चाप जैसे रोग हो जाते हैं, चाहे वह दोष किसी अवरोध के कारण हो अथवा चर्बी (Fat) बढ़ जाने के कारण।

सुबोधाजितेन्द्र प्राणायाम

मनुष्य की शारीरिक क्षमता अत्यन्त सीमित है। हम लोग अधिकतर देवताओं के ऐसे-ऐसे कारनामे पुराणों और शास्त्रो में सुनते आये हैं जो सामान्य पुरुष की शक्ति से परे हैं इसलिये देवताओं को पुरुषेतर मानने के लिये हम बाध्य हुए हैं। **वास्तव में देवगण भी जन्म जरा मरण युक्त व्यक्ति ही रहे थे।** यदि हम देवों के काल पर दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि उस समय दैत्य, दानव, नाग, यक्ष सभी जातियाँ शक्ति संपन्न रहीं थीं। उस काल में तीन सौ वर्षों के अन्दर चौदह देवासुर संग्राम (World War) हुए।

बिना शक्ति सम्पन्न हुए कोई संग्राम नहीं होता। शारीरिक शक्ति को वायु के अवरोध से कुछ देर के लिये बढ़ाया जा सकता है। आप कोई भारी वजन उठाना चाहें तो आपको अपनी श्वांस रोककर जोर लगाना पड़ता है। यदि इस बीच कोई आपको हँसा दे तो रोकी हुई हवा निकल जाती है और आप आवश्यक जोर नहीं लगा पाते। समय-समय पर शारीरिक क्षमता को बढ़ाने के लिये वायु अवरोध करके विभिन्न अंगों की नाड़ी अवरोधक शक्ति बढ़ाई जाती है।

विधि—सिद्धासन, पद्मासन या वज्रासन में बैठें। दोनों मुट्ठियाँ बन्द करके घुटनों पर रख लें। बाँये हाथ की दोनों बीच वाली अँगुलियों से दाहिने नासारन्ध्र को दबा कर बाँये नासारन्ध्र से धीरे-धीरे वक्ष, उदर, गर्दन तक पूरी श्वास भर लें। अब अपनी दृष्टि दाहिनी भुजा पर केन्द्रित करें और यह भावना करें कि रोकी हुई श्वास वायु इच्छा शक्ति के प्रभाव से दाहिनी भुजा में प्रविष्ट हो रही है। थोड़े से अभ्यास के पश्चात् कुम्भक की हुई वायु को बाँये नासारन्ध्र से ही धीरे-धीरे रेचक कर दें। श्वास रोकने की अवधि एक-एक, दो-दो सेकिंड करके ही प्रतिदिन बढ़ाने का अभ्यास करें, शीघ्रता नहीं करें। कुछ समय के अभ्यास के पश्चात् दाहिने हाथ की नस नाड़ियाँ फूलना प्रारम्भ कर देंगी। इस अभ्यास को धीरे-धीरे इतना बढ़ायें कि हाथ फूल कर पत्थर की तरह कड़ा होने लगे।

अधिक भार उठाने के इच्छुक इस क्रिया के साथ-साथ भार उठाने का अभ्यास भी करते जायँ। भार में वृद्धि २ या ३ दिन के अन्तर से करें। दाहिने हाथ पर पूर्ण स्वामित्व आ जाने पर शरीर के अन्य अंगों पर भी यही अभ्यास दोहरायें। अभ्यास काल में कभी-कभी नाड़ी अवरोध इतना अधिक हो जाता है कि प्रभावित अंग नीला या काला पड़ जाता है। ऐसी स्थिति होने पर रोकी हुई श्वास को तेजी से बाहर निकालकर उस अंग पर तेल मालिश करके वहाँ का रक्त प्रवाह तीव्र कर लेना चाहिये।

मानेन्द्राशा प्राणायाम

बात दसवें देवासुर संग्राम के समय की है। इसका क्षेत्र सप्तसिन्धु का वह प्रदेश था जिसे आजकल पाकिस्तान कहते हैं। उस समय इस क्षेत्र का अधिपति असुर याजक

भृगुवंशी त्वष्टा का पुत्र वृत्र था। यह इस क्षेत्र की सम्पूर्ण दास जाति का नेता था। देवों के नेता इन्द्र ने दासों में से दिवोदास और सुदामा को अपनी ओर मिला लिया और मरुतों से भी सन्धि कर ली। आजकल का बिलोचिस्तान भी मरुतों का देश था। दासों में फूट होने पर भी वृत्र ने ऐसा युद्ध किया कि देव लोग हार गये और इन्द्र युद्ध भूमि से भाग खड़ा हुआ। बाद में इन्द्र ने विश्वासघात करके वृत्र को मार डाला। नमुचि दास ने उस समय स्त्रियों तक को खड्ग लेकर युद्ध में भेजा परन्तु अन्त में नमुचि दास मारा गया और देवों ने दासों के दो भव्य नगरों को जला डाला। इन नगरों के ध्वंसावशेष आज की खुदाई में निकले 'मोहनजोदड़ो' और 'हड़प्पा' हैं। इस संग्राम में दासों पर कई बार ऐसी विपत्ति आई कि उन्हें निराहार रह कर ही कई दिनों तक युद्ध करना पड़ा। दास लोग निराहार रहने की कला जानते थे। कुण्डलिनी के जिज्ञासु को वैसे तो निराहार रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर भी उनके लाभार्थ दासों द्वारा प्रयुक्त इस क्षुधा निवारक प्राणायाम की विधि मैं दे रहा हूँ—

विधि—किसी भी अभ्यस्त आसन में मेरुदण्ड का सीधा रखकर बैठिये। दोनों होठ कसकर बन्द कर लीजिए। नाक से सामान्य श्वास-प्रश्वास लेते रहे। अब दोनों जबड़ों के बीच में (जीभ को नीचे की ओर दबाते हुए) रिक्त स्थान (जीभ और तालू के बीच) उत्पन्न करें। यह रिक्त स्थान हवा से भरा हुआ होगा। इस हवा को घूँट सा भर कर पेट में उतारें। बार-बार मुँह में वायु उत्पन्न कर (बाहर से होठ खोल कर हवा नहीं भरें) इसी प्रकार घूँट भरते जायें।

इस विधि को ठीक से समझने के लिए मुँह में पानी भर कर 'गुट' की आवाज के साथ घूँट भर कर गले में पानी उतारें। अब इसी प्रकार हवा उत्पन्न कर (बाहर से भर कर नहीं) ऐसे ही 'गुट' की आवाज के साथ हवा का घूँट भरें। इस विधि का प्रारम्भ १० घूँटों से करें और २-३ घूँट प्रतिदिन बढ़ाते हुए अपने पेट की सामर्थ्यानुसार पेट में हवा भरें। इस हवा से पेट इतना फूल जाता है जैसे बहुत भोजन कर लिया हो।

जब पेट खाली करना हो तो दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँध कर जाँघों और पेट के बीच में खड़ी रखकर बार-बार पश्चिमोत्तासन करें। मयूरासन, शीर्षासन तथा सर्वांगासन भी लाभदायक हैं। धीरे-धीरे सारी वायु गुदा द्वार से निकल जायेगी।

विशेष प्राणायाम

पातंजल योग दर्शन ऐसे प्राणायामों के बारे में कहता है "बाह्यभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः।" अर्थात् प्राणायाम बाह्य वृत्ति, आभ्यंतर वृत्ति तथा स्तम्भ वृत्ति, तीन प्रकार का होता है जो देश काल और संख्या का ध्यान करने से दीर्घ और सूक्ष्म हो जाता है। इससे पूर्व महर्षि पातंजलि कह आये हैं—"तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।" उसकी (आसन की) सिद्धि होने पर श्वास प्रश्वास की गति का एक दम रुक जाना प्राणायाम है।

अभी पिछले प्राणायामों में हमने पूरक, रेचक और कुम्भक के बारे में कहा है। वही पूरक 'श्वास' है रेचक 'प्रश्वास' है तथा 'कुम्भक' इनका गति विच्छेद (रोकना) है। पातंजल के बाह्यवृत्ति, अंतर्वृत्ति तथा स्तम्भ वृत्ति प्राणायामों को रेचक, पूरक अथवा कुम्भक समझ लेना भारी भूल होगी। यहाँ उन्होंने प्राणायाम की सूक्ष्मता प्रदर्शित करके अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया है। सूक्ष्मता से तात्पर्य ब्रह्म शक्ति (Cosmic power) से है। 'बाह्यवृत्ति प्राणायाम' श्वास-प्रश्वास की वह गति है जिसे किसी भी आर्शीवाद देने आदि में प्रयुक्त किया जाता है। 'आभ्यांतर वृत्ति प्राणायाम' श्वास-प्रश्वास की वह गति है जिसे अपने शरीर के किसी अंग को कठोर बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। 'स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम' श्वास-प्रश्वास की गति का अनायास किया गया ऐसा विच्छेद है जो आकर्षण आदि कर्मों में प्रयोग किया जाता है। इन तीनों प्रकार के प्रयोगों में रेचक, पूरक अथवा कुम्भक, तीनों ही बहुत देर तक करते रहने का अभ्यास होना आवश्यक है। थोड़े समय वाले रेचक, पूरक या कुम्भक इन प्रयोगों के लिये व्यर्थ है। इसलिये पातंजल ने 'दीर्घ' शब्द का प्रयोग किया है। ऐसे बहुत से प्राणायामों के बारे में आगे आवश्यकतानुसार बताया जायेगा।

पातंजल अपने योग-सूत्रों में **एक और प्राणायाम** की चर्चा करते हैं—बाह्यभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः। अर्थात् बाहरी (बाह्य वृत्ति) और आन्तरिक (आभ्यन्तर वृत्ति) विषयों से अलग, ऐसी श्वास, प्रश्वास गति जो आत्मा पर आच्छादित कर्म बन्धनों के आवरणों को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त होती है, चतुर्थ प्राणायाम कहलाता है। इसी सन्दर्भ में आगे सूत्रकार ने कहा है—"ततः क्षीयते प्रकाशावरणाम्" अर्थात् उस प्राणायाम से प्रकाश का आवरण क्षीण होता है। ऐसे प्रकाशावरण क्षीण करने वाले प्राणायाम जो दीर्घ और सूक्ष्म होते हैं, स्वतः ही अभ्यास के कारण होने लगते हैं। अर्थात् वह योगी की सामान्य 'श्वास-प्रश्वास गति' हो जाती है। इस श्वास-प्रश्वास का अर्थ है कि सामान्य शक्ति की अपेक्षा योगी की श्वास-प्रश्वास सूक्ष्म (इतनी धीमी और शांत कि पता भी न लगे) और दीर्घ (संख्या में प्रति मिनट बहुत कम) हो जाती है। इस श्लोक के सन्दर्भ में श्री हरिकृष्ण दास गोयन्दका ने 'पातंजल योग दर्शन' में व्याख्या करते हुए उचित ही लिखा है कि "बाहर और भीतर के विषयों का चिन्तन-त्याग कर देने से अर्थात् इस समय प्राण (श्वास) बाहर निकल रहे हैं, या भीतर जा रहे हैं, अथवा चल रहे हैं कि ठहरे हुए हैं, इस जानकारी का त्याग करके मन को चिंतन में लगा देने से देश काल और संख्या के ज्ञान के बिना ही अपने आप जो प्राणों (वायु) की गति जिस किसी देश (स्थान या अंग) में रुक जाती है वह चौथा प्राणायाम है। इस प्राणायाम को राजयोग का प्राणायाम कहते हैं।"

दूसरे प्राणायामों में प्रयत्न द्वारा प्राण की गति का आयाम किया जाता है जब कि इसमें स्वतः ही प्राण का आयाम (विस्तार अर्थात् दीर्घ) होने लगता है। महामहिम् **सुखनन्दनल लाल जी** कहा करते थे कि "ऐसे प्रयत्न रहित प्राणायाम की प्रयत्नपूर्ण साधना ही व्यक्ति मात्र का प्रयत्न होना चाहिये।"

महर्षि पातंजल के द्वारा वर्णित पहले तीन प्राणायाम रेचक, कुम्भक तथा पूरक के सम्बन्ध में **स्वामी अक्षय आत्मानन्द** ने कहा है "योगी ताल युक्त श्वास द्वारा अधिक प्राण खींचने और अधिकृत करने के लिये प्रकृति के कम्पायमान प्रवाह को पकड़ लेता है। तब वह प्राण उसकी इच्छा के आश्रित हो जाता है। इससे एक विशेष प्रकार की विद्युत्मय शक्ति जन्म लेती है। यह शक्ति अपने विचारों को दूसरों के पास भेजने के लिये साधन के रूप में उपयोग में लाई जा सकती है। यही शक्ति दूसरों के विचारों को आकर्षित कर सकने में भी समर्थ है।"

"रूस के एक वैज्ञानिक अंगस्ट स्टर्न (Angust Stern) जो साइबेरिया की एक गुप्त प्रयोगशाला में 'मानसिक शक्तियों की खोज' पर वर्षों तक काम करते रहे, ने बताया कि रूस इन शक्तियों से हजारों मील दूर बैठे लोगों के विचार जानने, संसार के किस स्थान में क्या हो रहा है, हजारों मील दूर बैठे रोगियों को इन मानसिक शक्तियों से कैसे स्वस्थ बनाया जा सकता है, या टेलीपैथी आदि से कैसे रोगी बनाकर मारा जा सकता है इस विषय पर अनुसंधान कर रहा है। रूस में मानसिक शक्तियों पर अनुसंधान करने के लिये बहुत बड़ी लैबोरेट्री स्थापित की गई है जिसमें ३०० से भी अधिक बड़े-बड़े डाक्टर, मनोवैज्ञानिक, इन्जीनियर और दिव्य दृष्टि रखने वाले असाधारण मानसिक शक्तियों (E. S. P.) से काम लेने पर खोज कर रहे हैं।" 'आध्यात्मिक व गुप्त विद्यायें' नामक पुस्तक में दिये गये उक्त उद्धरण से आप महर्षि पातंजलि के प्राणायामों की सार्थकता की गहराई को माप सकते हैं। इसी पुस्तक में आगे लिखा है "अमरीका दिव्य दृष्टि और असाधारण मानसिक शक्तियाँ रखने वाले संसार के मनुष्यों को वेतन देकर अनुसंधान कर रहा है कि उनकी बताई गई बातें कितनी सच और कितनी झूठ हैं। अमेरिका का यह विभाग ट्रिनीडाड (वेस्ट इंडीज) के आध्यात्मिक शक्ति वाले व्यक्ति पर अनुसन्धान कर रहा है जो मोटर की फोटो में पिन चुभोकर कारों के टायरों की वायु निकाल सकता था या मनुष्य की फोटो में पिन चुभोकर किसी व्यक्ति को भारी हानि पहुँचा सकता था या स्वस्थ बना सकता था।"

जैसा कि हम पहले भी कह आये हैं विभिन्न प्रकार से भिन्न-भिन्न तालों में और अन्तराल से रेचक, कुम्भक और पूरक आदि द्वारा हम लोग अपनी श्वास-प्रश्वास की गति को एक विशेष ताल युक्त बनाते हैं। यह ताल युक्त श्वास, मानसिक शक्तियों द्वारा दूसरे व्यक्ति पर प्रभाव डालने में सक्षम है। यह विज्ञान सिद्ध बात है। जब योगी का मन श्वास के ताल में अभ्यस्त हो जाता है तब वह सोचने मात्र से ही अपनी तरंगों (D'Rays) को इच्छित स्थान पर भेजने में समर्थ हो जाता है। यह ऐसे ही है जैसे कि एक साइकिल सीखने वाला जब साइकिल को अपनी मनचाही दिशा में मोड़ना चाहता है तो उसे बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है अन्यथा जिधर साइकिल मुड़ना चाहती है तो उसे उधर ही मोड़नी पड़ जाती है। परन्तु जब वह उसमें अभ्यस्त हो जाता है तो उसकी इच्छा मात्र से साइकिल गन्तव्य दिशा में मुड़ जाती है।

यहाँ कुछ लाभदायक विशेष प्रकार के प्राणायामों की विधियाँ दे रहे हैं जिन्हें बाबा मिहीलाल की संकलित पुस्तकों प्रेमसुखर्मांकलेश, राकेशाखिलेश तन्त्र, नीलंमृदुल रहस्यम, सतहरजसपरविन्दरजीत, अरुणूषाशोकार्चना, विजयनिनी रंजनाजय तन्त्रसार, आदि में अत्यन्त विस्तार के साथ दिया गया है।

योगेन्द्रिन्दु प्राणायाम

किसी भी ऐसे सुखमय आसन में बैठें, जिसमें सिर, गर्दन छाती एक सीध में रहें, दोनों कन्धे थोड़े पीछे की ओर दबे हुए, छाती थोड़ी सी बाहर की ओर, और पेट दबा हुआ रहे। फिर धीरे-धीरे पहले बताये अनुसार ६ : ३ : ६ : ३ के अनुपात में पूरक: कुम्भक: रेचक: कुम्भक् का अच्छा अभ्यास कर लें। ध्यान रखें अधीर और भोगी व्यक्ति स्थायी महत्व की क्षमता नहीं प्राप्त कर पाते। अत: धैर्यपूर्वक उपर्युक्त ढंग से श्वास लेने का अच्छा अभ्यास कर लेने के बाद—जो विचार आप किसी दूसरे व्यक्ति के पास प्रेषित करना चाहते हैं उन्हें अपने मन की कल्पना में लाओ, तत्पश्चात् ६ : ३ : ६ : ३ वाला प्राणायाम करते हुए प्रत्येक 'रेचक' के समय उन विचारों को इष्ट व्यक्ति तक भेजने का अभ्यास करो। पितामही गंगादेवी का अनुभव था कि जिस व्यक्ति के पास विचार प्रेषित करने हों उसका रूप यदि मानसिक कल्पना में अच्छी तरह से लिया जाय तो अभ्यासी और उस व्यक्ति के बीच प्राणधारा (स्वर लहरी अथवा वायु तरंग) का अच्छा लगाव हो जाता है।

'बाबा भगवती प्रसाद' का अनुभव है कि यदि अभ्यासी प्रारम्भिक अवस्था में है तो उसे उस व्यक्ति से जिसे संदेश प्रेषित करना है पहले ही समय निश्चित करके अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिये है। इसके लिए, जो व्यक्ति संदेश ग्रहण करना चाहता है उसे निश्चित समय से पूर्व शरीर को ढीला छोड़कर लेट जाना चाहिए तथा अभ्यासी के सन्देश को ग्रहण करने की प्रबल आकांक्षा करते हुए अभ्यासी की ओर अपना मन एकग्रं करना चाहिए।

परमादरणीय 'हरी-हर बाबा' के अनुसार यही प्रयोग रोगी का रोग घर बैठे निवारण करने के लिए भी चमत्कारी पुरुषों की तरह प्रयोग किया जा सकता है।

शकुन्यतीन्द्र प्राणायाम

बीर्सत्यमेंश्ब्रह्म, प्रेङिवष्ण्वोमर्वीधर्मे, सुदर्शन प्रदीप, कुलदीप विनय, कृष्णयदुश्रीध्वज, भुवनेन्द्रसोवरन तेज, जनक मनोहर, बलदेव कांत:, राजेशार्चना, गिरिजोल्फत्सुरेन्द्र पुष्प, कमलेश्सुभाषर्सिकानु आदि के अनुसार घृणा, द्वेष, कामवासना, अहंकार, ईर्ष्या, लोभ, क्रोध, शोक, मोह, चिंता, भय जैसी मानसिक वृत्तियों के आवेश के निरोध हेतु इस प्राणायाम का विशेष महत्व है। कभी-कभी इन आवेशों में व्यक्ति ऐसे निकृष्ट कार्य कर डालता है जो उसके भविष्य को बरबाद कर सकते हैं। अब तक के योग जिज्ञासु मित्रों में बम्बई में मेरे पास आये एक मित्र 'सरदार सुरजीत सिंह बढ़ैच' बहुत ही उग्र स्वभावी थे। इस प्राणायाम ने उनके व्यवहार में आशातीत परिवर्तन किया था।

विधि—अस्वास्थ्यकर मानसिक वृत्तियों का आवेश होने पर ६ : ३ : ६ के अनुपात में रेचक : कुम्भक : पूरक क्रमश: बाँये स्वर से करते हुए प्रत्येक रेचक के समय यह भावना

कल्पना में लायें कि अनुचित प्रवृत्ति बाहर आ रही है। यदि शराब पीने की प्रवृत्ति हो रही हो तो ऐसा सोचें कि बाँये स्वर से शराब की धारा निकलकर धूल में मिलती जा रही है अथवा नाक में से साँस के साथ शराब की बोतलें निकलकर ढुलकती चली जा रही हैं। ऐसे प्रयोग करने में बड़े हास्यास्पद और अविश्वासी से लगते हैं परन्तु परिणाम में कम नहीं हैं। रेचक पूरा होने पर कल्पना बन्द कर दें, कुम्भक करें; तत्पश्चात् पूरक उसी स्वर से करके कुम्भक् करें, अब दूसरे अर्थात् दाहिने स्वर से रेचक करते समय अपनी कल्पना बन्द रखें। कुम्भक के पश्चात् पुनः उसी स्वर से पूरक करके कुम्भक करें। अब फिर बाँये स्वर से रेचक करते समय कल्पना के विचार प्रारम्भ कर दें। इसी प्रकार अभ्यास जारी रखें।

जिनेन्द्रार्चना प्राणायाम

अरब में पाये गये ग्रन्थ 'इतवारी सलामत सफी' तथा 'हुसेनानबर्रफी' में 'या काबिजो' नामक मन्त्र का जप करने के लिये शरीर और मन को शांत कर इच्छा शक्ति के बल पर विशेष गुणों की उपलब्धि हेतु इस प्रकार की श्वास गति के बारे में चर्चा की गई है जो इस प्राणायाम में हम दे रहे हैं। श्रीराम गोपाल भगवंत, रघुवर रामचन्द्र, दुर्गा भगवती, उर्दू ग्रन्थ रोशनशिव, ओमाशा राज, योगेश महेशकालिका तन्त्र, गुरुमुखी ग्रन्थ परमजीतजगदीश विन्दरजीतसिंह दी सतनामगानी, परम-मन जीत, बुधसिंह दा जसवन्ती, गुटका आदि में जप के समय शरीर को ढीला छोड़कर मन शांत करने की बात की गई है। बंगलौर के 'आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ मेन्टल हैल्थ' से साइकोलोजिस्ट का डिप्लोमा पास किये हुए डॉ. जगदीश स्वरूप ने विभिन्न रोगों के दूर करने में इस विधि को लाभकारी पाया था।

विधि—किसी भी सुखमय आसन में न बैठकर (अभ्यास होने पर ऐसा भी कर सकते हैं) इसे पृथ्वी पर लेट कर करें। शरीर एक दम ढीला (लगभग सरलेशासन की तरह) छोड़ें। एक मिनट गहरी श्वासें (तृप्ति प्राणायाम के समान) लें फिर श्वासें सामान्य कर दें यह सामान्य श्वास हीं स्वाभाविक श्वास से बहुत शांत प्रकृति की होगी साथ ही ताल युक्त भी। तत्पश्चात् जो गुण या लक्षण आप अपने अन्दर विकसित करना चाहते हैं उसकी मानसिक विचारधारा प्रारम्भ करें और सोचें कि वह गुण आपके पैर के अँगूठे से नाड़ी के द्वारा हृदय तक पहुँच रहा है। इसे इस प्रकार सोचें कि दोनों पैरों के अँगूठों से विद्युत शक्ति की तरंग सी पैरों से रीढ़ की हड्डी की ओर चढ़ रही है और हृदय तक पहुँच रही है (यह नाड़ियों का मार्ग है)। बार-बार यही कल्पना करते जायँ जब तक कि शरीर में फुरफुरी सी न अनुभव होने लगे। फुरफुरी आते ही, जिस गुण से युक्त होना चाहते हैं उसे अँगूठे से हृदय तक उसी प्रकार चढ़ता हुआ कल्पना करें और दृढ़ इच्छा शक्ति से यही प्रेरणा निरन्तर उत्पन्न करते रहें। जब श्वास शांत अवस्था से स्वाभाविक अवस्था में आने लगे तो कल्पना बन्द कर दें। तालयुक्त शांत श्वास ही इच्छा शक्ति की मानसिक तरंगों के व्याघात द्वारा मन के नये संयोगों को जुटाकर साधक को विशेष गुण युक्त बनाती है।

प्रदीपालका प्राणायाम

तालयुक्त श्वास के अद्‌भुत प्रयोगों में वीरेन्द्र बहादुर तथा मार्कण्डेय तिवारी की गजेन्द्र वीणा तथा भूपेन्द्रांशू उल्लेखनीय हैं। अनसुइया की 'सुरेन्द्रनिशा' में भी अद्‌भुत प्रयोग है। शिवानीर्चावर्तिका तन्त्र, दिनेशीन्द्रलोक, मयंकृतु प्रियंक, चंद्रकला योग (जिसे षोडश कला योग भी कहते हैं और कुछ मातृका का योग कहते हैं), चंद्रप्रकाश की ओ' मलता, राजतृप्त्यार्ती रश्मि, ओमभगवती, आदि में श्वास प्रयोगों के साथ साथ कुछ विशेष ध्यान प्रयोग भी हैं जिन्हें हम आगे के अध्यायों में देंगे।

पुराणों में दसवें देवासुर संग्राम में इन्द्र के भाग कर छिप जाने की बात मिलती है। इन्द्र के पलायन कर जाने से देवलोक में अव्यवस्था फैल गई। इसलिये देवों ने नहुष को अपना 'इन्द्र' मानकर ऐन्द्राभिषेक कर दिया। नहुष इन्द्र (सम्राट को इन्द्र कहा जाता था) बनकर कैलाश, हिमवान्, श्वेतकोह, मलयाचल, महेन्द्र, सह्याद्रि, मन्दराचल आदि पर्वतों, समुद्रों, नदियों आदि में विभिन्न दिव्यांगनाओं और अप्सराओं के साथ सब प्रकार के ऐश्वर्य का आनन्द लेने लगे। भागे हुए इन्द्र की पत्नी दैत्यराज पुलोम की पुत्री 'शची' थी। नहुष ने 'शची' को षोडश श्रृंगार करके अपनी शय्या पर आने की आज्ञा दी। शची ने नहुष की अंकशायिनी होना स्वीकार नहीं किया। देव गुरु अंगिरस बृहस्पति ने भी शची पर बलात्कार न करने के लिये नहुष को समझाया, पर नहुष ने अपना हठ नहीं छोड़ा। अंत में नहुष के इस कार्य से देव, दैत्य, ऋषि सभी ने अप्रसन्न होकर भी शची को नहुष के पास भेज दिया। क्रोध और शोक से अभिभूत शची-पौलोमी आँसू बहाती विवश हो नहुष के पास जा खड़ी हुई।

सब ओर से हारी हुई शची ने उस समय अपने चारों ओर मनश्तेज से विचारों का अंडाकार घेरा बना लिया। नहुष के हजार आग्रह और अनुनय-विनय करने पर भी शची ने शय्यारोहण नहीं किया। इधर मनश्तेज के कवच के कारण नहुष की हिम्मत शची को छूने तक की नहीं पड़ी, और उधर, जिन देवों ने नहुष को इन्द्र पद दिया था उन्होंने ही मिलकर उसे इन्द्र पद से च्युत कर देवलोक से निष्कासित कर दिया। यह मनश्तेज का कवच निर्माण करने के लिये तालयुक्त प्राणायाम आवश्यक है। यह कवच नीच परन्तु प्रभावशाली व्यक्तियों के दुष्ट विचारों और संगति के प्रभाव से स्वयं को बचाने के लिये अद्वितीय होता है।

विधि—अपनी रक्षा हेतु, किसी भी आसन अथवा स्थिति में रहते हुए चुपचाप ६ : ३ : ६ : ३ के अनुपात से तालयुक्त शांत प्र्रणायाम प्रारम्भ कर दें। स्वर जो भी चल रहा हो कोई चिंता न करें। जब आवश्यक प्राण वायु शरीर को मिल जाये तो अपने मानसिक दृढ़ विचारों का घेरा अपने चारों ओर निर्मित करें। यह कल्पित अंडाकार घेरा आपकी ऐसी रक्षा करेगा जैसे युद्ध में शत्रु के अस्त्र-शस्त्र के लिये क्षत्रिय का कवच करता है।

राजन्वीणा प्राणायाम

अभी पीछे हमने पातंजलि द्वारा निर्देशित चतुर्थ प्राणायाम (राजयोगी प्राणायाम) की चर्चा की थी। आत्म ज्ञान की साधना हेतु ब्रह्मा और सरस्वती के काल में चाक्षुष वंशी

(जिन्हें आज के पुरातत्व विद प्रोटोइलामाइट्ज कहते हैं। डॉ. फ्रेंकेफोर्ट तथा डॉ. लेंग्डन जो कि विश्व के मान्य पुरातत्ववेत्ता हैं इन्हें सुमेरु-सभ्यता के व्यक्ति मानते हैं) इस प्राणायाम का प्रयोग अधिकारिक रूप से किया करते थे। सुमेरु सभ्यता का निर्माण वरुण (ब्रह्मा) ने किया था। जैनेसिस आदि प्राचीन पाश्चात्य पुराण वेत्ता भी यही मानते हैं। यह सर्वमान्य है कि सुमेरु सभ्यता मानसिक रूप से अधिक विकसित थी। वहाँ से आये हुए **'चित्रगुप्त वंशज'** आज भी इसका प्रमाण हैं। ब्रह्मा ने चित्रगुप्त को यम के राज्य कार्य के संचालन हेतु सचिवालय का प्रधान नियुक्त करके भेजा था। यम के वंश की अन्य जातियाँ वसु, मरु, भानु, घोष, हयताल, धर, रमण, विश्वकर्मा, हंस, सांध्य, जातियाँ, द्रविड़, हूण, मंगोल हैं जो अपने पूर्वज यम के पिता सूर्य (विवस्वानविष्णु) की उपासक हैं परन्तु 'चित्रगुप्त वंशज' अपने पूर्वज ब्रह्मा अथवा उनकी पुत्री सरस्वती के पूजक हैं और बुद्धिबल में ब्रह्मा को सर्वोत्तम तथा सरस्वती को ज्ञान की अधिष्ठात्री मानते हैं।

सुमेरु सभ्यता के आत्म ज्ञानवर्धक राजयोगी प्राणायाम की सरलतम विधि देखिये—सरलेशासन में पृथ्वी पर लेट जायँ। जब श्वास की गति अपेक्षाकृत कम हो जाय तो तृप्ति प्राणायाम प्रारम्भ करें। लगभग दो-तीन मिनट बाद श्वास को स्थिर होने दें। जब श्वास गति शांत होने लगे तो अपने शरीर से अपनी पृथक कल्पना करें और ऐसे सोचें जैसे कि आपका शरीर तो यहाँ पड़ा है और आप उसके पास खड़े-खड़े उसे देख रहे हैं। कुछ दिन अभ्यास के पश्चात् आपको आत्मा और शरीर का अस्तित्व पृथक-पृथक अनुभव होने लगेगा। बाद में इसी अभ्यास से आप शरीर को कहीं भी छोड़ कर आत्मा को इधर-उधर भेजने में भी समर्थ हो सकेंगे। परन्तु यह सब प्रदर्शन के लिये नहीं होगा। इस गुण का प्रयोग निर्लिप्त भाव से सांसारिक कार्य करने में किया जाता है। यही गुण विकसित होकर 'कैवल्य समाधि' को फलित करता है।

नीर्वाशोक तथा **राकेशान्नू** में मनश्चिकित्सा के बारे में बहुत से प्रयोग दिये हैं। उपर्युक्त प्राणाणाम विधियों में मानसिक शक्ति का विशेष हाथ देखने को मिलता है। मानसिक शक्ति कितना कार्य करती है। इसका स्पष्ट उदाहरण (जो कि निकट भूतकाल का है) मुस्लिम विजय का है। उन्होंने एकेश्वरवाद, मुहम्मद साहब की पैगम्बरी, कुरान शरीफ का महत्व, वहिश्त और दोजख के ऐसे स्पष्ट कड़े सिद्धान्त बनाये कि किसी भी देश की संस्कृति उन्हें उनके मानसिक चिंतन से न हटा सकी। इसीलिये उन्होंने धर्म में तर्क को स्थान न देकर तलवार को दिया। यह दूसरी बात है कि भारत पर मुस्लिम संस्कृति की विजय अन्य देशों की अपेक्षा भिन्न प्रकार की रही। बहुत सी दिदेशी जातियाँ शक, ग्रीक, मूची, कुशान, हूण, सीथियन, आदि हिन्दू वर्ण व्यवस्था के कारण पूरी तरह उनमें मिल नहीं पाई, फिर भी उन्होंने हिन्दू धर्म, भाषा, साहित्य, रीति-रिवाज, विज्ञान एवं कला को अपनाया और एक अलग जाति बनाकर हिन्दू जाति का ही अंग बन गईं जो आज खत्री, अहीर, गूजर, जाट, राजपूत, कायस्थ, आदि के नाम से जानी जाती है।

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका क्रमांक १२

सुबोध सारणी

(१० से १५ वर्ष तक के स्वस्थ बच्चों के लिये प्राणायाम)

१. 'अंकुर स्तर (लगभग 6 सप्ताह)	२. 'शक्ति' स्तर (लगभग ६ मास)	३. 'युक्ति' स्तर (लगभग २ वर्ष)
तृप्ति प्राणायाम (५ मि.)	तृप्ति प्राणायाम (५ मि.) राहुल्शेफाली (अनुलोम विलोम) अनुपात ४ : २ : ४ (बाह्य कुम्भक नहीं करें) ५ चक्र)	तृप्ति प्राणायाम (५ मि.) कपाल भाति (३ चक्र) सुवर्णा प्राणायाम (४ चक्र) राहुल्शेफाली (अनुलोम विलोम) अनुपात ४ : २ : ४ (बाह्य कुम्भक नहीं) (५ चक्र)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक १३

आशा सारणी

(१६ से २५ वर्ष के स्वस्थ व्यक्तियों के लिए प्राणायाम)

१. अंकुर स्तर (लगभग ६ सप्ताह)	२. शक्ति स्तर (लगभग ६ मास)	३. युक्ति स्तर (लगभग 2 वर्ष)
तृप्ति प्राणायाम (१० चक्र) उड्डयान बंध (६ बार) विपरीत श्वास (बिना रुके १५ बार) अग्निसार क्रिया (३ चक्र)	सुवर्णा प्राणायाम राहुल्शेफाली प्राणायाम ८ : ४ : ८ अग्निसार क्रिया (५ चक्र) उड्डयान बन्ध (५ बार) कपाल भाति (४ चक्र) विपरीत श्वास १ : ४ : २ के अनुपात से (२० चक्र)	सुवर्णा प्राणायाम राहुल्शेफाली प्राणायाम ८ : ४ : ८ नौलि क्रिया (६ बार) कपाल भाति (६ चक्र) (प्रतिमास २ चक्र बढ़ायें, ३० चक्र तक)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक १४

अर्चना सारणी

(२५ से ३५ वर्ष तक के स्वस्थ व्यक्तियों के लिए प्राणायाम)

१. अंकुर स्तर (लगभग ६ सप्ताह)	२. शक्ति स्तर (लगभग ६ मास)	३. युक्ति स्तर (लगभग 2 वर्ष)
तृप्ति प्राणायाम सुवर्णा प्राणायाम राहुल्शेफाली प्राणायाम (८ : ४: ८ का अनुपात) उड्डयान बन्ध (३ बार) अग्निसार क्रिया (३ चक्र) कपाल भाति (५ चक्र)	सुवर्णा प्राणायाम राहुल्शेफाली प्राणायाम (८ : ४ : ८ के अनुपात में) स्वर्णा प्राणायाम (४ : १६ : ८ : ४ तथा ४ : १६ : ८ : ४ के अनुपात में) उड्डयान बन्ध (३ बार) अग्निसार क्रिया (३ चक्र) कपाल भाति (१० चक्र)	स्वर्णा प्राणायाम (अनुपात ४ : १६ : ८ : ४ तथा ४ : १६ : ८ : ४) सुवर्णा प्राणायाम उड्डयान बंध (५ बार) अग्निसार क्रिया (५ चक्र) कपाल भाति (१५ चक्र) नौलि क्रिया (३ बार) विपरीत श्वास (४० चक्र) (रुक-रुक कर १ : ४ : २ के अनुपात में)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक १५

मनोरमा सारणी

(३६ से ५० वर्ष तक के स्वस्थ व्यक्तियों के लिये प्राणायाम)

१. अंकुर स्तर (लगभग ६ सप्ताह)	२. शक्ति स्तर (लगभग ६ मास)	३. युक्ति स्तर (लगभग २ वर्ष)
विपरीत श्वास (बिना रुके 15 चक्र) सुवर्णा प्राणायाम	विपरीत श्वास (१५ चक्र) (रुक-रुक कर १ : २ : २ के अनुपात में) अग्निसार क्रिया (४ चक्र) उड्डयान बन्ध (३ बार) नौलि क्रिया (३ बार) कपाल भाति १०	सुवर्णा प्राणायाम विपरीत श्वास (१५ चक्र) (१ : ४ : ४ के अनुपात में रुक-रुक कर) अग्निसार (५ चक्र) उड्डयान बन्ध (५ बार) नौलि क्रिया (५ बार) कपाल भाति (२० चक्र)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक १६

मोहन सारणी

(५१ वर्ष से ७० वर्ष तक की आयु के स्वस्थ व्यक्तियों के लिए प्राणायाम)

१. अंकुर स्तर (लगभग ६ सप्ताह)	२. शक्ति स्तर (लगभग ६ मास)	३. युक्ति स्तर (लगभग २ वर्ष)
तृप्ति प्राणायाम कपाल भाति (३ बार) विपरीत श्वास (बिना रुके १५ चक्र)	सुवर्णा प्राणायाम कपाल भाति (५ बार) अग्निसार क्रिया (३ चक्र)	सुवर्णा प्राणायाम कपाल भाति (१० बार) अग्निसार क्रिया (५ चक्र)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक १७

गंगा सारणी

(७० वर्ष से अधिक आयु के स्वस्थ व्यक्तियों तथा किसी रोग के ठीक होने के पश्चात् अशक्त व्यक्तियों के लिये प्राणायाम।
विभिन्न रोगों के उपचार हेतु योग्य आचार्य का निर्देशन लें।)

१. अंकुर स्तर (लगभग ६ सप्ताह)	२. शक्ति स्तर (लगभग ६ मास)	३. युक्ति स्तर (लगभग २ वर्ष)
तृप्ति प्राणायाम (लेटे-लेटे ५ मिनट)	तृप्ति प्राणायाम (बैठकर १० मिनट) अग्निसार क्रिया (५ बार)	अग्निसार क्रिया (१० बार) राहुल्शेफाली प्राणायाम (२० चक्र)

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक १८

अलका सारणी

(साधकों द्वारा विभिन्न क्रियाओं में प्रयोग किये जाने वाले
कुछ विशेष प्राणायाम)

प्राणायाम	उपयोग
१. तृप्ति प्राणायाम	पूर्ण श्वास प्रश्वास हेतु
२. सुदर्शन प्रणायाम	उषा काल की वायु सेवन हेतु
३. सुवर्णा प्राणायाम	पेट में हवा भरने और निकालने हेतु
४. राहुल्शेफाली प्राणायाम	अनुलोम-विलोम श्वास-प्रश्वास हेतु
५. स्वर्णा प्राणायाम	नाड़ी शोधन हेतु
६. कालिका प्राणायाम	पित्त वर्धन हेतु
७. ज्वाला शांाति प्राणायाम	पित्त शांति हेतु
८. सुनीत्रीन्द्र प्राणायाम	पित्त शमन हेतु
९. रमेश मोहन प्राणायाम	ताप वर्धन हेतु
१०. नीलम चैतन्य प्राणायाम	कफ निष्कासन तथा ताप वर्धन हेतु
११. पुष्प गिर्राज प्राणायाम	कफ (श्लेष्मा) नाशन हेतु
१२. बाबू रतन प्राणायाम	नाड़ी शोधन हेतु
१३. सुबोधाजितेन्द्र प्राणायाम	नाड़ी अवरोधन तथा शक्ति वर्धन हेतु
१४. मानेन्द्राशा प्राणायाम	क्षुधा निवारण हेतु
१५. योगेन्द्रिन्दु प्राणायाम	विचार सम्प्रेषण हेतु
१६. प्रदीपालका प्राणायाम	आवेश शमन हेतु
१७. जिनेन्द्रार्चना प्राणायाम	विशेष गुण वर्धन हेतु
१८. शकुन्यतीन्द्र प्राणायाम	रक्षा कवच निर्माण हेतु
१९. राजन्वीणा प्राणायाम	आत्मा शरीर पृथक-बोध हेतु

■

१५

विचार सम्प्रेषण

'डॉ. एक्जिल एमिल गिब्सन' अमेरिकन तत्वान्वेषी ने 'हेल्थ कल्चर १९२० में मनः शक्ति के बार में चर्चा करते हुए लिखा है—In the Heroic days of the Vedas the physician of the body was the physician of the mind."

(वेदों के प्रभुत्व काल में शरीर का चिकित्सक मन का भी चिकित्सक हुआ करता था) यहाँ मन का चिकित्सक से तात्पर्य यह नहीं है कि वह पागलों का डाक्टर, साइकेट्रिस्ट अथवा साइकोलोजिस्ट होता था। यहाँ 'मन का चकित्सक' से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसने साधना द्वारा अपनी मानसिक शक्ति को इतना प्रभावपूर्ण बना लिया हो कि दूसरों पर यथेच्छ प्रभाव डाल सके।

'सुमन प्रदीप' में गुलाब के फूल पर ध्यान जमा कर उसकी पंखुड़ियों को आगे-पीछे करने, बन्द करने, खोलने आदि जैसी क्रियाओं के मानसिक प्रयोग दिये हैं और उनके द्वारा व्यक्ति की मनः शक्ति को प्रभावशाली बनाने की चर्चा की है। बहुत से पाश्चात्य तत्वान्वेषियों ने मनस-चिकित्सा को भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं जैसे—Mental Healing, Divine Healing, Suggestive Method, Hypnotic Authority, Psychological Treatment आदि। यह सब मानसिक शक्ति के प्रभाव को सिद्ध करते हैं। कोई भी साधक जिसने अपनी इच्छा शक्ति, नेत्र शक्ति, श्वास शक्ति और हाथों की विद्युत शक्ति की तरंगें विकीर्ण करना सीख लिया हो, मनश्चिकित्सक हो सकता है। इसी सन्दर्भ में एक विधि और है—योग निद्रा (Auto Suggestion, Self Hypnotism) की, जिसमें आत्म सम्मोहन द्वारा मनः शक्ति को मजबूत बनाया जाता है। इस मनः शक्ति को मनोवैज्ञानिक 'आत्म' (Self) कहते हैं।

सन् १९५० तक अहं और आत्म को अलग-अलग माना जाता था। यह मनोवैज्ञानिक सिग्मण्ड (Sygmond) के कथन से स्पष्ट है—"अहं (Ego) में प्रत्याक्षीकरण, चिन्तन और स्मरण सम्मिलित है...... आत्म का अर्थ है कि व्यक्ति स्वयं के प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है।" बाद के मनोवैज्ञानिकों केन्ट्रिल (Cantril), एम. शेरिफ (M. Sherif), सी. डब्ल्यू. शेरिफ (C. W. Sherif), और आईजनेक

(Eysneck) आदि ने आत्म (Self) और अहं (Ego) में कोई अन्तर नहीं माना है। **इस सन्दर्भ में एच. जे. आईजनेक की टिप्पणी देखिये—**

In order to avoid the arguments which dominated Philosophical Studies and the Psychology of Consicousness, the term Ego has been replaced by the word Self.

डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव के अनुसार "मनुष्य के पास भाषा और बुद्धि के अतिरिक्त चिन्तन की भी महत्वपूर्ण योग्यता है। चिन्तन के द्वारा व्यक्ति न केवल अपने शरीर और व्यवहार के सम्बन्ध में विचार करता है बल्कि चिन्तन के द्वारा वह यह भी विचार करता है कि दूसरों के सामने वह कैसा दिखाई देता है या समाज के अन्य लोग उसे किस रूप में देखते हैं। इस प्रकार का चिन्तन 'आत्म' और 'आत्म प्रत्यय' (Self Concept) से महत्वपूर्ण ढंग से सम्बन्धित है। जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है।" **आत्म को प्रभावित करने वाला चिन्तन आत्म केन्द्रित होता है और दूसरे को प्रभावित करने वाला चिन्तन सुझाव सम्प्रेषण के द्वारा किया जाता है** जिसका उपयोग सम्मोहन (Hypnotism) में किया जाता है। 'जनरल एण्ड सोशल साइकोलौजी' में आर. एच. थाइलर्स ने कहा है "सुझाव सम्प्रेषण के द्वारा विचारों की एक व्यवस्था के प्रति एक मनोवृत्ति को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सम्प्रेषित करते हैं।" मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में देखा गया है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में सुझाव देने तथा सुझाव ग्रहण करने की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है। सुझावों को ग्रहण करना इस बात पर भी निर्भर करता है कि सुझाव देने वाले व्यक्ति की स्थिति (Status) और प्रतिष्ठा (Prestige) क्या है? उसकी मनः शक्ति का बलाबल सुझाव ग्रहण करने वाले की तुलना में कैसा है? मैक्डूगल ने इसे 'पैसिव रिसेप्टिव प्रौसेस' नाम दिया है। हम देखते हैं कि इस स्थिति में सुझाव ग्रहणकर्ता उन्हें बिना किसी आलोचना और तर्क के, अपनी मानसिक योग्यताओं का प्रयोग किये बिना ही स्वीकार करता चला जाता है।

मनोवैज्ञानिक आइजनेक ओर उनके साथियों के अनुसार "सुझाव और सम्मोहन से प्रभावित व्यक्ति की ग्रहणशीलता की मात्रा ही सुझाव ग्रहणशीलता है।" किम्बल यंग इसे 'ग्रहण कर्त्ता के अन्दर सुझाव संकेत से सम्बन्धित प्रतिक्रिया करने की आन्तरिक तत्परता' मानता है। सुझाव-ग्रहणशीलता (Suggestibility) थकान और सम्मोहन (Hypnotism) की अवस्था में बढ़ जाती है। पितामही पूरन कुँवर मनोवैज्ञानिक क्लार्क के प्रयोग के समान एक शीशी का ढक्कन खोल कर उपस्थित बच्चों और व्यक्तियों से शीशी में से आ रही गंध के बारे में पूछा करती थी कि किसने इसकी गंध का अनुभव कितनी देर बाद किया? और मुश्किल से दस प्रतिशत ही ऐसे होते थे जो गंध का अनुभव नहीं करते थे। शेष सभी थोड़ी-थोड़ी देर क्रमशः गंध के अनुभव का वर्णन करते थे। जबकि शीशी में ताजा पानी ही भरा होता था। मनोवैज्ञानिक जे. पी. दास, आर. एस. दास ने इस प्रकार के प्रतिष्ठा सुझावों का अध्ययन करके 'अचलांजल्यानुजा' के समान यही

निष्कर्ष निकाला कि प्रतिष्ठा सुझाव का प्रभाव व्यक्ति की समझ का विलोमानुपाती है। 'अतुल प्रेमालोक' के अनुसार आत्म-समर्पण की योग्यता वाले (Submissive) व्यक्तियों पर प्रतिष्ठा निर्देशों का अधिक प्रभाव पड़ता है।

सुझाव निर्देश

व्यक्ति को दिये जाने वाले सुझाव जो मानसिक शक्ति में परिवर्तन करके व्यवहार में अन्तर लाते हैं, प्रधानत: ४ प्रकार हैं—

(१) **प्रत्यक्ष सुझाव**—अपनी बात को सीधे रूप में (Direct) कहना।

(२) **अप्रत्यक्ष सुझाव**—बात को घुमाकर तथा एक अलग पृष्ठभूमि बनाकर (Indirect way) कहना।

(३) **धनात्मक सुझाव**—सुझाव सामग्री का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करके (Positive) बात कहना।

(४) **ऋणात्मक सुझाव**—सुझाव सामग्री की इस ढंग से बुराई करना कि ग्रहणकर्ता अमुक कार्य न करे। यह ऋणात्मक (Negative) बात कहलाती है।

सुझाव के वर्ग

इन सुझावों के कई वर्ग हैं—

(१) **भावचालक** (Ideomotor) – सिनेमा के पर्दे पर रोते हुए व्यक्ति को देखकर दर्शकों का रोने लग जाना अथवा नृत्य देखकर दर्शक का पैर चलाने लग जाना।

(२) **प्रतिष्ठा** (Prestige) – जितने अधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति के मुँह से बात कहलाई जायेगी उतनी अधिक प्रतिष्ठा से उसे श्रोताओं द्वारा स्वीकार कर लिया जायेगा।

(३) **आत्म** (Auto) – स्वयं सुझाव देकर स्वयं ही उसका पालन करने लग जाना।

(४) **विरोधी** (Contra) – जो बात (सुझाव) समझाई जाय उसके विपरीत व्यवहार करना।

(५) **सामूहिक** (Mass) – एक समूह द्वारा दिया गया सुझाव जो सामूहिक दबाव (Grup Pressure) के कारण अधिक प्रभावशाली होता है।

सुझाव (Suggestion) के निर्धारक (Determinants)

सुझाव के निर्धारक दो प्रकार के हैं—एक तो सुझाव ग्रहण करने वाले से सम्बन्धित और दूसरे सुझाव देने वाले से सम्बन्धित।

ग्रहणकर्त्ता से सम्बन्धित

(१) **बुद्धि** (Intelligence) – सुझाव-ग्रहणशीलता बुद्धि की विलोमानुपाती है।

(२) **आयु** (Age) – सुझाव-ग्रहणशीलता आयु की विलोमानुपाती है।

(३) **लिंग** (Sex) – प्रयोगों से यह देखा गया है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में सुझाव-ग्रहणशीलता अधिक पाई जाती है।

(४) **व्यक्तित्व तथा मानसिक स्थिति** (Personality and mental State) – मानसिक स्थिति से सम्बन्धित सुझावों का शीघ्र असर व्यक्ति पर होगा इसी प्रकार व्यक्तित्व गुणों से भी व्यक्ति की सुझाव-ग्रहणशीलता प्रभावित होती है।

(५) **अज्ञानता**—(Ignorance) – सुझाव की विषय-सामग्री से अनभिज्ञ होने पर ग्रहणशीलता बढ़ जाती है।

(६) **शैक्षिक स्तर** (Educational Level) – शिक्षित व्यक्ति में परिस्थितियों के विश्लेषण करने की क्षमता बढ़ जाने से सुझाव-ग्रहणशीलता में अन्तर आ जाता है।

सुझाव देने वाले व्यक्ति से सम्बन्धित

(१) **प्रतिष्ठा** (Prestige) – सुझाव के विषय के महत्व के समान ही प्रतिष्ठित और सम्मानित व्यक्ति के सुझाव अधिक प्रभावी होते हैं। यदि यही प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी कम महत्वपूर्ण तथ्य के सम्बन्ध में सुझाव दे तो उसका प्रभाव कम होगा।

(२) **विश्वासी ढंग** (Confident Tone) – जितने अधिक विश्वासपूर्ण ढंग से और विश्वास पूर्ण स्वर में व्यक्ति को सुझाव दिया जायगा उतना ही अधिक प्रभावी होगा।

(३) **अनुभव** (Experience) – सुझाव ग्रहणकर्त्ता की प्रकृति को समझकर सुझाव देने में जो व्यक्ति जितना अधिक अनुभवी होगा वही अधिक सफल होगा। अनुभव से तात्पर्य यहाँ सुझाव देने की विभिन्न तकनीकों का ज्ञान होना तथा ग्रहणकर्त्ता की प्रकृति को समझकर किसी कार्य को करवाने के लिए उसके पीछे पड़ना (Persuation) भी है।

सुझाव निर्धारण के कुछ मनोवैज्ञानिक कारक

(१) **पुनारावृत्ति** (Repetition) – किसी सुझाव को बार-बार कहना। परन्तु आवश्यकता से अधिक पुनरावृत्ति भी व्यर्थ रहती है, और कभी-कभी विपरीत प्रभाव भी देती है।

(२) **जनमत**—(Public Opinion) – समाज में प्रचलित जनमत (जनता का मत) के आधार पर दिया गया सुझाव प्रभावी होता है।

(३) **संकट** (Crisis) – युद्ध, व्यापार में घाटा, दुर्घटना, प्रियजन बिछोह आदि महत्वपूर्ण संकट काल में व्यक्ति की सुझाव-ग्रणहशीलता बढ़ जाती है।

(४) **अनुकूलता** (Favourability) – सुझाव ग्रहणकर्त्ता की भावनाओं, आदर्शों, मूल्यों, विचारों, आदि का अध्ययन कर लेने के बाद उनके अनुकूल दिये गये सुझावों का प्रभाव ग्रहणकर्त्ता पर अधिक होता है।

(५) **वातावरण** (Environment)—किसी भी सुझाव को देने से पूर्व यदि मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार कर लिया जाय तो ग्रहणकर्त्ता अधिक प्रभावित होता है। व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी सुझाव अकेले में, और सामूहिक जीवन से सम्बन्धित सुझावों को अन्य लोगों की उपस्थिति में देने से अधिक प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार आप देखते हैं कि सुझाव सम्प्रेषण या विचार सम्प्रेषण का उपयोग किसी समूह को संगठित करने, शांतिपूर्ण जीवनयापन की प्रेरणा देने, व्यक्ति विशेष के व्यवहार को बदलने; परिवारीजन, मित्र, शिष्य आदि को नियन्त्रण में लाकर विभिन्न अभिवृत्तियों को सिखाने आदि में महत्वपूर्ण ढंग से किया जा सकता है।

सम्प्रेषण के निर्देश

विचार सम्प्रेषण के बारे में वक्ता एच. एस. ब्रिट ने कुछ निर्देश बताये हैं—

(१) विचार या सुझाव सम्प्रेषण करने वाले (सम्प्रेषक) को सुझाव ग्रहण करने वाले (ग्राहक) की ओर दृढ़ कदमों से प्रस्थान करना चाहिए।

(२) सम्प्रेषण से पूर्व सर्वप्रथम वातावरण के आधार पर अन्य बातों द्वारा ग्राहक का ध्यान सम्प्रेषक को अपनी ओर आकर्षित करना चाहिए।

(३) सम्प्रेषक को ग्राहक के शरीर पर सरसरी दृष्टि डालकर उसकी स्थिति का अनुभव करना चाहिए।

(४) सम्प्रेषक की ओर देखते हुए बोलना चाहिए।

(५) सम्प्रेषक की भाषा और आवाज स्पष्ट होनी चाहिए।

(६) सम्प्रेषक को अधिकार और विश्वास के साथ बोलना चाहिए।

(७) यदि ग्राहक अपरिचित व्यक्ति हो तो विचार सम्प्रेषण से पूर्व उसको संकोच मुक्त कर देना चाहिए।

(८) सम्प्रेषक को कथन सामग्री के अनुसार ही स्वर परिवर्तन करते जाना चाहिए।

(९) सम्प्रेषण की रूपरेखा विचार सम्प्रेषण से पूर्व ग्राहक को बता देने से उसे तत्पर होने में सुविधा रहेगी।

(१०) विचार सम्प्रेषण के अन्त में ग्राहक को उसके सहयोग के लिए धन्यवाद देना चाहिये

प्रत्येक सम्प्रेषक में नेतृत्व का व्यक्तित्व अत्यावश्यक है। इस नेतृत्व के व्यक्तित्व सम्बन्धी अध्ययनों में परिस्थितिजन्य तथा अन्तः क्रियात्मक कारकों को अधिक महत्व दिया है। गैट्जकाव (Guetzkow) प्राभाविकता (Ascendence) को आवश्यक गुण मानता है।

सम्प्रेषक व्यक्तित्व

'दादी कलावती' एवम् 'गंगा देवी' के अनुसार एक **सम्प्रेषक व्यक्तित्व के कुछ आयाम** इस प्रकार हैं—

(१) **बुद्धि** (Intelligence) – यह अनुभव सिद्ध बात है कि सम्प्रेषक का प्रभावशाली होना उसकी किताबी बुद्धि पर आधारित नहीं है अपितु अनुभवों पर आधारित होता है। जो भी हो सम्प्रेषक की सामान्य बुद्धि (General Intelligence) अन्य लोगों से अधिक होती है।

(२) **वाचिक अभिक्षमता** (Verbal Aptitude) – मनोवैज्ञानिक ए. बेवलास, ए. एच. हस्ट्रोफ, ए. ई. ग्रौस तथा के. डब्ल्यू. रिचार्ड के अध्ययनों से यह प्रमाणित हो गया है कि वाचिक योग्यता (वाक् चातुर्य) विचार सम्प्रेषण के लिए आवश्यक गुण है।

(३) **कल्पना** (Imagination) – सफल विचार सम्प्रेषण के लिए कल्पना का विशेष महत्व है। व्यक्तिगत विचार सम्प्रेषण में तो कल्पना द्वारा ही ग्राहक का चित्र ध्यान में रखकर सम्प्रेषण किया जाता है। **मन्त्रों और सम्बन्धित नक्षत्रों के सामञ्जस्य के लिए कल्पनार्जित मूर्तियों का ही प्रयोग किया जाता है।**

(४) **प्रभुत्व** (Dominance) – विचार सम्प्रेषण के लिए सम्प्रेषक का ग्राहक पर अच्छा प्रभुत्व होने से ग्रहणशीलता में वृद्धि होती है।

(५) **संकल्प शक्ति** (Determination Power) – सम्प्रेषक में संकल्प शक्ति का होना अति आवश्यक है। यदि सम्प्रेषक ग्राहक को आदेश देता है कि तुम्हें नींद आ रही है' और साथ में मन में सोचता है कि 'जाने इसे नींद आयेगी भी या नहीं', ऐसी **कच्ची संकल्प शक्ति वाला विचार सम्प्रेषण तथा सम्मोहन आदि कार्यों में असफल रहता है।**

(६) **आत्म-विश्वास** (Self-Confidence) – ग्राहक को शीघ्र प्रभावित करने के लिए **संकल्प शक्ति दृढ़ होनी चाहिए** और दृढ़ संकल्प शक्ति के लिए आत्म विश्वास प्रथम आवश्यकता है, जो अभ्यास से प्राप्त होता है।

(७) **आत्म-निर्भरता** (Self-reliance) – 'निर्भय करने की क्षमता' की वृद्धि करने के लिए सम्प्रेषक का **आत्म-निर्भर होना आवश्यक है। गुरु के ऊपर निर्भर रहने वाले कभी नहीं उभरते,** उनकी गुरु-सेवा भी उन्हें 'मेवा' नहीं दे पाती।

(८) **आशावादिता** (Imperturbility) – कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपना धैर्य बनाए रखना और आशानुरूप परिणाम प्राप्त कर लेने का साहस रखना आवश्यक है। **विषम परिस्थितियों में व्याकुल हो जानेवाले व्यक्ति बड़ी दुर्घटनायें कर डालते हैं।** इस सन्दर्भ में मुझे सन् १९८० की एक घटना स्मरण हो आई है।

जामनगर में मैं ड्यूटी से आकर बैठा चाय पी रहा था कि पास के ही क्वार्टर से एक लड़की 'लवली' दौड़ती हुई आई—अंकल ! जल्दी चलिये, एक लड़की बेहोश हो गई है। मैं शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँचा। लड़की को देखा। वह लवली की अच्छी सहेली थी, यह मुझे ज्ञात था। चिकित्सकीय दृष्टिकोण से जो परीक्षा की वह सब सामान्य थी। मैंने लवली से पूछा (उस समय वहाँ घर में कोई और नहीं था) कि कैसे यह बेहोश हुई ? लवली डर के मारे मुझसे सट गई और बोली—"मैने इसको हिप्नोटाज किया था। सो यह बेहोश हो गई और गड़बड़ाने लगी। फिर धीरे-धीरे इसका बड़बड़ाना भी बन्द हो गया, तो मैं डर

गई। अब आप इसे जल्दी से जिंदा कर दीजिए।" मुझे इसकी इस अधूरी हिप्नोटाइजेशन क्रिया पर बहुत हँसी आई। अब मैं चिंता मुक्त हो गया। फिर लवली की हिप्नोटाइजेशन विधि की पूछताछ की। उसकी विधि सही थी। परन्तु उसकी घबराहट, व्याकुलता और धैर्य न रख पाने के गुण के कारण ही यह दशा हुई। बाद में उसकी सम्मोहन-मूर्छा भंग करके मैंने उठा दिया।

(९) **अन्तर्दृष्टि** (Foresight)—परिस्थितियों और समस्याओं को अधिक और जल्दी पहचानने के लए सम्प्रेषक में अन्तर्दृष्टि तथा दूर दृष्टि का गुण होना आवश्यक है।

(१०) **प्रेममयता** (Loveliness)—सम्प्रेषक का प्रेमपूर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रेम से 'सैक्स' का कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रेमपूर्ण हृदय ही भावपूर्ण होता है।

(११) **उत्तरदायित्व** (Responsinbility)—सम्प्रेषक को ग्राहक के प्रति उत्तरदायी होना पड़ता है क्योंकि सम्प्रेषक की असावधानी ग्राहक का मानसिक सन्तुलन बिगाड़ सकती है।

(१२) **दैहिक गुण** (Physical Attributes)—मानसिक गुणों के साथ-साथ सम्प्रेषक में ग्राहक के अनुपात में लम्बाई, रंग, रूप, और स्वास्थ्य का अच्छा होना भी एक आवश्यक बात है।

इस सम्बन्ध में सम्प्रेषक के गुण बताते हुए मनोवैज्ञानिक एफ. एच. आलपोर्ट ने फुर्ती, मधुर वाणी, स्पष्ट भाषा, दृढ़ता, संयम, तेज चाल, शक्ति, तीव्र बुद्धि, चातुर्य, साहस, व्यापक समय, प्रेरणा, शारीरिक बल, उत्तम चरित्र, प्रबोधता, उत्साह आदि को आवश्यक कहा है। एक योग शिक्षक (गुरु) में सम्प्रेषक के उक्त गुण होने चाहिए।

सुपात्र ग्राहक

अभी तक हम सारी बातें विचार सम्प्रेषक (गुरु) के बारे में बताते आ रहे हैं। यदि विचार ग्रहणकर्ता (शिष्य) भी कुछ विशेषतायें रखता हो तो सिद्धि में सफलता अति शीघ्र मिलती है। यह विशेषतायें ग्रहणकर्ता में पहले से विद्यमान हों तब बहुत अच्छा है अन्यथा इन गुणों को उसमें पैदा किया जा सकता है। मनोविज्ञान के आधार पर थार्नडाइक के सीखने का सिद्धान्त (Laws of Learning), तत्परता का नियम (Law of Readiness), अभ्यास का नियम (Law of Exercise) तथा प्रभाव का नियम (Law of Effect) इस विषय में लागू होता है।

सामान्यतः शास्त्रकारों ने पातकी, कलहप्रिय, उद्दण्ड, उपद्रवी, कटुवादी, ईर्ष्या-द्वेष ग्रस्त, दुष्कर्म रत, शास्त्रनिंदक, विद्वान-विरोधी, हिंसक, कृपण, आस्थाहीन, चाटुकार, दुष्प्रवृत्ति, चोर, दस्यु, वंचक, विक्षिप्त, आचरण भ्रष्ट, आलसी, पर-निंदारत, कायर, दीर्घसूत्री, लोभी और क्रोधी व्यक्ति को अच्छा ग्राहक नहीं माना है। **ऐसे व्यक्ति ही साधना के क्षेत्र में कुपात्र कहे गये हैं।** साधक को चाहिए कि पहले दुर्गुणों को दूर कर 'सुपात्र' बने तब साधना क्षेत्र में उतरे। फिर सिद्धि में देर नहीं होती। **योग्य शिष्य वही है जो अच्छा ग्रहणकर्ता हो।** ■

१६

कुण्डलिनी और सैक्स

भारतीय दर्शन कुण्डलिनी के बारे में कहता है कि "मूलाधार चक्र (यौनांगों के ठीक पीछे) में साढ़े तीन कुण्डलिनी मारे साँप की तरह कुण्डलिनी प्रसुप्त अवस्था में निवास करती है। इसे जाग्रत करने पर यह मूलाधार से विभिन्न कमल चक्रों पर होती हुई ऊर्ध्वगति करते हुए सहस्रार पर पहुँचती है तब खेचरी मुद्रा लगाकर योगी गले में टपकने वाले अमृत रस का पान करता हुआ अतीव आनन्द और शान्ति का अनुभव करता है।"

पाश्चात्य विज्ञानवाद न कुण्डलिनी मानता है न ओज आदि के द्वारा मस्तिष्कीय विकास की बात मानता है। कई चिकित्सकों को मैंने यह कहते सुना है कि मानसिक कार्य करना अलग बात है और वीर्य अधोगमन अलग बात है। इनका आपस में कोई तालमेल नहीं। परन्तु व्यावहारिक रूप (Practical) में आप वीर्यक्षय क ने वाले मानसिक कार्यकर्ताओं को पागलखाने में बहुतायत से पा सकते हैं जिसका कारण मैं पहले दे चुका हूँ। जहाँ तक किसी बात के मानने या न मानने का प्रश्न है वह परिणामी नहीं है। न्यूटन से पहले भी पेड से फल गिरा करते थे। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति अपने अनवरत रूप में कार्यशील थी। जब से न्यूटन ने इस विषय पर ध्यान दिया, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को मानना प्रारम्भ किया तब से विज्ञान ने जो उन्नति की वह किसी से छिपी नहीं है। तात्पर्य यह है कि **किसी के मानने या न मानने से प्रकृति के कार्य कभी रुकते नहीं हैं, वे तो अनवरत हैं। यदि आप उन्हें समझ लेते हैं तो लाभ उठा लेंगे।** यदि नहीं मानते तो जो चल रहा है चलता रहेगा; आप हानि भले ही उठा लें। यदि कोई व्यक्ति कहे कि मैं नहीं मानता कि आग जलाती है तो उसके न मानने के कारण आग 'जलाने का कार्य' तो छोड़ नहीं देगी। हाँ, यदि वह आग के जलाने के धर्म को समझ कर कोई स्तम्भक प्रयोग करे तो वह आग से जलने से अपने को बचा सकता है, साथ ही औरों को भी बचा सकता है। इसलिए **उचित यह है कि हम लोग मानने न मानने के झंझट को त्याग कर 'जानने' में लगें।**

यदि आप मनुष्य की प्रारम्भिक प्रकृति पर ध्यान दें तो आप देखेंगे कि धर्म और संस्कृति से पहले व्यक्ति पर सैक्स का प्रभाव पड़ा। यौनांगों के असह्य उद्वेलन और उनके

कारण उत्पन्न संतति ने व्यक्ति को धर्म और संस्कृति जैसे मार्गों की ओर उन्मुख किया। प्रत्येक संस्कृति गर्भाधान संस्कार से प्रारम्भ होकर मोक्ष तक व्यक्ति के पीछे लगी रहती है। आचार्य रजनीश भी इसी सन्दर्भ में 'संभोग से समाधि तक' के जीवन की बात कहते हैं।

तन्त्र कहता है—(१) सहज प्राकृतिक आचरण ही धर्म है। (२) बिना गुरु की स्वीकृति के कोई कार्य मत करो। बिना गुरु को समर्पण किये कोई पदार्थ न भोगो, यहाँ तक कि धन, कन्या, स्त्री, पुत्रवधू आदि भी। (३) जो व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से दूर रहने की बातें करते हैं वे सब पाखण्डी हैं, जो धैर्य, अचौर्य, इन्द्रिय निग्रह आदि की बातें करते हैं, वे झूठे हैं; क्योंकि कोई भी व्यक्ति इनसे नहीं बच सकता है। (४) संग दोष (चोरी, जारी, मैथुन, अस्पृश्यता, भक्ष्याभक्ष्य विचार) आदि से जीवन को असहज न बनायें। असहज जीवन तनाव उत्पन्न करता है। तनाव रहित होना ही शांति युक्त होना है, उसके पश्चात् जो बचता है वह आनन्द ही आनन्द है। इस प्रकार तन्त्र मायिक बन्धनों का ज्ञान करा कर उनसे मुक्त होने की विधि बताता है। तन्त्र का स्त्री-पुरुष संगम शिव-शक्ति का संगम है। दोनों का अभेद ज्ञान होने पर 'अर्धनारीश्वर' सिद्ध होती है। संभोग में दो व्यक्ति अपने अहं (नाम, रूप, पद, मोह, सम्बन्ध, वर्ण आदि) को त्याग कर पाश-मुक्त हो 'सदाशिव' हो जाते हैं—पाशबद्ध भवेत् जीवः पाश मुक्तः सदाशिवः ॥ तन्त्र मार्गी अपनी सम्भोग साधना के बल पर ही चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं—

कौलाचाराः मुरम कठिनः योगिनामप्यगम्यः **(कुलार्णव तन्त्र)**

(कौल-मार्ग अत्यन्त दुष्कर है। यह योगियों के लिए भी अगम्य है।)

वे कहते हैं कि **बड़े-बड़े तपोनिष्ठ ऋषियों को जिस काम (सैक्स) ने तबाह कर दिया वही काम हमें मोक्ष तक पहुँचाने वाला और जीवन में आनन्द भरने वाला है। अन्तर है उसके प्रति दृष्टिकोण का उसके उपयोग का।**

आज विकास की जिस सीढ़ी से हम गुजर रहे हैं वहाँ मध्य मार्ग अपनाना अधिक युक्ति-युक्त है। दार्शनिक मार्ग व्यक्ति को अलगाववादी बनाता है फलस्वरूप साधक स्त्री, बच्चे, परिवार, समाज आदि से अलग, उनके प्रति अपने कर्त्तव्य से च्युत होकर रहने पर विवश हो जाता है। एक अर्थों में **ऐसा व्यक्ति समाज पर बोझा बनकर अपने यौवन के उद्देश्य 'आनन्द' से भी भटक जाता है।** समाज पर बोझा बनने से तात्पर्य यह है कि ऐसा व्यक्ति समाज के लिए तो कुछ करता ही नहीं है, समाज से खाता और है, यदि वह न होता तो समाज का एक व्यक्ति पलता। इस सन्दर्भ में, जंगल में रहने वाले यह न समझें कि वे समाज से कुछ नहीं ले रहे, जंगल भी समाज की धरोहर हैं। उन व्यक्तियों की सम्पत्ति है जो जीवन को जी रहे हैं, ढो नहीं रहे। यदि कोई दार्शनिक, वैज्ञानिक, तन्त्रज्ञ अथवा कोई भी विज्ञ अपने को किसी ऐसे कार्य में व्यस्त रखे हुए हैं जिससे समाज के विकास की सम्भावना है (चाहे वह हो पाये या न हो पाये) वह श्रद्धा योग्य है, सत्कार योग्य है, पूज्य है। उसके भरण-पोषण का ध्यान रखना समाज का कर्त्तव्य हैं। प्राचीन काल में

ऋषियों के प्रति राजाओं का ऐसा ही कर्त्तव्य होता था। कुल मिलाकर बात यह है कि वर्तमान परिस्थितयों के सन्दर्भ में दार्शनिक पद्धति से मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर हो पाना व्यक्ति के लिए अनुकूल नहीं पड़ता।

यदि वैज्ञानिक पद्धति की बात करें तो वह अभी पूरी ही नही हैं। नितांत अधूरी है। नित्य नई-नई खोजें हो रही है, और जो नई खोज होती है उसका जुनून सा सवार हो जाता है। लगता है कि संसार का कण-कण उस नई खोज से ही प्रभावित है शेष सब धोखा है। कुछ दिन पहले कैंसर की खोज हुई तो वैज्ञानिकों को हर गाँठ में कैंसर दिखाई देने लगा। अब एड्स की खोज हुई तो हर रोग एड्स से सम्बन्धित प्रतीत होने लगा। रेडियो की खोज हुई थी तो 'रेडियो एक्टिव रेज' का बड़ा हल्ला हुआ था। आजकल क्वान्टम थ्योरी जोरों पर है। तत्पर्य यह है कि विज्ञान की मान्यताएँ स्थिर होने में अभी बहुत समय लगेगा। मेरा विश्वास है कि आत्मा, परमात्मा, जन्म, मृत्यु, मृत्यु के पश्चात् .... ? आदि जैसे **धार्मिक सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विश्लेषण होने से धर्म में शुद्धता आयेगी और आडम्बरवाद समाप्त होगा।** परन्तु इससे पूर्व, विज्ञान को अपनी मान्यताओं में ठोस होना पड़ेगा। इसलिए विज्ञानवाद को हम वहाँ तक ही मान्यता दे सकते हैं जहाँ तक कि किसी सिद्धान्त के विश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। अब तीसरी विधा हमारे पास जो शेष रह जाती है वह 'तन्त्र' है। तन्त्र घोर व्यावहारिकवाद है। व्यावहारिकवाद का जहाँ तक प्रश्न है, हम मान्यता दे सकते हैं, परन्तु जहाँ तन्त्र आज के परिप्रेक्ष्य में अनैतिक हो उठता है वहाँ एक प्रश्न चिह्न लग जाता है, जैसे—पुत्री गमन, पुत्र गमन। हो सकता है किसी काल में यह सब जायज रहा हो। वह उस काल की आवश्यकता हो सकती है। यदि पुराण में ब्रह्मा और सरस्वती के सम्बन्धों की बात आती है, तो यह आवश्यक नहीं कि हम भी आँख बन्द करके उसी लीक पर चलें और तन्त्र के 'मातरमपि न त्यजेत' वाले सिद्धान्त का पालन भेड़ की तरह करें। **जिस काल में तन्त्र प्रारम्भ हुआ उसमें, और आज में जो 'अन्तर' है उसका निर्वाह करना ही बुद्धिमत्ता होगी।**

संसार की सभी सांस्कृतियाँ 'सैक्स व्यवहार' के परिवर्तन द्वारा व्यक्तित्व के परिवर्तित होने के प्रमाण देती हैं। साथ ही यह भी पता लगता है कि सप्त धातुओं के निर्माण वाला आयुर्वेदिक सिद्धान्त सभी धर्मों और वादों से मान्यता प्राप्त है।

जब तक हम जीवित हैं, पलायनवाद की बात सोचना ही संसार के प्रति कर्त्तव्यच्युत होने वाली तथा स्वयं को धोखे में रखने वाली बात है, और समाज और ईश्वर के प्रति अन्याय है। भौतिकवादी घोर संसारी बन कर जीना कई स्थलों पर व्यक्ति को अमानवीय (पशुतुल्य) बना देता है जिससे समाज में अनाचार बढ़ने लगता है। संसार व्यवहार की साम्रान्य प्रक्रियाओं में अधिकतर स्थल तनाव उत्पादक होते हैं। धीरे-धीरे यह तनाव ही पशुपन का कारण बनते हैं। तब व्यक्ति अपने अन्दर के पशु को बाहर लाने का बहाना ढूँढ़ता है।

यदि आप उसकी एक माँग पूरी कर दें तो दूसरी माँग को लेकर हंगामा करता है। यदि उसे भी पूरी कर दें तो तीसरी माँग आड़े आ जाती है। वहाँ 'माँग' का झगड़ा नहीं है, माँग तो झगड़ने का बहना है। इसीलिए कहीं धर्म का झगड़ा है तो कहीं भाषा का। कहीं

वेतन का झगड़ा है तो कहीं भत्ते का, सवाल तो पशुपन के बाहर आने भर का है। जो व्यक्ति इस पशुत्व को किसी विधि से प्रतिदिन (जितना तनावों के कारण दिन भर में इकट्ठा हो उतना) निकालता रहता है, वह शांत रहता है। धर्म के विभिन्न नियमों 'धृति क्षमा दमोऽस्तेयं' आदि का पालन इसी सन्दर्भ में करने का निर्देश मनुस्मृति ने दिया है। तन्त्र कहता है **दिनभर के तनाव से उत्पन्न पशुत्व को समाप्त करने के लिए प्रिया के अंक में सो जाना भर काफी है।** जो व्यक्ति जितना अधिक तनाव पैदा करने वाला कार्य करता है उसे उतनी ही अधिक प्रियाओं की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ पर प्रिया का 'प्रिया' होना एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। तन्त्र रहस्योद्घाटन करता है कि "एक ही जोड़ा अधिक दिन तक प्रेमपूर्ण नहीं रह सकता। अतः पूर्ण प्रेम के चक्कर में तान्त्रिक व्यक्ति जोड़ों में परिवर्तन करते हैं।" ध्यान रहे इस परिवर्तन में बलात्कार को स्थान नहीं है। बलात्कारी व्यक्ति 'प्रेमी' नहीं होता। बलात्कार से तात्पर्य 'बल प्रयोग करने' से है, चाहे वह शारीरिक बल हो, चाहे बुद्धि बल (ब्लैक मेलिंग आदि) हो अथवा अर्थ (धन) बल हो। इसी प्रकार 'मतलबी' भी प्रेमी नहीं होता।

एक अर्थों में मतलबी व्यक्ति भी बलात्कारी ही है जो अपना काम निकालने के लिए 'प्रेम बल' के नाटक का प्रयोग करता है। कोई जोड़ा अधिक से अधिक समय तक प्रेमपूर्ण रहे, इसके लिये साथी के चुनाव में ज्योतिषीय गणनाओं का प्रयोग बहुत से प्रबुद्ध समाज करते हैं। वे विवाह से पूर्व वर कन्या के गुण मिलाते हैं। जितने अधिक गुण मिल जाते हैं उतने ही अधिक दिनों तक उनके प्रेमपूर्ण बने रहने की सम्भावना की जाती है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि एक जैसे गुण वाले व्यक्तियों में प्राकृतिक आकर्षण (जिसे हम प्रेम कहते हैं) होता है। बहुत से लोग मित्रता करने में, साझेदारी का व्यापार करने में, नौकर रखने आदि में भी इन ज्योतिषीय सिद्धान्तों को व्यवहार में लाते हैं।

पशुत्व को दूर करने के लिये प्रेमपूर्ण होकर 'प्रेमपूर्ण प्रिया' के अंक में सो जाने की बात तन्त्र ने कही है, परन्तु ध्यान रहे, यहाँ सम्भोग सम्बन्धी कोई बात नहीं कही गई। इसलिये महर्षि वात्स्यायन अपने काम सूत्र में पत्नी के अलावा साली, सहेली, चाची, भाभी, मौसी आदि को भी अंक शायिनी बना लेने की बात करते हैं।

उनके अनुसार प्रेम एक समग्र बोध है, उसमें रिश्तेबाजी का चक्कर नहीं होता। एक प्रेमी अपनी प्रिया में सारे नाते-रिश्तों को एक साथ भोगता है। ऐसा आनन्दपूर्ण प्रगाढ़ और घनिष्ठ प्रणय प्रेम पाने वाला शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से उन्नति कर अपने जीवन को सक्रिय, सजीव तथा मस्ती भरा बनाता है। भगवान की बनाई प्रत्येक वस्तु से, प्रकृति के कण-कण से अधिक से अधिक आनन्द प्राप्त करने की कला जानना व्यक्ति मात्र का कर्त्तव्य है।

काम कुण्ठायें

गर्भाशय के रोगों से ग्रसित महिलाओं में सत्तर प्रतिशत रोगों के मूल में अतृप्त सम्भोग की बात निकलती है। जिस प्रकार अतृप्त या अपूर्ण सम्भोग एक अभिशाप है, उसी प्रकार काम कुण्ठायें जीवित नर्क हैं। काम कुण्ठाओं का मूल हमारे समाज के प्रेम के सम्बन्ध में विधि-निषेधों' की व्याख्या में है। क्योंकि हम लोग प्रेम सम्बन्धों के आगे

सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों को अधिक महत्व देते हैं। इस समाज में स्त्री-स्त्री के बीच अथवा पुरुष-पुरुष के बीच प्रेम हो तो किसी को आपत्ति नहीं होती परन्तु स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम हो तो सामाजिक और नैतिक मर्यादायें (उसे पाप का नाम देकर) एक अलक्षित दीवार बनकर खड़ी हो जाती हैं। ऐसे अत्याचार से कई प्रतिभाएँ कुण्ठित हो जाती हैं। मेरे ऐसे वक्तव्य पर कुछ लोग इसे मुक्त यौनाचार का नारा समझकर मुझे आक्षेप लगा सकते हैं, परन्तु वे वहीं होंगे जो मेरे आशय को न समझ पायेंगे। वैसे भी **व्यर्थ का सम्मान प्राप्त करने के लिए दो तरह की बातें करना, मेरी प्रकृति नहीं है।**

मेरा विचार है कि जहाँ सामाजिक मान्यतायें अपनी रूढ़ता के कारण व्यक्ति के जीवन को विषम और कष्टमय बनाती हों और उनका कोई तर्क संगत, युक्ति-युक्ति आधार न हो तथा उन्हें लेकर विभिन्न प्रकार के मत दिये जायें, वहाँ व्यक्ति को अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए और अपने तथा दूसरे व्यक्ति के जीवन के साथ अत्याचार नहीं होने देना चाहिए। कोई भी समाज यह नहीं चाहता कि उसका कोई सदस्य अपने जीवन में कुण्ठा, निराशा और आकुलता से पीड़ित हो। महर्षि वात्स्यायन ने प्रेम की नौंवी अवस्था उन्माद (पागल पन) और दसवीं मृत्यु बताई है। गीता में बुद्धि के नाश का प्रारम्भ 'काम' से बतलाया है क्योंकि प्रेम की अपूर्णता में व्यक्ति अपना विवेक खोकर दीवानगी (बुद्धि नाश) की सीमा तक पहुँच जाता है।

गुरुवर श्री गोविन्द शास्त्री ने 'तन्त्र सिद्धि रहस्य' में स्पष्ट किया है कि—"उदार दृष्टि से देखने पर यह माना जा सकता है कि एक स्त्री ने यदि पुरुष से समागम कर लिया तो क्या बात हो गई? वह समागम उसके पति के अलावा किसी और पुरुष के साथ हुआ है, तो भी कोई खास बात नहीं। क्योंकि इस समागम में जो मांसपेशियों की क्रिया हुई, या एक प्राकृतिक संवेग की जो पूर्ति हुई वह देहविज्ञान की प्रकृति से न अनपेक्षित घटना थी, न अस्वाभाविक। किन्तु इसका एक भावनात्मक पक्ष भी है और वह समागम के औचित्य-अनौचित्य पर गम्भीरता से विचार करता है। जिस समाज में स्त्री भी सम्पत्ति की तरह अधिकृत एवं अर्जित मानी जाती है वहाँ भावनात्मक मूल्य अधिक सशक्त रहते हैं।" आज नारी के सम्बन्ध में सामाजिक मान्यताएँ बदल रही हैं। स्त्री को सम्पत्ति के परिप्रेक्ष्य में देखने वाला नियम अब शिथिल होता जा रहा है और स्त्री को पुरुष के समान मान्यता दी जा रही है। दूसरों पर आक्षेप लगाने वालों में अधिकतर वे लोग हैं **जो अपने दुःख से इतने दुखी नहीं होते, जितने दूसरों के सुख से दुःखी होते हैं।**

यदि आप पाप और पुण्य की बात करें तो हर पाप में पुण्य की ओर हर पुण्य में पाप के सन्देह की झलक पा सकते हैं। बहुत से पाप परिस्थितियोंवश पुण्य माने जा सकते हैं और बहुत से पुण्य प्रत्यक्षतः हिंसा और अधर्म होते हुए भी उत्कट पुण्य माने जाते हैं, और कह दिया जाता है कि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'।

षटकर्मों का सम्यक् उपयोग

तन्त्र चूँकि यौन पूजा और सम्भोग को समाधि का मार्ग मानता है। अतः उसे यौनांगों को अपेक्षाकृत अधिक सबल, स्वस्थ एवं संस्कारित रखने पर जोर देना पड़ता है। इसके

लिए विभिन्न प्रकार की काम कलाओं और यौन-औषधियों का आवश्यकतानुसार प्रयोग होता है। मैंने बहुत से यौन-पूजक समाजों का गहराई से अध्ययन किया है और पाया है कि **तन्त्र यौनांगों एवं शरीर को स्वस्थ एवं सक्रिय रखने की बात करता है। परन्तु औषधियों आदि के प्रयोग से व्यक्ति को सांड बनकर अनाचार फैलाने का निर्देश नहीं देता। सम्पूर्ण तान्त्रिक व्यवस्था आनन्दपूर्ण स्वतन्त्रता एवं अलौकिक शान्ति प्राप्ति के लिये है न कि किसी प्रकार का सामाजिक व्यतिक्रम उत्पन्न करने के लिये।** महर्षि वात्स्यायन ने सम्मोहन और आकर्षण आदि के प्रयोगों की अनुमति सामाजिक मर्यादाओं को दृढ़ बनाने तथा अनावश्यक काम-कुण्ठाओं के निवारण करने हेतु ही दी है। सरकार आपको बन्दूक आपकी रक्षा के लिए देती है न कि चौराहे पर खड़े होकर राहगीरों को लूटने के लिये। यदि कोई ऐसा करता है तो न आप बन्दूक को दोष दे सकते हैं और न सरकार को।

मेरा आशय भी तन्त्र का प्रयोग घर में खुशहाली लाने के लिये. तथा गृहस्थ होते हुए भोग और मोक्ष दोनों की सम्प्राप्ति हेतु करने से है। आप अपने विवेक का प्रयोग करते हुए 'मातृ-योनि परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु' (माता की योनि को छोड़कर और सब योनियों से बिहार करें) जैसे नियमों को न मानकर उन नियमों और सिद्धान्तों का पालन करें जिनसे—

'लघुत्वमारोग्यमलौलुपत्वम् वर्ण प्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गंधः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति।

(शरीर हल्का चुस्त निरोग होता है, लोभ लालच दूर होता है। चेहरे का रंग निखर कर तेजस्वी हो जाता है। वाणी स्वर मधुर हो जाता है। शरीर और श्वास से सुगन्ध आने लगती है। मल-मूत्र अल्प (आवश्यक मात्रा में) हो जाते हैं, और योग (कुण्डलिनी योग) में प्रवृत्ति होकर सफलता प्राप्त होती है।)

भौतिक सिद्धि हेतु तांत्रिक षटकर्मों का उपयोग परिवार कल्याणार्थ इस प्रकार किया जा सकता है—

१. शान्ति कर्म

रोग निवारण, ग्रह, पीड़ा मुक्ति, उपसर्ग शमन, शत्रु मोचन, दुःख दारिद्रय के नाश, मान प्रतिष्ठा वृद्धि, सुख सौभाग्य, यश, कीर्ति वृद्धि आदि के लिये किये जाने वाले वे सभी कार्य जिनके मूल में स्व-हित हो अथवा लोक-हित हो और दूसरे का अहित अमंगल न करें, परिवार कल्याणार्थ उपयोग में लाये जा सकते हैं।

२. वश्य कर्म

इसके अन्तर्गत मोहन कर्म (किसी को मुग्ध, आत्म विस्मृत तथा सम्मोहित करना), वशीकरण कर्म (किसी को अपने अधीन करना और अपने आदेशों के अनुसार चलाना), आकर्ष कर्म (दूर भागे हुए प्राणी को अपनी ओर आकर्षित करना), जृम्भण कर्म (किसी को अनुगत बनाना, आज्ञाकारी बनाना), आदि आते हैं। परिवार में विषम परिस्थितियाँ आने पर मोहन, वशीकरण, आकर्षण तथा जृम्भण की तकनीकें (तांत्रिक कर्म Techniques) बहुत से बिगड़े काम बनाती हैं।

३. स्तम्भन कर्म

पंच तत्व अथवा उनसे निर्मित कोई वस्तु या प्राणी को गति की स्थिर कर देना स्तम्भन कर्म है। अचानक आई मुसीबत से परिवार को बचाने के लिये 'स्तम्भन तकनीक' का ज्ञान लाभदायक होता है।

४. उच्चाटन कर्म

उच्चाटन से तात्पर्य जी उचट जाने से है। परिवार में बहुत से ऐसे व्यक्ति आ जाते हैं जिन्हें आप किसी कारणवश पसन्द नहीं करते। ऐसे व्यक्ति को भगाने के लिये आप भिन्न-भिन्न प्रकार के उपाय काम में लाते हैं, जिससे उसका जी उचट जाय और वह वहाँ से चला जाय। उच्चाटन की ऐसी मनोवैज्ञानिक तकनीक (मानसिक तन्त्र) से परिवार को बहुत से फालतू लोगों से बचाया जा सकता है।

५. विद्वेषण कर्म

वे कर्म, प्रचार अथवा मनोवैज्ञानिक ढंग जिनसे दो प्राणियों अथवा वर्गों के बीच द्वेष-भाव उत्पन्न हो जाय, विद्वेषण कर्म कहलाते हैं। जहाँ कुछ व्यक्ति मिलकर आपके परिवार को अथवा उसके किसी व्यक्ति को कष्ट पहुँचा रहे हों उनमें आपस में विद्वेश भाव पैदाकर अपने परिवार की रक्षा की जा सकती है। किन्हीं दो प्रेमियों की शांति, एकता और सुख को नष्ट करना जघन्य कृत्य है, यह ध्यान रखें।

६. मारण कर्म

किसी प्राणी को जिस प्रकार विष देकर अथवा गोली या तलवार के प्रहार से हत्या की जाती है,उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक तकनीक (मानसिक तन्त्र विधि) द्वारा उसे मृत्यु के मुख में झौंका जा सकता है। व्यक्ति मारण योग्य है या नहीं इसका निर्णय प्रशासन ने अपने अधिकार में रखा है, जो उचित ही है क्योंकि किसी के जीवन के प्रति अन्तिम निर्णय लेना बहुत पेचीदा काम है।

तांत्रिक षट्कर्मों को एक हौवा का रूप देकर कुछ धन्धे खोरों ने जन सामान्य से अलग रखने का प्रयत्न किया है। यह उन लोगों का तन्त्र विज्ञान के प्रति अन्याय है। प्रबुद्ध से प्रबुद्ध समाज में भी बहुत से तांत्रिक कर्मों का प्रचलन है, तांत्रिक औषधियों का प्रचलन है। आदिवासी कबीलों में तो तन्त्र के सिवाय कुछ है ही नहीं। तांत्रिक टोटकों के प्रभाव के बारे में सन्देह करने की कोई तुक नहीं है। नजर उतारने वाली बुढ़िया माई सात तीखी लाल मिर्चें बच्चे पर घुमाकर एक विशेष विधि से आग में जलाती है तो मिर्चों की गंध नहीं आती, और वैसी ही मिर्च का यदि एक बीज भी सामान्य रूप से आग में गिर जाता है, तो खाँसते-खाँसते लोगों का बुरा हाल हो जाता है। ऐसे प्रयोग तांत्रिक प्रभावों को सिद्ध करते हैं और साथ ही हमें प्रेरित करते हैं कि अपने घर, परिवार तथा समाज के विकास में इसका आवश्यक उपयोग करके लाभान्वित हों।

■

१७

प्रत्याहार

अष्टांग योग की श्रृंखला में प्रत्याहार पाँचवाँ सर्ग है। शारीरिक तप के उपरान्त मानसिक तप के अन्तर्गत (जिसमें चित्तवृत्ति निरोध एवं कर्म बन्धन रोकने के लिये किये गये कार्य आते हैं) प्रत्याहार पहला है। प्रत्याहार का अर्थ है—**मन की विषयाभिमुखी गति को अन्तर्मुखी करना।** 'हमारा मन विभिन्न प्रकार के विषयों को देखकर भटक जाता है। उसे अन्दर लगाना है।' यह बात दार्शनिकों की समझ में भले ही आ जाय, जनसाधारण की पहुँच से परे है। अब इसे अधिक आसान शब्दों में आपको बताया जाय। आप बाजार में जाते हैं। वहाँ आपको मिठाई भी रखी दिखाई देती है, हलुआ भी रखा दिखाई देता है, चाट वाले की चटपटी मसलेदार चाट भी दिखाई देती है, उधर तेल के तले पकौड़े भी दिखाई देते हैं और आपका मन इन सब चीजों का स्वाद लेने के लिये ललकता है परन्तु आपका पेट सारी चीजों को पचा पाने में असमर्थ है।

पेट की अपनी सीमा है। यदि पेट की सीमा का ध्यान रखते हैं तो चाट भी छूटी जा रही है और मिठाई भी। बड़ी गम्भीर समस्या है। यदि आपका मन साथ दे तो इस समस्या को बड़ी आसानी से हल किया जा सकता है। मन का साथ इस तरह चाहिये कि जो पचास चीजें दिखाई दे रही हैं उनमें से वह एक या दो चीज चुने और चुनी हुई वस्तु की मात्रा पेट की सीमा के अन्दर हो। मन का भी अपना काम करने का एक विशेष तरीका है जो मनोविज्ञान के अन्तर्गत आता है।

आप किसी कार्य को दो तरह से कर सकते हैं। एक वह तरीका जिसमें बड़ा हो हल्ला हो, दुनियाँ को पता लगे कि आप बहुत कुछ कर रहे हैं चाहे उससे लाभ नाम मात्र ही हो या बिल्कुल न हो। दूसरा वह तरीका है जिसमें आवश्यकतानुसार बिना किसी दिखावे के कार्य सम्पन्न किया जाय और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जाय। पहले तरीके में हानि होने पर समाज यह कहेगा कि बेचारे ने हाथ-पैर तो बहुत पीटे, बहुत श्रम किया पर लाभ नहीं मिला, भगवान की ऐसी इच्छा थी और दूसरी तरीके में वह कहेगा कि लाभ तो मिल गया क्योंकि भाग्य सीधा था अन्यथा इन्होंने तो कुछ खास किया कराया नहीं है।

हमें दूसरा तरीका अपनाना है। **योग में दिखावे को कोई स्थान नहीं है। योग भ्रष्ट पर दिखावे के अलावा कोई काम नहीं है।** योग में प्रत्याहार एक दम निजी बात है।

इसमें व्यक्ति की लड़ाई अपने मन से चलती है। जैसे अपने घर में पति-पत्नी में लड़ाई चलती हो। पत्नी कहे कि मुझे यह भी चाहिये, वह भी चाहिये और पति देव कहते हों कि सब तो एक साथ नहीं आ सकता। मेरी जेब की सीमा को देखते हुए माँग करो। वह कहती है कि जेब में दम नहीं थी तो मेरी माँग क्यों भरी थी ? पति देव झल्लाते हैं कि मैंने क्या तुम्हारी सब माँगे भरने को माँग भरी थी, वह तो मात्र सन्तान की माँग पूरी करने को माँग भरी थी ? इसी में, यदि पत्नी का सहयोग प्राप्त हो, और वह पति की जेब की सीमा का ध्यान रखते हुए अपनी माँग रखती चले तो घर में सुख-शान्ति का साम्राज्य भी हो और धीरे-धीरे सारी आवश्यकता की वस्तुएँ भी घर में आ जायँ। इस उदाहरण में पत्नी को अपना 'मन' समझ लीजिये।

अब एक बच्चे का उदाहरण लीजिये—आप बच्चे को मेला (Exhibition) दिखाने ले जाते हैं। वह जो देखता है, वही माँगता है। जहाज माँगता है तो कह देते हैं कि उसके उड़ाने को घर में जगह नहीं है, रेल माँगता है तो कह देते हैं, पटरी रखने की जगह नहीं है, साइकिल माँगता है तो कह देते हैं कि सड़क पर गिर जाओगे, चोट लग जायेगी। जबकि असलियत यह होती है कि जेब में पाँच रुपये से अधिक नहीं हैं। यदि बच्चा अधिक जिद करने लगता है तो आप दूसरा रुख अपनाते हैं—देखो, जो कुछ मैं दिलाता हूँ वह लेते चलो, जो तुम माँगोगे वही नहीं मिलेगा। धीरे-धीरे बच्चा चीजें माँगना बन्द कर देगा और थोड़ी रूठा मटकी के पश्चात् जो कुछ आप दिलायेंगे उसे स्वीकार करना प्रारम्भ कर देगा। इस उदाहरण में मन को बच्चा समझ लीजिये। यदि आपका मन समझदार है तो उसके लिये पहली ट्रिक ही काफी है, यदि वह जिद्दी है तो दूसरी ट्रिक अपनाइये।

प्रत्याहार के अभ्यास से मन को हम ऐसा करना चाहते हैं कि वह जिद्दी बच्चे की तरह अथवा असहयोगी पत्नी के समान अनावश्यक वस्तुओं की जिद केवल अपनी माँग पूरी करने के उद्देश्य से न करे। अपितु **शरीर की अवस्था का ध्यान रखते हुए उचित और आवश्यक वस्तु की ही माँग करे। यही मन का अन्तर्मुखी होना है।** यदि शरीर की आवश्यकता के आधार पर मन अपनी माँग रखे तो 'मन वश में' कहा जाता है। 'मन वश में' का अर्थ यह नहीं है कि शरीर को दही की आवश्यकता है और आप मन को दबाकर दही की ओर नहीं देख रहे। यह तो जिद्दी बच्चे को दबाने वाली बात है। आपके मन को समझदार उस समय माना जायेगा जब दुनियाँ को दही बाँट कर भी आप आवश्यकता न होने पर स्वयं दही न खायें। **समझदार मन को हम 'योगी' कह सकते हैं**, जिस प्रकार समझदार पत्नी को 'देवी' तथा समझदार पुत्र को 'सपूत' कहते हैं।

मौन

प्रत्याहार के अभ्यास में मौन का अपना महत्व है। पीछे हम मौन तथा कम से कम बोलने का महत्व दर्शा आये हैं। पाइथागोरस ५८२-५०० ईसा पूर्व का दार्शनिक सन्त था। जो व्यक्ति उसके पास आध्यात्मिक गुप्त विद्या सीखने जाता उसे वह दो वर्ष तक मौन रखने का आदेश देता था। यह बात तो आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि अधिक

बोलने वाले की स्नायु शक्ति को हानि पहुँचती है। दिव्य दृष्टि उत्पन्न करने के लिये मौन धारण अथवा कम से कम बोलने का अभ्यास करें। प्रारम्भ के दिनों में मौन धारण बड़ा अटपटा और कई स्थलों पर कष्टदायक सा प्रतीत होगा। धीरे-धीरे यह एक स्वाभाविक बात हो जायेगी।

अंग्रेजी में कहावत है—Talkers are no good doers (जितना बातूनी उतना हरम्मा) यह स्थिति व्यर्थ बातों (unwanted talks) के विषय में है। परन्तु हम तो अव्यर्थ बातों (Wanted talks, required talks) पर भी अंकुश लगा रहे हैं। धारणा, ध्यान और समाधि के अभ्यास करने से पूर्व मौन धारण पर शक्ति संग्रह के लिये जोर दिया जाता है।

विरोधाभ्यास

प्रत्याहार के लिए, जैसा हम ऊपर बता आये हैं, 'विरोधाभ्यास' तथा 'असहयोगभावाभ्यास' अत्यन्त उपयोगी साधनाएँ हैं। **विरोधाभ्यास** (Exercise of opposing), जो मन चाहे वही न करना, जो मन माँगे वही न देना, तथा जो मन न चाहे वहीं करना, यदि पूरा विरोध न कर सको तो थोड़ा ही करना। मन पाँच पूड़ी चाहे तो पूड़ी न देकर अन्यान्य वस्तुएँ देना, यदि परिस्थितिवश पूड़ी ही देनी पड़े तो पाँच के स्थान पर साढ़े चार या चार ही देना; इस प्रकार के विरोधी कार्य मन की चंचलता को मारने में अच्छा काम करते हैं। यह अभ्यास चौबीसों घण्टे चलता है यह नहीं कि आधा घण्टा पूजा में बैठें तब तक चले। चौबीसों घण्टे प्रत्येक क्षण मन के कार्य-कलापों पर ध्यान देना है जिससे आप अधिक से अधिक विरोध कर सकें। यहाँ विरोध किसी कार्य के हानि-लाभ का ध्यान रखकर नहीं करना है, चाहे मन आपके लाभ की बात करे चाहे हानि की, **विरोध मात्र विरोध के लिए** (Opposition for opposition sake) करना है। यहाँ ध्यान देने की बात एक है—**जिन कार्यों के करने से शारीरिक, मानसिक अथवा आत्मिक हानि हो उन्हें करने में परिस्थित्यानुसार अपने विवेक से काम लेना होगा।** भूख लगी हो, मन खाना माँगे, आप विरोध करें तो शारीरिक हानि होगी। मन कुआँ देखकर उससे बचना चाहे आप विरोध के चक्कर में उसमें छलांग लगा दें, यदि मरे नहीं तो शारीरिक हानि हो ही जायेगी। मन के विरोध के सम्बन्ध में किसी ने कहा है—

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन के मत चलिये नहीं, पलक-पलक मन और॥

यह उक्ति प्रत्याहार सिद्ध न होने तक ही सही है। जब मन अंतर्मुखी हो जायेगा फिर सारे कार्य मन के अनुरूप ही किये जायेंगे।

असहयोग भावाभ्यास

असहयोग भाव का अभ्यास (Non-cooperation with mind) का उपयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पूर्ण विरोध उचित नहीं रहता। जैसा कि मैं पूड़ी वाले उदाहरण में पीछे बता आया हूँ। पाँच पूड़ी के स्थान पर साढ़े चार ले लो। पाँच मत लो। इसमें विरोध नहीं है पर **असहयोग** हो गया।

इन दोनों प्रकार की साधनाओं के लिए प्रतिक्षण मन की क्रियाओं पर ध्यान देना आवश्यक है। प्राचीन ऋषियों ने दृढ़तापूर्वक दिनचर्या का पालन करने को भी प्रत्याहार सिद्धि के लिये उपयोगी माना है। दिनचर्या एक बंधी लीक होती है जिस पर उच्छृंखल मन को चलना बड़ा कष्टमय प्रतीत होता है अतः प्रत्याहार सिद्ध होने तक (मन वश में होने तक) अपनी दिनचर्या का दृढ़ता से पालन करें।

गीता में लिखा है—

इन्द्रियार्थेशु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्॥ **(गीता १३/८)**

(भोगों में वैराग्य, अहंकार का त्याग, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, व्याधि दुःख और दोष के विचार द्वारा मन वश में होता है।)

यह सब परिणाम है। ऊपर दी गई विधियों से मन वश में हो जाने पर यह स्थितियाँ जो गीता के श्लोक में हैं शनः शनः प्राप्त होती जाती हैं अर्थात् प्रत्याहार सिद्ध होने पर भोगों में वैराग्य हो जायेगा, आसक्ति नहीं रहेगी। व्यक्ति किसी इन्द्रिय के विषय के लिये लालायित नहीं रहेगा। यह नहीं कि भोगों से घृणा उत्पन्न हो जायेगी। वह तो योगी के लिये आसमान से टपके, खजूर में अटके वाली बात हो जायेगी। **अहंकार का त्याग, मित्र भाव आ जाने के कारण हो जाता है** और व्यक्ति को 'आत्मवत सर्व भूतेषु' वाली स्थिति प्राप्त हो जाती है।

आत्म ज्ञान सिद्ध हो जाने पर जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के वैज्ञानिक कारणों का ज्ञान होने पर प्रत्याहार सिद्ध करके मनुष्य इनके दोषों को आसानी से समझ लेता है और मोक्ष हेतु प्रयत्न प्रारम्भ करने लग जाता है। **इन 'परिणामों' को 'प्रयत्न' समझेंगे तो हम कहीं नहीं पहुँचेंगे।** पिछले दस हजार वर्ष से हम यही करते आ रहे हैं।

ब्रह्म बिन्दु उपनिषद में कहा है—

यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते।
तस्मान्निर्विषयं नित्यंमनः कार्यं मुमुक्षुणः॥

(मन के निर्विषय होने पर ही मुक्ति होती है, इस कारण मुमुक्षुओं को निरन्तर मन को सब विषयों से खींचते रहना चाहिये) भग्वद्गीता में भी इसी सन्दर्भ में इस प्रकार कहा गया है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ **(अध्याय ६, श्लोक २६)**

(चंचल और अस्थिर मन जिस-जिस विषय में जाये उस-उस विषय से उसको पीछे खींच कर आत्मा के ही वश करो।)

यह **'खींचते रहना चाहिए'** ही प्रत्याहार सिद्धि का रहस्य है। यह **'खींचना'** चौबीसों घण्टे चलेगा। प्रत्याहार (मन वश में होने) के अभ्यास अधिक दिन तक नहीं करने पड़ते। बहुत शीघ्र प्रत्याहार सिद्ध होता है। प्रत्याहार सिद्ध होने के पश्चात् ही धारणा, ध्यान और समाधि में गति होती है। प्रत्याहार सिद्ध हो जाने पर भी, बीच-बीच में मन की परीक्षा लेते रहना चाहिये और जब भी मन को गड़बड़ देखें तो प्रत्याहार का अभ्यास चालू कर दें। इस प्रकार प्रत्याहार सिद्ध हो जाने पर भी जीवन भर 'मन' पर ध्यान देना होता है।

१८

ऋतुयें और आहार

कुण्डलिनी योग के भोजन के विषय में कहने को विशेष कुछ नहीं है क्योंकि वह सभी खाद्य-पदार्थों का उपयोग कर सकता है जो देश-काल परिस्थिति के अनुसार उचित हों। फिर भी उचित-अनुचित पर ध्यान देने के लिये कुछ सूत्र हम यहाँ बतला रहे हैं। संसार में कुछ देश गर्म हैं तो कुछ बहुत ठंडे हैं। भारतवर्ष ऐसा देश है जहाँ थोड़े-थोड़े दिनों बाद मौसम बदलता रहता है—

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड्ऋतवः स्मृताः।
शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मो वर्षा शरद्धिमाः॥

माघ मास से प्रारम्भ करके दो-दो मासों की छः ऋतुएँ क्रमशः शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त हैं। इनमें शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म को आदान काल कहा जाता है। आदान का अर्थ है ग्रहण अथवा शोषण। इस समय में बल का शोषण होता है क्योंकि सूर्य उत्तरायण रहता है। इस समय की वायु वेगवान और रुक्ष होने से जीवों के स्नेह अंश का शोषण करती है। योगी प्रकृति के अधिक निकट रहने वाला प्राणी होता है। अतः ऐसे प्राकृतिक नियमों पर ध्यान देते हुए ही उसे सम्पूर्ण जागतिक सुख भोगने होते हैं। इसी प्रकार उसे ऋतुओं के प्रभावानुकूल आहार-विहार का निर्देश किया जाता है। स्वास्थ्य का आधार भोजन, निद्रा, ब्रह्मचर्य, व्यायाम होते हैं। किसी ने कहा है—

'बेहतर है मुफलिसी के मियाँ चाबने चने।
जो तन्दुरुस्त हैं वही दूल्हा हैं और बने॥
जितने सखुन हैं सब में यही है सखुन दुरुस्त।
भगवान आबरू से रक्खे, और तन्दुरुस्त॥'

लोगों के पास दौलत के ढेर लगे होते हैं परन्तु स्वास्थ्य के अभाव में सब व्यर्थ रहता है। **निरोग शरीर व्यक्ति की प्रथम आवश्यकता है। निरोग शरीर की आवश्यकता है सन्तुलित भोजन।** ऐसा नहीं कि 'कभी घी घना, कभी मुट्ठी भर चना, कभी वह भी मना।' ऐसा आचरण शरीर को निरोग नहीं रख सकता। **भोजन से ऊर्जा उत्पन्न होती है।** निद्रा

से दैनिक कामों में व्यय हुई ऊर्जा की क्षति पूर्ति होती है। इन्द्रियों को विश्राम मिलता है। स्वस्थ नींद उचित समय पर स्वतः ही आती है किसी ने कहा है—

'भूख न देखे रूखा भात।
नींद न देखे टूटी खाट॥'

बहुत से लोग बड़े साधन सम्पन्न होते हैं परन्तु नींद न आने के कारण दवा या नशा के उपयोग से सोने का उपाय करते हैं। ऐसी नींद स्वास्थ्यप्रद तो होती ही नहीं, दवा खाने की आदत और डाल देती है। स्वास्थ्य के लिये—

आवश्यक हैं पाँच काम नियत समय सम्यक होना।
खाना, पीना, शौच, व्यायाम, सुख निद्रा का सोना॥

ब्रह्मचर्य के बारे में इस पुस्तक में अधिक विस्तार से बतलाया ही गया है। **'जौ लौं तेल प्रदीप में तौं लौं जोत-प्रकाश'** कहकर भोग विलास में संयमी रहने का महत्व ऋषियों ने प्रकट किया है। शरीर का ओज ही सुन्दरता, बल और स्फूर्ति प्रदाता होता है। ओज का प्रदाता वीर्य अथवा रज होता है। बढ़ती जनसंख्या के कारण बेकारी, भुखमरी, महामारी के साथ-साथ जीवन स्तर में गिरावट आ रही है। 'परिवार कल्याण' राष्ट्रीय ही नहीं विश्व-समस्या बनी हुई है। कृत्रिम उपायों से भी लाभ तो मिलता ही है परन्तु तांत्रिक ब्रह्मचर्य (संभोग समाधि) से तो 'आम के आम गुठलियों के दूने दाम' वाली कहावत सिद्ध हो जाती है।

व्यायाम भी अपने कार्य व्यवहार में भोजन के समान ही नियम तथा सम्यक अभ्यास माँगता है। किसी ने कहा है 'मन आवै तब डण्ड करै, दैव न मारै आपहि मरै।' लोक कवि घाघ और भड्डुरी की कहावतें भी इन विषयों पर अच्छा स्पष्टीकरण देती हैं जैसे—

'रहै निरोग जो कम खाय, बिगरै काम न जो गम खाय'

अधिकतर लोग अंग्रेजी मास के अनुसार ही अपने कार्य व्यवहार चलाते हैं। इसलिये हम भी जनसाधारण के लाभार्थ जनवरी, फरवरी (हिन्दी मासों के अनुसार पौष, माघ) आदि से ही आहार-विहार का विवरण दे रहे हैं—

जनवरी

शिशिर ऋतु में सर्दी अधिक होने के कारण व्यक्ति की पाचक अग्नि प्रखर रहती है अतः नित्य कर्म से निवृत्त होकर हलुआ, लड्डू, बादाम पाक, मूसली पाक, गोंद, जलेबी आदि का जलपान किया जा सकता है। भूख की उपेक्षा इस ऋतु में शरीर के रस रक्त का क्षय करती है। पैरों की ओर से शरीर को सर्दी न लगे इसलिये मोंजे पहनना लाभदायक है। गरम जल सिर पर डालने से नेत्र और बालों को हानि होती है। सूर्य किरणों का सेवन लाभदायक है परन्तु पीठ की ओर से। प्रातः काल तेल मालिश तथा व्यायाम आवश्यक है।

फरवरी

इस मास में भी शिशिर ऋतु ही है। यूँ सर्दी तो कम होने लगती है फिर भी थोड़ी सी असावधानी से सर्दी जुकाम हो जाता है। साधारण पौष्टिक और सुपाच्य भोजन ही लें। दूध अच्छा पेय है। इस मास की वायु कर्कश और रूक्ष होती है अतः होठ और पैर फटने लगते हैं, उनका ध्यान रखें। हल्के गर्म वस्त्रों का प्रयोग करें। रूक्ष वायु और सर्दी के संयोग से कफ और वायु सम्बन्धी विकार इस मास में अधिक होते हैं, अतः सर्दी, जुकाम, खाँसी, दमा से बचें।

मार्च

शिशिर ऋतु (जनवरी, फरवरी) में मधुर, स्निग्ध, और गरिष्ठ पदार्थों के सेवन करने से संचित कफ बसंत ऋतु के सूर्य की अपेक्षा तीक्ष्ण किरणों से द्रवीभूत होकर प्रतिश्याय, खाँसी, कफ, ज्वर आदि जैसे रोगों को उत्पन्न करता है—

कफश्चित्तो हि शिशिरे बसन्तेऽर्काशुतापितः।
हत्वाऽग्निं कुरुते रोगानस्तं त्वरया जयेत्॥

किसी ने कहा है—'बसन्ते भ्रमणां पथ्यं', बसंत ऋतु में भ्रमण करना अधिक स्वास्थ्यवर्धक है। कठिन व्यायाम इस ऋतु में नहीं करें। बसंत में अधिक खट्टा, अधिक मीठा, उड़द, दही, सिंघाड़ा, ठंडी-बासी चीजें, गरिष्ठ पदार्थ आदि नहीं खाने चाहिये। पुराने जौ, गेहूँ, शहद, जंगली पशुओं का सूखा मांस, आसव, अरिष्ट, सुरा आदि का उपयोग लाभदायक रहता है। फूल वाले उपवनों तथा वनों में विहार भी स्वास्थ्यप्रद रहेगा। इन दिनों दिन में सोने से कफ उत्पन्न होता है अतः दोपहर का समय बाग-बगीचों में बिताना अच्छा है, अन्यथा खाँसी, न्यूमोनियाँ, इन्फ्लूऐंजा, मियादी बुखार आदि जकड़ सकते हैं।

अप्रैल

यह मास तो बसंत का है परन्तु मार्च की अपेक्षा गर्म है अतः चिकने और गरिष्ठ भोजन का त्याग करके पुराने जौ-गेहूँ की रोटी, पुराने चावल, दूध, परवल, चौलाई, बथुआ आदि का सुपाच्य आहार करें। अदरख, काली मिर्च, छुहारे, शहद, भुने आम का रस (पना), इमली का पना, आदि का सेवन इस ऋतु में अच्छा रहता है। बसंत में व्यायाम स्नान से पूर्व ही करना चाहिये। तैरना इस ऋतु में एक अच्छा व्यायाम है। इस ऋतु में रक्त साफ करने वाली औषधियाँ तथा आँखों से सम्बन्धित औषधियाँ अधिक प्रयुक्त होती हैं।

मई

इस मास में दोहपर को लू चलने लगती है। लू में कहीं जाना हो तो शीतल जल पीकर छाता और काला चश्मा लगाकर जायँ। सफेद अथवा हल्के रंग के कपड़ों का उपयोग करें। नमकीन, चटपटे, मीठे, शीतल और पतले (द्रव) पदार्थों का सेवन इस ऋतु

में कर सकते हैं। प्रातः काल दूध-दही की लस्सी, ठंडाई, जल में घोलकर बनाया पतला मीठा जौ का सत्तू तथा शर्बत आदि उपयुक्त पेय हैं। इस ऋतु में व्यायाम और भोजन की मात्रा कम कर दें। इन दिनों में हैजा फैलता है और पेट फूलना, मिचली होना, भूख न लगना, आदि रोग होते हैं अतः पुदीना आदि का समुचित प्रयोग करें। इस ऋतु का सूर्य स्नेह का क्षय करता है अतः श्लेष्मा का अनुपात शरीर में कम हो जाता है और वायु में वृद्धि हो जाती है। पित्त की भी वृद्धि होती है। इस ऋतु में नमक, कटु, अम्ल-रस, व्यायाम और धूप का सेवन कम से कम कर दें। शराब नहीं पियें, अन्यथा शरीर में शोष, शिथिलता, दाह और मोक्ष की उत्पत्ति होगी।

जून

मई मास के आहार-विहार के समान ही जून में व्यवहार करें।

जुलाई

इस मास में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है अतः वायु का प्रकोप शरीर में बढ़ता है। वायु शामक सूखे, हल्के, गरम, घी-तेल की अधिकता वाले, नमकीन तथा खट्टे पदार्थों का सेवन इस ऋतु में लाभप्रद रहता है। पत्ते वाले साग खाने योग्य नहीं होते। इस ऋतु में 'आम्रकल्प' (आम और दूध) मंदाग्नि और संग्रहिणी वालों को भी हजम हो जाता है और शरीर को पुष्ट करता है। कलमी आम के स्थान पर पतले रस वाले आम अधिक लाभदायक होते हैं। बरसाती दिव्य जल (वर्षा का पानी जो नीचे गिरने से पूर्व ही एकत्र कर लिया जाय) इन दिनों पीना स्वास्थ्यवर्धक रहता है। कुएँ का पानी उबाल कर पियें। इन दिनों नदी और तालाब का पानी न पीने योग्य होता है, न स्नान करने योग्य। इन दिनों में पुराने वात रोग अधिकतर उभर आते हैं। पुराना अनाज, जंगली पशुओं का माँस, मूँग आदि के यूष, पुराना शहद, अरिष्ट आदि का सेवन इन दिनों उचित रहता है। किसी ने कहा है—

अपादचारी सुरभिः सततं धूपिताम्बरः।
हर्म्यपृष्ठे वसेद्बाष्पशीतशीकर वर्जिते॥
नदी जलोदमन्थाहः स्वप्नयासातपांस्यजेत्॥

(वर्षा में पैदल बाहर न निकलें, कपड़ों को प्रतिदिन धूप दिखातें रहें, मकान की छत पर बैठें, जहाँ तेज हवा और वर्षा की बूँदें न पड़ें। नदी का पानी, पानी में घोला हुआ सत्तू, दिन में सोना और धूप का सेवन इन दिनों में न करें)।

अगस्त

यह मास वर्षा ऋतु का विशेष मास है लैम्प बल्ब आदि पर पतंगे गिरते हैं, अतः शाम का भोजन अंधेरा होने से पूर्व ही कर लेना उचित है। गरिष्ठ और बासा भोजन

बिल्कुल न खायें। इन दिनों दहीं नहीं खाना चाहिये। कहावत है—'**सावन साग न भादों दहीं। क्वार करेला न कार्तिक मही।**' बरसात में कीचड़, पानी सील और तेज धूप से शरीर को बचाना चाहिये परन्तु कपड़ों को अवश्य धूप लगायें। तेल मालिश करना इन दिनों अच्छा रहता है। गीले वस्त्र पहनने से दाद हो सकता है। यह ऋतु मलेरिया ज्वर के लिए भी अनुकूल होती है अतः इसका भी ध्यान रखें।

सितम्बर

यह मास मलेरिया का विशेष मास है चूँकि वर्षा समाप्त होने लगती है घरों के आसपास गड्ढों में बरसाती पानी जमा हो जाता है, उनमें मच्छर पनपते हैं। धुआँ करने से मच्छर भागते हैं वैसे मच्छरदानी का उपयोग करना अच्छा रहता है। शरीर में सरसों के तेल की मालिश करने से मच्छर नहीं काटते। इन दिनों तालाबों, कुओं आदि में चूना या पोटेशियम परमैगनेट (लाल दवा) आदि डाल देनी चाहिये। प्रतिदिन एक नीबू गरम पानी में निचोड़ कर पीयें तथा शहद का उपयोग करें। इस मास में शरद ऋतु प्रारम्भ हो जाती है जिसमें नवीन सूर्य किरणें अधिकतर पित्त कुपित कर देती हैं अतः पित्त शामक वस्तुएँ प्रयोग करते रहें। भूख लगने पर तिक्त, मधुर, कषाय, रस-प्रधान और शीघ्र पचने वाले पदार्थों का सेवन इन दिनों कर सकते हैं। भोजन में शहद, परवल आदि को प्रधानता दें और क्षार युक्त पदार्थ, दही, चर्बी, धूप, तीखी शराब, दिन का सोना और सामने से आने वाली हवा के झोंके से बचते रहें। मलेरिया के दबने से तिल्ली बढ़ जाती है अतः मलेरिया होने पर उसकी चिकित्सा तुरन्त करें।

अक्टूबर

पित्त का प्रकोप इस मास में भी रहता है। जुलाब से पित्त शमन होता है। घृत का उपयोग भी लाभदायक है। नीबू भी पित्तशामक है। वर्षा के बाद स्वच्छ आकाश से आने वाली चन्द्र-किरणें अमृतमयी होती हैं। इन्हीं दिनों शरद् पूर्णिमा की रात में चन्द्र-किरणों में विहार करना और चाँदनी में रखकर ठण्डी की हुई खीर खाना अति उत्तम है। चन्द्र-किरणों की स्निग्धता और गुणवत्ता के कारण शरद् पूर्णिमा की महिमा है।

नवम्बर

इस मास से हेमन्त ऋतु प्रारम्भ हो जाती है। सर्दी अधिक पड़ती है अतः शरीर की ऊष्मा बाहर जाने से जठराग्नि प्रबल हो जाती है। इस काल में स्वादु, अम्ल, लवण, रस युक्त पदार्थों को सेवन तथा वायु नाशक तेलों से शरीर की मालिश करके लाभ उठायें। गेहूँ का आटा, उड़द, ईख, दूध से बनी वस्तुएँ, नवीन अनाज, चर्बी और तेल का सेवन इस ऋतु में उपयुक्त रहता है। स्नान सुखोष्ण (हल्के गरम) जल से करें। इन दिनों रातें लम्बी होने के कारण प्रातः ही भूख लगने लगती है। यदि उस समय कुछ न खायें तो जठराग्नि

शरीर की धातुओं को ही जलाने लगती है अत: इससे पूर्व कि भूख लगे, व्यक्ति को नित्यकर्म से निवृत्त होकर तैल मालिश, व्यायाम, स्नान आदि की व्यवस्था अति प्रात: ही कर लेनी चाहिए। आयुर्वेद में कहा है—

कषायापहृतस्नेहस्तत: स्नानो यथाविधि: ।
कुंकुमेन सदर्पेणा प्रदिग्धोऽगुरुधूपित: ॥

(अर्थात् मालिश के तैल में से कषाय निकालकर यथा विधि स्नान करें। तत्पश्चात् शरीर पर केसर का लेप करके 'अगर' के धुएँ से घर को सुवासित करें। केशर कस्तूरी के लेप द्वारा शीत काल का वायु प्रकोप शान्त हो जाता है। इस मास में दीपावली भी आती है, लोग गरिष्ठ भोजन और मिठाइयों का व्यवहार करते हैं अत: उनके आठ दिन बाद अल्प आहार (यमदंष्ट्रा) का आयोजन चलाया जाता है। सर्दी पड़ने के कारण पौष्टिक पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है। जैसे बरसात के बाद मकान की रंगाई पुताई आदि मरम्मत कराकर सालभर के लिये चैन की नींद सोया जाता है, उसी प्रकार इस ऋतु में पौष्टिक रस-रसायनों का सेवन कर साल भर के लिये शक्ति अर्जित कर ली जाती है।

दिसम्बर

इस मास में तेज सर्दी होती है। जो पाचक अग्नि गर्मी और बरसात में मन्द हो जाती है वह इस ऋतु में प्रबल हो जाती है। अन्य ऋतुओं में नवीन अनाज खाना मना है परन्तु इस ऋतु में नवीन अन्न शरीर को पुष्ट करता है। नये चावल की खीलें, उड़द की चीजें, मैदा, गोंद आदि के लड्डू, पाक, अवलेह आदि इस मौसम के ही खाद्य पदार्थ हैं। इन्हीं दिनों श्वास (दमा) नाशक तथा प्रमेह नाशक औषधियाँ अपेक्षाकृत अधिक लाभ करती हैं। शरीर पुष्टि इस ऋतु में अच्छी होती है। मनोहर लाल गुप्ता ने कहा है—

'काया राखे धर्म, पूँजी राखे व्यवहार'

■

अन्तरंग साधना

१९

धारणा और ध्यान

[CONCENTRATION AND MEDITATION

ध्यान के विषय में अधिकतर लोग क्रियात्मक रूप से धारणा, ध्यान और समाधि में अन्तर नहीं कर पाते और एक को दूसरे की सीमांत (Peak) अवस्था मान बैठते हैं। वस्तुत: ऐसा नहीं है। **धारणा** (Concentration) में साधक अपनी आत्मिक शक्ति को एक विशेष दिशा में प्रसारित (Transmit) करता है, जबकि **ध्यान** (Meditation) में साधक अपने चारों ओर बिखरी प्राकृतिक परमात्म शक्ति को अपने अन्दर समाहित (Recieve) करता है। इसे वैज्ञानिक रूप में ऐसे समझें कि जिस रैडार या रेडियो स्टेशन का एक ही 'ट्रान्समीटर-रिसीवर ऐरियल' होता है वह एक बार अपनी तरंगों (Waves) को ट्रान्समिट करता है और दूसरी बात लौटती तरंगों को रिसीव करता है (उस समय ट्रान्समीटर ऑफ रहता है)। **ट्रान्समिट करना धारणा है और रिसीव करना ध्यान है।** इस विषय को मैं इस पुस्तक के प्रथम भाग में स्पष्ट कर चुका हूँ। हमारा फ्रीक्वेन्सी-जनरेटर (तरंगोत्पादक) आत्मा है। उसकी तरंगें मन के संस्कारों से पार होकर मस्तिष्क कम्प्यूटर के विभिन्न विभागों से टकराकर उन्हें प्रेरित (Bias) करके भाव तरंगें उत्पन्न करती हैं, जिन्हें 'विचार' कहा जाता है। जब तक हमारे विचार उठ रहे हों तब तक ट्रान्समीटर ऑन है और जब ट्रान्समीटर ऑन है तो रिसेप्शन का प्रश्न ही नहीं उठता। **जो व्यक्ति परमात्म-शक्ति का रिसेप्शन चाहता है उसे अपना ट्रान्समीटर ऑफ करना पड़ता है अर्थात् निर्विचार होना पड़ता है।**

सारे धर्म गुरु, सारे शास्त्र निर्विचार होने को ही ध्यान (Meditation) मानते हैं, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हों। जब तक साधक निर्विचार होने की प्रक्रिया को क्रियात्मक रूप न दे पाये तब तक उसे धारणा (Concentration) का अभ्यास करते रहने की सलाह दी जाती है। इसका भी एक विशेष मनोवैज्ञानिक कारण है—कोई व्यक्ति जितना अधिक श्रम करता है उतने ही अधिक विश्राम में वह चला जाता है, इसलिये ध्यान की क्रियाओं का आरम्भ धारणा (Concentration) की क्रियाओं से

होता है। ज्योंही व्यक्ति धारणा के एक विशेष स्तर तक पहुँचता है उसे ध्यान की क्रियाओं में उतार दिया जाता है। इसलिये इसे ऐसा समझा जाता है कि धारणा की सीमांत अवस्था ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था (शून्य बिन्दु Zero Point) होती है। इस शून्य को, जहाँ से गणना (Counting) का आरम्भ है, लोग आकाश (खाली स्थान) समझ कर भ्रमित हो जाते हैं। स्वामी चिन्मयानन्द ने कहा है—**Nature of this 'Zero Point' which may be misunderstood by us as a void or an emptiness.** If we once understand that this is the **moment of vitality pregnant with potentialities.**, we shall come to experience more and more the real nature of the 'Self'.

आगे, 'शून्यस्थ त्राटक' के अन्तर्गत की गई क्रियाएँ ध्यान (Meditation) की हैं। अपने ध्यान के अनुभवों को कुछ अच्छे महात्माओं और साधकों के अनुभवों से मिलाकर देखने से नये साधक में अपनी साधना के प्रति निष्ठा और विश्वास (Confidence) उत्पन्न होता है (हालांकि, किसी भी साधक के सारे अनुभव दूसरे साधक के अनुभवों से मेल नहीं खा सकते) और साधक अपनी साधना के स्तर का अनुमान लगा सकता है।

ध्यान योग के कुछ ग्रन्थ जिनमें अच्छे साधकों के अनुभव युक्त वर्णन प्राप्त होते हैं—

(१) महा योग विज्ञान। (२) योग वाणी। (३) शक्ति पात। (४) शैव सिद्धान्त में महायोग। (५) भैरवी चक्र। (६) शिव सूत्र। (७) प्रत्यभिज्ञा हृदयम। (८) तन्त्रालोक। (९) शिव दृष्टि। (१०) चिति शक्ति विलास। (११) 'ध्यान'।

'मन' एक सेवक

शिव सूत्र के अनुसार "शुद्ध विद्योदयाच्चक्रेत्वसिद्धिः" (शुद्ध ज्ञान का उदय होने पर आपको ईशित्व की प्राप्ति होती है)। ईशित्व से तात्पर्य है—मालकियत प्राप्त होना। पीछे हम 'मालकियत की भावना' त्यागने के बारे में बात कर आये हैं। यहाँ 'मालकियत की भावना' की बात नहीं, मालकियत की बात है। एक बकरी घर में रख कर आप उसमें एक भैंस की भावना कर सकते हैं और जब स्वयं भैंस ही घर में हो तो आपको 'भावना' करने की आवश्यकता नहीं होगी। यहाँ ईशित्व सिद्धि होने पर आप यह समझ पायेंगे कि संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रकृति का एक-एक कण आपकी आनन्द प्राप्ति (Enjoyment) के लिये सृजन किया गया है, आप मनमाने ढंग से छक कर आनन्द लीजिये, ऐसा आनन्द जिसका दूसरों को तो ज्ञान ही नहीं है।

प्राचीन जमींदार लोगों के यहाँ मुनीम और कारिंदा रहा करते थे जो एक प्रबन्धक (manager) के रूप में अपने मालिक की सेवा करते थे। यह लोग अधिकतर मालिक के भी मालिक बन जाते थे। मालिक को इनके इशारों पर नाचना होता था। जो मालिक ऐसा नहीं करता था उसे यह तहस-नहस कर देते थे। ऐसे कारिंदा बहुत कम थे जो

मालिक की सम्पत्ति का अपने को रक्षक भर समझें। नये मुनीम और कारिंदा लोग प्रारम्भ में अपने मालिक से सलाह लेते थे और उनके दूसरे नौकर-चाकरों से मित्रवत व्यवहार रखते थे। बाद में धीरे-धीरे वह मालिक से सलाह लेने के स्थान पर मालिक को सलाह देने लग जाते थे और नौकर-चाकरों से मालिकाना व्यवहार प्रारम्भ करने लग जाते थे। **आपके 'मन' मियाँ एक कारिंदा बन कर आपका काम-काज सम्भालते रहें, स्वयं मालिक न बन बैठें, यह देखना आपका कार्य है।** इसके लिए आपको सतत् जागरूक रहना है।

आज अधिकतर लोगों के 'मन' मालिक बने हुए हैं जो असली मालिक 'आत्मा' है उसे अन्य नौकर-चाकर (इन्द्रियाँ आदि) जानते ही नहीं। सब 'मन' को ही मालिक समझे हुए हैं। **जो व्यक्ति अपनी मालकियत को अक्षुण्य रखकर मन रूपी कारिंदा द्वारा शरीरावयवों से आवश्यकतानुसार कार्य कराने की कला समझ लेता है वही ईश्वर (मालिक) कहलाने की योग्यता रखता है।** यह कब होता है ? जब आप अपने 'स्व' को समझ लें, अपने 'आत्म' को समझ लें। बिना 'आत्म ज्ञान' के यह स्थिति सम्भव नहीं है। आत्म ज्ञान भी सैद्धान्तिक (Theoretical) नहीं क्रियात्मक (Practical) होना चाहिये।

पातंजल योग सूत्र में 'देशबंधश्चित्तस्य धारणा' (किसी देश से बँधा चित्त Holding the mind on to some particular object) को धारणा की स्थिति कहा है। यदि हम सूक्ष्म विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि मन की भाव तरंगों को निश्चित दिशा देना बुद्धि (Intellect) का काम है और बुद्धि को यह निर्णयात्मक शक्ति देना चित्त का काम है। सामान्य रूप में चित्त और मन को एक मान कर चला जा सकता है।

चित्त और धारणा

योग मनोविज्ञान के अनुसार चित्त एक महत्वपूर्ण जड़ स्वभावी वस्तु है। इसमें सत, रज और तम तीनों गुणों का समावेश होता है। यह आत्मा के निकट सम्पर्क में होने के कारण उसके प्रकाश से ही प्रकाशित होता है। यदि आप 'महर्षि यतीन्द्र दर्शन' के सिद्धान्तों पर ध्यान दें तो देखेंगे कि इस चित्त का नाम वहाँ 'मन' दिया हुआ है। योग सूत्र के अनुसार, **आत्मा में स्वतः कोई विकार नहीं होता, परन्तु सदैव बदलने वाली चित्तवृत्तियों (संस्कारों) में उसका प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण उसमें परिवर्तन प्रतीत होता है।** इन्हीं चित्तवृत्तियों के निरोध के लिये महर्षि पातंजलि ने अष्टांग योग प्रतिपादित किया है और यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार आदि पाँच बहिरंग साधनों तथा धारणा, ध्यान, समाधि, तीन अतरंग साधनों की व्याख्या की है।

धारणा का अर्थ है चित्त को किसी वस्तु पर स्थिर कर देना। बहुत से मनीषी प्रत्याहार को भी अन्तरंग साधना के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं। तत्व ज्ञानियों

(Metaphysicians) के अनुसार धारणा (Concentration) के अभ्यास द्वारा व्यक्ति अपनी शक्ति को एकत्र (Focus) कर एक निश्चित लक्ष्य की ओर प्रसारित (Transmit) करना सीखता है। धारणा के अभ्यास की विधि को 'त्राटक' कहते हैं। साधन के अनुसार यह दो प्रकार का होता है। बाह्य त्राटक—जिसमें साधन (Object of concentration) के रूप में किसी बाहरी वस्तु, कलाकृति आदि का उपयोग किया जाय। अन्तर्त्राटक—जिसमें साधन के रूप में शरीर के अन्दर की ध्वनि, गन्ध, प्रकाश एवं स्वाद आदि का उपयोग किया जाये। कुछ विद्वानों के अनुसार बाह्य त्राटक धारणा (Concentration) कहलाता है और अन्तः त्राटक ध्यान (Meditation) कहलाता है।

धारणा के विषय (Objects of Concentration)

धारणा के प्रभाव के बारे में पातंजलि योग सूत्र में 'विषयवती या प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिम्बधिनी' बताया गया है। स्वामी विवेकानन्द ने इसके विषय में कहा है 'The forms of concentration that bring extra-ordinary sense-perceptions cause perseverance of the mind.' सामान्यतः धारणा एवं ध्यान के लिए ४ प्रकार के विषय (Objects) लिये जाते हैं—

(१) **दूरस्थ**—जो वस्तु दूर है साधक के सामने नहीं है।

(२) **समीपस्थ**—जो वस्तु साधक के सामने है जैसे चित्र या व्यक्ति।

(३) **शरीरस्थ**—जो वस्तु साधक के शरीर में है। जैसे नाक की नोंक, जीभ की नोंक, हृदय, लिंग आदि।

(४) **मनस्थ**—जो वस्तु किसी कारणवश मान ली गई है, है नहीं। जैसे—तीसरा नेत्र, कुण्डलिनी के कमल दल आदि।

'मानी हुई वस्तु' के मानने के दो कारण होते हैं। एक तो यह कि ध्यान में वस्तु का जैसा अनुभव हो उसे मान लिया जाय। जैसे किसी व्यक्ति को आज्ञा चक्र पर ध्यान करने से दो दल वाला कमल दिखाई दे और वह आज्ञा चक्र स्थल पर 'द्विदली पद्म' को मान ले।

दूसरा यह है कि व्यक्ति आपनी ओर से किसी विशेष स्थल हृदय आदि पर चार या छः दल के कमल की कल्पना कर ले और सोचे कि साँस अन्दर लेते समय उस कमल की पंखुड़ी (दल) नीचे की ओर हो रही है और साँस बाहर फेंकते समय पंखुड़ी (दल) ऊपर हो रही हैं।

धारणा, ध्यान एवं समाधि को अन्य साधन पदों की तुलना में अन्तरंग माना है परन्तु निर्बीज समाधि की तुलना में यह तीनों भी बहिरंग कहे गये हैं—

तदपि बहिंरग निर्बीजस्य

(निर्बीज से यह फिर भी बहिरंग है ।)

यहाँ बहिरंग और अतरंग से तात्पर्य सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होने से है । योग के आठों साधन पद क्रमशः ही सिद्ध किये जाते हैं—

तस्य भूमिषु विनियोगः

(इनको क्रमशः अभ्यास करें ।)

इन्हें सिद्ध होने से ज्ञान का उदय क्रमशः होता जाता है—

तज्जयात् प्रज्ञालोकः

(इसके जीतने से ज्ञान का प्रकाश होता है ।)

महर्षि 'यतीन्द्र' त्राटक-विभेद

सदियों से कुण्डलिनी योग में धारणा (Concentration) के प्रयोग में कुछ कलाकृतियों एवं चित्रों का प्रयोग होता रहा है। कुछ यन्त्रों का प्रयोग जिनमें कुछ रेखाओं और वक्रों आदि का प्रयोग किया जाता है, अपने-अपने क्षेत्र में बहुत प्रभावी पाया गया है। मेरा विचार है कि यह गैस्टाल्ट-मनोवैज्ञानिकों की देन है, जो मनोवैज्ञानिक के साथ-साथ

चित्र संख्या—३१

दार्शनिक भी रहे होंगे। गैस्टाल्ट मनोविज्ञानी कहते हैं कि जब संवेदी तत्व एकत्र कर दिये जाते हैं तब नवीन वस्तु की उत्पत्ति होती है। उनके अनुसार समग्र (Whole) अपने अवयवों के योग से अधिक होता है। ऊपर के चित्र देखने में एक वर्ग और दूसरा त्रिभुज दृष्टिगोचर होता है। यह समग्राकृति (Configuration) है। परन्तु है यह अपने अवयव बिन्दुओं से बना हुआ। सामान्यत: व्यक्ति की आँखें बिन्दुओं को न पकड़कर उनके प्रत्यक्ष संगठन 'समग्र' को पकड़ती हैं। डा. कैन्ट (१७२४-१८०४) एक उच्च कोटि के दार्शनिक थे जिसके कारण वे एक पीढ़ी से अधिक समय तक दार्शनिक चिन्तन पर अधिकार जमाये रहे फिर भी मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में उनकी देन कम महत्वपूर्ण नहीं है। गैस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों का ध्यान प्रत्यक्ष की एकता पर रहा।

'गैस्टाल्ट' जर्मन शब्द है जिसका अर्थ है—समग्राकृति। कांट ने कहा कि जब हम पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण करते हैं तब हमें ऐसी मानसिक अवस्थाओं का सामाना करना पड़ता है जो टुकड़ों (Bits) तथा खण्डों (Pieces) की बनी हुई प्रतीत होतीं हैं। मन प्रत्यक्ष की प्रक्रिया में, एकात्मक अनुभव का निर्माण अथवा सृजन करता है और सार्थक प्रसंग में एक पदार्थ का निर्माण हो जाता है। जॉन स्टुअर्थ मिल की 'मैन्टल कैमिस्ट्री' के समान ही मनोवैज्ञानिक वुण्ट का सृजनात्मक संश्लेषण (Creative Synthesis) का यह नियम था कि जब तत्वों को समग्रों में सम्मिलित कर दिया जाता है तब नवीन लक्षणों की उत्पत्ति हो सकती है। फ्रेंज ब्रेंटनो (Franz Brantano) ने वुण्ड की अन्तदर्शन की विधि को अत्यन्त कृत्रिम माना और अनुभव को सीधा अवलोकन (Direct Observation) करने पर बल दिया।

अरन्स्ट मैक (Ernst Mach) ने 1885 में 'The Analysis of Sensations' नामक पुस्तक प्रकाशित कर दिक्-आकार (Space Form) तथा काल-आकार (Time Form) की संवेदनाओं का वर्णन किया। ज्यामितीय आकृतियाँ 'दिक्-आकार' का उदाहरण हैं और स्वर तन्त्री (Melody) के अन्तरालों का अनुक्रम 'काल-आकार' का। वर्दीमर ने व्यक्ति के गुप्त ज्ञान के सम्बन्ध में, काफ्का ने प्रतिमावली (Imagery) तथा विचार के सम्बन्ध में, और कोयलर ने श्रवण सम्बन्धी समस्याओं के

बारे में विशेष प्रयोग किये। ये तीनों वाट्सन की इस बात से सहमत नहीं हुए कि अन्तर्दर्शन को पूर्णरूपेण घृणा की दृष्टि से देखा जाय। उन्होंने यह माना कि विश्लेषण की सार्थकता है किन्तु उससे व्यवहार या अनुभव के मूल्य तथा अर्थ का महत्व नष्ट नहीं होता।

सिनेमा में पर्दे पर वह चीज आप नहीं देख पाते जो कि वास्तव में उस पर हो रही है। वहाँ एक के बाद एक चित्र आ रहे हैं जिसके बीच में अन्धकारपूर्ण अन्तराल भी है। परन्तु भौतिक उद्दीपन के बाद दृष्टि संवेदना के बने रहने के कारण आप चित्रों को एक ही चलते-फिरते चित्र के रूप में देखते हैं। वर्दीमर ने इस सम्बन्ध में काफ्का और कोयलर को ही प्रयोज्य (Subject) बनाकर बहुत से प्रयोग किये। आस्ट्रिया के दार्शनिक ऐरनफेल्स (Ehrenfels) के अनुसार गैस्टाल्ट गुण अथवा आकृति गुण (Form Qualities) पूर्ण (Whole) में पाया जाता है, उसके एक अंश (Part) में नहीं। स्वर-तन्त्री-झंकार (Melody) विशेष संवेदनात्मक तत्वों से बनी होती हैं किन्तु उसकी आकृति उनसे अलग होती है। एक ही स्वर-तन्त्री (लय Melody) को विभिन्न प्रकार के वाद्यों पर गाया जा सकता है। इसी प्रकार एक ही आकृति को छोटा या बड़ा रूप दिया जा सकता है। आकृति वही रहेगी केवल आकार (Size) परिवर्तन होगा।

आकृति के प्रभावों का कोयलर ने अध्ययन किया कि अवलोकन के समय, जब नेत्र पटल से तन्त्रिका आवेग अन्दर जाते हैं तब बल्कुट के अन्दर तरंगें प्रारम्भ हो जाती हैं जो विद्युत तरंगें होती हैं। अतः उसके अन्दर विद्युत तनावों का मिश्रित रूप तैयार हो जाता है। तनाव और विद्युत तरंगों के वल्कुटीय (Cortexic) प्रतिरूप में भौतिक सम्बन्ध होता है। किन्हीं दो नेत्रपटलीय बिन्दुओं को लगातार उद्दीप्त करने पर विद्युत धाराओं की उसी वल्कुटीय प्रतिरूप में लगातार क्रियाएँ होने लगती हैं जिनके फलस्वरूप वल्कुट के अन्दर बढ़ता हुआ ध्रुवण (Polarization) उत्पन्न हो जाता है। जब परिणामस्वरूप धाराओं में प्रतिरोध (Resistance) उत्पन्न हो जाता है तो प्रतिरूप सपाट हो जाता है।

प्राचीन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, "जो कुछ संवेदी तन्त्रिका आवेगों में होकर मस्तिष्क में आता है वह उसके वल्कुट (Cortex) में स्वतन्त्र इकाई है। अतः सम्पूर्ण संवेदना 'संवेदी पदों का योग' अथवा पच्चीकारी (Mosaic) है।" वुडवर्थ के अनुसार, "शरीर-रचना विज्ञान के आधार पर वल्कुट तथा अन्य तन्त्रिका केन्द्रों के लिए एक लक्षण यह है कि चेता तन्तुओं का अभिसरण होता है। संवेदी उद्दीपन के विभिन्न पदों में चाहे अन्तः क्रिया भले ही न हो, फिर भी वह सम्पर्ण अनक्रिया को पैदा करने में साथ साथ कार्य करते हैं।"

धारणा के अनुभव

कोई यन्त्र अथवा चित्र एवम् मूर्ति सामने रखकर उस पर दृष्टि एकाग्र करने से (अथवा मन एकाग्र करने से) संवेदी पदों का योग हमें प्राप्त होता है वह मात्र उत्पादक चिंतन नहीं है, समग्र सत्ता है। मनोवैज्ञानिक वर्दीमर की मृत्यु के पश्चात् लगभग 1945

ई. में उनकी एक पुस्तक (Productive thinking) प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया है उत्पादक चिंतन के लिए अवयवों की अपेक्षा पूर्ण को प्रभावशाली समझना होगा। खण्डित चिंतन अस्पष्ट होता है। यहाँ तर्क को स्थान नहीं रहता क्योंकि वर्दीमर के विचार में तर्क विज्ञान निष्कर्ष की वैधता का परीक्षण करता है, किन्तु तर्क की उस वास्तविक प्रक्रिया को नहीं बताता जो चिंतन करने वाले को निष्कर्ष की ओर ले जाय।

धारणा व ध्यान (Concentration and Meditation) में दृष्टिगोचर होने वाले अनुभवों में स्वतन्त्र साहचर्य (Free Association) द्वारा जानने में आने वाली अभिव्यक्तियाँ, अस्वीकृत इच्छाएँ तथा विस्मृत अनुभव आदि सम्मिलित होते हैं जो अपने स्वरूप में लैंगिक (Sexual) होते हैं। फ्रायड प्रारम्भ में व्याधियों का मूल प्राय: लैंगिक कुण्ठाएँ तथा संघर्ष ही मानते थे क्योंकि कामेच्छा की विफलता से घृणा और सफलता से प्रेम को पनपते उन्होंने देखा। **स्वप्न विश्लेषण जैसी पद्धति के द्वारा धारणा** (Concentration) **अथवा ध्यान** (Meditation) **या समाधि अवस्था में होने वाला इन्द्रियानुभवों को समझने में सहायता मिलती है। उसके आधार पर आचार्य साधक के चरित्र की गहराई (जिसे आप अन्तस्तल या मन की गहराई कह सकते हैं) में उतर कर साधक के अन्दर छिपी हुई सम्बन्धित ग्रन्थियों को खोलने की साधना बता सकता है।** फ्रायड स्वयं यह मानते थे कि प्रत्येक मनस्ताप (तनाव) के आभ्यांतर में जाकर ही उसकी चिकित्सा हो सकती है इसलिये उन्होंने सम्मोहन एवं स्वतन्त्र साहचर्य को उपयोग में लाने पर बल दिया।

मनोवैज्ञानिक फ्रोम के अनुसार व्यक्ति के बाह्य जगत से दो प्रकार के सम्बन्ध बनते हैं—वस्तुओं से आत्मीकरण (Assimilation) का और मनुष्यों से समाजीकरण (Socialization) का। यही दोनों व्यक्ति के चरित्र का सार (Core of Character) होते हैं, इन्हें ही अभिविन्यास (Orientation) कहा जाता है जो वातावरण (Environment) जनित होते हैं। मनोवैज्ञानिक युंग, भौतिक और सामाजिक वातावरण की ओर रुचि रखने वालों को बहिर्मुखी कहता है, और अपनी ओर रुचि को केन्द्रित रखने वालों को अंतर्मुखी कहता है। युंग के मत से बहिर्मुखी व्यक्ति की वासना (Libido) बाहर की ओर उत्क्रमित रहती है और अंतर्मुखी में स्वयं की ओर।

कोयलर ने बड़े अनुसंधान करने के पश्चात् यह माना कि वल्कुटीय प्रक्रियायें विद्युत बल (Electric Force) के क्षेत्रों के समान व्यवहार करती हैं। चुम्बक के चारों ओर विद्युत-चुम्बकीय बल कार्य करता है। यदि चुम्बकीय बल रेखाओंमें विक्षोभ उत्पन्न कर दिया जाय तो उस क्षेत्र में कुछ देर के लिये असंतुलन हो जाता है। मस्तिष्क में पायी जाने वाली विद्युत-यांत्रिक प्रक्रियाएँ न्यूरॉन सम्बन्धी क्रिया के साथ क्षेत्र निर्माण करती हैं जो अभिवाही (Afferent) न्यूरॉन द्वारा आने वाली संवेदी आवेगों को अनुक्रिया के लिये की जाती हैं।

प्रत्यक्षात्मक प्रक्रियाओं का स्मृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में मनोवैज्ञानिक वुल्फ ने सरल ज्यामितीय आकृतियों (जैसी यन्त्रों में प्रयुक्त होती हैं) का उपयोग स्मरणोपकारी (Mnemonic) चिह्नों में परिवर्तनों के स्वरूप की व्याख्या करने वाला प्रयोग किया था। उसके पश्चात् इसी विषय पर गिब्सन, बार्नर ब्राउन, कारमाइकैल, होगन, एवं वाल्टर ने भी कुछ अनुसंधान किये।

प्राचीन दार्शनिक तथा धार्मिक साहित्य में मानवीय प्रकृति एक समस्या बनी रही क्योंकि नीति शास्त्र सम्बन्धी दर्शन तथा नैतिक धर्म ने समाजोत्थान के लिये व्यक्ति को नियन्त्रित कर मार्ग दर्शन दिया। यूनानी दार्शनिकों ने कल्पना के कार्य तथा विचार के प्रतिमानों को शरीर गठन (Physique) तथा अध:स्थ शरीर क्रियात्मक सम्बन्धी अवस्थाओं के भेदों के साथ सम्बद्ध किया। मानवीय अभिप्रेरणा के क्लासिकी सिद्धान्त में, हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) जो कि ईसा पूर्व ४६०-३३७ के थे, का 'व्यक्तित्व का प्रकार सिद्धान्त' महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार व्यक्तित्व के चार मूल प्रकार हैं जिनमें प्रत्येक के साथ विभिन्न प्रकार का शारीरिक द्रव्य (Humour) संबद्ध रहता है। सुप्रत्याशी (Somguine) व्यक्ति की आशावादी अभिवृत्ति रक्त द्रव्य (Blood humour) के साथ संबद्ध रहती है। विषादी (Melancholic) स्वभाव काले पित्त (Black Bile) की अधिकता के कारण होता है। पीले पित्त वाला क्रोधी होता है और शांत स्वभाव कफ प्रधान (Phlegmatic) व्यक्ति का होता है। इस प्रकार का प्रकार विज्ञान (Typology) अभिप्रेरणा के विज्ञान की स्पर्श रेखा बनाता है जिस बिन्दु पर वे व्याप्त हो जाते हैं वहाँ से व्यवहार की ऊर्जा विद्या (Energetics) का विषय प्रारम्भ हो जाता है।

जीवन मूल-प्रवृत्ति (Eros) में आत्म परिरक्षण Self Preservation की मूल प्रवृत्ति, प्रजातिवर्धन (Propagation of Species) की इच्छा, आत्म प्रेम, दूसरों के लिए प्रेम, अपनी संभाव्यताओं को सिद्ध करने की प्रवृत्ति आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार जीवन मूल-प्रवृत्ति (Eros) वह सृजनात्मक शक्ति है जिसके अन्तर्गत जीवन भी है। जीवन मूल-प्रवृत्ति के समान व्यक्ति में मृत्यु मूल- प्रवृत्ति (Thantos) भी होती है। फ्रायड के अनुसार प्रेम इन दोनों प्रवृत्तियों का एकरूपीकरण है। आस्कर वाइल्ड ने कहा है—प्रत्येक मनुष्य जिन वस्तुओं से प्रेम करता है, उन्हीं का विनाश करता है, अथवा उनसे स्वयं नष्ट होता है।

पहले मनोविज्ञान भी दर्शन की तरह आत्मा, मन, अहं, स्व, संकल्प आदि का अच्छा अध्ययन करता था। सन् १८६० में इसे विज्ञान का स्तर दे दिया गया इसलिये यह सभी विषय मनोविज्ञान में उपेक्षित हो गये। अब पुन: मनोवैज्ञानिक स्व (Self) में रुचि लेने लगे हैं। जेम्स के अनुसार स्व (Self या Empirical Me) मनुष्य के शरीर, विशेषण तथा योग्यताएँ, उसकी भौतिक संपत्ति, परिवार, मित्र, शत्रु, व्यवसाय तथा उप-व्यवसाय (Avocations) आदि का समग्र योगफल है। स्व के घटक (Considitituents) भौतिक स्व (भौतिक सम्पत्ति), सामाजिक स्व (मित्र आदि), और आध्यात्मिक स्व (जिसका

निर्माण मनोवैज्ञानिक शक्तियों तथा प्रवृत्तियों द्वारा होता है) हैं। विशुद्ध अहं को जेम्स विचार का स्रोत मानते हैं जिसके कारण मनुष्य में वैयक्तिक तादात्म्य का भान आता है।

कुण्डलिनी योग को पूरी तरह समझने के लिये व्यक्ति को दर्शन (Philosophy), मनोविज्ञान (Psychology), नीतिशास्त्र (Ethics), शिक्षा शास्त्र (Education), देवताओं की वंशावली (Geneology of Gods), धर्म तन्त्र (Theocracy), बहुत सी पुरातत्व सम्मत खोजों, परामनोविज्ञान, समाजशास्त्र, जीवविज्ञान, आत्म तत्व ज्ञान (Archeological Researches, Parapsychology, Sociology, Bio-CheMistery, Metaphysics) आदि का भी विशेष अध्ययन करना होता है। विभिन्न धर्म ग्रन्थों की साधना पद्धति का अध्ययन कुण्डलिनी तन्त्र के विश्लेषण में महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है। वैसे प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि जैसे विषयों में आप मनोविज्ञान, पर-मनोविज्ञान और आत्म तत्व ज्ञान को अधिक उपयोगी पायेंगे।

आध्यात्मिक व्यवहार (लक्ष्य निर्देशित व्यवहार) को संवेग सामान्यतः सुगमता प्रदान करता है, चूँकि संवेग जीवन में समायोजन स्थापित करते हैं। इन संवेगों का आवश्यक उपयोग योगी कर सकता है। जैसे क्रोध के कारण व्यक्ति किसी कार्य को पूरा कर डालने के लिये अधिक प्रयास कर लेता है, और भोजन पचाने में सन्तोष अधिक सुगमता प्रदान करता है। अतः भोजन के तुरन्त बाद सन्तोषप्रद कार्य करना लाभप्रद है और भोजन प्राप्त करने में कठिनाई उत्पन्न होने पर क्रोध अच्छा काम करता है। योगी व्यक्ति के लिये उचित-अनुचित व्यवहार की समझ के लिये उत्तम लाभप्रद बिन्दु उसका अपना आन्तरिक निर्देश तन्त्र (Frame of Reference) होता है।

वैज्ञानिक रॉजर्स ने अपनी पुस्तक 'क्लाइन्ट सैन्टर्ड थेरैपी' में आत्म-सूचना (Self Report) की बात की है। उनके अनुसार परीक्षण-प्रदत्तों, अवलोकनों तथा अभिव्यक्ति व्यवहार के आधार पर व्यक्ति के सम्बन्ध में अवबोध इतना सन्तोषजनक नहीं होता जितना कि उसकी अभिवृत्तियों तथा भावनाओं के सम्बन्ध में उसको स्वयं के द्वारा प्राप्त सूचना। कभी-कभी मनोवैज्ञानिक कुसमायोजन के कारण प्राणी अपने व्यवहार को नहीं समझ पाता। मनोवैज्ञानिक कुसमायोजन तब आता है जब प्राणी महत्वपूर्ण संवेदी तथा आंतरांग अनुभवों की चेतना को अस्वीकार करने लगता है और जब प्राणी के समस्त संवेदी तथा आंतरांग अनुभवों का स्व के प्रत्यय के साथ प्रतीकात्मक स्तर पर संगत सम्बन्ध में आत्मीकरण हो जाता है तो मनोवैज्ञानिक समायोजन आता है।

सन् १८३० ई. से पूर्व का मनोविज्ञान प्रागानुभववाद (Transcendentalism) और प्रकृतिदर्शन (Philosophy of Nature) का मिश्रण था। जिसमें प्रागानुभववाद में अनुभव के परे वास्तविकता को जानना था और प्रकृति दर्शन में प्रकृति की प्रतीकात्मकता तथा आध्यात्मिक व्याख्या को जानना था। जॉन फ्रैडरिक हरबर्ट वैज्ञानिक शिक्षाशास्त्र (Scientific Pedagogy) के जनक माने जाते थे। वे तत्व मीमांसा (Metaphysics) तथा मनोविज्ञान में भेद नहीं मानते थे। वे कहते थे कि मनोविज्ञान

तत्व मीमांसीय (Metaphysical) है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध आत्मा से है, आत्मा एक अखण्ड सत्ता है। मन एकात्मक (Unitary) है यह भिन्न-भिन्न अवयवों में विभाजित नहीं हो सकता अतः मनोविज्ञान विश्लेषणात्मक नहीं हो सकता। जो विश्लेषणात्मक नहीं हो वह प्रयोगात्मक भी नहीं हो सकता। हरबर्ट का समाकल्पन का सिद्धान्त (Doctrine of Apperception) है कि 'सम्बन्धित समान सजातीय विचार संयुक्त होकर एक शक्तिशाली समाकल्पक संहति (Appreceptive Mass) के रूप में संगठित हो जाते हैं। ये सजातीय विचारों को निकाल देते हैं।' इसका उपयोग किसी भी प्रकार की शिक्षा पद्धति में किया जाता है। **यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि भी इसी सन्दर्भ में कुण्डलिनी से पूर्व ही प्रारम्भ करा दिये जाते हैं क्योंकि** नया ज्ञान देने से पूर्व पहले उसके लिए मार्ग निश्चित कर लेने की आवश्यकता होती है जिसके लिए समाकल्पक संहति में परिचित तथा रोचक विचारों को उपस्थित करना होता है।

एफ. एच. बेन जो बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे, आत्मा को शक्तियों (Powers) की समग्रता (Totality) के अतिरिक्त कुछ नहीं मानते थे। उनके विचार से ये शक्तियाँ उन क्रियाओं के अनुरूप होती हैं जिनको हम सचमुच अनुभव कर सकते हैं। फ्रैन्ज जोसेफ गॉल एक शरीर विज्ञानी (Anatomist) थे। उन्होंने कपाल विद्या (Phremology) की खोज की। उनके अनुसार प्रकृति ने प्राणी के तंत्रिका तन्त्र में ऐसी आधारभूत प्रतिक्रिया-प्रवृत्तियाँ (Reaction tendencies) दी हैं जो उसे समायोजन करने के योग्य बना देती हैं। अनेक मूल प्रवृत्तियाँ ऐसी होती हैं जिनके साथ संवेग जुड़ा रहता है। वाटसन के अनुसार, 'संवेग, आनुवंशिक प्रतिमान प्रतिक्रिया होती है जिनके कारण सम्पूर्ण शरीर में परिवर्तन होने लगते हैं, विशेष रूप से आंतरांगीय और ग्रन्थीय तन्त्रों में। व्यावहारिकता में आप देखते ही हैं कि संवेग में हृदय गति की धड़कन में अन्तर आ जाता है, श्वास-प्रश्वास की गति परिवर्तित हो जाती है, पेशियों में तनाव आ जाता है, आदि, आदि। मानसिक प्रतिमावलियों (Mental Imagery) का व्यापक अध्ययन गैल्टन की महत्वपूर्ण देन है। 'The Varities of Religious Experience' में रहस्यवाद (Mysticism) के बारे में कहा है कि रहस्यवाद ऐसा अनुभव है जिसमें हम ऐसे तत्वों के सम्पर्क में आते हैं जिनका हमें बौद्धिक तथा संवेदी प्रक्रियाओं द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता। रहस्यवाद उन वास्तविकताओं को देखने का साधन है जो सामान्यतः छिपी रहती है।

धारणा के प्रयोग

धारणा (Concentration) के प्रयोगों में हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति में वृद्धि करते हैं। इस आशय को ठीक से समझ लेना आवश्यक है। यदि आप नाक के अग्र भाग पर एकाग्र मन (Concentrate) करते हैं तो नाक की शक्ति वर्द्धन से यह तात्पर्य नहीं है कि आपके निरन्तर नाक पर ध्यान जमाने से वहाँ रक्त परिभ्रमण में वृद्धि होकर

नाक की शक्ति वृद्धि होगी, अपितु नाक से मस्तिष्क तक फैली हुई ज्ञान नाड़ियों तथा मस्तिष्क के गंध ज्ञान कराने वाले भाग को अधिक सक्रिय तथा संवेदीय (Sensitive) बनाने से है। ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति वर्धन सम्बन्धी कोई भी साधना करने से पूर्व उनका स्वस्थ तथा स्वच्छ होना आवश्यक है।

'सिद्धि प्राप्ति' और 'सिद्धि प्राप्ति का धोखा' इन दोनों बातों में इतनी निकटता है कि सामान्यत: प्रारम्भ में साधक इसे स्वयं नहीं पहंचान पाता। 'इन्स्टीट्यूट आफ कास्मिक योग एण्ड मैटाफिजीकल रिसर्चेज (इन्डिया)' के एक नये स्टूडैन्ट श्री बंटी सिंह द्वारा २६-८-८५ को किया गया 'मास मैडीटेशन' का अनुभव इस प्रकार लिखा गया—

"जब मैडीटेशन चालू किया गया तब साँस लेते हुए कोई परेशानी नहीं हुई तथा कुछ जल्दी-जल्दी साँस लेने से हाथ-पैर कुछ सन्न हो गये, तथा आँखों में अँधेरा कुछ ज्यादा हो गया। साँस लेने में कुछ ज्यादा परेशानी हो गई। साँस नहीं ली जा रही थी, फिर भी पूरी कोशिश करने के बाद साँस ली गई। समाधि में जब अपने शरीर को ढीला करके छोड़ा गया तब थोड़ा-बहुत आनन्द-सा आने लगा। कुछ क्षण पश्चात् आँखों में टार्च जैसी रोशनी दिखाई देने लगी जो पीले तथा लाल रंग की थी। वैसे मैंने जानबूझकर इस बात पर ध्यान नहीं दिया। इसलिये हो सकता है यह मेरे दिल का भ्रम हो कि मुझे कोई रोशनी दिखाई दी हो, या हो सकता है कि यह दिखाई न दी हो,। यह भी हो सकता है कि यह मैंने अपने मन से बात बनाई हो कि मुझे कोई रोशनी दिखाई दी हो। इसलिये यह मुझे नहीं मालूम कि यह बात हकीकत है या झूठ। सही नहीं कह सकता।"

प्रारम्भिक साधना काल के अनुभवों के प्रति नये साधक के मन की दशा का दृष्टिकोण साधक 'बंटी सिंह' का अनुभव पढ़ कर आप समझ सकते हैं। साधक को प्रारम्भिक अनुभव बड़े अविश्वासपूर्ण लगते हैं क्योंकि वह उनका कोई तालमेल नहीं बिठा पाता। यहाँ तक कि साधक स्वयं अपने पर संदेह करने लगता है। ऐसी अद्भुत उलझन को दूर करने का साधक के पास एक ही उपाय बचता है, किसी योग्य साधक से मिले। **योग्य साधक का अर्थ ही योग्य गुरु है।** जब तक योग्य गुरु न मिले साधक अपने से पूर्व के साधकों के अनुभव उस विषय पर पढ़े। उन अनुभवों के आधार पर विभिन्न साधकों को साधना-स्तर के आधार पर वर्गीकृत कर सकेगा, और फिर स्वयं के साधना-स्तर का अनुमान लगा सकेगा। इसके लिये **मैं प्रत्येक साधक को 'डेली लॉग बुक' अथवा 'डेली डायरी' भरने की सलाह देता हूँ; और इससे भी पूर्व 'इन्स्टीट्यूट ऑफ कास्मिक योगा एण्ट मैटाफिजीकल रिसर्चेज' में आने वाले प्रत्येक नये साधक को मैं उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति निःसंकोच होकर बताने की पहल करता हूँ। ऐसा होने से मुझे उस साधक के लिये उपयुक्त आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि के बहुत से अभ्यासों में से 'कुछ' का निर्णय करने में आसानी हो जाती है और साधक का बहुत सा समय 'उसके लिये व्यर्थ और अनुपयुक्त' अभ्यासों के**

करने से बच जाता है, उस समय (जो कभी-कभी ४-६ वर्ष भी हो सकता है) का उपयोग वह आगे की प्रभावी साधनाओं में कर सकता है।

एक साधक द्वारा बताई गई साधना प्रारम्भ करने से पूर्व की शारीरिक व मानसिक स्थिति देखिये (साधक का नाम गुप्त ही रखने का विधान होता।)—

"मैं अक्सर अकेले में बैठे-बैठे सोचा करता हूँ कि आखिर इस इतनी बड़ी दुनियाँ में हर स्थान पर स्वार्थ ही स्वार्थ नजर आता है। घर से लेकर बाहर तक, बच्चे से लेकर बड़े तक कहीं भी निस्वार्थ भाव नजर नहीं आता है। क्या यह सच है कि माता-पिता सन्तान उत्पन्न इसलिये करते हैं कि उनको सुख मिले या इसलिये कि बच्चे भगवान की देन हैं, या फिर इसलिये कि बच्चे पैदा करना उनका नैतिक कर्तव्य है या फिर मेरे विचार से तो माता-पिता बच्चे उत्पन्न नहीं, बल्कि अपनी काम की भूख को मिटाने हेतु जो पाप करते हैं, बच्चे उसी का फल होते हैं जो कि उनको हँस या रोकर भोगना पड़ता है। मैंने आज तक हर स्थान पर स्वार्थ ही स्वार्थ देखा है। अब मुझे ही ले लीजिये। अब तक जब मैं १५ साल का था काफी पैसा माता-पिता के पास था और सब खुश रहते थे, परन्तु जो सुख उस समय उतने पैसे का मिलता था वही सुख, सारी स्थितियाँ पहले की भाँति होते हुए भी नहीं मिल पाता। इसका क्या कारण है? मैं अक्सर लोगों को देखता हूँ कि जब तक लड़के की शादी नहीं होती तो उसके विचार तथा माता-पिता के विचार ९९% मिलते हैं लेकिन जैसे ही शादी की तैयारियाँ शुरू होती हैं सारा सुख क्रमशः जाता रहता है। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि आखिर इस दुनियाँ से हमको क्या लेना है। हमको भी स्वार्थपूर्ण भाव से अपनी ही मोक्ष प्राप्ति की सोचनी चाहिये। यदि उसी बीच हम किसी का भला कर सकते हैं, या हो जाता है तो सोने में में सुहागा है। मैं चाहता हूँ कि मुझको ऐसा करने को मिले कि मुझको खाने-पीने की कोई चिन्ता न हो तथा एकान्त में बैठ कर अधिक से अधिक समय मैं अध्ययन में देकर अपने जीवन में कुछ नहीं बहुत कुछ प्राप्त कर सकूँ।

मैं जब से आपके पास आया हूँ तो मैंने समझा है कि हाँ मेरा भी हितैषी कोई इस दुनियाँ में है। आप जानते हैं की किसी व्यक्ति की भावनाओं को एक दम बदलना इतना आसान कार्य नहीं है। मैं अधिक से अधक समय आपके पास गुजारना चाहता हूँ लेकिन कुछ बंधन मेरे सामने हैं। अब मेरे 'ऐम' को कौन पूरा कर सकता है मैं कुछ नहीं जानता। आपके द्वारा बताये गये क्रिया-कलापों में दिन भर हर क्षण लीन रहने का प्रयास ही नहीं करता बल्कि पूरा करने की पूरी-पूरी कोशिश करता रहता हूँ। मैंने आपको कुछ बताया था और आपने उसका सब का उत्तर क्रमशः ऐसा दिया कि मैं पूर्ण सन्तुष्ट हो गया। तभी से मेरे मस्तिष्क में आया कि मुझको हर बात कहने का पूरा अवसर है और मैं बिना हिचकिचाहट के हर बात करता आया था। यहाँ तक कि जो बात मैं अपने माता-पिता, भाई तथा मित्रों से नहीं कह पाया था लेकिन आपके समक्ष आते ही मैं अपने को पूर्णरूपेण भूल गया तथा सारी बात स्पष्ट रूप से कह सका था। मैंने यह सब बातें लाइब्रेरी में बैठकर संक्षिप्त रूप में तैयार की हैं। अंततोगत्वा मैं आपसे यही कहता चाहता हूँ कि आप मेरे

जीवन में एक विशेष पथ प्रदर्शक बनकर आये जिससे मैं आपके नाम को रोशन कर सकूँ तथा अपने जीवन को सफल बना सकूँ।"

'महर्षि यतीन्द्र योगाश्रम' में योग सीखने के लिये आने वाले जिज्ञासु से एक स्टेटमेंट लिखाया जाता था। उसमें निम्नलिखित बातों का समावेश होता था—

व्यक्ति में योग सीखने की इच्छा कैसे और कब जाग्रत हुई? घर का वातावरण कैसा है? घर के लोग साधक के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार रखते हैं या घृणापूर्ण? कहाँ-कहाँ योग तथा ज्ञान प्राप्ति के लिये भटके और वहाँ से क्या प्राप्ति हुई? योग की कौन-कौन सी क्रियाएँ ठीक से कर चुके हैं? किसी योग क्रिया का विपरीत प्रभाव तो नहीं हुआ? यहाँ योग क्यों सीखना चाहते हैं? अन्य गुरुओं तथा योग संस्थाओं की अपेक्षा यहाँ की बातें आपको कैसी लगीं। अन्य विशेष सम्बधित बातें जो साधक के लिये उचित आसनादि के चयन में सहायक हो सकती थी, उनके बारे में पूछताछ कर ली जाती थी। ऐसे सभी विवरण पूर्णत: गुप्त रखे जाते थे। यदि किसी को प्रसंगवश गुरुजी सुनाते थे तो इस प्रकार कि साधक का नाम किसी को पता नहीं लगता था। ऐसे स्टेटमेंट्स से व्यक्ति की शारीरिक स्थिति (जैसे विकलांग, बीमार, आदि), मानसिक स्थिति (जैसे चिड़चिड़ा, उग्र, भयातुर, उद्वेग, पूर्णता) काम वेग के आधार पर स्थिति तथा पर्यावरण की स्थिति का भान हो जाता था।

एक और बम्बई के योग जिज्ञासु का विवरण देखिये—

Physical state—Stomach is slightly overloaded, getting bulging out, gas formation is strong?, not from the food (as not taken khana), slightly feeling lazyness or dulness of body for last 15 days, it is due to lack of exercise and every day having motion morning two times and after noon one time and evening at 7 P. M. It is slightly loose. In head there are chronic irruption very few, come and goes irrespective of modelities. Daily morning fear of people also comes. To day there is slight pain in the evening in stomach before diarrhoea.

Mental state—Anxiety is always present and if any work is done and some body is over head it will get spoil (may be due to anxiety, some what fear of doing some mistake) cant know that, though I know the every thing. Fear of speech is always there.

Introduction—It is the Guru who said that yoga is very simple but as I have read it is beyond the goal of a man and requires to struggle very hard.

Secondly, I want to achieve it and see what it is.

Thirdly – I want to improve memorey, will power and concentration.

Forthly – If the Guru can devote all his life and bring out an easy way, why should I not take a good thing, which is not at all harmful and have experience of it.

उपर्युक्त Statement योग प्रारम्भ करने से पूर्व १९७९ में Air Force के एक Gymnastic Coach ने बम्बई में दिया था। उसके पश्चात् उन्होंने योग प्रारम्भ किया था। उसके विभन्न Concentration तथा Mediation आदि के अनुभव आप यत्र तत्र पढ़ेंगे।

बाह्य त्राटक

धारणा के अभ्यास के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं पर अभ्यास किया जाता है। यह वस्तुएँ उनके भौतिक तथा सूक्ष्म गुण, धर्म, प्रभाव के आधार पर जन-साधारण तथा साधक विशेष की आवश्यकतानुरूप चुनी जाती हैं। नीम की पत्ती के गुणों की चर्चा आयुर्वेद में विस्तार से की गई है। शरीर शुद्धि, नाड़ी शुद्धि आदि में नीम का अच्छा प्रयोग होता है।

तन्त्र नीम की सूक्ष्म गुण, धर्म, प्रभा का लाभ उठाने के लिए उसकी पत्ती पर त्राटक करने की सलाह देता है। उससे आँखें स्वच्छ हो जाती हैं, और आँखों की नाड़ियाँ भी शुद्ध हो जाती हैं। यहाँ कुछ किताबी विद्वान तर्क कर सकते हैं कि नीम की पत्ती दूर रखकर देखने मात्र से आँखें शुद्ध हो जाती हैं तो हलवाई की दुकान में रखी पूड़ियाँ देखने से पेट भी भर जायगा। वे लोग एक प्रयोग करके देखे सकते हैं—घी का दीपक जलाकर उसकी लौ पर चार दिन 1-1 मिनट तक त्राटक करें और उनकी आँखों की चमक के अन्तर को परखें। वे कहेंगे यह प्रभाव त्राटक का है, घी का नहीं। अब वे चार दिन १-१ मिनट तक मिट्टी के तेल की लेंप की लौ पर त्राटक करके देखें, उनकी आँखों में कीचड़, खुजली आदि उपद्रव उत्पन्न होने लगेंगे। यह सब वस्तुओं के सूक्ष्म गुण, धर्म, प्रभा के प्रभाव हैं। रही बात हलवाई की पूड़ियों की। उन्हें देखने से चाहे आपका पेट न भरे परन्तु भूख अवश्य मारी जायेगी। क्योंकि पेट भरना पूड़ी का भौतिक गुण-धर्म है, और भूख समाप्त करना उसका सूक्ष्म गुण-धर्म है।

बाह्य त्राटक में रंग संयोजन का ध्यान भी रखा जाता है। 'त्राटक' के बहुत बाद में विकसित हुई 'क्रोमियोपैथी' में रंग संयोजन से सम्बन्धित बहुत से स्पष्टीकरण प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार रेखा संयोजनों के प्रभावों के स्पष्टीकरण 'यन्त्रों' के बहुत बाद में गैस्टाल्ट-मनोविज्ञानियों ने दिये हैं। कुण्डलिनी तन्त्र को ध्यान में रखते हुए कुछ आवश्यक धारणा (Concentration) के प्रयोग इस प्रकार हैं—

नीम की पत्ती को इस प्रकार रखो कि नीम की डण्डी की अन्तिम सिरे वाली एक पत्ती साधक की आँख की ऊँचाई की सीध में रहे। उस पत्ती के मध्य में एक बिन्दु बना दें। पत्ती के बिन्दु से आँख की दूरी लगभग चार फीट हो। वहाँ हवा न बिल्कुल बन्द हो और न तेज चल रही हो। साधक कम्बल अथवा मृग चर्म, लकड़ी के तख्त आदि पर बैठ
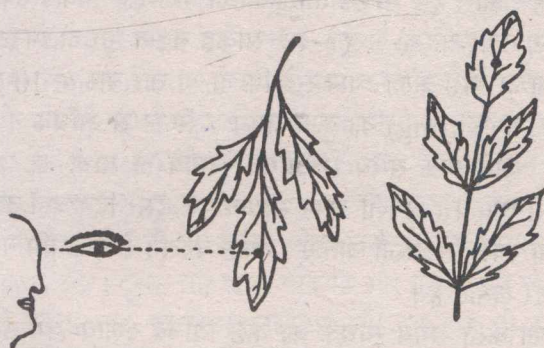
चित्र संख्या ३२—नीम की पत्ती

कर यह साधना कर सकता है। धारणा का अभ्यास खड़े होकर करने से कभी-कभी व्यक्ति आत्म सम्मोहन (Self hypnotism) के कारण मूर्छित हो कर गिर सकता है। साधक यदि अकेला त्राटक करे तो त्राटक प्रारम्भ करने से छोड़ने तक मन में गिनती बोलता चले, जिससे उसे समय की गणना का ज्ञान हो सके। यह गिनती 'एक सेकिंड में एक' के हिसाब से बोले तो आसानी रहेगी। साधक को चाहिये कि पत्ती की सीध में किसी भी ऐसे सुखमय आसन में बैठे जिसमें रीढ़ की हड्डी सीधी (पृथ्वी से लम्बवत्) रहे। अब आँख की पलक झपकाये बिना पत्ती के मध्य बिन्दु को घूरता रहे और मन में गिनती गिनता चले। थोड़ी देर बाद आँखों में पानी आ जायेगा। उसे आने दें। पलक न झपकने पाये यह ध्यान दें। यदि धोखे से न चाहते हुए भी पलक झपक जाय तो Concentration टूटा समझ लें और देखें कि कितनी गिनती तक धारणा हुई। फिर नये सिरे से पुनः इस अभ्यास को करें।

यदि दो या अधिक साथी मिलकर इस अभ्यास को करें तो कोई एक साथी हाथ में सेकिंड की सुई वाली घड़ी लेकर साधक की धारणा के समय की गणना कर सकता है। ऐसे में साधक को चाहिये कि धारणा का अभ्यास आरम्भ करते समय यह 'ॐ' शब्द का उच्चारण करें और पत्ती के मध्य बिन्दु पर ध्यान जमाये। साधक का साथी 'ॐ' शब्द सुनते ही घड़ी की सेकिंड तथा मिनट की सुई पर ध्यान दे। साथ ही इस बीच घड़ी वाले को साधक की पलकों पर भी ध्यान देना होगा। कई बार साधक की पलक, साधक को पता लगे बिना झपक जाती है। उस समय साथी 'ॐ' शब्द बोल दें और समय नोट कर लें। साथी द्वारा 'ॐ' शब्द बोलने के साथ ही साधक अपनी साधना तोड़ दें। 'ॐ' के

स्थान पर कोई भी दूसरा छोटा से छोटा अक्षर प्रयुक्त किया जा सकता है जो साधक और साथी की धर्म-संस्कृति के अनुरूप हो ।' बिना पलक झपकाये पत्ती को देर तक देखने का अभ्यास उत्तरोत्तर करना चाहिए । उत्तरोत्तर अभ्यास के लिए ही घड़ी अथवा गिनती की आवश्यकता पड़ती है । आज १५ सेकिंड तक हुआ तो कल ३० सेकिंड तक, परसों ४५ सेकिंड फिर १ मिनट, तत्पश्चात् ५-५, १०-१० सेकिंड बढ़ाते हुए दो मिनट तक देखते रहने (Gazing) का अभ्यास करें । ध्यान रखें कि दो या चार बार या 10 बार अभ्यास करने पर भी एक बैठक (Sitting) का कुल समय ५ मिनट से अधिक न हो । साधक जब भी उचित और आवश्यक समय से अधिक लगाये तो साथी को 'ॐ' बोलकर साधना बन्द करा देनी चाहिये । अगली ध्यान साधना पुनः दूसरे दिन जहाँ तक सम्भव हो उसी समय और उसी स्थल पर करनी चाहिए । स्थान बदलने से पृष्ठभूमि तथा पर्यावरण के प्रभाव सिद्धि में देर लगाते हैं ।

पत्ती पर धारणा करते समय साधक को कुछ विचित्र दर्शाव होंगे उन्हें प्रति दिन साधक को नोट बुक में दिनांक व साधना के समय सहित लिखना चाहिए । उदाहरणार्थ—

वस्तु—नीम की पत्ती

दिनांक.............. **समय ४५ – सेकिंड**

अनुभव—पत्ती पर ध्यान करते-करते पत्ती धुँधली दिखाई देने लगी, आँखों में पानी आ गया । पानी टपकता रहा परन्तु मैंने दृष्टि अपलक रखी और पत्ती के बिन्दु को देखता रहा । पत्ती हरे से काले रंग में परिवर्तित हो गई । उसके चारों ओर स्वर्णिम आभा चमकने लगी । मैंने पत्ती के मध्य बिन्दु से अपनी दृष्टि हटाकर स्वर्णिम आभा को देखना चाहा तो सब कुछ गायब हो गया और पत्ती 'पत्ती' ही रही और मेरी पलक झपक गई ।

ध्यान रहे, यह एक उदाहरण मात्र है । ऐसा अनुभव प्रत्येक को हो यह आवश्यक नहीं । ऐसे उदाहरण, अथवा दूसरों के अनुभवों को पढ़ कर स्वयं अनुभव करने लगना सिद्धि नहीं है, वह सिद्धि का धोखा है । ऐसा होना मनोवैज्ञानिक (Psychological) हो सकता है । ऐसे ही कुछ विशेष कारणों से साधक को अपने अनुभव गुरु के अलावा किसी दूसरे साधक को बताने के लिए मना कर दिया जांता है ।

अब आप कहेंगे कि यह उदाहरण बताने से गड़बड़ होती है तो फिर आपने क्यों लिखे है ? मैं अच्छी प्रकार जनता हूँ कि जो उदाहरण यहाँ लिखे जा रहे हैं ठीक उसी रूप में दूसरे साधक को वे अनुभव नहीं होने हैं, परन्तु उनके कुछ भाग थोड़े से हेर-फेर के साथ प्रतीत होंगे । इन अनुभवों को पढ़ कर साधक अपने 'साधना स्तर' का अनुमान कर सकेंगे । साधक को अपने साधना स्तर का ज्ञान होने से वह झूठे अहंकार से ग्रस्त नहीं होता, क्योंकि उसे अपने से ऊँचे साधकों के अनुभव 'नेति-नेति' का ध्यान दिलाते हैं, अन्यथा साधक प्रत्येक ठहराव को 'इति' समझने की भूल कर सकता है । जिस साधक के साथ योग्य गुरु है उसकी तो कोई बात ही नहीं ।

नीम की पत्ती की धारणा के अभ्यास द्वारा आँखों की जलन आदि समाप्त हो जायेगी। आँखों से बहुत सी पानी प्रतिवेदन निकलेगा और कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् ही आँखे स्वस्थ और त्राटक के उपयुक्त हो जायेंगी।

सन् 1970 मैं बरेली में था। वहाँ योग के लिए एक महोदय जी मेरे पास आये। अपने अनुभवों की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि वे तीन-तीन घण्टे तक पलक झपकाये धारणा (Concentration) का अभ्यास करते रहते हैं, और उसी में वे लन्दन, पेरिस आदि में क्या हो रहा है बता देते हैं। उनकी ऐसी ही जारदार बातें सुनकर मेरे एक साधक मित्र (Yoga student) श्री वरयाम सिंह से कहा कि इन्हें नीम की पत्ती पर धारणा (Concentration) करा के टाइम नोट करो। उन्होंने उचित आसन देकर 'ब्रह्माण्ड चक्र' की पृष्ठभूमि में नीम की पत्ती पर एकाग्र करना उन्हें प्रारम्भ कराया। प्रथम बार में वह केवल 22 सेकिण्ड रुके। दूसरी बार में 30 सेकिण्ड और तीसरी बार में 45 सेकिण्ड। इसके बाद उनमें Concentration की हिम्मत नहीं रही और वह स्वतः ही उठ गये। उन्होंने यह स्वयं अनुभव किया और मुझे सभी योग जिज्ञासुओं के सामने कहा कि मैं समझता हूँ मेरी योग करने की विधि सही नहीं थी, और व्यर्थ में मेरा अभिमान बढ़ा रही भ। उन्होंने ऐसा इसलिए अनुभव किया क्योंकि उनमें सामने मेरे अन्य योग जिज्ञासु 3 मिनट, 4 मिनट और 5 मिनतट के परिणाम दे रहे थे।

थ्री डी. गेजिंग—एक फुट का वर्गाकार सफेद कागज लेकर उसके बीच में 3 इन्व व्यास (Diameter) का एक वृत्त बनायें। इस वृत्त को काला रंग दें। इस कागज को ऑख की सीध में लटका कर पूरे 3 के गोले पर एकाग्रता (concentration) का अभ्यास करने के लिए 3 फुट की दूरी पर बैठें। तीन इन्व डायमीटर का यह वृत्त ही 'थ्री डी. गेजर' कहलाता है।

जहाँ यह साधना करें वहाँ प्रकाश व्यवस्था ऐसी रखें कि खिड़की, रोशनदान आदि से आने वाला प्रकाश न आँखों पर पड़े और न 'थ्री डी गेजर' पर। कमरे का दरवाजा तो बन्द करना ही उचित होगा, जिससे बीच में किसी के आने का संशय न रहे।

थ्री डी. गेजर पर गेजिंग (त्राटक) करने वाली रिलीजस रिसर्च ऐकेडैमी केन्द्र आगरा की सन् 1966 की एक योग जिज्ञासु सुश्री शीला का अनुभव देखिये—काली आकृति पर एक टक दृष्टिजमाने के पश्चात् मेरी ऑखों में तनाव होने लगा और ऑखों से पानी आने लगा। मैंने थोड़ी देर ऑखें बन्द कर लीं। फिर ऑखें खोलकर टकटकी लगाकर देखते रहने पर काले वृत्त के स्थान पर प्रकाशपूर्ण वृत्त ही दिखाई देता रह गया और उसमें से तेज चमकदार किरणें निकलती दिखाई दे हरी थीं। यह प्रकाश ऐसा था जैसे सुबह का ठण्डा सूरज होता है।

अंतर्मन चेतन होने पर प्रकाश दिखाई देगा और बहिर्मन चेतन होने पर काला वृत्त दिखाई देगा। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाकर अंतर्मन चेतन हाने का समय बढ़ाया जाता है।
अभ्यास के मध्य में कभी काला, अंतर्मन चेतना होने का समय बढ़ाया जाता है। अभ्यास

के मध्य में कभी काजा, कभी प्रकाशयुक्त वृत्त कई बार चमकता है परन्तु आपका चमक अदि की आरे ध्यान न देकरकेवल काले गोले को एकटक देखते जाना है और जो कुछ आपको अनुभव होता है या दिखाई देता जाता है, उसका ध्यान रखना है। यदि अपनी ओर से काले वृत्त में प्रकाश देखने का प्रयत्न करेंगे तो कभी नहीं देख पायेंगे क्योंकि प्रकाश बाहरी गोले में नहीं है वह तो आपके अंतर्मन में है। यह अभ्यास 5 मिनट प्रतिदिन तक किया जा सकता है, और अलगभग 40 दिन में सिद्ध हो जाता है। अभ्यास आँखों में गर्मी उत्पन्न करता है।

ओ. डी. गेजर (वन डी. गेजर) —एक फुट के वर्गाकार सफेद कागज पर एक अंच व्यास का काला वृत्त बना लें। उसके चारों ओर छोटी-छोटी 24 रेखायें ऐसे खींचें जैसे सूर्य से किरणों निकलती हैं। यह रेखायें वृत्त के केन्द्र से 4 इन्च लम्बी हों अर्थात् वृत्त से बाहर रेखा की लम्बाई तीन इंच होगी। पहले अभ्यास के समान ही इस पर एकाग्रता का अभ्यास करें।

रिलीजस रिसर्च ऐकेडैमी केन्द्र बंगलौर की सुश्री प्रकृति राजापुर का ओ. डी. गेजिंग का अनुभव देखिए—"निर्देशानुसार प्रकाश व्यवस्था का ध्यान रखते हुए 'ओ. डी. गेजिंग' प्रारम्भ करने पर मुझे कुछ रेखायें काली और कुछ रेखायें निकलते सूर्य की प्रभाव जैसी चमकती दिखाई दीं और पुनः सब कुछ काला सा दिखने लगा। मैं बराबर एकटक देखती रही। थोड़ी देर बाद वृत्त तथा रेखायें चमकदार सुनहरी बन गईं। मन करता था इस सुनहरे चित्र को देखती ही जाऊँ क्योंकि उससे बड़ी आनन्ददायक झिलमिल सी हो रही थी। परन्तु गुरु जी ने 'ॐ' बोल कर त्राटक बंद करा दिया।"

अकेले में करने में समय का ध्यान रखने के लिये गिनती बोलते चलें। कुछ लोग घड़ी में एलार्म लगा कर काम चलाते हैं। १ मास से अधिक समय यह साधना भी नहीं लेती। प्रतिदिन ५ मिनट का समय उचित रहता है।

पाइन्ट गेजिंग (बिन्दु त्राटक) —एक फुट वर्गाकार सफेद कागज पर कालीमिर्च के बराबर का काला बिन्दु बनाकर पीछे बताये अनुसार त्राटक करें। यह बिन्दु कभी गायब होगा, कभी प्रकट होगा, कभी बड़ा होगा, कभी छोटा होगा और अंततः साधना की उच्चावस्था के अनुपात में यह बिंदु छोटा होता चला जायेगा।

कारनिकोबार (अण्डमान निकोबार द्वीप समूह) की एक साधिका रोजी का १९६५ में किया गया 'पाइन्ट गेजिंग' का अनुभव देखिये—

"मैंने डायरेक्शन के मुताबिक ब्लैक पाइन्ट कौन्सेन्ट्रेशन किया। पहले तो आँखों में पानी आया पर हम पानी साफ नहीं किया और टुक टुक देखता ही गई। बाद में ब्लैक पाइन्ट बड़ा होता गया और होते होते मुझे पूरा अँधेरा दिखाई दिया, मैं अँधेरा में डूब गई। फिर ऐसे लाइट आया जैसे किसी ने दरवाजा खोला हो। पर मैं तो मैदान में थी दरवाजा तो था ही नहीं। फिर भी अँधेरा में डूब गई। धीरे-धीरे लाइट आता गया। मुझे थोड़ी देर को ब्लैक पाइन्ट दिखा और फिर वह गोल्डन बन गया। धीरे-धीरे वह छोटा होता गया

बिल्कुल पाइन्ट के माफक बन गया पर बहुत चमकीला था स्टार जैसा गोल्डन कलर में। बाद में हमको स्नीज़िंग आने से कौन्सेन्ट्रेशन हमने तोड़ा। काला काला अँधेरा लगा तो हम डरा था, पर बाद में तो अच्छा लगा। बहुत अच्छा लगा।"

मिरर गेज़र (दर्पण त्राटक) —बढ़िया समतल काँच का कम से कम ८'' x ६'' आकार का एक दर्पण लें। उसे अपने चेहरे की सीध में लटका दें। वातावरण शांत व कम प्रकाश युक्त ही रहेगा। तीन या चार फुट की दूरी से भ्रू मध्य में अपनी दृष्टि जमा दीजिये।

ऐसे दर्पण को केवल इसी उपयोग के लिये रखें। दैनिक प्रयोग में न लें। साधना का समय ५ मिनट से अधिक बढ़ाने के लिये किसी योग्य साधक से सलाह ले लें।

मिरर-गेजिंग करने वाली 'धर्म तत्व दर्शन विश्वविद्यालय' बंगलौर केन्द्र की रिसर्चर सुश्री शाहिदा खानम के अनुभव देखिये—"मैं थोड़ी देर तक दर्पण में बनी अपनी छवि के भ्रू मध्य में दृष्टि जमाये रही तो धीरे-धीरे मेरी छवि दर्पण में दिखना बन्द हो गई। मैंने सोचा कि शायद मेरा कोण बदल गया है और उसी क्षण मेरा चित्त दर्पण पर आ गया। मैंने उसमें अपनी छवि देखी। मैं पुन: कौन्सेन्ट्रेशन करने लगी। मेरी छवि दर्पण से गायब हो गई। मैं फिर भी दर्पण में गौर से देखती गई। थोड़ी देर में मुझे उस दर्पण में अपनी छवि के स्थान पर एक सीनरी सी दिखाई दी। जिसमें पेड, पौधे, पर्वत, घास आदि स्पष्ट दिखाई दिये। धीरे-धीरे यह सीन भी गायब हो गये। दर्पण में प्रकाश चमकने लगा। धीरे-धीरे प्रकाश इतना तीव्र हुआ कि मैं सह न सकी और मेरी आँखें बन्द हो गईं।

गेज़र क्रिस्टल (Gazer Crystal) – डेढ़ या दो इंच व्यास की पारदर्शक काँच की गेंद (जैसे गोल पारदर्शक पेपर वेट होता है) जिसमें हवा का कोई बुदबुदा भी न चमके क्रिस्टल गेजिंग के लिए अमेरिका में बहुत प्राचीन काल से प्रयोग की जाती थी। अमेरिका की 'जीन डिन्कस' क्रिस्टल बॉल में देखकर ही भविष्यवाणी करती थीं। महात्मा गाँधी और राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी की हत्या की भविष्यवाणी इस महिला ने बहुत पहले ही कर दी थी। यह बॉल अधिकतर चश्मे वालों के मिल जाती है।

इसके अभ्यास के लिये संध्या को सूर्यास्त के समय कमरे में जहाँ हल्का प्रकाश हो बॉल को ३-४ फुट की दूरी पर आँख की ऊँचाई की सीध में रखकर त्राटक प्रारम्भ करें। चाहे तो बॉल के लिये उचित ऊँचाई का लकड़ी का स्टैन्ड बना लें या मेज पर रखकर ऊँचाई 'सैट' कर लें। बिना भोजन किये बैठना अधिक उपयुक्त होगा अन्यथा हल्का अल्पाहार चलेगा।

अमेरिका के एक महात्मा की शिष्या (जो पैदा भारत में हुई थी) बम्बई में सौभाग्यवश मुझे मिली। उसे टान्सिल्स हो गये थे। वह उनकी चिकित्सा के लिये मेरे पास आई। बम्बई में उसे आठ दिन रुक कर पंजाब जाना था। तब मेरी बात-चीत इस विषय पर उससे हुई। उसने क्रिस्टल गेजिंग का अनुभव इस प्रकार बताया—गेजिंग प्रारम्भ करने में कई बार बॉल गायब होती है। कई बार बॉल के चारों ओर प्रकाश दिखाई देता है और बीच में बॉल के स्थान पर काला गोला दिखता है। कुछ दिनों में बॉल में कुछ

अस्पष्ट सी चलती फिरती आकृतियाँ दिखती हैं। धीरे-धीरे वह अकृतियाँ स्पष्ट हो जाती हैं और सीनरी, व्यक्ति, मृत व्यक्ति तथा भविष्य में होने वाली घटनाएँ तक दृष्टिगोचर होने लगती हैं। आगे बढ़ना चाहने वाले जिज्ञासु को अस्पष्ट आकृतियाँ दिखाई देने के पूर्व ही बॉल का अभ्यास बन्द करके इससे आगे की सीढ़ी का प्रारम्भ करना चाहिये नहीं तो वह मात्र भविष्य वक्ता बनकर रह जायेगा। मैं समझती हूँ कि जितनी कठिनाई से यह साधना सिद्ध होती है उसके अनुपात में मात्र एक भविष्य वक्ता बनना ऐसे है जैसे पी. एच. डी. करके नर्सरी, के. जी. के बच्चों की टीचर की सर्विस मिलना।" आगे उसने बताया कि "इस साधना में गाइड पर कान्फिडैन्स और श्रद्धा होना उतना ही आवश्यक है जितना कि क्रिस्टल गेजिंग के विधि विधान पर। जितनी अधिक श्रद्धा और विश्वास होगा उतनी ही सफलता में शीघ्रता होगी।"

बर्निंग पाइन्ट गेजिंग—मैसूर के भूतपूर्व महाराजा स्वर्गीय रामचन्द्र वाडियार के अमेरिकन गुरु (जिनका नाम मुझे नहीं ज्ञात हो सका) 'बर्निंग पाइन्ट गेजिंग' के लिए सामान्य निर्देशों के साथ अगरबत्ती (Perfume stick) जलाकर उसके जलते बिन्दु पर अपलक दृष्टि रखकर त्राटक कराते थे।

कैंडिल गेजिंग—ईसाई सम्प्रदायों में ज्योति पर त्राटक करने के लिये मोमबत्ती का प्रयोग होता है। अँधेरे कमरे में एक मोमबत्ती जलाकर आँखों की ऊँचाई की सीध में स्टैन्ड पर रख देते हैं। उस मोमबत्ती से ३-४ फीट दूर बैठकर ज्योति पर त्राटक किया जाता है। सन् १९६३ में अम्बाला में मिली 'पुष्पा' नामक ज्योतिसाधिका के अनुभव देखिये, जो उस समय वहाँ के बाइबिल सेंटर की अच्छी साधिका थी—"प्रारम्भ में जब मैं लाइट गेजिंग करती थी तो मोमबत्ती की फ्लेम (ज्योति) की चमक घटती-बढ़ती मालूम होती थी। फादर कहते थे कि वह तो स्थिर रहती है केवल मुझे अनुभव होता था। जो भी हो, घटती-बढ़ती थी। फिर उसका आकार भी घटता-बढ़ता रहता था। कई दिन के अभ्यास के बाद फ्लेम स्थिर रहने लगी थी। फिर कुछ दिन और अभ्यास करती रही, फ्लेम ठीक रही। एक दिन प्रैक्टिस करते-करते फ्लेम में मुझे अलग-अलग रंग के पेड़-पौधे से चमके। बाद में तो मुझे उसमें लोगों के चेहरे भी दिखाई देने लगे थे। मैं इसकी प्रैक्टिस दिन में दो बार करीब ८-१० मिनट तो करती ही थी। उसके बाद आँख बन्द करके आधा घण्टा आराम करती थी। तब आँख धोकर बाहर जाती थी।"

अक्षि त्राटक—कुछ सम्प्रदायों में आँख से आँख मिलाकर त्राटक करने की प्रथा है। इसमें एक साधिका नयी साधिका या साधक को अपनी आँखों के सामने २-३ फुट की दूरी पर बिठाकर अपनी आँखों में देखते रहने के लिये आग्रह करती है। साथ में कोई कर्ण-प्रिय संगीत टेप रिकार्डर या ग्रामोफोन द्वारा बजाने की व्यवस्था रहती है। ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय की ऐसी व्यवस्था सन् १९६४ में मैंने बंगलौर केन्द्र पर देखी, जब वहाँ तथाकथित 'जगदम्बा जगत् माता सरस्वती' लन्दन से पधारी थीं। उनके अनुसार सृष्टि ९ वर्ष के अन्दर महाप्रलय में समा जानी थी। १९६३ में इस सम्प्रदाय के संस्थापक प्रजापिता ब्रह्मा 'दादा लखिराज' की मुरलियों में ऐसी ही मान्यता प्रमाणित होती थी। जो

भी हो, ऐसा वास्तव में नहीं हुआ। अब इनके धर्माधिकारियों ने समय के अनुरूप अपने भाषणों में परिवर्तन कर ही लिया होगा। बाद में इस सम्प्रदाय के लोग अण्डाकारी ज्योति (अण्डाकारी बिजली के बल्ब) पर दृष्टि जमाने की विधि बताने लगे थे और इस अण्डाकारी ज्योति को शिवलिंग का प्रतिरूप मानते थे।

भ्रू-मध्य त्राटक—गुरु जी एक थोड़ी-सी ऊँची चौकी पर अपने भ्रू-मध्य में बिन्दी लगाकर बैठते हैं और उनके सामने सारे साधक आँख खोलकर बैठते हैं। यह सभी साधक गुरु जी के भ्रू-मध्य में बनी हुई बिन्दी पर त्राटक करते हैं। फिर अपने-अपने प्रतिदिन के अनुभव डायरी में लिखकर गुरु जी को दे जाते हैं। महर्षि यतीन्द्र योगाश्रम (आगरा) में सन् १९६८ में ऐसी व्यवस्था थी।

रौप्याक्षि त्राटक—ब्रह्मर्षि बलदेव के त्राटक के अनुभवों में चाँदी की बनी हुई आँख पर दृष्टि स्थिर करने की चर्चा मिलती है। भ्रू-मध्य त्राटक तथा रजताक्षि त्राटक के परिणाम लगभग एक जैसे ही आते हैं। परन्तु रजताक्षि का लाभ यह है कि गुरु जी को घेरना आवश्यक नहीं रहता। दूसरे रजत (रौप्य) के सूक्ष्म गुण-धर्म के प्रभाव से आँखों की सफाई हो जाती है और आँखों की नाड़ियों को बल मिलता है।

शशांक त्राटक (Moon Gazing)—चाँदनी रात में खुले में लेटकर चाँद पर दृष्टि जमाने का कार्य किया जाता है। यह त्राटक एक बार में १५ मिनट से अधिक नहीं किया जाता। यदि चाँद आँखों की सीध में हो तब तो कोई बात नहीं अन्यथा चाँद की ओर पैर करके लेटना चाहिए (सिर करके नहीं) जिससे आँखें प्राकृतिक रूप में खुली रह सकें।
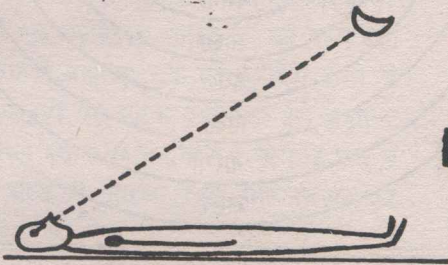
चित्र संख्या ३३

चाँद की ओर सिर रखने से आँखें चढ़ी सी रहेंगी। जिससे व्यक्ति सैल्फ हिप्नोटाइज हो सकता है।

ब्रह्माण्ड चक्र (Space Circle)

मीमांसा दर्शन (Metaphysics) के सप्ताकाशीय रंगीन चित्र का उपयोग धारणा के लिये 'ब्रह्माण्ड चक्र' के रूप में किया जाता है। इसे बनाने के लिये लगभग एक वर्ग मीटर का सफेद कपड़ा लें। उस पर कपड़े के मध्य केन्द्र से १६ इंच (अर्ध व्यास) की दूरी पर पेंसिल से एक वृत्त बनायें। केन्द्र बिन्दु पर धागे से हुक फँसाने ज़ैसा बिल्कुल छोटा

फन्दा बना दें जो ब्रह्माण्ड चक्र लटकाने पर पृथ्वी के समानान्तर रहे। अब इस फन्दे सहित सम्पूर्ण वृत क्षेत्र को सफेद फैब्रिक रंग से रंग दें और छाया में सूखने दें। सूखने पर मध्य केन्द्र से दो दो इंच की दूरी पर ८ वृत्त पेंसिल से बना लें। ८ वाँ वृत्त १६ इंच की दूरी पर बनेगा। जहाँ तक आप कपड़ा रंग चुके हैं। अब पहले वृत्त को जो मध्य केन्द्र में है, भूरे (Brown) रंग से रंग दें।
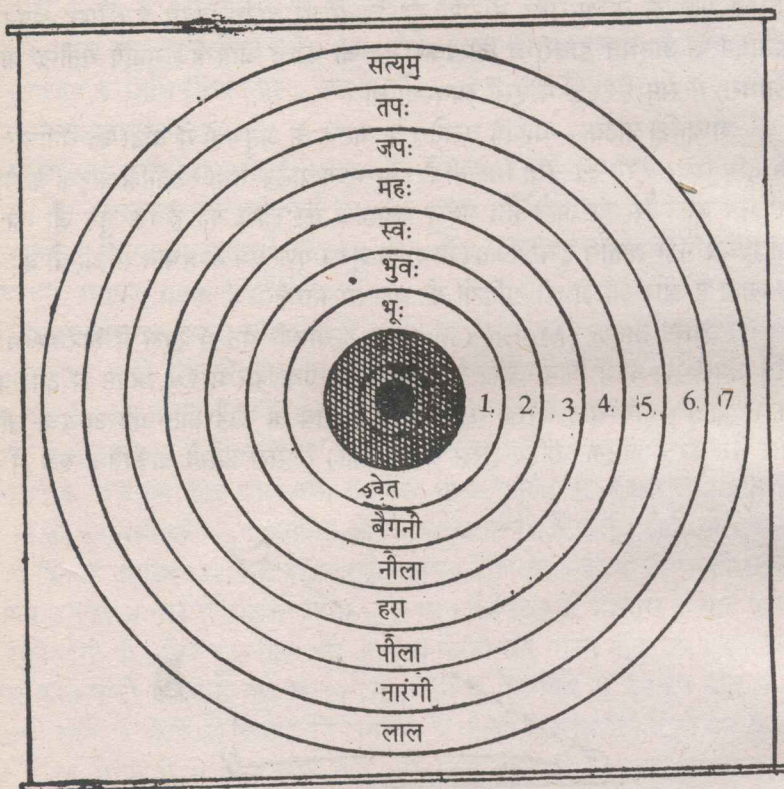
चित्र संख्या ३४

उसके बाद दो इंच का एक वृत्त छोड़ कर दूसरा बैंगनी रंग से रंग दें। फिर एक और वृत्त छोड़कर हरा रंग दें। इससे आगे एक वृत्त छोड़कर अगला नारंगी रंग दें। फिर इन्हें छाया में सूखने दें। जब यह सूख जायँ तो बीच-बीच में छोड़े हुए वृत्तों को भी रंगें। सबसे पहले मध्य केन्द्र में कालीमिर्च के बराबर का एक मोटा बिन्दु बना लें। अब भूरे रंग से आगे वाला वृत्त दो इंच की चौड़ाई में दुबारा सफेद रंग से रंगें। फिर बैंगनी से आगे वाला नीला रंग दें, हरे से आगे वाला पीला रंग दें और नारंगी से आगे वाला लाल रंग दें। इन रंगों के बीच में कोई परिधीय वृत्त रेखायें नहीं बनानी हैं। अब आपके ब्रह्माण्ड चक्र का रंग संयोजन इन्द्र-धनुष के रंग संयोजन के समान होगा। इन्द्र-धनुषीय रंग प्रकृति ने एक

विशेष क्रम में रखे हैं। जिन्हें आप किसी काँच के प्रिज्म पर सूर्य किरणें डाल कर देख सकते हैं।
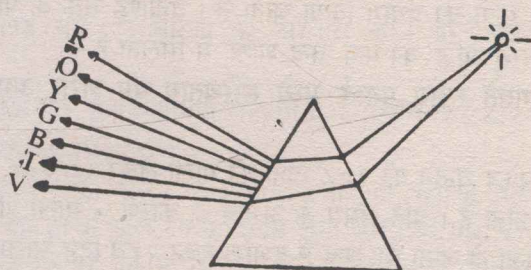
चित्र संख्या ३५

ब्रह्माण्ड चक्र का रंग संयोजन इस प्रकार बनेगा—सबसे पहले काला बिंदु, फिर भूरा क्षेत्र, तब तीसरा वृत्त सफेद, चौथा बैंगनी, पाँचवाँ नीला, छठवाँ हरा, सातवाँ पीला, आठवाँ नारंगी, और नौवाँ लाल। यह सभी रंग फेब्रिक कलर में प्रयोग किये जायेंगे। इन्हें आवश्यकतानुसार पतला करने के लिये फेब्रिक कलर्स का मीडियम ही प्रयोग करें।

इस प्रकार बना 'ब्रह्माण्ड-चक्र' धारणा के अभ्यास की वस्तु (Object) तो होता ही है, साथ ही दूसरी वस्तुओं नीम की पत्ती, गुलाब की पंखुड़ी आदि के लिये एक विशेष और प्राकृतिक रूप से आवश्यक पृष्ठभूमि भी बनाता है। आधार में फेब्रिक होने के कारण यह कॉन्सेन्ट्रेशन के लिये एक 'फोल्डिंग इन्सट्रूमेंट' का काम देता है। 'पृष्ठभूमि' के रूप में ब्रह्माण्ड चक्र का उपयोग करने के लिये जिस पत्ती या पंखड़ी पर त्राटक करना हो उसे ब्रह्माण्ड चक्र के काले बिंदु वाले स्थान पर बनाये गये धागे के फंदे में फँसा कर पत्ती के बीच में धारणा बिंदु मान (बना) कर कॉन्सेन्ट्रेशन किया जाता है।

चित्र संख्या ३६

पवित्रीकरण

'ब्रह्माण्ड चक्र' के निर्माण काल में भूमि पर कार्य करने, गंदे हाथ लगाने आदि से सफेद कपड़े का गंदा हो जाना एक स्वाभाविक बात है। इसे साबुन, सर्फ आदि से भूमि पर बिछाकर साफ करें। यह मलकर या रगड़कर साफ नहीं किया जा सकता अन्यथा पेन्ट छूट जायेगा। यदि कई बार की धुलाई से रंग फीका पड़ जाय तो भी इसके परिणामी रंगों में कभी अन्तर नहीं आता। उनकी चमक वैसी ही तेज रहती है। किसी भी धार्मिक वस्तु का शुद्ध और स्वच्छ रखना आवश्यक है। **स्थूल स्वच्छता को शुद्धीकरण कहा जाता है और सूक्ष्म स्वच्छता को पवित्रीकरण कहा जाता है।** आपने देखा होगा—किसी वस्तु पर धूल जम जाती है तो उसे झाड़ने के लिये हल्के हाथ की थपकी देते हैं। उसकी हल्की चोट से धूल झड़ने लगती है। ऐसी ही हल्की चोट ध्वनि-तरंगों से किसी वस्तु पर लगती

है। यह बात सूक्ष्म स्तर की है। ध्वनि तरंगें विशेष प्रकार के अक्षरों और शब्दों को बोल कर भी उत्पन्न की जा सकती है। ऐसे शब्दों को हम मन्त्र कहते हैं। इसी आधार पर पवित्रीकरण सम्बन्धी मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। ब्रह्माण्ड चक्र के पवित्रीकरण के लिये निम्नलिखित 'वस्तु शुद्धि' का मन्त्र 'तन्त्र-शास्त्र' में मिलता है—

'ॐ' नमो भगवते रुद्राय मृतार्क मध्ये संस्थिताय मम शरीर अमृतं कुरु कुरु स्वाहा"

इस मन्त्र को सफेद चन्दन की १०८ दानों की माला लेकर १०,००० की संख्या में जप करने से सिद्धि होती है। यदि समय के अभाव के कारण ५ माला प्रतिदिन करें तो २० दिन में १०० माला हो जाती हैं। बाद में दशांश हवन २१वें दिन आराम से किया जा सकता है। इतना आयोजन करने के पीछे यह रहस्य है कि व्यक्ति इस मन्त्र के लिये उस बिन्दु पर पहुँच जाता है जहाँ से आगे के जप किसी भी वस्तु पर अपने प्रभाव देना प्रारम्भ करने लगते हैं।

दशांश हवन करके हवन के धुएँ में 'ब्रह्माण्ड चक्र' को ५ मिनट रखकर ९ बार उपर्युक्त सिद्ध मन्त्र बोलकर पूजा स्थल में रख दें और धारणा के अभ्यास के लिये उपयोग करते समय सामने लटका लें। इसके बाद जब भी इस पर अभ्यास करना हो तो अगरबत्ती या धूपबत्ती अथवा घी अथवा तेल का दीपक 'ब्रह्माण्ड चक्र' के पास चारों ओर वृत्ताकार घुमाकर (पवित्रीकरण हेतु) चक्र से १ मीटर की दूरी पर बैठ कर काले बिंदु पर अथवा गुरु के निर्देशानुसार त्राटक करें। यदि उसी चक्र पर एक के बाद दूसरे व्यक्ति को त्राटक करना हो तो पुनः अगरबत्ती आदि घुमाकर पवित्रीकरण करके काम में लावें।

विशेष

शुद्धि मन्त्र दस हजार जप करने तथा दशांश हवन करने में ऐसे ही रहेगा। परन्तु जहाँ किसी वस्तु की शुद्धि करनी हो वहाँ 'मम शरीरं' के स्थान पर वस्तु का नाम लिया जायेगा। इसलिये ब्रह्माण्ड चंक्र शुद्ध करते समय जो ९ मन्त्र बोले जायेंगे वह इस प्रकार होंगे—

'ॐ' नमो भगवते रुद्राय, मृतार्क मध्ये संस्थिताय ब्रह्माण्ड चक्रं अमृतं कुरु कुरु स्वाहा।"

यदि ब्रह्माण्ड चक्र में पत्ती या पंखुड़ी लगानी हो तो उसके लगाने के बाद ही अगरबत्ती आदि दिखायें और फिर अगरबत्ती आदि को थोड़ी दूर पर रख दें जिससे उसका धुआँ अभ्यास करने में साधक तथा चक्र के बीच में व्यवधान न दे। इसलिये अधिक धुआँ पैदा करने वाली धूपबत्ती का प्रयोग वहाँ न करें। हवन के लिये अच्छी सामग्री बाजार में न मिले तो पीछे बतायी गई सामग्री की वस्तुएँ खरीद कर कूटकर स्वयं सामग्री तैयार कर लें। वस्तु पवित्रीकरण के लिये सचमुच सही सामग्री की आवश्यकता होती है। चालू सामग्री का पवित्रीकरण भी चालू और परिणाम भी चालू होगा।

वस्तु शुद्धि का मन्त्र व्यक्ति को जीवन में एक ही बार सिद्ध करना होता है। तत्पश्चात् जो भी वस्तु शुद्ध करनी हो धूप-दीप दिखाकर ९ बार मन्त्र बोल कर (मंत्र के

बीच में यथास्थान वस्तु का नाम जोड़ कर) शुद्धि की क्रिया सम्पन्न कर सकते हैं। यहाँ शुद्धि का तात्पर्य पवित्र करने से है। स्थूल शुद्धि हेतु पंचामृत में वस्तु को स्नान कराने की परिपाटी ग्रन्थों में मिलती है।

ब्रह्माण्ड चक्र पर धारणा का अभ्यास करने वाले **कुछ साधकों के अनुभव** देखिये—

साधक का नाम—श्रीमती सतनाम कौर, दिनांक २४-८-८५,

समय—१ मि. ३० से.

अनुभव—ॐ बोलने के थोड़ी देर बाद ही ब्रह्माण्ड चक्र के सारे रंग गायब हो गये। पूरा चक्र हल्के काले रंग में दिखने लगा और बिंदु गाढ़े काल रंग का दिखाई दे रहा था फिर अचानक पूरे चक्र में कैमरे की फ्लैश जैसी बहुत ही तेजी से सफेद चमक आई। उसे देखकर मेरी आँख झपक गई और मैंने ॐ बोल दिया। यह डेढ़ मिनट रहा।

समय—१ मि. १५ से.।

अनुभव—गुरुजी ने दुबारा मुझे अनुभव सुनने के बाद पुनः चक्र पर त्राटक करने का आदेश दिया। मैं ॐ बोलकर फिर प्रारम्भ हो गई। चक्र में लहरें सी प्रतीत हुई फिर चक्र उड़ता सा प्रतीत हुआ। जैसे-जैसे चक्र उड़ता जा रहा था मैं भी उसी की ओर देखती जा रही थी। अचानक चक्र में नारंगी रंग की फ्लैश आई और गायब हो गई। मैंने इस बार आँखें नहीं झपकने दीं। नारंगी फ्लैश फिर आई और रह-रह कर चक्र में वृत्ताकार घूमने लगी। गुरु जी ने ॐ बोल कर ध्यान बन्द करा दिया। इसमें १ मिनट १५ से. लगे।

सयम—१ मिनट

अनुभव—मुझे अनुभव सुनाने के पश्चात् तीसरी बार चक्र धारणा का आदेश मिला। मुझे खुशी हुई कि इस बार फिर कुछ मजेदार फ्लैश दिखाई देंगी। मैंने फ्लैश देखने की पूरी कोशिश की। सारे रंग गायब हो गये पूरा चक्र काले रंग का हो गया और वह काला ही बना रहा। मैंने बोर होकर अपनी ओर से ॐ बोल दिया। इस बार १ मिनट लगा।

साधक—श्री हरी कृष्ण नरूला, दिनाङ्क २७-१०-८५

समय—१ मि. ३० से.

अनुभव—पहिले कुछ समय तक सभी रंग उसी तरह ही नजर आते रहे, बाद में सभी धुँधले, लेकिन सफेद गोला साफ नजर आता रहा। बिन्दु से सफेद गोला तक के रंग इतने साफ नजर नहीं आ रहे थे।

साधक—डा. सुभाष चन्द्र गुप्ता, दिनाङ्क २७-९-८४,

समय—४ मिनट

अनुभव—पीले, लाल रंग में चमक दिखाई दी। पीलारंग विशेष चमक के साथ दीखा। ब्रह्माण्ड की Ground स्लेटी रंग की दीखी।

दीपक त्राटक

दीपक पर त्राटक करने की विधि बहुत प्राचीन है। कई लोग पूजा करने के लिये भगवान को दीपक चढ़ाने की क्रिया करते हैं। वे नहीं समझते कि भगवान को दीपक की

आवश्यकता नहीं है अपितु स्वयं उनको है। यह दीपक चढ़ाने की प्रथा दीपक त्राटक से सम्बन्धित है। व्यक्ति भगवान के मन्दिर में [प्राचीन मन्दिरों की निर्माण शैली पर आप ध्यान दें तो मन्दिर के बीच में ध्यान गर्भ (Concentration या Meditation Hall) पायेंगे। वहाँ दीपक की शक्ल की पत्थर की मूर्ति ध्यान गृह के बीचों-बीच पायेंगे। यह मूर्ति देखने में शिवलिंग जैसी प्रतीत होती थी। इस मूर्ति के चारों ओर बनी पट्टिका पर लोग] अपने छोटे बड़े दीपक रखकर उस दीपक से एक या दो मीटर दूर बैठ कर ज्योति त्राटक का अभ्यास करते थे। वे लोग किसी दूसरे के जलते हुए दीपक से अपना दीपक इसलिये नहीं जलाते थे जिससे उस साधक का Concentration टूट न जाय। Concentration में आँखों पर विशेष प्रभाव पड़ने के कारण शुद्ध घी का दीपक प्रयोग में लाया जाता था। दीपक का छोटा या बड़ा होना साधक की त्राटक क्षमता पर निर्भर करता था। जो साधक अधिक देर तक त्राटक कर सकता था वह बड़ा दीपक लाता था और जो कम देर तक कर सकता था वह छोटा दीपक लाता था। आज हम शिवलिंग अथवा अन्य मन्दिरों में दीपक चढ़ाने की क्रिया अर्थ-क्षमता के आधार पर करते हैं। आप स्वयं सोचिये आप क्या करते हैं? ऐसे बहुत से प्रश्नों के उत्तर मेरी लिखी पुस्तक 'धर्म तन्त्र के अद्‌भुत प्रश्नोत्तर' में देखिये।
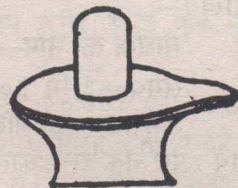
चित्र संख्या ३७

शुद्ध घी का प्रयोग वातावरण को पवित्र करने के काम भी आता है। आप यह न सोचें कि आपके द्वारा चढ़ाये गये दीपक से मन्दिर का वातावरण पवित्र होगा। उसके लिये आपसे पहले एक बड़ा दीपक जला कर रख दिया जाता है। आप चाहें तो उस बड़े दीपक से अपना दीपक जला भी सकते हैं, परन्तु छोटे-छोटे दीपकों से दीपक जलाने का निषेध आज भी होता है। धार्मिक कर्म कांड में वैज्ञानिकता के अभाव में 'कर्म कांड' हमारे हाथ में रह गया वह भी कहीं टूटा, कहीं छूटा; परन्तु लक्ष्य पूर्णतः छूट गया। लक्ष्य की प्राप्ति विज्ञान के विकास से सम्भव है—तमसो मा ज्योतिर्गमय।

दीपक त्राटक के लिये दीपक को किसी ऐसे स्थान पर रखें जहाँ दीपक की लौ स्थिर रहे और उसकी ऊँचाई साधक की आँख की ऊँचाई के बराबर रहे। दीपक की लौ अधिक लम्बी न रखी जाय अन्यथा धुआँ भी अधिक देगी और हिलेगी भी अधिक। दीपक से साधक की दूरी ३ फीट से ११ फीट तक रखी जा सकती है। दीपक की पृष्ठभूमि (Back Ground) काली या सफेद रखी जा सकती है। यदि दीपक को शिवलिंग की पट्टी पर रखकर अभ्यास करें तो पृष्ठभूमि में स्वतः ही शिवलिंग आ जायेगा। यदि न आये तो समझें कि आपका बैठने का कोंण (Angle) सही नहीं है। शिवलिंग काले और सफेद दोनों प्रकार के पत्थर का मिलता है। चाँदी और सोने के शिवलिंग भी प्रयोग किये जा सकते हैं परन्तु लोहा, ताँबा, पीतल आदि के उचित नहीं होंगे।

दीपक त्राटक में समय की गणना के लिये गिनती गिनें अथवा माला द्वारा जाप करें या घड़ी में अलार्म लगायें। यह आपकी आवश्यकता पर निर्भर करता है। पृष्ठभूमि

दीपक के प्रकाश को परावर्तित (Reflect) न करे, यह भी एक आवश्यक बात है। यदि शिवलिंग की पट्टी पर दीपक रखा हो तो शिवलिंग इतना चमकदार न हो जो पृष्ठभूमि में दीपक का प्रतिबिम्ब बने। धारणा का अभ्यास गर्मी पैदा करता है। शिवलिंग के ऊपर 'गंगाल' से पानी टपकाने के पीछे यही रहस्य है। यह पानी बूँदों के रूप में टपकायें तो शिवलिंग की पट्टी पर रखे दीपकों में छींटें जायेंगी और कोई भी दीपक ठीक से नहीं जलेगा इसलिये गंगाल में से धागा या रस्सी लटका कर शिवलिंग पर पानी की बहुत पतली धार गिराने का प्रचलन किया गया था।

शिवलिंग पर दूध मिला जल चढ़ाने के पीछे शिवलिंग के शुद्धीकरण का रहस्य है। दूध अशुद्धि को बहुत शीघ्रता से पकड़ता है। जो वस्तु दूध से धुल गई, समझें महाशुद्ध अर्थात् पवित्र (सूक्ष्मत: शुद्ध) हो गई। एक प्रकार से जो कार्य इस 'ब्रह्माण्ड चक्र' शुद्ध करने के लिये हवन के धुएँ से सम्पन्न करते हैं लगभग वैसा ही कार्य दुग्धाभिषेक से हो जाता है। जो सम्प्रदाय शिवलिंग को 'पुरुष काम दंड' मानते हैं उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि वे एक बार इस बात पर पुन: ध्यान दें कि ऊर्ध्व लिंग को यदि ऊर्ध्व रेत: माना जाता है तो भी दुग्ध के अभिषेक को वीर्य का अभिषेक नहीं माना जा सकता क्योंकि ऊर्ध्व रेत: (जिसका वीर्य ऊर्ध्वगामी हो—मस्तिष्क की ओर सुषुम्ना मार्ग से चढ़ता) हो उसका वीर्य निकलकर बहने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

कई मन्दिरों में चौमुखे (चार बत्ती वाले) और पंचमुखी (पाँच बत्ती वाले) दीपक चढ़ाये जाते हैं। ऐसे एक ही दीपक पर विभिन्न दिशाओं से चार या पाँच व्यक्ति त्राटक कर सकते हैं, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति की लौ (उन पाँच या चार में से एक) अलग होगी। इस प्रकार कम घी व्यय करके अधिक दीपकों का लाभ लिया जा सकता है और हम आजकल जो 'पंचमुख दीपक' भगवान के सम्मुख रखते हैं उसमें एक दीपक के व्यय के स्थान पर पाँच दीपकों का व्यय करते हैं। कितना बड़ा अन्तर है दोनों कार्यों में ? यदि आप योगी हैं अथवा होना चाहते हैं तो आप यह अच्छी तरह समझ लीजिये कि **भगवान को आपके धूप, दीप, पूजन, तर्पण से कोई लेना-देना नहीं है। यह सब आपको अपने लिये करना है** और उतना ही करना है जहाँ तक आपकी स्वयं की सीमा है।

दीपक त्राटक करने के पश्चात् कम से कम आधा घंटे बाद शीतल जल से धीरे से आँखें धोना आवश्यक है। कोई भी त्राटक करते हुए आँखों को तनाव रहित रखना आवश्यक है अन्यथा आँखों की माँसपेशियों में तनाव रहने से सिर में दर्द हो सकता है। दीपक त्राटक को प्रारम्भ में १५ सेकिण्ड समय दें और फिर प्रत्येक सप्ताह बाद १०-१० सेकिण्ड बढ़ाते जायँ। जो किसी गुरु (Guide) के संरक्षण में हैं, उनकी तो बात ही अलग है वे गुरु आज्ञानुसार चलेंगे। यह मेरा लिखना उसी प्रकार है जैसे आपने दवाओं की शीशी पर "DOSE" के विवरण में लिखा देखा होगा—Tow tea spoonful three times a day or as directed by the physician.

अनुभव—दीपक त्राटक के कुछ अनुभव सरदार सुरजीत सिंह वढ़ैच ने लिखे (जिन्हें सरदारनी सतनाम कौर ने पंजाबी से हिन्दी में अनुवाद किया है) देखिये—

नीचे दिये गये एक सप्ताह के दीपक त्राटक की रिपोर्ट प्रस्तुत है जिसमें साधक ने दीपक की ऊँचाई डेढ़ फुट और दीपक से साधक की दूरी ६ फुट रखी थी।

दिनांक	अनुभव
१३-३-८०	त्राटक पर बैठने के थोड़ी देर बाद दीपक में से किरणें निकलती दिखाई दे रही थीं। बाद में लौ टिप-टिप करने लगी थी।
१४-३-८०	किरणें और लौ स्थिर रहीं।
१५-३-८०	आज बैठने के बाद किरणों के बिना चारों ओर गोल्डन (सुनहरी) रंग का प्रकाश फैल गया।
१६-३-८०	बैठने के बाद किरणें तो दिखाई नहीं दीं चारों ओर काले रंग की रोशनी प्रतीत हो रही थी।
१७-३-८०	आज काले और सफेद रंग की रोशनी में डॉ. गहराना से इन्सट्रक्शन के रूप में 'उठ जाओ' आवाज सुनाई दी।
१७-३-८०	दूसरी बार पुनः त्राटक करने पर सफेद राशेनी में डॉ. गहराना हँसते दिखाई दिये (यहाँ सफेद रोशनी से तात्पर्य दीपक की लौ के बीच के सफेद अंश से है। डॉ. गहराना इस साधक से लगभग १ फर्लांग दूर थे। यह सभी त्राटक साधक ने नितांत एकान्त में रात को ११ बजे अथवा सुबह ४ बजे बंद कमरे में किये थे जहाँ साधक के अलावा कोई अन्य व्यक्ति नहीं था।)
१८-३-८०	सफेद रोशनी में डॉ. गहराना जी का एक हाथ इशारे करता हुआ दिखाई दिया।
१९-३-८०	ड्यूटी के कारण बैठ नहीं सके।

वायु सेना में कार्यरत श्री बलदेवराज सहगल के दीपक त्राटक के अनुभव देखिये—विशेष अवसर पर देवी के विशेष मन्त्र के साथ दीपक त्राटक का आयोजन 'चामुण्डा चक्र' की पृष्ठभूमि में लगभग ५ मिनट चला।

दीपक की लौ पहले छोटी होने लगी फिर धीरे-धीरे बड़ी होती गई। बहुत बड़ी हो गई उसमें सफेद साड़ी पहने एक लड़की दिखाई दी। बहुत देर तक रही, फिर वह लड़की नीचे आ गई। दीपक तो ऐसा लगा कि है ही नहीं। सफेद साड़ी में लड़की ही थी। वह इधर-उधर खिसकी थी। फिर उसके स्थान पर दीपक की लौ बन गई। फिर वह आई। फिर दीपक की लौ बनी। ऐसा कई बार हुआ। चेहरा नहीं पहचाना गया। घड़ी का एलार्म बज गया। मैंने आँखें बन्द कर लीं, वह तब भी बंद आँखों से दिखती रही, आँख खोलीं तब भी थी। फिर मैं उसको नमस्कार करके उठ गया।

दीपक पर त्राटक प्रारम्भ करते ही देवी लाल साड़ी में पधारीं। दीपक से उतरी और दीपक की किरण पर चलती हुई मेरे भ्रू-मध्य में घुस गई। एक बार मन में आया कि उसे

रोकूँ पर फिर गुरु का नाम लेकर घुसने दिया। मैं सोच रहा था कि यह घुसकर मेरे मस्तिष्क में खटर-पटर मचायेगी, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। हाँ ऐसा लगा जैसे कि मैं अपने दिमाग की प्रत्येक नाड़ी को ऐसे देख रहा हूँ जैसे आप तेज और साफ प्रकाश में अपने ड्राइंग रूम से सजे हुए सामान को देखते हों। मैंने सोचा यह दिमाग का कमरा है। बड़ा प्रकाश है। अचानक सामने दीपक की ज्योति दिखाई देने लगी फिर दिमाग का 'ड्रॉइंग रूम' देखने का मन करने लगा। वह नहीं दिखा। हल्का-हल्का सिर में दर्द होने लगा। मैंने त्राटक तोड़ दिया। समय ढाई मिनट ही हुआ था।

बंगलौर की कुमारी शाहिदा ख़ानम के दीपक त्राटक के अनुभव—

दिनांक ४-५-१९६४—चिराग पर गौर से नजरें जमाने का कायदा मुझे यतीन्द्र भैया का बहुत मजेदार लगा। चिराग की रोशनी पर गौर करने से शमा पहले तो छोटी होती फिर बड़ी होती थी। बाद में धुँधली सी हो गई फिर बड़ी होकर चमकने लगी। चमकते-चमकते मुझे लगा कि मैं भी शमा के अन्दर हूँ, मेरा कमरा भी उसी में है। चारों ओर रोशनी, तेज रोशनी, रोशनी बढ़ती गई। मैं देख न सकी। मैंने आँखें बन्द कर लीं। मुझे नहीं पता कब मैं बेहोश हुई। मैंने आँख खोलीं तो मैं भैया की गोद में थी। समय देखा ही नहीं। भैया ने मेरे वालिद साहब को और मम्मी को बताया कि मैं सैल्फ हिप्नोटाइज हो गई थी। उसी समय भैया ने फिर दुबारा शमा पर त्राटक दो मिनट कराया। मुझे दूध में घी डाल कर पिलाया और सोने दिया।

आगरा पंच भैरों मन्दिर पंचकुइयाँ पर सन् १९६८ में महर्षि यतीन्द्र योगाश्रम के जिज्ञासुओं में बाबा जमनादास 'उदासीन' के दीपक त्राटक के अनुभव—त्राटक करने में भगवान कृपा से बड़ा आनन्द आता है पर मेरे भगवन् देर तक त्राटक करने नहीं देते। दीपक की ज्योति दीपक से अलग होकर इधर-उधर चलती है। मैं बराबर पीछा करता रहता हूँ और त्राटक टूटने नहीं देता। कभी-कभी मन से आदेश देकर ज्योति को वापस दीपक पर लाना भी मुझे आ गया है।

कभी-कभी ज्योति में कुछ ऐसा दिखता है कि वह वस्तु ही अखण्ड ज्योति है। कभी ज्योति के स्थान पर सुनहरी और रुपहली देवी देवताओं की मूर्ति हरकत करती हुई दिखती है। यह मूर्ति कभी कपड़ों में कभी नंगी दिखती है। फिर गायब हो जाती है। कभी आँखें बन्द रहने पर भी भगवत् कृपा होती रहती है।

'कपाल व्यूह' त्राटक

कपाल व्यूह बनाने के लिए काले कपड़े का प्रयोग करें (यदि कपड़े पर बनाना हो तो) और सफेद फैब्रिक रंग का उपयोग करें। काली पृष्ठभूमि पर श्वेत रेखाओं द्वारा कपाल व्यूह तैयार होता है। इसमें कपाल (खोपड़ी का चित्र) तथा चक्र व्यूह (रेखा चित्र) का मिश्रण होता है। चक्र व्यूह के गर्भ में एक कपाल बना कर कपाल के मस्तक के बीच में बहुत हल्का (बिन्दी के स्थान पर) लाल रंग का चिह्न बना दें। इसी लाल चिह्न पर त्राटक किया जाता है। कपाल व्यूह निर्माण के बाद ब्रह्माण्ड चक्र की तरह ही इसका पवित्रीकरण करें। प्रथम बार सामान्य हवन करते समय ९ पवित्रीकरण के मंत्र से होम करके धुआँ

कपाल व्यूह को लगा दें। उसके पश्चात् जब भी कोई व्यक्ति व्यूह का उपयोग करना चाहे तो धूपबत्ती पूरे व्यूह के पास (पास से पास रखते हुए, परन्तु इतनी पास भी नहीं कि कपड़ा जल जाय) घुमायें और ९ मंत्र बोलते जायँ—

ॐ नमो भगवते रुद्राय मृतार्क मध्ये संस्थिताय कपाल व्यूहं अमृतं कुरु-कुरु स्वाहा।
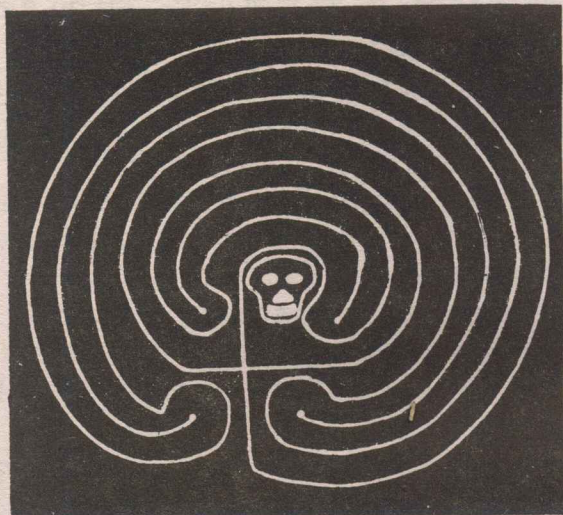
चित्र संख्या ३८

कपाल व्यूह सामने उचित ऊँचाई पर लटका कर एक मीटर की दूरी से कपाल व्यूह के लाल बिन्दु पर त्राटक प्रारम्भ करें। त्राटक के बीच में जो अनुभव हों उन्हें आपकी नोट-बुक में लिखतें रहें। समय की गणना गिनती से अथवा घड़ी में अलार्म लगाकर करें या किसी साथी को घड़ी लेकर खड़ा कर दें। यदि आपके गुरु खड़ें होंगे तो वह अपनी आँखों, घड़ी तथा कपाल व्यूह की स्थिति, तीनों बातों पर एक साथ दृष्टि रख सकेंगे, और आवश्यकतानुसार निर्देश भी दे सकेंगे।

श्री बी. एस. आर्य के २४-८-८५ ई. के कपाल व्यूह के अनुभव देखिए—त्राटक का समय ढाई मिनट का रहा वह भी व्यवधान सहित (Disturbed) सा।

The kapal went back. There was shining in the lines. It moved a little to left and then to right. The shining was like a tourch twinkling.

इन्हीं महोदय का ३०-८-८५ ई. का अनुभव देखिए—यह दो बार में २.३० (ढाई) मिनट, २.३० (ढाई) मिनट तक किया गया था।

To day, it was full of disturbance. First chance, I felt shining in the lines. The kapal's point was also changing its place. Kapal came forward and went back quickly for two or three seconds.

Second time, I found as vyuh is growing larger, I felt myself going down.

सरदार बंटीसिंह—(इन्सटीट्यूट ऑफ कॉस्मिक योगा एण्ड मैटाफिजीकल रिसर्चेज के जिज्ञासु) **द्वारा कपाल व्यूह पर किये गये त्राटक के प्रारम्भिक अनुभव देखिये**—

दिनाङ्क ३०-१०-८५, **समय** २ मिनट ३० सेकिंड।

कपाल व्यूह—इसकी लाइनों में बहुत ही तेज चमक थी जो कि फ्लैश से भी ज्यादा चमक रही थी। खोपड़ी भी बहुत जोर की चमक मार रही थी।

दिनाङ्क ८-११-८५, **समय** २ मिनट २५ सेकिंड।

इसकी लाइनों में काफी चमक थी तथा कपाल (खोपड़ी) के दाँतों में चमक थी, कपाल हिल रहा था।

एक ही कपाल व्यूह पर एक ही समय में दो व्यक्तियों ने त्राटक किया।

श्री भीमसेन का अनुभव देखिये—

दिनाङ्क २४ नवम्बर, ८५

'कपाल (व्यूह)' नरेन्द्र एवं मैंने साथ-साथ किया। बाँयी आँख में तेज जलन थी। कपाल के चारों ओर एक गर्दन से सिर तक की परछाई जो कि सफेद थी (दिखाई दी)।

डॉ. सुभाष चन्द्र गुप्ता द्वारा कपाल व्यूह त्राटक का दिनाङ्क १८-१०-८५ का अनुभव देखिये—कपाल व्यूह की कपाल के चारों ओर वृत्तिक रेखा घूमती हुई सी दीखी। कपाल मेरी ओर पर्दे में से निकलती हुई दीखी। जिस घेरे में कपाल है वह घेरा कपाल के अन्दर की ओर इलैक्ट्रोनिक गति में घूमती हुई सी दीखी।

इन्हीं का १९-१०-८५ का अनुभव—कपाल व्यूह के चारों ओर रेखायें वृत्ताकार रूप में चलती हुई सी नजर आती हैं। कपाल बाहर की ओर निकली हुई सी लगती है जैसे कि Three Dimensional चित्र दीखते हैं।

बम्बई की एक जिज्ञासु मिस वेरा के अनुभव—

दिनाङ्क ३०-८-७८, समय ७ मिनट १५ सेकिण्ड—कपाल व्यूह की रेखाएँ पहले कम्पित होती रहीं। फिर आँखों में पानी आ गया। रेखायें काँपती रहीं और काँपते समुद्र की लहरें बन गईं। आधा ऊपरी व्यूह काला आकाश हो गया और शेष आधा लहरें मारता हुआ समुद्र हो गया। ऐसा बहुत देर तक दिखता रहा। फिर गुरुजी ने ॐ बोलकर त्राटक बंद करा दिया।

सरदार सुरजीत सिंह का बम्बई आश्रम में किया गया कपाल व्यूह का अनुभव—

दिनाङ्क ४-५-७९ – कपाल व्यूह के सामने बैठ गये। चारों तरफ़ पूरे कमरे में दूध के रंग जैसा प्रकाश फैल गया मूर्ति अलोप हो गयी।

दिनाङ्क ६-५-७९ – दूसरे दिन जैसा हुआ पर इस तरह लग रहा था जैसे कि मैं टेढ़ा ही बैठा हूँ, वजन एक तरफ उलटी तरफ आ रहा है।

वाटर-लाइट गेजिंग

एक काँच का पानी भरा गोल फ्लास्क लें। उसे अपनी आँख की उचित ऊँचाई पर रख लें। उसके पीछे एक मोमबत्ती इस प्रकार रखें कि फ्लास्क के पेट के मध्य में मोमबत्ती की ज्योति पड़े। मोमबत्ती की विरोधी दिशा में (फ्लास्क के दूसरी ओर) आप बैठिये और फ्लास्क के पानी में होकर मोमबत्ती पर त्राटक कीजिये। फ्लास्क और आँख की दूरी लगभग डेढ फुट रखें।
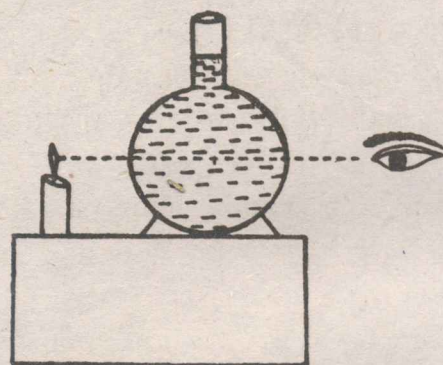
चित्र संख्या ३९

'वाटर-लाइट गेजिंग' करनेवाली बिहार की एक महिला श्रीमती राजेश्वरी सिन्हा का अनुभव देखिये—'वाटर लाइट गेजिंग' में अन्य त्राटकों की तरह प्रकाश का घटना-बढ़ना तो होता ही है बाद में मस्तिष्क में घूमने वाली घटनाएँ भी दिखाई देने लगती हैं। कठिन साधना के पश्चात् कभी-कभी ऐसे दर्शाव भी हो जाते हैं जो अभी तक नहीं घटित हुए परन्तु समयांतर में हो जाते हैं। एक बार मेरे पति मेरे पास खड़े होकर अपने आफिस के बारे में कुछ सोच रहे थे। मैंने वाटर-लाइट में वह आफिस देखा तो मैंने अपने पति का आफिस पहचान लिया। मैंने उनसे त्राटक करते-करते ही कहा (बाद में मुझे ऐसा अभ्यास हो गया था कि मैं त्राटक करते-करते बातें कर लेती थी और मेरा ध्यान नहीं टूटता था) आपका आफिस मुझे दिखाई दे रहा है। वे बोले—तो देखो सेफ की चाबी कहाँ है? मुझे सेफ की चाबी पैरदान के नीचे दिखाई दी। वह मैंने उन्हें बता दी। वह जब आफिस पहुँचे, तो पैरदान के नीचे चाबी नहीं थी। उन्होंने बिना कोई शोर किये झाड़ू लगाने वाले को बुलाया और पूछा—पैरदान के नीचे जो चाबी थी वह तुमने कहाँ कर दी? वह बोला—'आपकी मेज की दराज में मैंने रख दी है।' क्रिस्टल गेजर की अपेक्षा वाटर-लाइट पर गेजिंग अधिक आरामदायक अनुभव होती है।

बाह्याभ्यांतर त्राटक

अभी तक सारी विधियाँ बाह्य त्राटक की दी गई हैं जिनमें त्राटक करने की वस्तु साधक के शरीर के पास (बाहर) होती है। अब जो विधियाँ दी जा रही हैं उनमें त्राटक की वस्तु (Object) शरीर के बाहर और अन्दर (मन में) दोनों स्थलों पर रहती है।

फोटो गेजिंग

फोटो गेजिंग के लिये किसी व्यक्ति, देवता, पुष्प आदि का श्वेत-श्याम (Black & White) फोटो जो लगभग ३'' × ३'' आकार का हो, लेकर आँखों की ऊँचाई की सीध में दीवार पर लगा दें। चित्र रंगीन नहीं हो यह ध्यान रखें। उस चित्र को अपलक लगभग आधा मिनट तक देखें। चित्र से आँख की दूरी लगभग १ मीटर रखें। फिर आँखें बन्द करके बन्द आँखों में उस चित्र को देखें। यदि ठीक से स्पष्ट न हो तो आँखें खोलकर पुनः चित्र को आधा मिनट देखते रहें। ऐसा एक दिन में २१ बार तक कर सकते हैं। यदि आँखों में कुछ परेशानी अनुभव हो तो कम समय दें। धीरे-धीरे बन्द आँखों में वह चित्र दिखाई देने लगेगा। जब वह चित्र बन्द आँखों में (मन की कल्पना में) १ मिनट तक या इससे अधिक समय तक ठहरने लगे तो अन्तर्मन को सक्रिय हुआ समझ लें। इस सक्रियता की गहराई साधना द्वारा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। स्मरण शक्ति अथवा दिव्य दृष्टिवर्धक यह अच्छा त्राटक है। फोटो गेजिंग के लिये देवी देवताओं की मूर्तियाँ भी उचित हैं परन्तु कागज के फोटो अधिक उपयुक्त रहेंगे क्योंकि जिस द्रव्य की मूर्ति बनी हो वह कड़ा (Hard) नहीं होना चाहिये अन्यथा आँखों पर त्राटक करते समय अधिक जोर पड़ता है। आपने यह तो ध्यान दिया ही होगा कि अन्य त्राटकों की अपेक्षा इस विधि में त्राटक अधिक देर तक होता है यदि गुरु का फोटो लें सकें तो और भी अच्छा है।

स्वास्तिक त्राटक

यह भी बाह्याभ्यंतर त्राटक की श्रेणी में आता है क्योंकि इसमें विषय को बाहर रख कर फिर मन की आँखों से देखने का अभ्यास किया जाता है।

नीले ड्राइंग पेपर पर नाग केशर से एक स्वास्तिक [ ] लगभग दो वर्ग इंच का बना लें। चाहें तो पेंसिल से बना कर उस पर नाग केशर रगड़ कर तैयार कर लें। त्राटक करते समय स्वास्तिक को आँखों की ऊँचाई की सीध में रख कर दो या तीन मिनट तक अपलक देखते रहें। फिर आँखें बन्द करके मन में उसे देखने का प्रयत्न करें। जब स्वास्तिक धुँधला सा लगने लगे तो फिर उस पर त्राटक करें, और फिर बन्द आँखों से देखने का अभ्यास करें। ऐसा प्रतिदिन २१ बार तक कर सकते हैं। यदि आँखों में कोई कष्ट होने लगे तो समय कम कर सकते हैं। शास्त्रीय मान्यता है कि इससे धन में वृद्धि होती है।

श्री यन्त्र

सन् १९६५ में सिंगापुर में एक बौद्ध अनुयायी के यहाँ मैंने ऊपर दिये गये स्वास्तिक त्राटक के समान ही श्री यन्त्र त्राटक विधि देखी थी। नीले कपड़े पर (जो लगभग

१ वर्ग मीटर का था) सफेद फेब्रिक पेन्ट में केशर घोलकर श्री यन्त्र की आकृति बनाई गई थी। उस आकृति को सामने लटका कर वह बौद्ध तांत्रिक त्राटक किया करता था। मैंने भी उसके यहाँ त्राटक करके देखा था। रेखांकन अग्र प्रकार होता है—
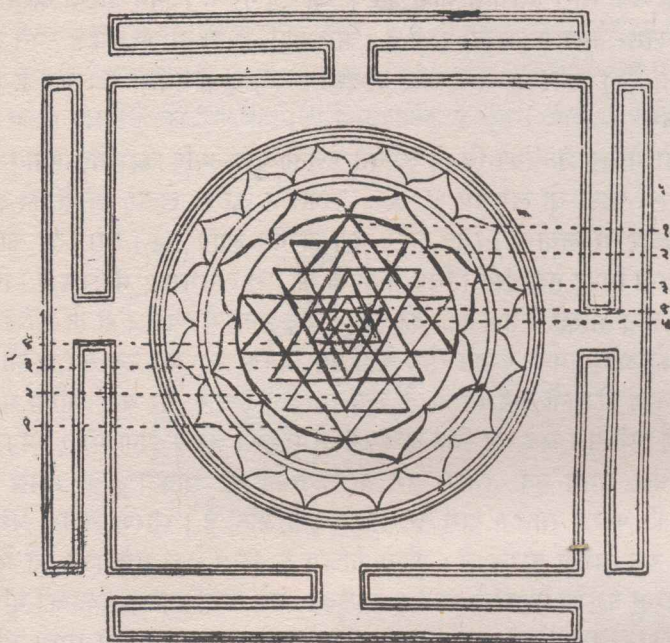
चित्र संख्या ४०—"श्री यंत्र"

सफेद कागज पर पानी में केशर घोलकर श्री यन्त्र रेखांकन करने की विधि 'योग एवं आत्म ज्ञान अनुसंधान संस्थान' के जिज्ञासुओं को सन् १९८५ में बतलाई गई थी। बाद में नीले कपड़े पर बने तथा कागज पर बने दोनों ही प्रकार के श्री यन्त्रों की प्राण-प्रतिष्ठा करके (श्री यन्त्र पूजन पद्धति के अनुसार) जिज्ञासुओं को पूजन पद्धति सहित एक-एक श्री यन्त्र दिया गया था। श्री यन्त्र के विषय में पीछे बहुत कुछ लिख दिया गया है।

नीले श्री यन्त्र को १ मीटर की दूरी पर लटका कर मध्य बिन्दु को आँखों की ऊँचाई के बराबर रख त्राटक आरम्भ करें। मध्य बिंदु पर त्राटक करना बाह्य त्राटक के अन्तर्गत आयेगा तथा सम्पूर्ण श्री यन्त्र को दो मिनट तक अच्छी तरह देख कर आँखें बन्द करके मन की आँखों से उसे देखना बाह्याभ्यांतर त्राटक कहलायेगा। इस यन्त्र पर दोनों ही प्रकार का त्राटक किया जाता है। मध्य बिंदु (बाह्य) त्राटक वालों के कुछ अनुभव देखिये—

श्री हरी कृष्ण नरुला का दिनाङ्क ३०-१०-८५ का श्री चक्र (श्री यन्त्र) पर किया गया त्राटक—बिंदु के साथ के गोले को छोड़कर बाकी लाइनें कभी दिखती थीं कभी नहीं। कभी किसी साइड की, कभी किसी साइड की। सिर्फ बिंदु व गोला ही उभरता हुआ प्रतिबिम्बित होता रहा। समय—२६ मन्त्र (श्री चक्र के विशेष मन्त्र के साथ यह साधना चल रही थी)।

डॉ. सुभाष गुप्ता का दिनाङ्क ११-११-८५ का श्री यन्त्र त्राटक का अनुभव—श्री यन्त्र के अन्दर काफी गोल्डन चमक है। कभी-कभी तेज फ्लैश सी आती है जो मस्तिष्क को भी झंकृत करती है। विभिन्न आकृतियाँ दीखती हैं।

श्री भीमसेन आर्य का १६-१०-८५ का घर पर सफेद कागज पर किया गया श्री यन्त्र त्राटक का अनुभव—घर पर, चक्र में लाइनों के पास में अत्यन्त हल्का हरापन था। यह वास्तविकता थी या मेरा मनोविज्ञान, ज्ञान नहीं है। घर पर अन्दर के बिंदु के पास पहले किसी छोटी लड़की की तरह कोई आकृति थी। उसके पश्चात् कोई व्यक्ति क्लीन शेव था जिसके सिर पर स्वर्ण चमकता मुकुट था। उसके बाद कोई स्त्री थी। पुनः उस मुकुटधारी का आगमन हुआ। मैंने हँस कर सोचा विष्णु होंगे। पूरे कागज पर कोई परछाई सिर्फ सिर की थी। मैंने अपनी ही समझी। लेकिन बाद में ऐसा कुछ नहीं था।

श्री यन्त्र का बाह्याभ्यांतर त्राटक श्री बी. एस. आर्य द्वारा २१-१०-८५ को किया गया। उसका अनुभव—समय (श्री चक्र ४८ मंत्र) —आँखों में व्यवधान था। मंत्र मुश्किल से पूरे हो सके। चक्र में अत्यन्त चमक एवं झिलमिलाहट थी।

अन्त में आँखें बन्द करने पर पूरा श्री चक्र आँखों में उतर आया। उसके बाद चारों ओर फूल फूल दिखाई दिये जो कि पीले थे। बाद में श्री चक्र फूलों का बन गया।

आई. सी. एम. के जिज्ञासु सरदार बंटीसिंह का दिनाङ्क २९-१०-८५ को ३६ मन्त्र जप के अन्तर्गत अनुभव इस प्रकार रहा—चक्र बहुत ही तेज तरीके से पहिये की तरह घूम रहा था। चक्र बार-बार पास आ रहा था।

इन्हीं महोदय का २३-११-८५ का ७२ मन्त्र जप के समय का अनुभव—इसकी लाइनों में बहुत ही तेज पीली तथा नीली चमक थी। चक्र के अन्दर दो बिंदु दिखाई दे रहे थे जो पीले रंग में चमक रहे थे। चक्र के किनारे में जो '   ' इस डिजाइन का चिह्न है वह चल रहा था तथा वह संग ही संग चमक भी रहा था।

घ्राण शिखर त्राटक

नाक की नोंक पर किया गया त्राटक। पद्मासन, सिद्धासन आदि किसी सुखासन में बैठकर जिसमें रीढ़ की हड्डी सीधी रेखा में रहे दोनों आँखों से शांत मुद्रा में त्राटक करें। धीरे-धीरे इसका समय बढ़ायें। अपने अनुभवों को डायरी में नोट करते चलें।

भ्रू-मध्य त्राटक

रीढ़ की हड्डी सीधी रखते हुए किसी भी सुखासन में दोनों आँखों से दोनों भ्रू के मध्य बिंदु (जहाँ मस्तक पर तिलक लगाते है) त्राटक करें। त्राटक से पूर्व मस्तक पर चन्दन लगा लें क्योंकि जिस स्थान पर त्राटक किया जाता है शरीर में उस स्थान पर खून का बहाव बढ़ जाने से गर्मी पैदा होने लगती है। चन्दन उसे शीतलता प्रदान करता है। इस त्राटक से पूर्व किसी साधक से अपने विषय में आज्ञा ले लें अथवा उसकी देख रेख में ही साधना करें।

एक बालयोगी (Advanced) साधक का भ्रू मध्य त्राटक का अनुभव—आज जब भ्रू मध्य त्राटक सिद्धासन सहित उड्डुयान बन्ध में प्रारम्भ किया, मुझे दो श्वेत कमल दलों पर जो चाँदी के समान चमक रहे थे 'ह' और 'क्ष' अक्षर दिखाई दिये। पहिले की तरह जब इन अक्षरों पर ध्यान किया तो उनकी नाद 'ह ऽ ऽ हं ऽ ऽ' तथा 'क् षं ऽ ऽ क् षं ऽ ऽ' सुनाई दी। इन अक्षरों में हरी और लाल आभा चमक रही थी। कमल के पराग क्षेत्र पर एक स्त्री श्वेत साड़ी में दिखाई दी जिसके छः लाल चेहरे थे। प्रत्येक चेहरे पर तीन आँखें थीं। उस स्त्री की छः भुजाएँ थीं। वह श्वेत कमल पर विराजमान थी। उसके हाथों में रुद्राक्ष माला, एक मनुष्य की खोपड़ी (कपाल), एक डमरू और एक पुस्तक थी। एक हाथ वर देने की मुद्रा में उठा था और दूसरा अभय मुद्रा में। उसके ऊपर एक अधोत्रिभुज के अन्दर बिजली की तरह चमकता हुआ लिंग दिखाई दे रहा था। इसके अन्दर एक और त्रिकोण में शिखाग्नि की तरह जलती हुई आत्मा दिखाई दी। इस ज्वाला के चारों ओर ऐसी चमकती हुई चिनगारियाँ थीं जिसके कारण मुझे मूलाधार से ब्रह्म रंध्र तक सब कुछ दिख रहा था। इसके भी ऊपर मनस था, उससे ऊपर चन्द्र के क्षेत्र में एक बिन्दु था। उसके अन्दर अपनी शक्ति के साथ परम शिव बैठे दिखाई दे रहे थे। इन सब में जो देदीप्यमान आभा थी, उसे बताने के लिये उचित शब्द ही नहीं हैं। (यह अनुभव इस बाल योगी के सन् १९५७ के आस पास के हैं जब वह मात्र १४-१५ वर्ष का रहा होगा। जैसा कुछ उसे याद रह गया है यहाँ प्रकाशित कर दिया है)।

यदि आप लोग उपर्युक्त दर्शन पर कुण्डलिनी के आज्ञा चक्र के आधार पर ध्यान दें तो आप पायेंगे कि यह सब उस योगी का उस समय का मनोवैज्ञानिक दर्शन (Psychological Vision) था। **यह मनोविज्ञान की एक दशा है जिसमें जो कुछ व्यक्ति ने सोचा अथवा सुना होता है वह सब स्वप्न की भाँति बन्द आँखों में सिनेमा की रील के समान दिखाई देता है।** सुबह के सपने अधिकतर ऐसे ही प्रभाव देते हैं, जिनमें व्यक्ति अर्धसुषुप्ति में होता है। जागने वालों की बातें सुनता है, उनके बारे में सोचता है, और उसकी तन्द्रा में वही बातें स्वप्नवत् दिखाई देती हैं। **वह सब 'दिव्य दर्शन' नहीं है, उसका धोखा है।**

आभ्यांतर (अंतः) त्राटक

अन्तः त्राटक अपने शरीर के अन्दर किसी बिंदु अथवा वस्तु की कल्पना से प्रारम्भ किया जाता है। शरीर के बिंदुओं में, घ्राणेन्द्रिय (नाक) की नोक (शिखर), कामेन्द्रिय (लिंग/योनि), भ्रू मध्य, हृदय देश, ब्रह्म रंध्र, आदि आते हैं। इन अंगों पर बन्द अथवा अर्ध मुदित आँखों से अन्तः त्राटक किया जाता है। कल्पित वस्तुओं में दो प्रकार के त्राटक बिंदु आते हैं—एक शरीरस्थ और दूसरे दूरस्थ।

शरीरस्थ

वे जो शरीर के अन्दर कल्पना द्वारा मान लिये जाते हैं। जैसे कोई कहे कि शरीर में लिंग स्थान में चार दलों वाले कमल की कल्पना करके ध्यान करो, अथवा हृदय के अन्दर

एक जलती हुई ज्योति का ध्यान करो, सुषुम्मना में चढ़ती हुई कुण्डलिनी का ध्यान करो जो सर्प के आकार में साढ़े तीन कुण्डली मार कर पसरी हुई है, आदि आदि।

दूरस्थ

दूरस्थ बिन्दु वे हैं जो शरीर से दूर कल्पना में माने जाते हैं। जैसे अमुक मन्त्र का जप पूरा करके अन्तिम मन्त्र के अक्षर योनि में घुसते हुए भावना करो, कल्पना करो कि बहुत दूर पर कृष्ण की बाँसुरी बज रही है, उस धुन का ध्यान करो, बहुत दूर से एक ज्योति का प्रकाश आपके हृदय पर आ रहा है उस ज्योति का ध्यान करो, आदि आदि।

शून्यस्थ

बिन्दु वे होते हैं जहाँ आँखें बन्द करके मन को निर्विचार करने पर जो कुछ दिखाई या सुनाई दे उस पर ध्यान किया जाय। जैसे कि टेलीपैथी सीखते समय एक व्यक्ति कोई अंक अथवा ताश का पत्ता अपने पास रखकर देखता है और दूसरा व्यक्ति आँख बन्द करके दूसरे कमरे में शून्यस्थ होकर उस अंक अथवा पत्ते की झलक देखने का प्रयत्न करता है। ऐसी ही शून्यस्थ साधना समाधि काल में भी चलती है, जिसमें साधक निर्विचार अवस्था में बहुत सी वस्तुएँ आदि देखता है और आवाजें सुनता है।

शरीरस्थ कल्पित त्राटक के दो भेद हो जाते हैं—पूर्वानुमान तथा दृश्यगत।

पूर्वानुमान—वे बिन्दु हैं जो हैं भी नहीं परन्तु साधक ने अपनी ओर से पहले ही मान रखे हैं (जाने नहीं हैं), जैसे दार्शनिक भाव वाले लोग योग ध्यान के लिए कुण्डलिनी के षटचक्रों पर दर्शन शास्त्र के वर्णन के आधार पर ध्यान करते हैं।

दृश्यगत—वे बिन्दु हैं जो न माने गये न जाने गये अपितु दिखाई दिये। जैसे एक व्यक्ति अपने लिंग पर ध्यान करता है। उस ध्यान में बन्द आँखों से उसे उस स्थल पर एक कमल दिखाई देता है, अब वह लिंग को भूल जाता है और कमल पर ध्यान देता है तो कमल दल चमकते हैं। वह उन दलों पर ध्यान देता है तो अक्षर चमकते हैं। स्वाभाविक रूप में वह एक-एक अक्षर पर ध्यान देता है तो उस अक्षर के उच्चारण की सुरीली धुन कानों में सुनाई देती है, आदि आदि। कुण्डलिनी और योग-तन्त्र के जिज्ञासु समझ लेंगे कि यह उदाहरण मूलाधार से सम्बन्धित है। ऐसा ही एक उदाहरण भ्रू मध्य त्राटक का दिया गया है जो आज्ञा चक्र से सम्बन्धित है।

मैं मानता हूँ कि पूर्वानुमान बिन्दुओं से व्यक्ति साधना करके लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकता है परन्तु **पूर्वानुमान से सत्य में कब प्रतिष्ठित हुआ, उस क्षण को उसके गुरु देव भी नहीं जान सकते?** दूसरी बात यह कि अधिकतर **साधक अनुमान को ही सत्य मानने की भूल कर जाता है।** इन दोनों कारणों से मैं अथवा कोई भी विश्लेषण चाहने वाला व्यक्ति पूर्वानुमान साधना को उचित नहीं कहेगा। पूर्वानुमान में मनोवैज्ञानिक इच्छा-शक्ति के आधार पर हुए दर्शन-भाषण की 'उचित सिद्धि' में कोई मान्यता नहीं होती।

शरीरस्थ (पूर्वानुमान) —अभ्यास।

प्रकाश कल्पना—योग ध्यान करने वालों में प्रकाश तथा ज्योति दर्शनों की एक आम धारणा प्रचलित है। यदि गुरु जी ने बिन्दी लगाने वाले स्थान पर अँगूठा छुआ कर

शिष्य को ध्यान का आदेश दिया तो शिष्य स्वत: ही पूर्वानुमान के आधार पर तिलक लगाने के स्थान पर मस्तक में ज्योति की कल्पना इस लगन से करने लगता है कि उसे ज्योति के दर्शन होने लगते हैं। ऐसी ज्योति के (उसकी विभिन्न मान्यताओं के आधार पर) रंग, रूप, आकार आदि में अन्तर भी आता रहता है। साधक उसे उपलब्धि मान लेता है। **जबकि वह उपलब्धि मात्र मनोवैज्ञानिक होती है।** कोरी मनोवैज्ञानिकता से बचना है। **'उपलब्धि' मनोविज्ञान से आगे की वस्तु है।** परा मनोविज्ञान की सीमा से भी आगे है।

कल्पित ॐ नाद—बहुत से साधक 'ॐ' शब्द को एक विशेष लय में बोलने का अभ्यास कर गूँज (तरंगें) उठाते हैं। वह ध्वनि तरंग उनके मस्तिष्क में अच्छी तरह बैठ जाती है। तब एकान्त स्थान में बैठ कर बिना मुँह से गुँजार किये ॐ की गूँज (नाद) सुनने का अभ्यास करते हैं। ऐसे अधिकतर **साधक अपनी गूँज को अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर सुन कर 'उपलब्धि' मान बैठते हैं।** प्रणव की गुँजार तो अनवरत है, प्राकृतिक है, अपनी गूँज मत उठाइये, शून्य में जाइये। शून्य के सन्नाटे की गूँज ही 'प्रणव' है। **अपने प्रणव की गुँजार उठाने वाले शून्य में नहीं जा सकते।** शून्य के बिना प्रणव की सारी धुनें नकली हैं।

शरीरस्थ (दृश्यगत)

दर्शन शास्त्र, मीमांसा विज्ञान, काम कला विलास, कुल कुण्डलिनी, सर्प शक्ति आदि जैसे विषयक ग्रन्थों को पढ़कर जब साधक ध्यान में बैठते हैं और अपने पुस्तकीय ज्ञान तथा चित्र दर्शन के आधार पर अपने शरीर में कुण्डलिनी के षटचक्रों के दर्शन करते हैं तो वे निहाल होने लगते हैं, जबकि **ऐसे 'षट-चक्र दर्शन' मात्र अचेतन मन:शक्ति का परिचय भर देते हैं।** जो कि मनोविज्ञान की सीमा में हैं।

दूरस्थ (पूर्वानुमान)

बहुत से साधक ध्यान में बैठते समय कल्पना करते हैं कि श्री कृष्ण की बंशी बज रही है और वे उस धुन को सुन रहे हैं। कुछ दिन के अभ्यास के पश्चात् जब वे बंशी की धुन सुनते हैं तो भाव विभोर हो जाते हैं, समझते हैं—हो गयी कृष्ण की कृपा। वे नहीं जानते कि यह उन्हीं की मन: शक्ति (Psychology) की कृपा है।

बहुत से लोग देवी-देवताओं की पूजा करते हैं और निर्देशानुसार ध्यान लगाते हैं। वह प्रक्रिया इससे अलग है। कोई 'बगला मुखी' की उपासना करता है तो ध्यान निर्देश दिया है कि—

> **"श्याम वर्ण चतुर्बाहुम् शंखचक्रलसत्कराम्।**
> **गदापद्म धरां देवीम् सूर्यासनकृताश्रयाम्।**
> **निशीथे वरदाम् देवीम् गायत्रीम् संस्मरेत् हृदि ॥"**

कहीं-कहीं इस बगला मुखी देवी को पीताम्बरा भी कहा गया है। इसमें ध्यान में वर्णित रूप (की कल्पना करके अपने हृदय में) प्रतिष्ठित करना होता है।

इसी प्रकार स्त्री सुख चाहने वाले प्रमदा मन्त्र का प्रयोग करते समय प्रमदा देवी का ध्यान करते हैं—

केयूर मुख्या भरणाभियां, वराभये सन्दधती कराभ्याम्।
संक्रन्दनादयामर सेव्यपादाम् सत्कांचनाभाम् प्रमदां भजामि ।।

(यह देवी सुवर्ण के समान गौर वर्ण है। हाथ, गले और मस्तक पर गहने पहने हुए हैं। एक हाथ से वर और दूसरे से अभय दे रही हैं। इन्द्रादि देवता उसकी चरण सेवा कर रहे हैं।)

जैसा कि हम पहले कह आये हैं **ऐसी ध्यान प्रक्रियाएँ मन्त्र तरंगों को उचित दिशा देने के लिये होती हैं। 'दूरस्थ पूर्वानुमान' इसी उपयोग में लाई जाने वाली साधना है।** यदि कोई साधक ध्यान मन्त्र के अनुसार बताई गई देवी अथवा देवता के दर्शन करता है तो उसमें **अधिक संभावना मनोवैज्ञानिक दर्शन की ही है, जो उपलब्धि नहीं है।** उपलब्धि से तात्पर्य यहाँ केवल **'कुण्डलिनी योग-मार्ग में लाभप्रद सिद्धि'** से है।

शून्यस्थ त्राटक

शून्यस्थ त्राटक से तात्पर्य ऐसे ध्यान करने से है जिसमें अपनी ओर से साधक न कुछ सोचता है न देखता है और न सुनता है। अपनी ओर से तो वह एक शून्य की स्थिति उत्पन्न करता है, और उस स्थिति में जो कुछ उसे दिखाई दे, सुनाई दे या अनुभव हो, उसे ध्यान रखता है। यही ध्यान (Meditation) कहलाता है।

गंध—साधक एक साफ सुथरे सुरक्षित स्थान पर बैठ कर आँखें बन्द करके 'शून्यस्थ गंध का त्राटक' करने के लिये किसी सुखमय आसन में बैठ जाय। अपने पड़ोस के किसी सुगंधित स्थल (मंदिर, बाग, रसोई आदि) का ध्यान करे और पता लगाये कि इस समय इस स्थल पर कौन सी गंध आ रही है? **साधक पहले से ही कोई पूर्वानुमान न करे कि अमुक गंध वहाँ होगी।** अन्यथा वही गंध आने लग जायेगी और वह मनोवैज्ञानिक होगी। लगातार ध्यान करने से उस स्थल की गंध साधक को आने लगेगी।

जब साधक पास के स्थलों की गंध पाने लगे तो उसे उस स्थल पर जाकर अपनी उपलब्धि की परीक्षा भी करनी चाहिये कि जो गंध उसने ध्यान में अनुभव की उसमें और जो वहाँ की वास्तविक गंध है उसमें कितना अन्तर है। कुछ दिन के सतत अभ्यास से सिद्धि प्राप्त होने लगेगी और गंध-चेतना अधिक चैतन्य (Sensitive) होती जायेगी।

ध्वनि—गंध चेतना में वृद्धि करने के लिये जिस प्रकार ध्यान में गंध ज्ञान का प्रयत्न किया गया उसी प्रकार मन में पास की सड़क (अथवा चौराहे) का साधक ध्यान करता हुआ शून्यस्थ हो यह सोचे कि अमुक स्थल पर क्या-क्या आवाजें आ रही हैं। ऐसे स्थल मन्दिर, दुकान आदि कोई भी विशेष ध्वनियों वाले, भीड़-भाड़ वाले स्थल हो सकते हैं जिनका साधक ध्यान कर सकता है।

दृष्टि—साधक एक कोने में बैठ जाय और उसका साथी दूसरे कोने में। साथी कोई अंक स्लेट पर बनाये और अपने पास स्लेट रखकर साधक से 'दृष्टि त्राटक' के लिये कहे। साधक अपनी दृष्टि को अपने ध्यान में स्लेट पर लिखे अंक पर लाने का प्रयत्न करे। कुछ दिन के प्रयत्न से साधक के मन में शून्य स्थल में वह अंक उभरने लगेगा। जो अंक जैसा दिखाई दे वैसा साथी को बताये। धीरे-धीरे मानसिक दृष्टि की चैतन्यता में वृद्धि होती चली जायेगी।

■

२०
समाधि

शांडिल्य उपनिषद (प्रथम अध्याय) में कहा गया है कि **कुण्डिलिनी का ज्ञान 'कैवल्य' से उद्भूत होता है।** ('कैवल्य' कुम्भक के विभिन्न ८ प्रकारों में से एक है जिसमें श्वास न पूरक में होती है न रेचक में। वात, पित्त तथा कफ को संयत करने वाले कुम्भक अलग होते हैं। भस्त्र-कुम्भक सुषुम्ना की तीनों ग्रन्थियों को भेदने में प्राण को सहायता देता है।) और व्यक्ति ऊर्ध्व रेतस बन जाता है। ऊर्ध्व रेतस से तात्पर्य है कि व्यक्ति की वीर्य शक्ति नीचे की ओर न जाकर ऊपर की ओर जाने लगती है। इस वीर्य शक्ति को शास्त्रों में 'बिन्दु' कहा गया है। योग-कुण्डली-उपनिषद (प्रथम अध्याय) में कहा गया है कि बिन्दु के संयम में ही योग की सफलता है।

प्राण के सुषुम्ना में प्रवेश होने से ही 'लय-योग' होता है क्योंकि वह प्राणदेवता कुण्डलिनी के षट चक्र भेदन करने के पश्चात् सहस्त्रार में लय हो जाता है। **जब प्राण सुषुम्ना में चलता है, मन बिल्कुर स्थिर हो जाता है।** दूसरे शब्दों में आप यह भी सकते हैं कि **मन यदि स्थिर (निर्विचार) हो जाय तो प्राण सुषुम्ना में चलने लगता है** और, एक प्रकार से प्राण गतिहीन हो जाता है। 'योग कुण्डली उपनिषद' में कहा है कि जब चित्त सुषुम्ना में भाषित हो तो प्राण स्थिर हो जाता है। यदि 'हठ योग' के आधार पर इस बात को देखें तो प्राणायाम का अर्थ मात्र 'श्वास का विकास' है और उस सम्बन्ध में कुम्भक के समय के आधार पर ही तपस्या की तुलना की जाती है। इसलिये हठ योग में प्राण को विशेष समय तक रोके रखने को 'प्रत्याहार' कहा जाता है (ऐसा विवरण हठ योग प्रदीपिका, द्वितीय अध्याय, वो. १२ टिप्पणी में दिया है।) परन्तु राज योग प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि को मानसिक अभ्यास एवं मानसिक स्थिति के रूप में लेता है।

अजपा गायत्री के बारे में शायद आपने सुना हो। यह 'हं' कार के शब्द की तरंग है जो श्वास के बाहर आने के साथ उत्पन्न होती है और इसके साथ में ही 'सः' कार उत्पन्न होती है। प्रतिदिन लगभग २१,६००' जप इस प्रकार स्वतः होते हैं। यही दोनों शब्द मिलकर 'हं सः' मन्त्र कहलाता है। ध्यान बिन्दु उपनिषद तथा हंस उपनिषद में देखिये वे कहते हैं हंस जीवात्मा है और परमहंस परमात्मा। सामान्यतः एक बार में श्वास १२

अँगुल दूर तक जाती है। गाने में १६ अंगुल, खाने में २० अंगुल, चलने में २४ अंगुल सोने में ३० अँगुल, और संभोग में ३६ अँगुल की दूरी तक एक श्वास जाती है। भाग-दौड़ तथा अन्य थकाने वाले अभ्यासों में श्वास ९६ अँगुल तक जाती है।

आपने प्राणायाम के अध्याय में गिनती के आधार पर पूरक : कुंभक : रेचक के लिये ४ : १६ : ८ आदि के अनुपात की बात पढ़ी है। सर जॉन वुडरोफ ने 'The Six Centres And The Serpent Power' में बताया है कि अधम प्राणायाम में ४ : १६ : ८ का अनुपात होगा जिसमें कुल ४ + १६ + ८ = २८ बार प्रणव का जप होता है। (जहाँ प्राणायाम में मैंने गिनती की बात की है वहाँ यह ॐ जप की बात करके गिनने की बात करते हैं परन्तु ॐ ॐ करते हुए गिनने के लिये अँगुलियों से या माला से काम चलाना होगा। दूसरे, सन्यासी के अलावा अन्य व्यक्ति को प्रणव जप लाभदायी नहीं रहता है। यह मैं पहले ही स्पष्ट कर आया हूँ। मध्यम प्राणायाम में यह अनुपात अधम से दो गुना हो जाता है—८ : ३२ : १६ = ५६, उत्तम में उसका भी दो गुना हो जाता है—१६ : ६४ :३२ = ११२। नाड़ी शुद्धि के लिये बिना बीज मन्त्र (ॐ या और कोई) के भी महीनों और वर्षों तक प्राणायाम करने की बात Mr. Arthur Avalon ने की है। अधम प्राणायाम शरीर में स्वेद (पसीना) उत्पन्न करता है। मध्यम प्राणायाम तरंग (A quick vibrating movement) उत्पन्न करता है और उत्तम प्राणायाम निर्विचार (Thoughtlessness निर्विकल्प) बनाता है।

निर्विचार बनाने वाले प्राणायाम का उपयोग ही समाधि में होता है।

ध्यान की कुछ अन्तिम क्रियाओं में आप देखेंगे कि प्रत्येक क्रिया आपके विशेष मानसिक गुण को विकसित करती है। इस विकास का आधार आपकी चेतना का अनुपात है। यह अनुपात चेतना के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। उच्च चैतन्य अवस्था (Super conscious state) को समाधि कहते हैं। चैतन्यता वृद्धि शून्य की स्थिति में ही होती है। उत्तर गीता में निर्विकल्प समाधि के बारे में शून्य की महत्ता दर्शाते हुए कहा है—

ऊर्ध्व शून्यमधः शून्यं मध्य शून्यं यदात्मकम्।
सर्व शून्यं स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम्।

जैसे ही व्यक्ति 'शून्य' होता है एक बड़ी मजेदार परन्तु अटपटी घटना घटित होने लगती है कि वह शून्य सर्वत्र परिपूर्ण हो जाता है। 'योग वशिष्ठ' में कहा है—

अंतः शून्यो बहि शून्यः शून्यः कुम्भ इमांवरे।
अंतः पूर्णो बहि पूर्णः पूर्णः कुम्भ इवार्णवे॥

यह शून्य से पूर्ण होने के बीच की घटना ही 'समाधि-दर्शन' है। शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार समाधि किसी एक विषय पर चिन्तन करने वाली एकाग्र अवस्था का उदय हो जाना है—

सर्वातैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणामः

—(पातंजल योग दर्शन ३/११)

श्रद्धा (विश्वास) तथा वीर्य (मन, इन्द्रियों और शरीर की सामर्थ्य) के उपयोग द्वारा विषय विरक्ति प्राप्त करके ही समाधि लाभ करता है। समाधि लाभ करने वाले व्यक्ति की बुद्धि ऋतंभरा (सत्य को ग्रहण करने वाली) हो जाती है, ऐसी बुद्धि 'समाधिप्रज्ञा' कही जाती है। ऋतंभरा बुद्धि में संशय और भ्रम नहीं रहता क्योंकि श्रवण और अनुमान से होने वाली बुद्धि की अपेक्षा यह भिन्न विषय वाली और विशेष अर्थ वाली होती है—

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्य विषया विशेषार्थत्वात्।

—(पा. यो. द. १/४९)

इससे उत्पन्न ज्ञान संस्कारों को आच्छादित होने से रोकता है। ऋतंभरा बुद्धि वालों को भी संस्कार तो लगते हैं। जो ऋतंभरा होकर भी अपने इन संस्कारों का निरोध कर ले वह कैवल्य की ओर अग्रसर हो जाता है—

तस्यापि निरोध सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधि।

पातंजल योग सूत्र ३/३ में कहा गया है कि—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिवः समाधि।

(अर्थात् जब चित्त शून्यस्थ हो और ध्यान में ध्येय मात्र की ही प्रतीति हो तो वही समाधि है।)

जिन लोगों ने मेरे द्वारा कराया गया निर्देशित ध्यान (Mass Meditation) करके देखा है अथवा कभी 'योग तत्व एवं आत्म ज्ञान अनुसंधान संस्थान' की ध्यान शैली का उपयोग करके देखा है, या आचार्य रजनीश की ध्यान साधना में उपस्थित हुए हैं, वे इस कथन को तुरन्त समझ सकते हैं। वास्तव में समाधि का खेल जब तक व्यक्ति स्वयं न खेले उसका समझना अत्यन्त कठिन है। इस खेल की विधि किसी भी सम्प्रदाय या गुरु से सम्बन्धित हो, परिणाम पूरे रहेंगे। सम्भोग मार्ग भी वहीं ले जायेगा जहाँ संन्यास मार्ग। प्रेम मार्ग भी वहीं ले जायेगा जहाँ हठ मार्ग।

चाहे आप प्रवृत्ति मार्ग में चलें अथवा निवृत्ति मार्ग में यह सब आपकी अपनी सुविधा और आवश्यकता पर निर्भर करता है। यदि लक्ष्य का ध्यान है तो समाधि अवश्य सिद्ध होगी। यदि लक्ष्यच्युत हो गये तो सारे मार्ग व्यर्थ हैं। हाँ ! एक बात ध्यान रखने की है कि 'मार्ग' तक पहुँचने के लिये कोई श्रम करना समय और शक्ति का अपव्यय है। आप मार्ग खोजने में मत लगे रहिये। **जहाँ भी आप हैं, वहीं से प्रारम्भ कर दीजिये, आप स्वयं एक मार्ग में ही हैं। प्रारम्भिक मार्गदर्शक का काम यह पुस्तक कर देगी।** अब मार्ग आपके सामने है, मार्गदर्शक आपके हाथ है, मार्ग पर चलना न चलना आपकी अपनी बात है। ब्रज में एक कहावत है—

मारकूट महरा पै बैठारैगो तो हरिया तौ न बिड़रवाइ लेगौ (अर्थात् बलपूर्वक यदि खेत की रखवाली करने को मंच पर बिठा भी दोगे तो चिड़ियों को, या तोतों को भगाने के लिये हो-हो तो न करवा लोगो)। साधना में क्रिया की अपेक्षा भाव का अधिक महत्व होता है। योग दर्शन कहता है—

तीव्र संवेगानामासन्नः १/२१

तथा—

मृदुमध्याधिमात्र त्वात्ततोऽपि विशेष। १/२२

साधाना का स्वर तीव्र संवेग वाला हो तो शीघ्र सिद्ध होगी। उसमें भी विवेक और भाव की न्यूनाधिकता आड़े आयेगी जो सिद्धि के समय के अनुपात में परिवर्तन कर देगी। इस सूत्र में वेग से तात्पर्य अभ्यास साधना के क्रियात्मक बाह्य रूप से है और स्तर अर्थात् मात्रा से तात्पर्य उसका भावात्मक आभ्यंतर स्वरूप है। **जिस मनुष्य को किसी कार्य के करने की युक्ति का ऐसा ज्ञान है कि वह उसे प्रेम और उत्साहपूर्वक बिना उकताये करता रहे वह दूसरों की अपेक्षा उसे शीघ्र पूरा करता है।** यही नियम समाधि की सिद्धि में भी लागू होता है।

समाधियों के भेद

समाधियाँ कई प्रकार की बताई गई हैं।

सम्प्रज्ञात समाधि

वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता युक्त समाधि सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है।

इसके तीन ध्येय पदार्थ हैं—

(१) **ग्राह्य**—जिन्हें ग्रहण किया जाय जैसे इन्द्रियों के स्थूल अथवा सूक्ष्म विषय।

(२) **ग्रहण**—जिनके द्वारा अनुभव किया जाय अथवा प्राप्त किया जाय जैसे इन्द्रियाँ और अन्तःकरण।

(३) **ग्रहीता**—जो अनुभव करे या ग्रहण करे जैसे मन (संस्कार युक्त आत्मा)।

सम्प्रज्ञात समाधि के भेद इस प्रकार हैं—

सवितर्क या सविकल्प (वितर्क) समाधि—जब ग्राह्य पदार्थों के स्थूल रूप में समाधि की जाय और उसमें जब तक शब्द, अर्थ और ज्ञान का विकल्प विद्यमान रहे वह सविकल्प या सवितर्क अथवा वितर्क समाधि कही जायेगी।

निर्विकल्प या निर्वितर्क समाधि—जब ऊपर बताये गये शब्द, और ज्ञान का विकल्प भाषित न हो तो वही निर्विकल्प समाधि कही जाती है।

सविचार समाधि—जब ग्राह्य और ग्रहण के सूक्ष्म रूप में समाधि करते समय शब्द, अर्थ और ज्ञान का विकल्प रहे तब तक सविचार समाधि कही जाती है।

निर्विचार समाधि—जब ग्राह्य और ग्रहण के सूक्ष्म रूप में समाधि करते समय शब्द, अर्थ और ज्ञान का विकल्प न रहे, तो वह निर्विचार समाधि कही जायेगी।

आनन्दानुगत समाधि—जिस निर्विचार समाधि में आनन्द का अनुभव और अहंकार का सम्बन्ध रहे वह आनन्दानुगत समाधि है।

अस्मितानुगत समाधि—जिस आनन्दानुगत समाधि में आनन्द का अनुभव भी लुप्त हो जाय वह अस्मितानुगत समाधि है।

सबीज समाधि—ऊपर दी गई सभी समाधियाँ 'स-बीज' हैं क्योंकि इन सभी में बीज रूप में किसी न किसी ध्येय पदार्थ (स्थूल वा सूक्ष्म) को आधार मानने के कारण सम्पूर्ण वृत्तियों का पूर्णतः निरोध नहीं होता।

सभी 'स-बीज' समाधियों में निर्विचार समाधि ही श्रेष्ठ मानी जाती है क्योंकि इसमें ही आध्यात्म लाभ होता है।

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मक प्रसादः। —(यो. सू. १/४७)

इनमें सूक्ष्म और स्थूल ध्येय पदार्थों की बात आई है। स्थूल में पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश माने जाते हैं। इनके सूक्ष्म पदार्थ गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द क्रमशः हैं। इनसे आगे गहरी सूक्ष्मता की ओर बढ़ें, तो मन सहित सब इन्द्रियों का सूक्ष्म विषय अहंकार, अहंकार का महत्तव और महत्तव का 'कारण प्रकृति' है। पुरुष प्रकृति से भी सूक्ष्म है।

'स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसयमाद् भूत जयः' —(पा. यो. द. ३/४४)

(स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थतत्व के संयम से भूतों पर विजय प्राप्त होती है)। भूतों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) की पाँच अवस्थायें हैं।

स्थूल—जो इन्द्रियों द्वारा अनुभव में आयें, जैसे—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।

स्वरूप—भूतों (तत्वों) के लक्षण ही उनकी स्वरूपावस्था है जैसे—पृथ्वी की मूर्ति, जल का गीलापन, अग्नि का तेज, वायु की गति, आकाश का अवकाश। इन्हीं लक्षणों से इन तत्वों का अनुभव होता है।

सूक्ष्म—तत्वों की कारणावस्था, जिसे तन्मात्रा या सूक्ष्म महाभूत कहते हैं, सूक्ष्मावस्था है। जैसे—ऊपर बताये अनुसार, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द।

अन्वय—भूतों की प्रकाश क्रिया और स्थिति के तीनों गुण उनकी अन्वयावस्था है।

अर्थवत्व—ये पाँच भूत तत्व पुरुष (आत्मा) के भोग (आनन्द) और अपवर्ग मुक्ति के लिए उपयोग किये जा सकते हैं यह इनकी अर्थवत्व (उपयोगिता) अवस्था है।

जो इन अवस्थाओं को समझकर उपयोगिता के आधार पर इन तत्वों को उपयोग संयम द्वारा कर पाता है वही भूत जयी है। यदि आप भूत जयी शब्द का भावात्मक अर्थ लगायें तो 'इन्द्रिय जयी' होता है। ऐसे इन्द्रिय जयी व्यक्ति को **'सतो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च'** (मन की गति के सदृश तरंग विकीर्णन द्वारा प्रकृति जय की सिद्धि प्राप्त होती है)। —(पा. यो. द. ३/४८)

आत्म लाभ अथवा मोक्ष कामी व्यक्ति के लिए सिद्धियाँ अवरोधक बन सकती हैं—योग दर्शन चेतावनी देता है—ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः (३/३७) अर्थात् वे (सिद्धियाँ) समाधि की सिद्धि में विघ्न हैं (और) व्युत्थान में सिद्धियाँ हैं।

सिद्धियाँ पाँच प्रकार से प्राप्त हो सकती हैं—जन्मौषधिमन्त्रतपः, समाधिजाः सिद्धयः। जन्म से, औषधि से, मन्त्र से, तप से, और समाधि से।—(पा. यो. सू. ४/१)

सिद्धियों के बारे में एक बात आप लोग ध्यान रखें कि सिद्धियाँ प्रत्येक व्यक्ति के पास हैं। वह उन्हें उभारना नहीं जानता। सारी तपस्यायें केवल रुकावट दूर करती हैं। ज्यों ही रुकावट (मलावरोध) दूर होती हैं सिद्धि स्वत: प्रस्फुटित होती है। **चिकित्सक, स्वास्थ्य के ऊपर जो मलावरोध हो जाता है उसे हटाता है। स्वास्थ्य अन्दर से स्वतः प्रस्फुटित हो जाता है।** यही चिकित्साशास्त्र का दर्शन (Philosophy) है। यह पाँचों प्रकार की सिद्धियों में से समाधि के द्वारा सिद्ध किया गया चित्त 'संस्कार-रहित' होता है। योग सूत्र कहता है 'तत्र ध्यान जमना शयम्' (उसमें से जो ध्यान जनित है वह कर्म संस्कार रहित होता है। (४/६) संस्कार वाली बात इसलिये आई कि कैवल्यावस्था संस्कार युक्त चित्त से पुरुष आत्मा को अलग करती है अत: कैवल्यावस्था के लिये संस्कार रहित उपाय ही दिया जा सकता है और वह है 'समाधिजा सिद्धि'।

अब आप योग सूत्र के समाधि पाद के १८-१९ श्लोकों को देखिये—**विराम प्रत्ययाभ्यास पूर्वः संस्कार शेषोऽन्यः** (कर्म करते हुए संस्कारों में विराम लगा देने का अभ्यास जिसमें पूर्व संस्कार शेष रह जाते हैं वह अन्य है) ऐसा संस्कार रहित योग ही नि:संस्कार नि:बीज जन्म मरण का चक्कर तथा भविष्य का निर्माण संस्कारों पर उसी प्रकार निर्भर रहता है जैसे किसी पेड़ का विकास उसके बीज पर, इसलिये संस्कार ही बीज हैं।) निर्बीज समाधि के अंतर्गत आता है। इसे 'असम्प्रज्ञात समाधि' भी कहते हैं। योग सूत्र के कैवल्य पाद के ३४ वें श्लोक में इसे और भी स्पष्ट कर दिया है**'पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रति प्रतवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा व चितिशक्तेरिति'** (पुरुषार्थ शून्य गुणों का प्रकट होना ही कैवल्य है। यही चितिशक्ति का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना है।) पुरुषार्थ शून्य अर्थात् कर्माशय-शून्य व्यक्ति के कर्म 'योग सूत्र' में अशुक्ल और अकृष्ण बताये हैं **'कर्माशुक्लाकृष्णां योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्'** (योगी के कर्म न अच्छे होते हैं (पुण्य), न बुरे (पाप) होते हैं। दूसरे (अन्य पुरुषों) के तीन प्रकार के (पुण्य, पाप और पुण्य पाप मिश्रित) कर्म होते हैं। उनसे भोगानुकूल वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। **'ततस्तद्विपाकानुगुणाना-मेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्'** योगी इन वासनाओं से मुक्त हो जाता है। कुछ लोग जन्म से ही मुक्त-कर्म होते हैं—

'भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्।'

वे बिना साधना के निर्बीज समाधि अवस्था प्राप्त करते हैं ऐसी 'साधना रहित निर्बीज समाधि अवस्था' प्राप्त करने को 'भव-प्रत्यय' कहा जाता है। क्योंकि उसके लिये मनुष्य जन्म लेना भर पर्याप्त है। शास्त्रकार कहता है ऐसे व्यक्ति के संस्कार ज्ञानाग्नि द्वारा भूने हुए बीज के समान विद्यमान रहकर भी पुनर्जन्म के कारण नहीं बन सकते। ऐसा विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने के पश्चात् जिस योगी को उस विवेक ज्ञान की सर्वथा प्रसिद्धि होने पर भी उसकी महिमा से वैराग्य हो जाय उसे 'धर्म मेघ समाधि' प्राप्त होती है—**प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेक ख्याते धर्म मेघः समाधि।**—(यो. सू. ४/२९) तात्पर्य यह है कि जो योगी शक्ति (सिद्धि) प्राप्त होते हुए भी उसका कहीं सांसारिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु उपयोग नहीं करता वही 'धर्म मेघ समाधि' लाभ प्राप्त कर पाता

हैं। 'धर्म-मेघ समाधि-सिद्धि' साधक ही जीवन्मुक्त कहलाता है। यही शास्त्र का 'गुह्याद्गुह्यतम्' ज्ञान है—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद गुह्यतंर मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥
—(श्रीमद्भगवद्गीता १८/६३)

(अर्थात् यह गोपनीय से भी गोपनीय ज्ञान मैंने तुम से कहा, इसको पूर्ण रीति से विचार करके जैसी इच्छा हो वैसा कर्म करो।)

यह बात कृष्ण ने अर्जुन के लिये कही है। अर्जुन स्वयं कृष्ण के लगभग समान बुद्धि-शक्ति वाला था। प्राकृतिक नियम है कि मित्रता समान बुद्धि-शक्ति वालों की ही निभती है और कृष्ण एवं अर्जुन की मित्रता को संसार मानता है। तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति अर्जुन के समान बुद्धिमान हो, उसके लिये तो गीता का यह श्लोक उचित है। **शेष सबके लिये नहीं।** उन्हें 'वैशेषिक दर्शन' में दिये गये धर्म सिद्धान्त को ध्यान में रखकर इसे विचारना चाहिये। वह सिद्धान्त है, **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्म' अर्थात् जिससे अभ्युदय हो, विकास हो, मुक्ति हो वही धर्म है।** अर्जुन के लिये तो कृष्ण ने सीधा कह दिया था—

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणम् ब्रज' (सब धर्मों का परित्याग कर एक मेरी शरण लो)। परन्तु आपके लिये, **जो अर्जुन के समान बुद्धि-शक्ति नहीं रखते उनके लिये शास्त्र कहता है—तमेवैक जानय आत्मानम् अन्यवाचो विमुंचय (आप केवल आत्म को जानिये अन्य वादों को त्याग दीजिये)** ।

वाद तीन प्रकार के होते हैं—वाद, जल्पवाद और वितंडावाद। तत्व निरूपणार्थ कथन को **वाद** कहते हैं। दसरे के कथन को न मानकर अपने कथन की ही पुष्टि करना **जल्पवाद है। वितंडावाद** वह है जिसमें व्यक्ति केवल दूसरे की बात का खण्डन करने के लिये कटिबद्ध हो, सही गलत से कोई तात्पर्य न रखे।

भारत का 'धर्म' शब्द बड़ा व्यापक अर्थ रखता है। हेवेल (Havell) ने कहा है—**"भारत में धर्म विश्वास नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं और जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुरूप मानव व्यवहार का क्रियात्मक सिद्धान्त है।"** भारतीय दर्शन के सिद्धान्तों का मूल्यांकन जीवन की कसौटी पर हुआ है। इसलिये योगाभ्यास विरोधात्मक (Negative) न होकर रचनात्मक (Constructive) होना आवश्यक है। शंकर जैसे दार्शनिक भी (जो कि अपने को केवल टीकाकार कहते थे) श्रुति में परस्पर विरोध होने पर तर्क का सहारा लेने की राय देते हैं। बौद्ध और जैन तो नास्तिक दर्शन हैं जब उनमें साधना पक्ष पर इतना जोर दिया गया है तो आस्तिक दर्शनों सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि के तो कहने ही क्या हैं।

बुद्ध ने केवल विज्ञान (Consciousness) का ही उपदेश दिया है। लंकावतार सूत्र के अनुसार विज्ञान (Consciousness सतत चेतना) के अलावा सभी धर्म असद् हैं। आत्मा निर्विशेष चिन्मात्र (Undifferenced Consciousness) है। कैंट (Kant) और शंकराचार्य ने आत्मा के ज्ञानात्मक (Epistemological) पक्ष पर जोर दिया है। दर्शन तर्क का विषय नहीं है वह तो **सत्य को उसके सर्वांग रूप में देखने का शास्त्र है, जिसको हम सत्य का साक्षात्कार कहते हैं।** हमें शास्त्रार्थ के बुद्धि कौशल से निकलकर प्रज्ञा के क्षेत्र में आने पर सर्वांग दृष्टिकोण (Integral Vision) से काम लेना होगा। सत की अभिव्यक्ति सत से कम सत्य नहीं होती। मनोवैज्ञानिक आत्मा भी आत्मा का ही रूप है उसको सत्य मानना अज्ञान नहीं है। **अज्ञान है उसको एक मात्र सत्य मानना। आत्मा के परमार्थिक और व्यावहारिक दोनों ही पक्ष सत्य हैं। सत्य के जिज्ञासु को दोनों का ही साक्षात्कार करना है। यह बात दूसरी है कि साधक अपने आत्म साक्षात्कार की अनुभूतियों का वर्णन करने में शब्दों की कमी अनुभव करके कबीरदास की तरह कहे—**

"आतम अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछे बात।
ज्यों गूँगा गुड़, खायके कहे कौन मुख स्वाद।"

अनुभवों के विवरण देने में साधकों के लिये शब्द सीमा किस प्रकार आड़े आती है यह आप लोग जिज्ञासुओं के अनुभवों के अन्तर्गत समझ चुके हैं। **अब हम, जो भी है, जैसा है, जहाँ है; वहीं से प्रारम्भ करते हैं।** मेरे इस आशय को आप समझ गये होंगे। उदाहरणार्थ आपको ताजमहल देखने जाना है तो जो व्यक्ति आगरा में ही ताजमहल से दूर है वह रिक्शा से ताजमहल पहुँचेगा। जो आगरा से दूर किसी अन्य शहर में है वह बस या रेल से ताजमहल पहुँचेगा। जो लन्दन में रहता है वह हवाई जहाज से जायेगा। अब, जब ये सब मिलते हैं तो एक दूसरे की आलोचना करते हैं कि तुम बेकार आदमी हो रिक्शे से ताजमहल पहुँचते हो। मुझे देखों मैं हवाई जहाज से आया हूँ। रिक्शे से ताजमहल पहुँचकर तुमने ताजमहल को भी बेइज्जत कर दिया। दूसरा कहता है कि तुम दोनों बुद्धू हो। हवाई जहाज से आना तो अपना अहं प्रदर्शित करना है और रिक्शे से आना तुच्छता की सीमा है। हमें देखो, हम बस से आये हैं, न हममें हवाई जहाज वाले व्यक्ति का घमण्ड है न रिक्शे की हीनता की भावना (Inferiority Complex) है। रेल वाला कहता है—बस वाले मियाँ, तुम सही तो लगते हो परन्तु रेल से आना अधिक उपयुक्त है। बस की अपेक्षा रेल में लोग अधिक होते हैं और जिस मार्ग पर अधिक लोग चलें वह गलत नहीं हो सकता क्योंकि सोरे लोग तो बुद्धू हो नहीं हो सकते।

अब इस स्थिति में आप किसको क्या कहेंगे? **आपके चारों ओर बातें करने वाले लोग ऐसे ही हैं।** यह मैं 'विद्वानों' की बात बता रहा हूँ। शेष तो सब भेड़ हैं—आँखें बन्द करके चलने वाले। **आप आँख खोलकर चलेंगे, अपनी सम्पूर्ण चेतना के सहित चलेंगे और जीवन के रास्ते में आने वाले कण-कण का अधिक से अधिक आनन्द लेते हुए**

चलेंगे। इसके लिये मानव शरीर में पाई जाने वाली परम शक्ति कुण्डलिनी का उपयोग किया जाता है।

कुण्डलिनी और काम शक्ति

कुण्डलिनी जागरण के समय भूत शुद्धि होती है। यह सब आप अब तक पढ़ते आये हैं। शाहजहाँ के सबसे बड़े पुत्र मुहम्मद दाराशिकोह ने कुण्डलिनी के विषय में 'The Compass of Truth' में दिया है। रिसाला-ए-हकनुमा में दिल ए मुद्‌वरी (Spherical heart), दिल ए सनोब्बरी (Chedar heart), और दिल-ए-नीलोफरी (Lily heart) के बारे में जो मिलता है, वह कुण्डलिनी के विवरण ही हैं। शेख मुहम्मद इकबाल ने "The Development of Metaphysics in Persia" में यही विवरण दिये हैं। अरबी की पुस्तक 'अल बिरूनी' पूरा योग शास्त्र है। कुण्डलिनी शक्ति को पराशक्ति कहते हुए सर जॉन वुडरोफ लिखते हैंThis shakti is the supreme shakti (para shakti) in the human body, embodying all powers and assuming all forms. **Thus the sexual force is one of such powers and is utilized,** instead, however, of descending in to gross seminal fluid it is conserved as a form of subtle energy, **and rises to shiva along with Prana. It is thus made a source of spiritual life instead of one of the cause of physical death."** यहाँ काम शक्ति के बारे में एक बात विशेष रूप से समझने की है कि **यदि शरीर में कामाग्नि भड़के और उसकी पूर्ति न हो तो वह शरीर का क्षय करती है। यदि कामाग्नि बार-बार भड़के और हर बार पूर्ति की जाय तो शरीर का क्षय होता है।** अब तो बड़ी मुश्किल हुई। शरीर क्षय करने वाली वस्तु कामाग्नि की गर्मी होती है। यदि इसे शांत करने का उपाय हो तो कामाग्नि भड़कने से शरीर क्षय नहीं होगा। इसके लिये विपरीत लिंगी का योनि अथवा लिंग स्राव उचित शामक औषधि सिद्ध होता है। वह कामाग्नि की गर्मी को शांत करता है। इस स्राव में एक और गुण है, वह यह कि विपरीत लिंगी के लिये यह 'टानिक' का काम देता है। अब एक समस्या आती है कि **काम पूर्ति से शरीर को टानिक तो मिला आधा चम्मच और शरीर में जो जमा टानिक था उसमें से निकाल दिया दो चम्मच। कुल मिलाकर शरीर क्षय जारी रहा।** इस समस्या पूर्ति का हल यह है कि **काम पूर्ति करो, स्खलन** (Discharge) मत होने दो।

किसी भी स्वस्थ व्यक्ति का स्राव अनायास नहीं होता। अतः वह कार्य मत करो जिससे अधोस्राव होने की शंका हो। यदि योनि में लिंग प्रवेश करके चुपचाप पड़े रहो तो समस्या बहुत सीमा तक सुलझ जाती है। ज्यों-ज्यों स्थिरता आती जाय, काम-केलि में वृद्धि की जा सकती है। **जब तक विपरीत लिंगी साथी की व्यवस्था (विवाह) न हो तब**

तक काम विषयक सामग्री से मनसा-वाचाकर्मणा दूर रहो। दूर रहने का दिखावा मत करो, नहीं तो शरीर में विकार पैदा होने लगेंगे। काम से दूर रहने की विभिन्न विधियाँ यत्र-तत्र दी जा चुकी हैं। **काम शक्ति का सूक्ष्म शक्ति (परा-शक्ति) में परिवर्तन होते समय एक अद्‌भुत आनन्द की प्रतीति होती है जो कामानन्द से हजार-हजार गुना अधिक है। उसी क्षण अर्ध मुदित आँखों में कुछ दर्शाव होते हैं** जो इस बात के परिचायक हैं कि शक्ति परिवर्तन हो रहा है। **यहीं से कुण्डलिनी का प्रारम्भ होता है।** हठ योग प्रदीपिका, तृतीय अध्याय में कहा गया है—सर्वेशाम् योग तन्त्राणाम् तथाधारा हि कुण्डली। भूत शुद्धि के आरम्भ में कहा गया है—

"मूलाधारात्समुत्थाप्य कुण्डलीं पद देवताम्।
सुषुम्नामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरंध्रगतां स्मरेत॥
जीवं ब्रह्माणि संयोज्य हंस मंत्रेण साधकः।"

इन सब के स्पष्टीकरण मैं पीछे दे चुका हूँ अब इस विषय का क्रियात्मक पक्ष देखते हैं।

■

२१

कुण्डलिनी के चक्र

तन्त्र में षडचक्र भेदन की बात स्थान-स्थान पर आती है। चक्र कितने हैं यह कहना मुश्किल है। प्रारम्भ में केवल छः चक्रों को शास्त्र द्वारा मान्यता दी गई—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र। बाद में सहस्रार और बढ़ा दिया गया। फिर अग्नि चक्र भी आ गया। इस प्रकार चक्रों के अनुभवों के आधार पर उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। आज मूर्धन्य ऋषियों की कृपा से चक्रों की संख्या लगभग २१ पहुँच गई है। यह बात दूसरी है कि वे लोग उनके बारे में कुछ स्पष्ट विवरण नहीं दे पाते। जो केवल गुरु के परिश्रम और साधना के बल पर उस स्थिति तक पहुँचे हैं वे गुरु आज्ञा की अवहेलना के भय के कारण कुछ भी बताने से इन्कार कर जाते हैं और जो अपनी साधना के बल पर तत्व ज्ञान को समझ कर ऊँचे उठे हैं, वे बताना चाहते हैं, परन्तु **शब्दों और सुनने वाले की प्रज्ञा की सीमा** आड़े आ जाती है। स्वामी पूर्णानन्द ने कुण्डलिनी के चक्रों का बहुत अच्छा विवरण दिया है। चक्रों का विवरण लगभग एक जैसा ही रहता है चाहे वह संन्यासी का अनुभव हो अथवा गृहस्थी का। वह अनुभव चाहे प्रवृत्ति मार्ग वाले ने दिया हो चाहे निवृत्ति मार्ग वाले ने। सूफी दे या 'सेन्ट'। आध्यात्मिक सत्य अपनी जगह अटल है।

इन आध्यात्मिक सत्यों को पाने के लिए यदि **हम उन्हीं में इन्हें खोजने की व्यवस्था कर लें जिनमें हम हैं** तो बिना कुछ छोड़े, बिना कुछ तोड़े हम आगे बढ़ सकते हैं। ऋषियों की यह अद्भुत खोज है कि उन्होंने अपने शरीर की कुछ विशेष ग्रन्थि समूहों (चक्रों), ज्ञान तन्तुओं (नाड़ियों), लिङ्गों (स्वयंभू, बाण, इतर), पंच तत्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर), शिव (कुण्डलिनी के आदि उद्गाता पुरुष), और शक्ति (प्रकृति) आदि के ध्यान-योग को परमानन्द (Supreme Bliss) प्राप्ति का साधन बनाया जो नित्य (Eternal), विज्ञान (Knowledge), तथा आनन्द (Bliss) है। **षड्चक्र भेदन की बात तो ब्रह्म साक्षात्कार की तुलना में पहली सीढ़ी पर चढ़ने वाली बात है।**

मूलाधार चक्र की सिद्धि के बारे में एक विद्वान ने लिखा है "It is first sprouting shoot of the realization of the Brahma". वह तो ऐसे समझिये जैसे पीपल का पेड़ उगने के लिए बीज से अंकुर फूटा हो। 'षटचक्र निरूपण' में पूर्णानन्द स्वामी ने कहा है—

अथ तन्त्रानुसारेण षट्चक्रादिक्रमोद्गतः।
उच्यते परमानन्दनिर्वाह प्रथमाङ्कुरः॥

कुण्डलिनी के चक्रों पर ध्यान करने की सामान्यतः संन्यासियों की विधि यह है कि वे अपने शरीर के विभिन्न स्थलों पर निर्देशानुसार षड्चक्रों की कल्पना करके उन पर ध्यान करते हुए विभिन्न मुद्राओं की सहायता से वीर्य की ऊर्ध्वगति करते हुए मूलाधार से सहस्रार तक कुण्डलिनी को गतिशील करते हैं। इस व्यवस्था में मनोवैज्ञानिक दोष आ जाना स्वाभाविक है परन्तु इस दोष के निराकरण के लिए विपरीत लिंगी साथी न होने के कारण वे कोई सहज उपाय काम में नहीं ला सकते। यह उनकी अपनी संन्यास धर्म की सीमा है। किसी भी कार्य के लिए कोई असहज उपाय काम में लाया जाय तो तत्सम्बन्धी सौ दूसरे उपाय भी बीच में रखने पड़ते हैं। जैसे एक झूठ को सच बनाने के लिए सौ झूठ और जोड़ने पड़ते हैं। यदि आप एक 'सत्य' को बोल दें तो शेष सौ झूठ बोलने वाला मानसिक तनाव एक दम ढह जाता है। **सारे असहज उपाय तनाव उत्पादक होते हैं।** आपका कार्य है अपने देश-काल परिस्थिति के आधार पर **कम से कम तनाव में लक्ष्य पूर्ति कराने वाले प्रयोगों को चुनें।** इस चुनाव के विषय में आँखें बन्द करके किसी की भी बात न मानें, अपनी बुद्धि का उपयोग करें।

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक १९

शकुन सारणी

[संन्यासी, छात्र, विधुर आदि पत्नी रहित पुरुषों तथा अविवाहित, परित्यक्ता एवं विधवा महिलाओं के लिये (जो रमण-मार्गी नहीं है) कुण्डलिनी जाग्रत कराने वाले अभ्यास]

शरीर व मन के तीव्र विकास द्वारा आत्मिक बल तथा कुण्डलिनी स्फुरण हेतु **इस सारणी में दिये गये अभ्यासों का प्रारम्भ, अपनी आयु के आधार पर दी गई व्यायाम तथा प्राणायाम सारणियों के तीनों स्तरों का अभ्यास पूरा हो जाने के पश्चात् ही करना चाहिए।** इसमें दिये गये अपेक्षाकृत कठिन योगाभ्यासों को पूर्ण स्वस्थ तथा विकसित (Advanced) जिज्ञासु अपनी प्रकृति, परिस्थिति तथा प्राप्य समय के आधार पर करें और सदैव योग्य आचार्य के निर्देशों को सर्वोपरि मान्यता दें। योग्य आचार्य इन अभ्यासों में जिज्ञासु विशेष के लिए आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकते हैं।

१. भक्ति स्तर (६ मास) नाड़ी शोधन	२. विवेक स्तर (६ मास) कुण्डलिनी स्फुरण	३. दिव्या स्तर (१ वर्ष) कुण्डलिनी ऊर्ध्वगमन
अनुलोम विलोम प्राणायाम—२० चक्र—३ मास तक, अनुपात—४ : ८ : ८; तीन मास बाद अनुपात—६ : १२ : १२ यदि पहले अनुपात में पूर्णता प्राप्त हो जाय तो अनुपात बढ़ायें अन्यथा नहीं। **स्वर्णा प्राणायाम** अनुपात— ४ : १६ : ८ : ४ तथा ४ : १६ : ८ : ४ **कपाल भाति**—१० मिनट (प्रत्येक चक्र में १०० श्वास-प्रश्वास) [छाती के दर्द अथवा जकड़न में अधिक न करें] **सरलेशासन**—१० मिनट [अचानक सम्पूर्ण क्रियाएँ बन्द करके शवासन की मुद्रा में आँखें बन्द करके ले जाँय। बंद आँखों में होने बाले अनुभवों को बाद में अपनी डायरी में लिख लें।]	**कपाल भाति**—५ मिनट (लगभग १ मिनट में १०० श्वास-प्रश्वास) **कपाल भाति**—५ मिनट (लगभग १ मिनट में १५० श्वास-प्रश्वास की गति, और शरीर ढीला) **कपाल भाति**—१० मिनट [श्वास-प्रश्वास उसी गति से लेते हुए, शरीर ढीला रखकर, शारीरिक क्रियाओं में सहयोग दें, शरीर रोना चाहे, रोने दें; खड़ा होना चाहे, होने दें; लेटना चाहे लेटने दें;, कूदना चाहे, कूदने दें; रोकें नहीं। 'कपाल भाति' प्रारम्भ करने से पूर्व आँखें बंद कर लें; और अच्छी तरह देख लें कि आपके चारों ओर आपके लेटने योग्य स्थान खाली है, तब साधना प्ररम्भ करें।] **सरलेशासन**—१० मिनट [अचानक सम्पूर्ण क्रियायें बंद करके शवासन की मुद्रा में लेट जायँ और आँखें बन्द करके पड़े रहें। यदि कुछ अनुभव हों तो अपनी डायरी में बाद में लिख लें। अपने अनुभव साथी-साधकों को न सुनायें। गुप्त रखें। हाँ, अपने आचार्य (यदि कोई हों) को अवश्य बतलायें।]	**श्वास चेतना युक्त कपाल भाति**—१० मिनट (लगभग १ मिनट में १५०-२०० श्वास-प्रश्वास। प्रत्येक श्वास के आने और जाने का ध्यान) **शरीर चेतना का युक्त कपाल भाति**—१० मिनट (१ मिनट में जितनी अधिक से अधिक गहरी और तेज श्वास-प्रश्वास कर सकें पूरी ताकत से करें, परन्तु शरीर ढीला छोड़ दें और शरीर जो करना चाहें करने दें, रोकें नहीं, बस, देखतें रहें कि शरीर क्या कर रहा है?) **आत्म चेतना युक्त कपाल भाति**—१० मिनट [शरीर चेतना के समान ही गहरी और तेज श्वास-प्रश्वास, शरीर ढीला, शारीरिक क्रियाओं पर ध्यान, परन्तु शरीर को रोकें नहीं और प्रत्येक श्वास (खींचते) में 'हम्' और प्रश्वास (श्वास छोड़ते) में 'सो' का मानसिक जप करें। ॐ का जप करना चाहने वाले प्रत्येक प्रश्वास में 'ओ' तथा श्वास में 'म' का जाप 'सोहम्' विधि से कर सकते हैं। आचार्य रजनीश इस स्थिति में 'मैं कौन हूँ का प्रश्न साधक से करवाते थे। यह विभिन्न विधियाँ आत्म चेतना प्रस्फुटित करने के लिये हैं। 'हं सः' मंत्र का जाप भी इसी श्रेणी में है।] **महा चेतना युक्त समाधि**—१० मिनट [समय पूरा होते ही अचानक सब क्रियायें बंद करके सरलेशासन में (यदि लेटना चाहें), अथवा स्थिर (मूर्तिवत) हो जायँ। बंद आँखों में जो कुछ अनुभव हो उसका आनन्द लेते रहें।]

षड्चक्रों के ध्यान चक्र

मूलाधार चक्र

जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि मेरु दंड (रीढ़ रज्जु) मूल (आधार) से गर्दन तक है, उसके बाँई ओर को इड़ा और दाहिनी ओर को पिंगला नाम की नाड़ी है। भूत शुद्धि तन्त्र में कहा है—**'मेरोर्वामे इडा दक्षे पिंगला च स्थिते उभे।'** इन नाड़ियों को शशि (चन्द्र) तथा मिहिर (सूर्य) भी कहा गया है। त्रिगुणात्मिका सुषुम्ना मेरु दंड के मध्य में स्थित है। त्रिगुणात्मिका इसलिये क्योंकि सुषुम्ना के अन्दर वज्रिणी के अन्दर चित्रणी नाड़ी है। ये नाड़ियाँ चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप हैं, जो खिले हुए (प्रस्फुटित) धतूरे के पुष्प के समान वज्रधारिणी कंद (नाड़ियों की जड़) से सिर तक (मूलादि मस्तक पर्यन्त स्थित) हैं और लिंग से सिर तक चमकती हैं (मेढ्रदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमेऽस्या ज्वलन्ती)। संमोहन तन्त्र के अनुसार इड़ा पिंगला नाड़ी की प्रकृति चंद्र गुण तथा सूर्य गुण वाली मानी गई है—

वामगा या इडा नाड़ी शुक्ला चंद्र स्वरूपिणी।
शक्ति रूपा हिसा देवी साक्षादमृत विग्रहा॥
दक्षे तु पिंगला नाम पुन्रूपा सूर्य विग्रहा।
रौद्यात्मिका महादेवी दाडिमी केसर प्रभा॥

इड़ा नाड़ी का रंग पीला और पिंगला का अनार के फूल के पराग के समान लाल है। ये नाड़ियाँ मूलाधार (लिंग देश) से ऊपर की ओर आज्ञा चक्र (मस्तक) तक पहुँचकर नासारन्ध्रों में [बीच के सभी चक्रों का भेदन करती हुई सुषुम्ना के दायें बायें रस्सी के समान लिपटी हुई (ऋज्वी भूते)] पहुँचती हैं। सुषुम्ना मेरु के अन्दर मूल से ब्रह्म रंध्र तक जाती है जो स्वयं चिति (ज्ञान) है। प्रपंचसार के अनुसार जो नाड़ी बायें अंडकोष से सुषुम्ना में होकर दाहिनी स्कन्धास्थि के जोड़ तक पहुँचती है हृदय देश के कारण धनुष के समान झुक जाती है बाँई स्कन्धास्थि के जोड़ से दाहिने नासारंध्र की ओर चली जाती है। इसी प्रकार दाहिने अंडकोश से आने वाली नाड़ी बायें नासारन्ध्र की ओर चली जाती है। नासारंध्र में आने से पूर्व या नाड़ियाँ भ्रू-मध्य के क्षेत्र में पहुँच कर सुषुम्ना के साथ तीनों मिलकर एक गाँठ बनाती है (जिसे त्रिवेणी भी कहते हैं) और तब नासारंध्र की ओर जाती हैं। एक कहानी आती है कि गंगा, सरस्वती और यमुना का त्रिवेणी में स्नान करने वाले को महान पुण्य मिलता है—

इडायां यमुना देवी पिंगलायां सरस्वती।
सुषुम्नायां वसेद्गंगा तासां योगस्त्रिधा भवेत्॥
संगता ध्वज मूले च विमुक्ता भ्रू वियोगतः।
त्रिवेणी योगः सा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलम्॥

यह गंगा सुषुम्ना, इडा यमुना और पिंगला सरस्वती है। आज्ञा चक्र भेदन के समय यह त्रिवेणी स्नान होगा जो महाफलदायक होगा ही। इस प्रकार ये नाड़ियाँ ध्वज (लिंग) मूल (जड़) से मिलकर चलती हुई भ्रू मध्य पर पुनः अलग-अलग हो जाती हैं। सुषुम्ना सबसे बाहरी नाड़ी और चित्रिणी सबसे अन्दर की परन्तु चित्रिणी के अन्दर के भाग को ब्रह्म नाड़ी कहा जाता है। अलग से कोई ब्रह्म नाड़ी नहीं है। जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ चित्रिणी पीले रंग की है, वज्रिणी अनार के फल के पराग जैसे रंग की और सुषुम्ना लाल आग के रंग जैसी है। जो कामातुर स्त्री के समान थर-थराती है—'लसन्ती ललना यथा।"
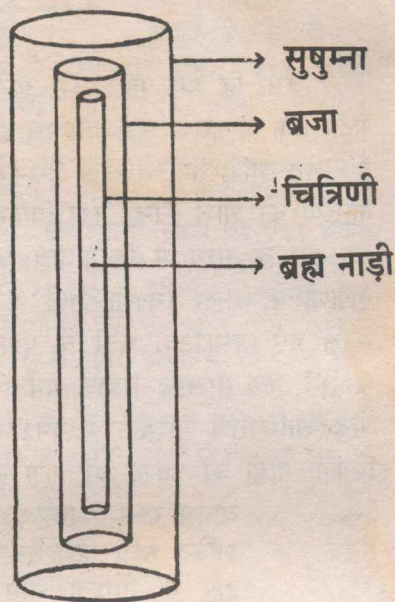
चित्र संख्या ४१

कन्द चार अंगुल का अंडे के आकार में है जिससे ७२००० नाड़ियाँ निकली मानी गई हैं। कन्द का स्थान गुदा से दो अँगुल ऊपर और लिंग मूल से दो अंगुल नीचे है—

गुदात्तु द्वयंगुलादूर्ध्व मढ़ात्तु द्वयंगुलादधः।
चतुरंगुल विस्तारं कन्दमूलं खगाण्डवत्॥
नाड्यस्तस्मात समुत्पन्नाः सहस्त्राणां द्विसप्तशति॥

यही कंद का मध्य बिंदु सुषुम्ना का उद्गम स्थल है। बारह दल वाले कमल के मध्य में सुषुम्ना का अन्त होता है जो सहस्त्रार कमल के बीजावरण के अन्दर है। यह स्थान ब्रह्म रन्ध्र के पास है। श्री काली चरण कृत 'पादुका पंचकम्' में इस द्वादश दल पदम् का वर्णन है—

ब्रह्मरंध्र सरसी रूहोदरे।
नित्य लग्नमवदातमद्भुतम्॥
कुण्डलीविवर कांड मंडितम्।
द्वादशार्णसरसीरुहं भजे॥

ब्रह्मरंध्र के पास शंखिनी नाड़ी है उसकी नाल (नली) के सहारे सुषुम्ना स्थिर है।

सरस्वती और कुहू सुषुम्ना के दोनों ओर हैं। इड़ा के दोनों ओर गान्धारी और हस्तिजिव्हा नामक नाड़ियाँ हैं। गान्धारी और सरस्वती के बीच शंखिनी है। यह शंखिनी की शाखा बाँयें कान की ओर जाती है। दूसरी शंखिनी की शाखा कण्ठ कूप (गल गह्वर)
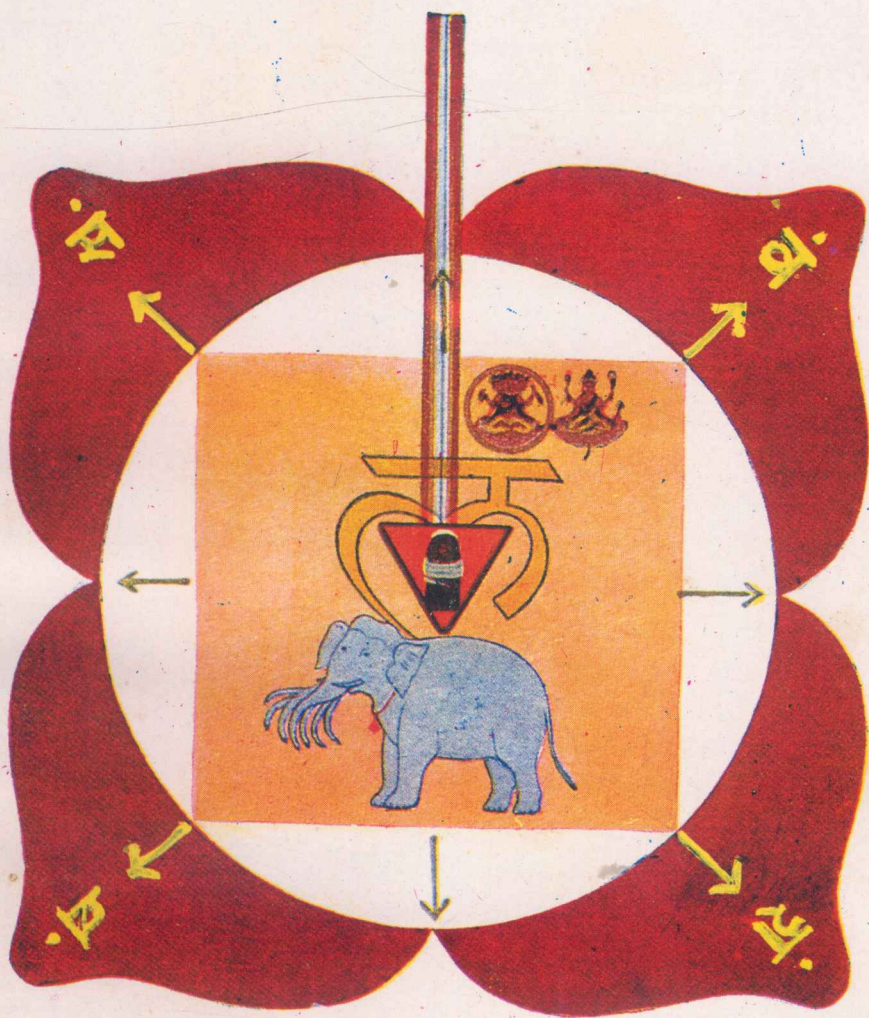
मूलाधार चक्र Moolādhār Cakra

(Sacrococcygeal Plexus)

में से मस्तक में जाकर चित्रिणी से लिपट जाती है ओर फिर सिर में चली जाती है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि शंकर जी (रुद्र) इस ज्ञान के एक प्रकार से प्रथम उद्गाता माने जाते हैं। वे अपनी तान्त्रिक साथिनी पत्नी (अम्बिका) को यह ज्ञान देते हुए कहते हैं—

शंखिनी कण्ड विवरात् तिर्यग्भूता ललाटगा।
चित्रणी संगत्ताश्लिष्टा यावच्छिरसमम्बिके॥

चित्रिणी मकड़ी के धागे के समान सूक्ष्म है जो सभी पद्मों को भेदती हुई प्रणव की चमक से देदीप्यमान आगे बढ़ती है। मूलाधार के स्वयंभूलिंग के छिद्र से सहस्रार के परम बिन्दु (आदि देव) तक जाने वाली चित्रिणी शुद्ध ज्ञान (Pure Intelligence शुद्ध बोध) सर्वानन्द, शुद्ध चैतन्य स्वरूपा है जिसके मुख पर ब्रह्मद्वार (ब्रह्मनाड़ी का मुँह) चमकता है। यही स्थान अमृत क्षेत्र का प्रवेश द्वार है जो सुषुम्ना का मुख भी है। इसे ग्रन्थि कहते हैं। अमृत क्षेत्र के विषय में शास्त्र कहता है **'स्त्री पुंयोगात् यत सौख्यं तत सामरस्यं।'** सामरस्य शब्द सम्भोग के लिए प्रयुक्त होता है। अमृत क्षेत्र का अमृत रस परम शिव और शक्ति के संगम से बहता है। उस अमृत को मूलाधार में शिव-शक्ति को स्थित करके प्राप्त किया जाता है।

कंद और सुषुम्ना के मिलन स्थल पर चारों दिशाओं में चार दल वाला आधार पद्म है। दल का रंग रक्त वर्ण (Crimson colour) है। कमल मुख नीचे की ओर लटका है। इसके दलों पर व श ष स अक्षर हैं। इन अक्षरों पर दायें से बायें (दक्षिणावर्त) क्रमशः ध्यान करना है। विश्वसार तन्त्र कहता है—

सर्व व्रर्णात्मकं पत्रं पद्मानां परिकीर्तितम्।
दक्षिणावर्तयोगेन लिखनं चिन्तयेद्धिया॥

इस पद्म के बीच में वर्गाकार पृथ्वी तत्व है जो चमकदार अष्ट शूल युक्त है (पाठक यन्त्र वाले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि पृथ्वी का यान्त्रिक चित्रण वर्ग है। इसी प्रकार प्रत्येक तत्व का आकार, रंग तथा कर्म होता है जिससे यह विशेष प्रकार तरंग युक्त होता है।) पृथ्वी तत्व का रंग पीला है। शूल कुलाचल (कामिन्याः स्तन सदृशाग्रैः) अर्थात् कामातुर स्त्री के स्तन कुचों के समान है। (The tips of these spears are shaped like a woman's breasts. – Sir John Woodroffe) निर्वाण तन्त्र के अनुसार पृथ्वी पर सात कुलाच्रल (कुल-पर्वत) हैं यथा—नीलांचल, मन्दाराचल, चन्द्र शेखर, हिमालय, सुवेल, मलय और सुपर्वत। उस पृथ्वी वर्ग के अन्तर्गत पृथ्वी बीज 'लं' है जो चमकदार पीले रंग का है। इसके अन्दर ऐन्द्र बीज है जो पीले रंग का चतुर्भुज है और एक हाथ में वज्र (शक्ति) थामे है, पौरुष पूर्ण है और ऐरावत हाथी पर बैठा है। (चक्रों के अन्दर दिये गये 'पशु' 'तत्व के देवता' के गुण तथा वाहन के परिचायक होते हैं।) इसकी बाहें इतनी लम्बी हैं कि हाथ घुटनों तक पहुँचते हैं। चारों भुजाएँ आभूषण युक्त हैं जो ऐरावत को थामे हैं। धराबीज के बिन्दु-अंक (गोद) में बच्चे के रूप में चतुर्मुखी ब्रह्म जी स्थित हैं। निर्वाण तन्त्र में कहा है कि इन्द्र बीज जननांग के नीचे है। अति सुन्दर पूर्ण प्रजापिता ब्रह्मा

नाद के ऊपर स्थित हैं। नाद के ऊपर बिन्दु के अन्दर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा स्थित हैं। भूत शुद्धि तन्त्र के अनुसार-ब्रह्मा बच्चे का रंग लाल, भुजाएँ चार, चेहरे चार हैं और हंस की पीठ पर स्थित हैं। मूलाधार में डाकिनी देवी स्थित है जिस पर ध्यान करने से तत्व ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अति सुन्दर चार भुजाएँ हैं, आँखें लाल हैं। इसकी चमक ऐसी है जैसे हजारों सूर्य एक ही स्थान पर एक ही क्षण में उदय हो उठे हों। यह देवी शुद्धि-बुद्धि वाहिका है। इसके मुँह पर चारों अक्षर व श ष स है जिनकी अधिपति डाकिनी है।

डाकिनी का ध्यान एक और प्रकार से भी किया जाता है—

रक्ताक्षीं रक्तवर्णा पशुजनभयकृच्छूलखट्वांगहस्तां
वामे खड्गं दधानां चषकमपि सुधापूरितं चैकवक्राम्।
अत्युग्रामुग्रदंष्ट्रामरिकुलमथनीं पायसान्ने प्रसक्तां
मूलाधारेऽमृतार्थे परिवृतवपुषं डाकिनी चिन्तयेत्ताम्॥

रक्त जैसे रंग वाली, रक्तिम आँखों वाली, पशु (आप जानते हैं तन्त्र में पशु किसे कहा जाता है—जो अपनी इन्द्रियों का दास हो) जनों को भयाक्रान्त करने वाली, जिसके दाहिने हाथों में शूल और खट्वांग है, बायें हाथों में तलवार और मद्य से भरा प्याला है वह अत्यन्त उग्र, भयानक दाँतों वाली, शत्रुओं के कुल का संहार करने वाली, पायस (चावल दूध से बनी खीर जिसमें घी और शक्कर मिली हो) से प्रसन्न होने वाली है। देवी डाकिनी का इस प्रकार चिन्तन (ध्यान) करें।

देवताओं के चेहरे नीचे की ओर अथवा ऊपर की ओर किये हुए ध्यान करने का अन्तर साधक के भावानुसार है। माया तन्त्र में कहा है—प्रवृत्ति मार्ग वाले देवों के चेहरे नीचे की ओर मान कर ध्यान करें और निवृत्ति मार्ग वाले ऊपर की ओर।

तत्सर्व पंकज देवि सर्वतोमुखमेव च।
प्रवृत्ति भावचिन्तायामधोवक्राणि चिन्तयेत्।
निवृत्ति भावमार्गेषु सदैवोर्ध्वमुखानि च॥

मूलाधार पद्म के परागक्षेत्र के अन्तर्गत बहुत मुलायम अत्यन्त सुन्दर विद्युत के समान एक त्रिभुज चमकता है जिसे काम रूप या त्रिपुर कहते हैं (गौतमीय तन्त्र इसे इच्छा, ज्ञान तथा कर्म, Will, Knowledge and Action का त्रिभुज मानता है) वज्रा नाड़ी के मुँह के पास है। वहाँ सदैव काम वायु, कन्दर्प वायु (कन्द देशे वसेत् प्राणो ह्यपानो गुदमंडले) विलास करती है, उसका रंग बन्धूक पुष्प से भी अधिक गहरा लाल है। तन्त्र राज में इस त्रिकोण अर्थात् त्रिपुर के अन्दर रहने वाली देवी को त्रिपुर सुन्दरी कहा है, (त्रिपुरा देवी 'क' अक्षर के सहित जो कि काम बीज का प्रधान अक्षर है, विराजमान है)। इस त्रिकोण को शक्ति पीठ भी कहा जाता है। कन्दर्प वायु को जीवन की अधिष्ठात्री माना जाता है चूँकि अपान वायु प्राण वायु का आकर्षण करती है और प्राण वायु अपान का। कंदर्प वायु दोनों के बीच में है और अपान वायु की सहचरी होकर प्राण वायु का कर्षण करती है। यदि यह अपना आकर्षण त्याग दे तो प्राण शरीर से बाहर निकल जायगा। यदि

अधिकर दे तो अपान बाहर हो जायेगा। एक के बाहर आने से दूसरा स्वतः चला जायेगा। इस प्रकार कंदर्प वायु ही जीवन का आधार है। त्रिकोंण के अन्दर स्वयं-भू लिंग है जिसका रंग श्यान (Blue-green) है। ऊपरी भाग नीचे चौड़ा और ऊपर पतला जैसे चंपक के पुष्प का गर्भ केशर होता है, देखने में नई बिना खुली कली (unopened leaf bud) के समान प्रतीत होता है। यह लिंग 'काली कुलामृत' के अनुसार अधोमुखी है और काम बीज के द्वारा गति देने पर क्रियाशील होता है—

तत्र स्थितो महालिंगः स्वयंभू सर्वदा सुखी।
अधोमुखः क्रियावांश्च कामबीजेन चालित॥

यामल तन्त्र इस पर ध्यान करने के लिए इस प्रकार कहता है— मूलाधार के अति सुन्दर त्रिकोण पर ध्यान करो जिसमें घने नीले बादलों के पीछे जैसे दस लाख बिजलियाँ चमकें ऐसी आभा वाली कुण्डलिनी की तीन रेखायें चमकती हैं।

(इसमें साधक के भाव का अन्तर है प्रतीति और परिणाम में कोई अन्तर नहीं आता)।

स्वयंभू लिंग के अन्दर से आने वाली विद्युत-चमक चन्द्रमा की चाँदनी के समान बहुत शीतल और सुखदायक होती है। इसके ऊपर कमल तन्तु के समान सूक्ष्म सुप्त कुण्डलिनी चमकती है जो जगन्मोहिनी है, ब्रह्मद्वार को ढके हुए है। यह स्वयं भू लिंग को (घोंघा जिस प्रकार शंख में चक्राकार होता है उसी प्रकार) चारों ओर से साढ़े तीन चक्र देकर चमकदार सर्प के समान लपेटे है। उसकी चमक नई विद्युत की तेज फ्लैश (Flash) जैसी है। उसकी गुंजार प्रेम में पागल मधुमक्खियों की विशेष प्रकार की भिनभिनाहट जैसी है जिसमें लय के उतार चढ़ाव से मधुर संगीत प्रस्फुटित होता है। उस संगीत से ध्यान किये जाने वाले चित्र का आभास होता है जैसे कि संस्कृत भाषा के स्पष्ट और अस्पष्ट शब्द किसी क्रम में निकल रहे हों। कादिमत के अनुसार 'आत्मा' की इच्छा शक्ति की प्राण वायु पर क्रिया होने से मूलाधार में अति उत्तम नाद (Sound) का उदय होता है जिसे 'परा' कहते हैं। इसकी चढ़ती लय में कुण्डलिनी ऊपर की ओर धकेली जाती है जो स्वाधिष्ठान तक पहुँच कर पश्यन्ती कहलाती है। इसी क्रिया से पुनः इसे मृदु झटके से अनाहत के बुद्धि तत्व से जोड़ते हैं, तब यह 'मध्यमा' कहलाती है और ऊपर जाकर गले में विशुद्ध चक्र में पहुँचकर 'वैखरी' कहलाती है और वहाँ से और ऊपर तालू, नाक, जीभ, होठ आदि के द्वारा अ से क्ष तक अक्षर उत्पन्न करती है।

"स्वात्मेच्छाशक्तिघातेन प्राणवायुस्वरूपतः।
मूलाधारे समुत्पन्नः पराख्यो नाद उत्तमः॥
स एव चोर्ध्वतां नीतः स्वाधिष्ठान विजृम्भितः।
पश्यान्त्याख्यामवाप्नोति तथैवोर्ध्वं शनः शनः॥
अनाहते बुद्धि तत्व समेतो मध्यमोऽभिधः।
तथा तयोरूर्ध्वगतो विशुद्धो कण्ठ देशतः॥"

कुण्डलिनी के ध्यान के लिए उसे अपने इष्ट देव स्वरूप में इस प्रकार ध्यान करने के लिए भी लिखा है—

ध्यायेद कुण्डलिनी देवीमिष्ट देवस्वरूपिणाम्।
सदा षोड्शवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम्॥
नव यौवन सम्पन्नाम् सर्वाभरणभूषिताम्।
पूर्ण चन्द्रप्रभाम् रक्ताम् सदा चंचल लोचनाम्॥

अपने इष्ट देव के रूप में कुण्डलिनी का ध्यान सदैव षोडष वर्षीय सुन्दरी में करो जो नव यौवन सम्पन्न बड़े और उत्तम स्तनों वाली, आभूषणों से सुसज्जित, पूर्ण चन्द्र के समान कांतिवान, रक्त वर्ण की और हिरणी के समान चंचल नेत्र वाली हो। शाक्तानन्द तरंगिणी में रक्त वर्ण की कुण्डलिनी देवी का ध्यान करने के बारे में कहा है। अन्य तन्त्रों में कुण्डलिनी को 'श्यामा' कहा है। श्यामा का अर्थ काला (अथवा नीला-हरा) नहीं है—

"शीतकाले भवेदुष्णा चोष्णकाले च शीतला।
प्रतप्तकांचनाभा सा श्यामा स्त्री परिकीर्तिता॥"

(ऐसी स्त्री जो शीतकाल में गर्म और ग्रीष्म काल में शीतल हो और जिसका रंग तपाये हुए सोने के समान आभामय हो श्यामा कहलाती है)।

कंकाल मालिनी तन्त्र कुण्डलिनी के ऊर्ध्व गमन से पूर्व का वर्णन करता है—

कोटिचन्द्रप्रतीकाशां पर ब्रह्म स्वरूपिणीम्।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च वराभयकरां तथा॥
तथा पुस्तक वीणां च धारिणीं सिंह वाहिनीम्।
गच्छन्तीं स्वात्मनं भीमां नाना रूप धरात्मिकाम्॥

कुण्डलिनी परब्रह्म स्वरूप ऐसे चमकती है जेसे करोड़ों चन्द्रमा एक साथ उग आये हों, इसके चार भुजायें और तीन आँखें हैं। हाथों से वर मुद्रा व अभय मुद्रा प्रदर्शन करती है। अन्य हाथों में पुस्तक तथा वीणा है। सिंह पर सवार है। जब अपने आसन (मूलाधार) से चलती है तो श्रद्धायुक्त भय (reverential fear) उत्पन्न करने वाली (भीमां) भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप धारण करती है। कुण्डलिनी के ऊपर सूत्र रूप में पराशक्ति है जा परम प्रशासन कार्य सँभाले हुए है। इसमें सृष्टिकारी आश्चर्यजनक शक्ति है। इसकी नित्यानन्द परम्परा (Steps to eternal bliss) इस प्रकार है—नित्यानन्द निर्गुण ब्रह्म से सगुण आविर्भाव, सगुण से शक्ति, शक्ति से नाद, नाद से बिन्दु, बिन्दु से कुण्डिलिनी (चितकला भी कुण्डलिनी का रूप है)। इसी प्रकार नित्यानन्द से अमृत रस परम बिन्दु, आज्ञा चक्र, विशुद्ध चक्र आदि के क्रम से मूलाधार तक आता है।

सारांश (Summary)

मूलाधार चक्र चतुर्दल पद्म है। दल रक्त वर्ण हैं। प्रत्येक दल पर व श ष स अक्षर स्वर्णिम रंग में चमकते हैं। बीज कोष के बीच में अष्ट शूल युक्त धरा मण्डल है। इसके निम्न भाग में धरा बीज लं है जिसके चार भुजाएँ हैं और ऐरावत पर आरुढ़ है। वह पीत

वर्ण है और हाथ में वज्र थामे है। धरा बीज के बिन्दु के अन्दर शिशु ब्रह्मा रक्त वर्ण चतुर्भुज विराजमान हैं। उनके हाथ में दण्ड, कमण्डल, रुद्राक्षमाला है और एक हाथ से अभय मुद्रा प्रदर्शित कर रहे हैं। उनके चार मुख हैं। बीज कोष (Pericarp) में एक रक्त पद्म है जिस पर चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति डाकिनी विराजमान हैं। वह चतुर्भुज रक्त वर्ण हैं। उनके हाथ में शूल खटवांग खड्ग और चषक (प्याला) है। बीज कोष में विद्युत जैसी चमक वाला त्रिभुज है जिसमें कंदर्प वायु और काम बीज हैं। दोनों ही रक्त वर्ण हैं। इनके ऊपर स्वयं भू लिंग है जो श्याम वर्ण है। इसके चारों ओर कुण्डलिनी साढ़े तीन चक्र लगाये हैं और ऊपर भी है। इस सब के ऊपर चित कला है जो कुण्डलिनी का ही दूसरा रूप है।

स्पष्टीकरण

इस चक्र का **लाल त्रिभुज** रजोगुणी (उत्पत्ति कारक) योनि का प्रकटीकरण करता है। उसके अन्दर श्याम वर्ण (कामासिक्त) लिंग को दर्शाता है जिसका मुख छिद्र बन्द है (अर्थात् अधो रेतस न होकर ऊर्ध्व रेत: है)। यह लिंग और योनि दोनों ही **इन्द्र के ऐरावत** पर आरुढ़ हैं अर्थात् इतनी कामासिक्त मस्ती में हैं जितना इन्द्र (जिसके भोगों की सीमा नहीं) हो सकता है। यहाँ मस्ती है परन्तु हाथी की चाल से। ऐरावत की कई सूड़ें—आनन्द मनाने की विवधात्मक काम केलि की विभिन्न मस्त मुद्राओं को प्रकट करती हैं। यह सम्भोग पूरी तरह काम पूर्ण है इसका प्रकटीकरण **पीले रंग के धरा-बीज** अर्थात् **काम-बीज लं** से होता है। पीला रंग ज्वालामय है। कामाग्नि भी ज्वाला ही है। ऐसा कामाग्नि पूर्ण सम्भोग एक आधार (धरा मण्डल) पर होता है अधर में नहीं। यह धरा क्षेत्र आठ शूल युक्त है। दो हाथ, दो पाँव पुरुष के और दो हाथ, दो पाँव नारी के, इस प्रकार सम्पूर्ण क्षेत्र में आठ शूल हो जाते हैं। एक स्थान पर यह **शूल स्त्री के स्तन की घुण्डी** के समान कहे गये हैं। अर्थात् यह शूल के समान प्रहार करने वाले परन्तु चूचुक के समान मुलायम हैं। ऐसे सम्भोग में दुहरी शक्ति निह्नित है—ब्रह्मा की प्रजावर्द्धिनी शक्ति (वीर्य की अधोगति करने से) तथा कुण्डलिनी को ऊर्ध्वगति देने वाली शक्ति—डाकिनी (वीर्य की ऊर्ध्वगति होने से)। मूलाधार का बीज कोष मूल-ग्रन्थि है जहाँ से चार रजो गुणी (उत्पादक) नाड़ियाँ निकलती हैं। इन नाड़ियों के परिचयात्मक नाम वर्णमाला के अन्तिम चार अक्षर हैं—व श ष स। काम बीज (काम) में अतुल शक्ति (Thunder bolt) है।

सम्भोग मार्ग (गृहस्थी) वाले तान्त्रिक ('भित्वा तल्लिंगरूपं पवन दहन योराक्रमेणैव गुप्तम' 'हुकारेण तत् लिंगम् भित्वा ब्रह्मद्वारस्य मध्येविरचयति') हुंकार के साथ अर्थात् जोर लगाकर लिंग को ब्रह्मद्वार के अन्दर प्रवेश करते हैं। पवन अर्थात् कंदर्प (काम वायु) और दहन (कामाग्नि) के आक्रमण से ('हंसमुपस्मृत्य शनैराकंचयेद् गुदम्आगम कल्पद्रुम') हंस: जाप (प्राणायाम) करते हुए शन: शन: गुदा (मलद्वार) को संकुचित कर (अर्थात् अश्विनी एवं वज्रोली मुद्रा के अभ्यास द्वारा) कुण्डलिनी को जाग्रत करते हैं। (देखें, षट चक्र निरुपण 50)। तथा—

मूलाधार सरोजे तु त्रिकोणमतिसुन्दरम्।
कामो भवति तन्मध्ये बालार्क कोटिसंनिभम्॥

इस मूलाधार के त्रिकोण पर आप ध्यान दें तो तान्त्रिक रेखांकन (यन्त्र निर्माण) के आधार पर उपर्युक्त सम्भोग मार्ग की बात और भी अधिक प्रमाणित हो जाती है—अधोमुखी त्रिभुज का अर्थ है योनि, उसके अन्दर लिंग है जिसका मुँह बन्द है (अर्थात् वीर्य का स्खलन नहीं हो सकता)। अब 'कामाग्निना कूर्चयोगात् परं हंसाभिलाषिणीम' कामाग्नि के साथ हं सः (प्राणायाम) का योग होने से परमहंस की अभिलाषिणी कुण्डलिनी स्थान छोड़ देती है। सर आर्थर एवलोन इस सम्बन्ध में लिखते हैं—"As the result of excitation by the Kamagni Passion is excited in her. She is impelled by the Fire of Kama towards the Param Hansa in the Sahasrar."

'लाक्षाभपरमामृतम् पर शिवात्पीत्वा पुनः कुण्डली' परम अमृत जो कुण्डली पीती है और परशिव से निकलता है, अर्थात् जीवन का आधार ओज (कुण्डली में चढ़ने वाला) परम पुरुष (जो यम नियमादि से इन्द्रयादि वश में करके उनका स्वामी ईश्वर बना हुआ है) द्वारा कुण्डलिनी नाड़ी में चढ़ाया जाता है वह लाल (लाक्षाभम् अलक्तरसवत् रक्ताभम्) है। इसका स्पष्टीकरण सर जान वुडरौफ ने "The Serpent Power – Edition 1958' में इस प्रकार दिया है—Shankar says, it is so coloured because it is mixed with the menstrual fluid. आगे वह बात को सम्भालते हुए कहते हैं Which is symbolic, like the rest of the erotic imagery. Red is the colour of the Rajo-Guna. शंकराचार्य की रजःस्राव वाली बात को मर्यादा के नाते भले ही Symbolic कह दिया जाय अन्यथा उनकी जैसी बातों को Symbolic बताकर अपनी बात की पुष्टि करने के लिए बहुत से लोगों को erotic imagery प्रमाणों का सहारा लेना पड़ा है।

'बृहच्छीक्रम तन्त्र' में पराशक्ति का वर्णन करते हुए कहा है **'पराविराज वामोरुमदालसवाः स्त्रियम्'** (अर्थात् पराशक्ति अत्यन्त सुन्दर देहयष्टि वाली ऐसी स्त्री है जिसके अंग अत्यन्त काम वेग के कारण उन्मत्त हो रहे हैं।) समाधि के आनन्द की बात करते हुए माया तन्त्र कहता है—**शिव शक्त्योः समारस्यात्मकम् प्रकृतिनोऽपरे**। आगे इसे स्पष्ट करत हैं कि **'स्त्रीपुंयोगे तु यत् सौख्यं सामरस्यं प्रकीर्तितम'** (आनन्द का वह अनुभव जो स्त्री और पुरुष के सम्भोग से उद्‌भूत होता है)। सम्भोगानन्द (कामानन्द) को समाधि आनन्द (ब्रह्मानन्द) का प्रतीक मानने वाले कह सकते हैं "The bliss of union of shiv a and shakti, of which sexual union is the meterial type – Sir John Woodroffe; अन्य मत वाले जीव और आत्मा के मिलन को योग और उससे उत्पन्न आनन्द को समाधि का आनन्द कहते हैं। कुछ शिव और आत्मा के योगानन्द को, कुछ ज्ञान और शक्ति के योग के आनन्द को, कुछ पुरुष व प्रकृति के योग के आनन्द को, कुछ आत्मा व परमात्मा के मिलन (एक्य भाव को प्राप्त) होने के आनन्द को, कुछ कला से चिदानन्द के योग के आनन्द को (जो नाद पर होता है), कुछ महादेव और

परा के संयोग के आनन्द को समाधि का आनन्द बताते हैं। **इन सब में एक सामान्य और गृहस्थ व्यक्ति के लिए उपयुक्त और सुलभ समाधि आनन्द का मार्ग पति-पत्नी का सम्भोग-आनन्द है।**

धर्म पत्नी

भारत में पत्नी को धर्म-पत्नी कहा जाता है। **पत्नी वह होती है जो पति को संतान उत्पन्न करने में योग देती है।** संतान से समाज वर्धन होता है। यदि संतान विकसित शरीर-मेधा युक्त है, तो समाज विकसित बनेगा। यदि संतान अविकसित शरीर और मेधा युक्त हुई तो भावी समाज भी वैसा ही रुग्ण और पंगु बन जायेगा। अतः संतान उत्पन्न करने भर के लिए किसी की पत्नी बनना एक सामाजिक रिश्ता है।

ऐसी पत्नी 'धर्म-पत्नी' नहीं है। **पत्नी का 'धर्म-पत्नी'-पन उस समय प्रारम्भ होता है जब पति के लिए पत्नी धर्म के विकास में सहायक हो। यह धार्मिक विकास 'सम्भोग-समाधि' में निहित है।** इसीलिए पत्नी को ही धर्म-पत्नी बनने का अधिकार मिला है क्योंकि सामाजिकता के सन्दर्भ में इस प्रकार का धर्म-निर्वाह अत्यन्त गुप्त रखा जाता है। यह **'गुप्त धर्म'** यही कुण्डलिनी-तन्त्र है। **जो व्यक्ति** (शिव के समान) **अपनी पत्नी** (शिवा के समान) **के साथ कुल कुण्डलिनी धर्म का विकास** (कुण्डलिनी शक्ति का उत्तरोत्तर विकास होता है यह षडचक्र भेदन में स्पष्ट किया जा चुका है) **करता है उसके लिए पत्नी अर्धांगिनी बन जाती है।** इस विधि में अकेला पुरुष अथवा अकेली स्त्री कुछ नहीं कर सकती। दोनों एक होकर ही इस धर्म-निर्वाह को पूरा कर पाते हैं अतः पति भी आधा (अधूरा) और पत्नी भी आधी (अधूरी) है और दोनों एक-दूसरे के पूरक अर्धांग हैं। कुछ लोग सोचेंगे कि पत्नी के साथ धार्मिक अनुष्ठान पूजा, पाठ, हवन, पूजन में बैठने से पत्नी का धर्म-पत्नी-पन पूरा हो जायेगा। नहीं ! इन कामों के लिए तो किसी भी स्त्री को आप बिठा सकते हैं कोई तात्विक बाधा नहीं आयेगी।

मैंने सुना है कि पत्नी के न होने पर श्री रामचन्द्रजी ने अपने अश्वमेध यज्ञ में सोने की सीता बनाकर बिठाली थी। वहाँ सोने की, लोहे की या खून माँस की कोई भी सीता बिठा सकते हैं परन्तु कुल-कुण्डलिनी के धर्मानुष्ठा में जहाँ सम्भोग ही समाधि का द्वार हो असली पत्नी की ही आवश्यकता होगी। उस समय हीरे की सीता भी व्यर्थ होगी। कुल कुण्डलिनी का तत्व ज्ञान जानने वाले के लिए बाहरी अनुष्ठानों का विशेष महत्व नहीं होता। **उसके सारे अनुष्ठान अपने अन्दर चलते हैं और उसकी अपनी पूर्णता इन आंतरिक गुप्त धर्म अनुष्ठानों को करने के लिए केवल अपनी पत्नी से ही प्राप्त होती है।** इन तथ्यों से व्यक्ति **के लिए धर्म-पत्नी की जीवन में कितनी आवश्यकता है यह स्पष्ट हो जाता है।** इस आवश्यकता को देखते हुए उन तान्त्रिक लोगों ने बहुत से उपाय किये जिनकी 'पत्नी' नहीं थी। इसमें पहला उपाय उन्होंने यह किया कि पत्नी की बात समाप्त करके उसके स्थान पर नारी शब्द जोड़ दिया। आप जानते हैं पत्नी की अपेक्षा नारी मिलना अधिक सुगम होता है, क्योंकि 'पत्नी' बनना अपने जीवन को दाँव पर लगाना होता

है। यही हाल पतियों का भी है। 'पत्नी' शब्द के स्थल पर 'नारी' शब्द लगा देने से तन्त्र बदनामी की ओर उन्मुख हुआ। अतः **जहाँ जहाँ तन्त्र शास्त्रों में 'नारी' शब्द किसी विशेष अनुष्ठान हेतु उपयोग में आया है वहाँ 'पत्नी' शब्द लगा देने से सम्पूर्ण तन्त्र गंगाजल की भाँति पवित्र और समाज-मान्य हो जाता है।**

स्वाधिष्ठान चक्र

ब्रह्म नाड़ी (सुषुम्ना) के अन्तर्गत दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है जो जननांग के मूल में स्थित है। सिंदूर वर्ण है। यह षट-दल पद्म है1 इन दलों पर विद्युत के समान चमकते हूए अक्षर बं से लं तक हैं। लं अक्षर इन्द्र का बीज (पुरन्दर) भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत चमकदार जल सदृश वरुण का क्षेत्र हैं जिसका आकार अर्धचन्द्र जैसा है जिसमें मकर पीठ पर वं बीजाक्षर सुशोभित है जो बसंत ऋतु के चन्द्रमा के समान शुभ्र है। मकर वरुण का वाहन है। वरुण के हाथ में पाश है। वं के बिन्दु में चतुर्भुज श्याववर्ण हरि (विष्णु) का ध्यान करो। विष्णु नील वर्ण हैं। गोतमीय तन्त्र में इस ध्यान के बारे में कहा है कि 'उनके हृदय पर कौस्तुभ मणि' (Gem) है जो दस हजार सूर्यों की प्रभा वाली है, उससे नीचे दस हजार चन्द्रों के समान वनमाला है। कौस्तुभ मणि के ऊपर 'श्री वत्स' है जो दस हजार चन्द्रों की प्रभा वाला है। विष्णु का वाहन गरुड़ है। विष्णु के हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं और वे पीताम्बर धारी हैं। इस चक्र में राकिनी देवी का स्थान है। वह नील वर्ण है; उसके हाथों में शूल, पद्म, डमरू और टंक (कुल्हाड़ा) है। वह भयानक आकृति वाली, दाँत बड़े-बड़े और बाहर निकले हुए, रक्तिम आँखों वाली दुहरे कमल पर आसीन है, जिसके एक नासा रन्ध्र से रक्त की धार निकल रही है। वह श्वेत अक्षत (चावल) पसन्द करने वाली, मत्त चित्त है। 'सौभाग्य रत्नाकर' के अनुसार राकिनी रक्त धातु की अधिष्ठात्री है।

सारांश (Summary)

स्वाधिष्ठान चक्र सिंदूरी रंग का पद्म है जिसके छः दल हैं, उन पर छः अक्षर चं भं मं यं रं लं विद्युत आभा के समान चमकते हैं। इस पद्म के बीज कोष के अन्तर्गत अष्ट दल कमल के रूप में जलीय क्षेत्र है। उसके बीच में अर्ध चन्द्र है। यह क्षेत्र श्वेत है। इसके अन्दर वरुण बीज वं एक मकर पर हाथ में पाश लिए आसीन है। बिन्दु के बीच में गरुड़ पंर विष्णु बैठे हैं। उनके चार हाथ हैं जिनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं। वह पीताम्बर धारण किये हुए हैं। गले में लम्बी वन माला, वक्ष पर कौस्तुभ मणि तथा श्री वत्स चिह्न है और वे यौवन पूर्ण हैं। रक्तिम पदम पर बीज कोष में श्याम वर्ण शक्ति राकिनी है और उनके चारों हाथों में शूल, पद्म, डमरू और टंक हैं। वह त्रिनेत्री, भयानक दाँतों वाली, भयंकर हैं। श्वेत अक्षत पसन्द करने वाली हैं। उनको एक नासारन्ध्र से रक्त धार बहती रहती है।

स्पष्टीकरण

मूलाधार से आती हुई कुण्डलिनी शक्ति का इस स्वाधिष्ठान ग्रन्थि को सक्रिय करना वासनात्मक नहीं होता। वासना मात्र मूलाधार तक ही रह जाती है। यहाँ का बीज

'व' वरुण बीज है अर्थात् यह जल का देवता है। **बिन्दु** लयात्मक (सम्भोग) अवस्था का प्रकटीकरण करता है (इसका स्पष्टीकरण आज्ञाचक्र के अन्तर्गत है।) **जल**, अमृतमय शीतलता देने वाला, (कामाग्नि शीतल करने वाला) योनि स्राव है जो वासनात्मक से आध्यात्मिकता की ओर वर्ण परिवर्तन करके श्वेत हो गया है। यह जल **'वं' मकर** पर आधारित है। **'म' कार** पंच 'म' कार साधना से सम्बन्धित है। एक स्थान पर लिखा है कि "जल को दूषित होने से बचाने के लिए जैसे नदी में मकर होते हैं, वैसे ही इस अमृत जल में मकर है, जो वासना को खा गया है। अर्थात् यह योनिस्राव वासना रहित सम्भोग का परिणाम है।" इस ग्रन्थि में एक के अन्दर एक तीन गाँठें हैं। सब से बाहरी आवरण से छः सत-रजोगुणी नाड़ियाँ निकलती हैं जो जननांगों से सम्बन्धित हैं। उसमें अन्दर की ओर से आठ नाड़ियाँ निकलती हैं और उससे भीतरी सतह से भी आठ नाड़ियाँ निकलती हैं। भीतरी सोलहों नाड़ियाँ ऊर्ध्व भागों में जाती हैं। व के बिन्दु में **विष्णु** (उत्पन्न प्रजा का पालन करने वाली शक्ति, न कि प्रजा उत्पन्न करने वाली) का होना उत्पत्ति रहित सम्भोग (अर्थात् सम्भोग समाधि) को प्रकट करता है। इस चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति **राकिनी** जो कि लाल कमल पर आसीन है **'श्याम'** कही गई है। यह 'श्याम' उस नारी को नाम दिया है जो सर्दियों में गर्म और गर्मियों में ठण्डी रहती हो। पाठकों को यदि ध्यान हो, यह गुण कुण्डलिनी शक्ति में है जिसका आधार लाल कमल (मूलाधार) होता है। 'श्याम' के बारे में शाक्तानन्द तरंगिणी में कहा है—

शीतकाले भवेदुष्णा चोष्णकाले च शीतला।
प्रतप्तकाञ्चनाभा सा श्यामा स्त्री परिकीर्तिता॥

एक स्थान पर कुण्डलिनी देवी का ध्यान इस प्रकार करने का निर्देश दिया है—

ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीमिष्टदेवस्वरूपिणीम्।
सदा षोड़षवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम्॥
नव यौवन सम्पन्नाम् वस्त्राभरणभूषिताम्।
पूर्ण चन्द्रप्रभा रक्तां सदा चञ्चल लोचनाम्॥

—षटचक्र निरूपणम्

(इष्टदेव स्वरूप कुण्डलिनी देवी का ध्यान सदैव सोलह वर्ष की ऐसी पूर्ण नवयौवना के रूप में करो जो बहुत सुन्दर, उन्नत उरोजों वाली, विभिन्न प्रकार के स्वर्णाभूषण युक्त, सोलह कलाओं से पूर्ण चन्द्र के समान कांतिवान, कामासिक्त रक्तिम-आभायुक्त हिरनी के समान चंचल नेत्रों वाली हो।) सर आर्थर-एवलौन ने 'रक्तां' को सुन्दरी का पर्याय कहा है—'Red (Rakta) as regards Sundari so says the Author of Shaktananda Tarangini. आगे वह कहते हैं The Text may also be read as meaning that—'Read' is an atribute applicable to Shri Sundari that is, the 'Devi' Tripura Sundari'. (श्री यन्त्र की अधिष्ठात्री त्रिपुर सुन्दरी ही मानी गई है।)

यहाँ एक बात सोचने की है कि **जैसा ध्यान यहाँ कुण्डलिनी का दिया गया है, वैसा सोचने मात्र से कुण्डलिनी जगाने के स्थान पर साधक को स्वप्न दोष, प्रमेह, शीघ्र पतन आदि ऐसी लैंगिक व्याधियाँ लग जायेंगी जिनका आधार मनोवैज्ञानिक (Psychological) होता है।** इस ध्यान के स्थान पर स्वयं नवयौवन सम्पन्न नारी के साथ समागम हो तो कुछ बात बनने की आशा की जा सकती है। ऐसा ही धोखा लोगों को कोणार्क, ऐलोरा आदि के मन्दिरों की मिथुन मूर्तियों को देखकर होता है कि ये ध्यान के लिए हैं। नहीं ! **यह आँख बन्द करके सोचने के लिए बनाई गई मूर्तियाँ नहीं हैं, अपितु क्रियात्मक रूप से साधना करने के लिए हैं।** यही काम-कला कुण्डलिनी का मूल आधार है। मुझे ऐसे सन्यासियों का पता है जो कुण्डलिनी जगाने के चक्कर में अपनी गुदा में अँगुली डालते हैं। अथवा समलैंगिक मैथुन में प्रवृत्त होते हैं। यह मैं व्यभिचारियों के बारे में नहीं कह रहा वास्तविक कुण्डलिनी साधक सन्यासियों की बात कर रहा हूँ जो वासना रहित कुण्डलिनी जागरण की खोज करते हैं। **लोगों को केवल मीनार के कंगूरे दिखाई देते हैं उसकी नींव के नीचे की ईंटें कैसे स्थान पर हैं, वहाँ उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती, परन्तु कँगूरों का निर्माण वही कर पाते हैं जो नींव की ईंट पर ध्यान देते हैं।**

पद्म दलों का सिन्दूरी रंग, सतोगुणी तथा रजोगुणी, पीला और लाल का मिश्रण, वासनात्मकता से आध्यात्मिकता की ओर विचार परिवर्तन का द्योतक है। जब ओज इस ग्रन्थि तक पहुँचता है, तो सम्बन्धित नाड़ियों को ओजपूर्ण (क्रियाशील) बनाता है और कुण्डलिनी शक्ति ऊपर की ओर बढ़ जाती है।

मणिपूरक चक्र

दश दल पद्म का मणिपूरक चक्र नाभि के मूल में चमकता है। इसके दलों का रंग जल भरे बादलों के समान गहरा श्याम वर्ण है। इसके दलों पर डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं अक्षर चमकते हैं जो नील वर्ण हैं। उगते हुए सूर्य के समान प्रभा वाला त्रिभुजाकार अग्नि क्षेत्र है। इसके बाहर तीन स्वास्तिक चिह्न हैं और उसके अन्दर अग्नि बीज रं है। अग्नि चतुर्भुज, बाल सूर्य सम प्रभायुक्त हैं। उसकी गोद में सिन्दूर वर्ण रुद्र हैं, वे भभूत लपेटने के कारण श्वेत हैं। मेष पर आरूढ हैं। तीन नेत्रों वाले हैं, उनके हाथ अभय मुद्रा और वर मुद्रा में उठे हुए हैं, वह सृष्टि संहारक हैं। रुद्र को अन्य ध्यान मुद्राओं में वृषभ पर आरूढ़ माना जाता है। वाहिनी (अग्नि) के ध्यान के बारे में कहीं-कहीं लिखा है कि वह 'रं' पर स्थित है। उसके एक हाथ में रुद्राक्ष माला है और शक्ति (शस्त्र) दूसरे में। इस पद्म की अधिष्ठात्री लाकिनी देवी के ध्यान के बार में लिखा है—

नीलां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिणयनलसितां दंष्ट्रिणीमुग्ररूपां
वज्रं शक्तिं दधानामभयवरकरां दक्षवामे क्रमेण।
ध्यात्वा नाभिस्थपद्मे दशदलविलसत्कर्णिके लाकिनीं तां
मांसस्थां गोडभक्तोत्सुकहृदयवीं चिन्तयेत् साधकेन्द्रः ॥

मणिपूरक चक्र Manipūrak Cakra

(Epigastric Plexus)
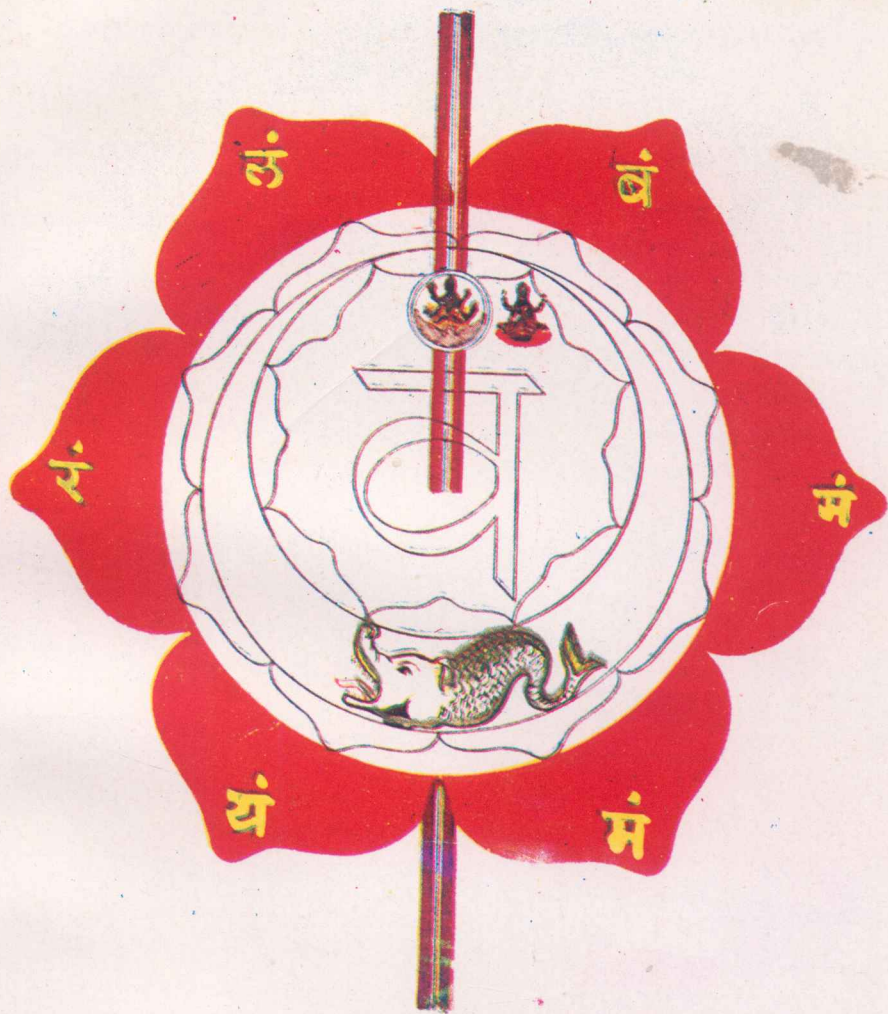
स्वाधिष्ठान चक्र Swādhishthān Cakra
(Sacral Plexus)
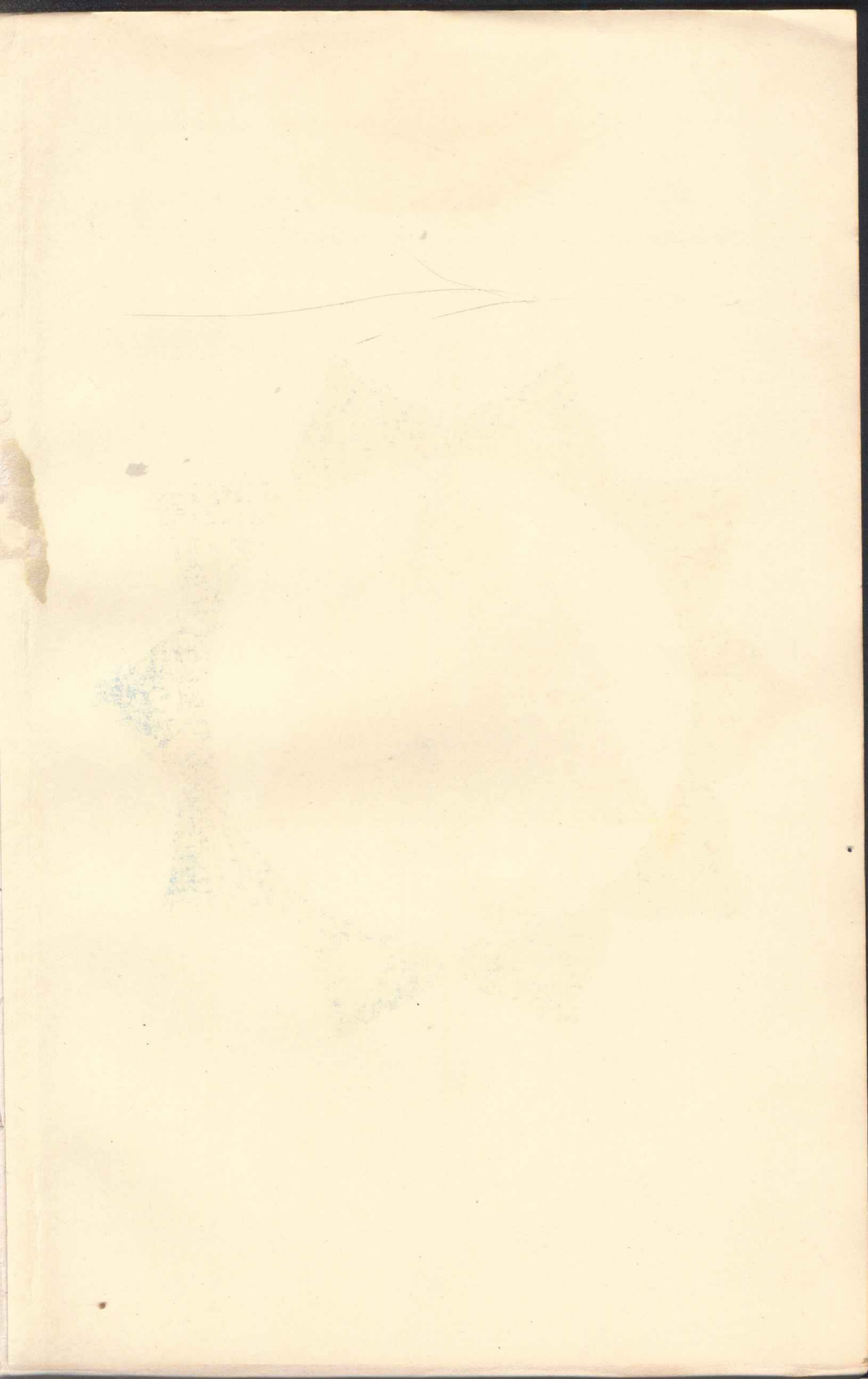
लाकिनी देवी नीलवर्ण है, तीन चेहरे हैं, प्रत्येक चेहरे पर तीन आँखें हैं, दाँत निकले हुए भयोत्पादक हैं। अपने दाहिने हाथों में वज्र और शक्ति लिए हैं और बाँयी ओर के हाथ वर मुद्रा और अभय मुद्रा में उठे हुए हैं। वह नाभि चक्र के बीज कोष के अन्दर है जो दश दल युक्त है। वह माँस भक्षी है। उसका वक्ष रक्त और चर्बी से भरा है जो उसके मुँह से (माँस भक्षण करने में) गिरा है। गौतमीय तन्त्र इसे मणिपूरक चक्र इसलिए मानता है क्योंकि यह मणि के समान चमकता है।

लाकिनी के बारे में एक और ध्यान मूर्ति इस प्रकार मानी जाती है—वह चतुर्भुजी, चमकदार, श्याम वर्ण वाली, पीताम्बरी, बहुत से आभूषण पहने, अमृत पान से मत्त चित्त है।

सारांश (Summary)

मणिपूरक चक्र जल भरे मेघों के रंग वाले दश दलों का पद्म है जिसके प्रत्येक दल पर डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं अक्षर नीलवर्ण में चमकते हैं। इस पद्म के बीज कोष में त्रिभुजाकार रक्त वर्ण अग्नि क्षेत्र है। इसकी बाहरी भुजाओं पर स्वास्तिक चिह्न हैं। इसके अन्दर अग्नि बीज रं है जो रक्त वर्ण, मेषारूढ़, चतुर्भुज, हाथों में वज्र और शक्ति (शस्त्र) लिए हैं शेष दोनों हाथ वर और अभय मुद्रा में उठे हैं। वाहिनी बीज के अंक में रुद्र हैं जो रक्त वर्ण, वृषभ आरूढ़, तथा शरीर पर भभूत मलने के कारण श्वेत वर्ण दिखाई देते हैं। वृद्धावस्था में प्रतीत होते हैं। बीज कोष के अन्दर रक्तिम पद्म पर शक्ति लाकिनी है जो नीलवर्ण, तीन चेहरे वाली, प्रत्येक चेहरे पर त्रिनेत्र, चतुर्भुजी, हाथों में वज्र और शक्ति थामे तथा दो हाथों द्वारा वर और अभय दान देते हुए, बड़े-बड़े डरावने दाँतों वाली, खिचड़ी (दाल चावल मिलाकर पकाये हुए) में माँस और रक्त मिला कर खाना पसन्द करने वाली है।

स्पष्टीकरण

नाभि पद्म का चित्रण तीन आधारों को लेकर चला है—जठराग्नि (पेट की ज्वाला), कामाग्नि और कुण्डलिनी। यह ग्रन्थि दस नाड़ियों वाली है। नाड़ियाँ बरसात के बादल के वर्ण वाली (बादल पृथ्वी के पानी से ही बनता है और उसी को पोषित करता है) अर्थात् भोजन से पाचित रस रक्तों को शरीर द्वारा उत्पन्न कराकर उसी के पोषण में लगाने वाली हैं। यहाँ का 'अधोमुखी रक्त वर्ण त्रिभुज' योनि का रजोगुणी (वासनात्मक, जिसमें उत्पत्ति होती है) होना दर्शाता है जिसमें अग्नि बीज 'र' है। योनि में आग होना कामाग्नि का संकेत है। यह कामाग्नि अर्थात् प्रकट में काम-क्रिया मेष (भेड) के समान, आँख बन्द करके, स्वत: ही चलने वाली है। योनि के बाहरी भाग पर स्वास्तिक काम क्रिया के मध्य श्वास सन्तुलन का संकेत देते हैं कि इड़ा (बाँया) और पिंगला (दाहिना) स्वर बन्द रहते हुए सुषुम्ना (ऊपरी) स्वर में कुण्डलिनी चढ़ाते चलो। अग्नि 'रं' का बिन्दु रजोगुणी रुद्र है जो सतोगुणी होने के प्रयत्न में श्वेत वर्ण बनने के लिए भस्म मले हुए हैं; अर्थात् साधक (स्वयं शिव) वासनात्मक भाव से वासना रहित सम्भोग की ओर अग्रसर हो रहा है। रुद्र के अलावा इस

क्षेत्र की अधिष्ठात्री शक्ति लाकिनी है जो त्रिमुखी है अर्थात् पाचन, विसर्जन और पोषण जैसे कार्य करती है। यह नील वर्ण अर्थात् सभी को मोहित करने वाली है। भूख के मोह से सारा संसार चिल्लाता है—पेट पापी है, हम नहीं। यह भूख -शक्ति लाकिनी है जिसके बड़े-बड़े दाँत बाहर निकले हुए हैं। सब को खा जाने वाली, दाल, चावल, माँस रक्त आदि पसन्द करने वाली यही देवी है। पद्म दलों पर अक्षर भी नील वर्ण है अर्थात् ग्रन्थि की नाड़ियों का सम्बन्ध 'नीलवर्ण', भूख की देवी से है। यह भूख-सम्बन्धी दसों नाड़ियाँ पाचन, विसर्जन और पोषण से सम्बन्धित हैं।

अनाहत चक्र

मणिपूरक चक्र से ऊपर हृदय देश में अनाहत चक्र का ध्यान रखना चाहिए। यह बारह दल का बन्धूक पुष्प के समान चमकदार वर्ण वाला पद्म है, जिसके दलों पर कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं अक्षर सिन्दूरी (Vermilion) वर्ण में चमकते हैं। यह गुण में कल्पतरु से भी अधिक है (क्योंकि यह बिना इच्छा के ही मोक्ष प्रदान करता है जबकि कल्पतरु तो माँगने पर इच्छा पूर्ण करता है) इसके बीज कोष के अन्तर्गत धूम्र वर्ण का षटकोणीय वायु क्षेत्र है। अनाहत चक्र का वायु बीज यं है जो धुएँ के गुब्बारे के समान वर्ण वाला, (शंकराचार्य के मतानुसार यह जीवात्मा का धुआँ हैं जो ज्वाला के समान है, तत्व चिंतामणि के अनुसार यह 'धूमावली धूसर' है) चार भुजाओं वाला, काले मृग पर आरूढ़ है। इसके अन्दर करुणा (दया) का सागर रूप ईश्वर है जिसकी आभा हंस के समान है, जिसके दोनों हाथ तीनों लोकों से अभय दिलाने तथा वर देने के लिए उठे हुए हैं। वायु के हाथ में अंकुश है। ईश भी शिव के समान त्रिनेत्र हैं।

एक स्थान पर कहा गया है—'ग्रैवेयाङ्गदहार नुपूरयुतं क्षौमाम्बरं चिन्तयेत्' तथा 'कांतं कान्तशशांककोटिकिरणां प्रोद्यत्कपर्दोज्ज्वलम्' (अर्थात् 'ध्यान इस प्रकार करें कि ईश जवाहरात की नेकलेस तथा मणियों की माला गले में, घुँघरू पैरों में डाले हैं तथा रेशमी परिधान पहने हैं। तथा अति सुन्दर, दस लाख चन्द्रमा की मृदु चमक के साथ अपने जटाधारी बालों में यह सुशोभित है।' नई तड़ित (कौंदा) के समान पीले वर्ण वाली काकिनी देवी यहाँ की अधिष्ठात्री है जो त्रिनेत्री, मत्तचित्त (A happy and excited mood) और प्रसन्न है, वह सभी के लिए उपकारी है। सभी प्रकार के आभूषण से युक्त हैं। उसके चार हाथों में पाश और कपाल हैं। शेष दोनों हाथ वर और अभय मुद्रा में उठे हुए हैं। उनका हृदय सहस्त्रार से टपकने वाले अमृत रस का पान करने से परमानन्दमय, विशाल और मृदु हो चुका है। काकिनी का ध्यान काले मृग चर्म को ओढ़े हुए मानकर करने की सलाह 'तत्व चिन्तामणि' में दी है। विश्वनाथ के अनुसार काकिनी की ध्यान मूर्ति इस प्रकार है—काकिनी चर्बी (मेद) में निवास करती है, उसके हाथों में पाश, शूल, कपाल और डमरू हैं। वह पीत वर्ण, चावल और दही पसन्द करने वाली है। उसका सुन्दर शरीर

थोड़ी सी झुकी हुई मुद्रा में है। उसका हृदय वारुणी (चावल की शराब) के घूँटों से प्रफुल्ल है।

काकिनी के ध्यान के पश्चात् शक्ति का ध्यान करें कि इस पद्म के बीज-कोष के अन्तर्गत शक्ति का कोमल शरीर १ करोड़ विद्युत प्रभा के समान त्रिकोण के रूप में चमकता है। इस त्रिभुज के अन्दर बाण-लिंग है जो चमकते स्वर्ण के समान है। त्रिभुज स्त्रीलिंग (शक्ति त्रिभुज) होने के कारण अधोमुखी है और योनि के रूप में त्रिकोण-शक्ति मानी गई है। बाण-लिंग के छिद्र में मणि के समान अर्ध चन्द्राकार बिन्दु है।

एक स्थान पर बताया गया है कि त्रिभुज के अन्दर बाण-लिंग स्वर्णाभूषण युक्त, शीर्ष पर अर्धचन्द्र देव और और अति उत्तम रक्त पद्म उसके मध्य स्थित हैं। रक्त पद्म के बारे में यह भी कहा जाता है कि वह अनाहत पद्म के बीज कोष के नीचे है और अष्ट दल युक्त ऊर्ध्व मुख है, इस रक्त पद्म के अन्तर्गत कल्पतरु तथा अति सुन्दर इष्टदेव के आसन का मण्डप है। उसके चारों ओर फलफूलों से लदे पेड हैं, और उन पर चिड़ियों की मधुर चहचहाहट है, वहाँ इष्टदेव पर साधक अपनी **सांप्रदायिक विधि के अनुरूप ही ध्यान (मानस पूजा)** करे **'तत्र ध्यायेदिष्ट देवं तत्तत्कथोक्मार्गतः।'** यह अनाहत पद्मशिव का आसन है जो हंस (जीवात्मा) द्वारा शोभित है। जीवात्मा 'वायुरहित शान्त स्थान में दीपक की ज्योति के समान' प्रदीप्त है। अनाहत चक्र के पद्म-सूत्र सूर्य की रश्मियों के कारण चमक रहे हैं। यह सूर्य रश्मियाँ केवल सूत्रों पर ही पड़ रही हैं उससे नीचे नहीं। दूसरे चक्रों के पद्म-सूत्र इतने चमकीले नहीं कहे गये। सम्पूर्ण बीज कोष वायु क्षेत्र से पूरित है उससे ऊपर सूर्य-क्षेत्र है तब उसके ऊपर वायु बीज तथा त्रिभुज आदि हैं, इस प्रकार ध्यान करें। मानसी पूजा का मन्त्र—

'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः।'

अनाहत चक्र सिद्ध होने पर साधक 'ईश्वरोऽपि जगतां रक्षाविनाशे क्षमः' ईश्वर हो जाता है और संसार की सृष्टि पालन तथा विनाश करने योग्य (Creating maintaining and destroying the universe) हो जाता है [यहाँ साधक शब्द जाल में न फँसे]। इस वाक्यांश का **सीधा** अर्थ है ब्रह्म तत्व में एक चित्त होने के कारण साधक जब चाहे संसार चक्र के कार्यकलापों से मुक्त हो अपनी साधना में लगा रह सकता है, जब चाहे संसार चक्र का आनन्द ले सकता है और जब चाहे जितना चाहे संसार चक्र के कार्य कलाप बढ़ा सकता है। सर ऑर्थर एवलॉन ने कहा है—

He becomes possessed of the power of creating, maintaining, and destroying the universe by reason of his unification with the Brahma Substance.

योगीशो भवित प्रियात्प्रियतमः कान्ता कुलस्यानिशं,
ज्ञानीशोऽपि कृती जितेन्द्रियगणो ध्यानावधनक्षमः।

गद्यैः पद्यपदादिभिश्च सततं काव्याम्बुधारावहो,
लक्ष्मी रंगणदैवतः पर पुरे शक्तः प्रवेष्टुं क्षणात् ॥

'तत्व चिन्तामणि' के अनुसार इस चक्र का साधक योगियों में श्रेष्ठ, स्त्रियों को पति से भी प्रिय लगने वाला (प्रियात्प्रियतमः कान्ताकुलस्यानिशं) क्योंकि वह उन्हें प्रसन्न करने वाला (कर्म-कौशल जानने के कारण) 'कर्म-कुशल' (कहलाता) है। वह विशेष रूप से बुद्धिमान और आदर्श कर्म (जिन्हें देखकर दूसरे करना प्रारम्भ करते हैं) करने वाला होता है। उसकी इन्द्रियाँ पूरी तरह उसके वश में रहती हैं। जहाँ जैसे चाहे वह उनका उपयोग कर सकता है और चाहे जब वह उन्हें रोक सकता है। वह ध्यान (चिन्तन) और अवधान (मन की गहरी एकाग्रता) दोनों में सक्षम होता है। बोलता है तो धारा प्रवाह बोल सकता है और विष्णु के समान 'लक्ष्मीं रंगण' देवता बन सकता है, **अर्थात् मुक्ति मार्ग पर चलते हुए भी सुख, सौभाग्य, ऐश्वर्य, लाभ का आनन्द ले सकता है।** इस बात को इस प्रकार समझने की भूल न करें—'सर्वसुख सौभाग्य ऐश्वर्य भोग करने के पश्चात् अन्त में साधक मुक्ति लाभ प्राप्त करता है।' अन्त में कुछ नहीं होता, वही होता है जो जीवन भर चलता है। **यदि प्रारम्भ से ही मुक्ति मार्ग पर नहीं चले तो अन्त में मुक्ति की पूँछ भी हाथ नहीं आने की।** अतः मुक्ति मार्ग पर चलते हुए ही आनन्द भोग की बात करो। 'परपुरे शक्तः प्रवेष्टुं क्षणात्' साधक दूसरे के दुर्ग में क्षण में प्रविष्ट हो सकता है। इसका अर्थ यह न लगायें कि साधक शत्रु के चारों ओर से पूर्णतः रक्षित दुर्ग में अदृश्य होकर जादूगर के समान हवा में उड़कर प्रवेश कर सकता है, इसका सीधा अर्थ है 'साधक दूसरे के मन की थाह पा सकता है' न कि साधक दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता है। सिद्धियों के प्रति गलत विज्ञापन करके जनता भ्रमित ही हुई है।

साधकों को चाहिए कि वे भ्रामक बातों के आधार पर सिद्धियाँ पाने का प्रयत्न न करें। **सिद्धियों के लोभ को त्याग कर तत्व मार्ग पर आगे बढ़ते चलें और मार्ग के सम्पूर्ण अवरोधों का आनन्दपूर्ण उपयोग करते चलें।** उन्हें संसार कहीं भी दुःखमय प्रतीत नहीं होगा।

सारांश (Summary)

बन्धूक पुष्प के वर्ण के अनाहत पद्म के द्वादश दलों पर 'कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं' सिन्दूरी अक्षर चमकते हैं। इसके बीज कोष का षट्कोणीय क्षेत्र धूम्र वर्ण का वायुमण्डल है उससे ऊपर १ करोड़ तड़ितों की सी चमक मारेने वाले त्रिकोण सहित सूर्य मण्डल है। उसके ऊपर धूम्र वर्ण का वायु बीज है जो काले मृग पर स्थित है, चतुर्भुज, हाथ में अंकुश लिये हुए है। वायु बीज के अंक (बिन्दु-गोद) में त्रिनेत्री ईश हंस के समान हैं जिनके दो हाथ वर और अभय मुद्रा में उठे हुए हैं। अनाहत पद्म के बीज-कोष में रक्त पद्म पर शक्ति काकिनी स्थित है जो स्वर्ण के समान देदीप्यमान, सर्वाभूषण पहने, पीले रंग के वस्त्रों में चतुर्भुजी है। हाथों में पाश और कपाल धारण किये हैं शेष दोनों हाथों से वर और अभय दान दे रही है। गले में हड्डियों की माला डाले है। उसका हृदय अमृत रस से

मृदुल हो रहा है। त्रिकोण के मध्य में वाण-लिंग है जिसके सिर पर अर्धचन्द्र और बिन्दु है। यह लिंग स्वर्ण वर्ण और (कामोद्गमोल्लसित) पूर्ण कामेच्छा से तना हुआ है। इसके नीचे हंस के समान जीवात्मा है जो दीपक की स्थिर लौ जैसी है। इस पद्म के बीजकोष के नीचे अष्ट दल युक्त रक्त पद्म है जो ऊर्ध्व मुखी है। इस रक्त पद्म में कल्पतरु है और मणिमाणिक्य सज्जित इष्ट देव का मण्डप है। यही स्थल मानसी पूजा का स्थान है।

स्पष्टीकरण

इस चक्र के चित्रांकन में अधोमुखी तथा ऊर्ध्वमुखी त्रिभुज एक दूसरे में गुथे हुए दिखा कर सम्भोग मुद्रा का प्रदर्शन किया है। यह संभोग मुद्रा धूम्र वर्ण अर्थात् श्वास वायु की है। इड़ा (नारी) और पिंगला (पुरुष) दोनों को समान कर सुषुम्ना के श्वास काल में कुण्डलिनी के आगे बढ़नें की बात यहाँ कही है। इसलिए इस क्षेत्र को वायु का मंडल कहा है। यहाँ नारी-पुरुष समागम की भी बात की है। अधोमुखी त्रिभुज (योनि) में सूर्य मण्डल की बात प्रदर्शित करके उसका कामाग्नि मय होना प्रकट किया है और उसमें वाणलिंग प्रविष्ट दिखाकर सम्भोग का प्रदर्शन किया है। वाणलिंग को 'कामोद्गमोल्लसित' (वासना के उत्पन्न होने से उल्लसित) कह कर तत्वचिन्तामणि ने रहे सहे संदेह को भी समाप्त कर दिया है। इस त्रिकोण का रंग लिंग सहित स्वर्णिम दिखाया है अर्थात् यह सम्भोग शुद्ध सतोगुणी है। इस सब के ऊपर वायु बीज 'यं' है अर्थात् यहाँ पर वायु अर्थात् श्वास पर अधिक ध्यान देना है। वायु बीज 'यं' को वायु वर्ण धूम्र के रंग में प्रकट किया है। उसे काले मृग पर आरूढ़ दिखा कर श्वास की गति का प्रकटीकरण किया है; परन्तु इस श्वास गति को 'हंस' में संयत (प्राणायाम) करना सतोगुणी सम्भोग की महान आवश्यकता है। 'वायु-शक्ति' की अधिष्ठात्री का नाम काकिनी दिया है जो स्वर्ण वर्ण दिखाकर सतोगुणी प्रकट की है। यह सतोगुणी श्वास वायु अमृतमयी ज्वाला के समान है। बाणलिंग पर चन्द्र बिन्दु भी 'शीतल-ज्वाला' कुण्डलिनी का ऊर्ध्व लिंगीय प्रकटीकरण है। अनाहतचक्र के पद्म दलों का रंग बंधूक पुष्प जैसा, तथा उन पर सिंदूरी रंग के अक्षर दिखाकर अनाहत ग्रन्थि को बारह नाड़ियों का प्रदर्शित किया है; जो श्वास और रक्त सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित करती हैं। सतोगुण (आध्यात्म विधान) तथा रजोगुण (सृष्टि विधान) का मिश्रित वर्ण सिंदूरी है। वायु बीज 'यं' के बिन्दु में त्रिनेत्र ईश को चित्रित कर साधक को ज्ञान पूर्ण, और इन्द्रियों का स्वामी प्रदर्शित किया है। **बिना इन्द्रियों का स्वामी हुए कोई भी 'सतोगुणी-संभोग' नहीं कर सकता।**

इस अनाहत पद्म से नीचे आठ दलों के रक्त पद्म की बात की है। उसे कल्प वृक्ष युक्त् बताकर मानसी पूजा का स्थान कहा है। परन्तु यहाँ कोई ऐसी ग्रन्थि का प्रमाण नहीं मिलता जिनमें से आठ नाड़ियाँ निकली हों और उस पर (मानसी पूजा) मात्र ध्यान अथवा चिन्तन करने से कल्प वृक्ष के समान सर्व कामनायें पूर्ण होती हों।

विशुद्ध चक्र

इस चक्र का स्थान कण्ठ देश है—

विशुद्धि तनुते यस्मात् जीवस्य हंसलोकनात्।
विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महत्परम्॥

हंस (आत्मा) के अवलोकन से जीव शुद्ध होता है इसलिए यह पद्म विशुद्ध, आकाशीय, महत और परम चक्र कहलाता है। यह तेज पूर्ण आकाश (Ether) तत्व युक्त परन्तु मल-मुक्त चक्र है। यह षोड़ष दल पद्म नील लोहित (बैंगनी) धूम्र वर्ण युक्त है जिसके प्रत्येक दल पर गहरे लाल रंग के सोलह स्वर (षोड़षमातृका) प्रत्येक उस साधक को अनुभव होते हैं जिसकी बुद्धि योग-ज्ञान से शुद्ध हो चुकी है। इन स्वरों के ऊपर बिन्दु भी हैं—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः। आकाशीय (व्योम) क्षेत्र वृत्ताकार, तथा पूर्ण चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण है। तान्त्रिक रेखांकन के आधार पर आकाश का वर्ण श्वेत और आकृति वृत्त ही बनेगी यह बात विद्वान लोग जानते ही हैं। बर्फ के समान श्वेत हाथी पर 'व्योम' बीज रूप में श्वेत वर्ण में बैठे हैं [आकाश (व्योम) बीज 'हं' है जो श्वेत है।] उनके दो हाथों में पाश और अंकुश है, शेष दो हाथ वर और अभय दान दे रहे हैं। 'हं' के अंक (बिन्दु) में बर्फ के समान श्वेत महादेव विराजमान हैं जो अर्धनारीश्वर रूप हैं जो बाँयी और स्वर्ण वर्ण और दाहिनी ओर हिम-श्वेत वर्ण युक्त हैं। रसिक मोहन चट्टोपाध्याय की पुस्तक में अर्धनारीश्वर के रूप में एक साँड की कल्पना की है जिसका आधा शरीर शेर का है, सम्भव है इसलिए कि शिव का वाहन सांड (वृषभ) है और देवी का शेर (सिंह), जो उचित नहीं प्रतीत होता। यह अर्धनारीश्वर नभ-बीज के अंक में है। निर्वाण तन्त्र कहता है कि विशुद्ध चक्र के षटकोण तन्त्र के अन्दर एक वृषभ है, उस पर सिंहासन है। उस पर गौरी और उसके दाहिनी ओर सदाशिव विराजमान हैं, उनके पाँच चेहरे हैं, और प्रत्येक चेहरे पर तीन-तीन नेत्र हैं। शरीर पर भभूत मली हुई है। वह चाँदी के पर्वत के समान श्वेत वर्ण हैं। बाघम्बर तथा आभूषणों के रूप में सर्पों की माला डाले हैं। उनकी अर्धांगिनी गौरी हैं। उनके दश भुजाएँ हैं। उनके हाथ में शूल, टंक, कृपाण, वज्र, अग्नि (दहन), नागेन्द्र (नागराज), घंटा, अंकुश और पाश हैं और एक हाथ से अभय दान कर रहे हैं। इस प्रकार का ध्यान सदा शिव (सदा कल्याणकारी) है। इस विशुद्ध चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति 'साकिनी' है जो अमृत सागर है। ज्योति स्वरूप है। ऐसी ज्योति जो एकदम श्वेत वर्ण होकर भी शीतल है जैसे चन्द्रमा की चाँदनी। पीले वस्त्र धारण किये हुए हैं, उसके पाँच चेहरे हैं और प्रत्येक चेहरे पर तीन नेत्र हैं। वह चतुर्भुजी है, अपने हाथों में पाश, अंकुश, पुस्तक लिये हुए है और चौथे हाथ से ज्ञानमुद्रा प्रदर्शित कर रही है (कहीं-कहीं साकिनी के हाथों में धनुष, बाण, अंकुश और पाश की बात भी की गई है। ध्यान मूर्ति का अन्तर साधक के लक्ष्य के आधार पर हो जाता है। यह बात 'तन्त्र राज,
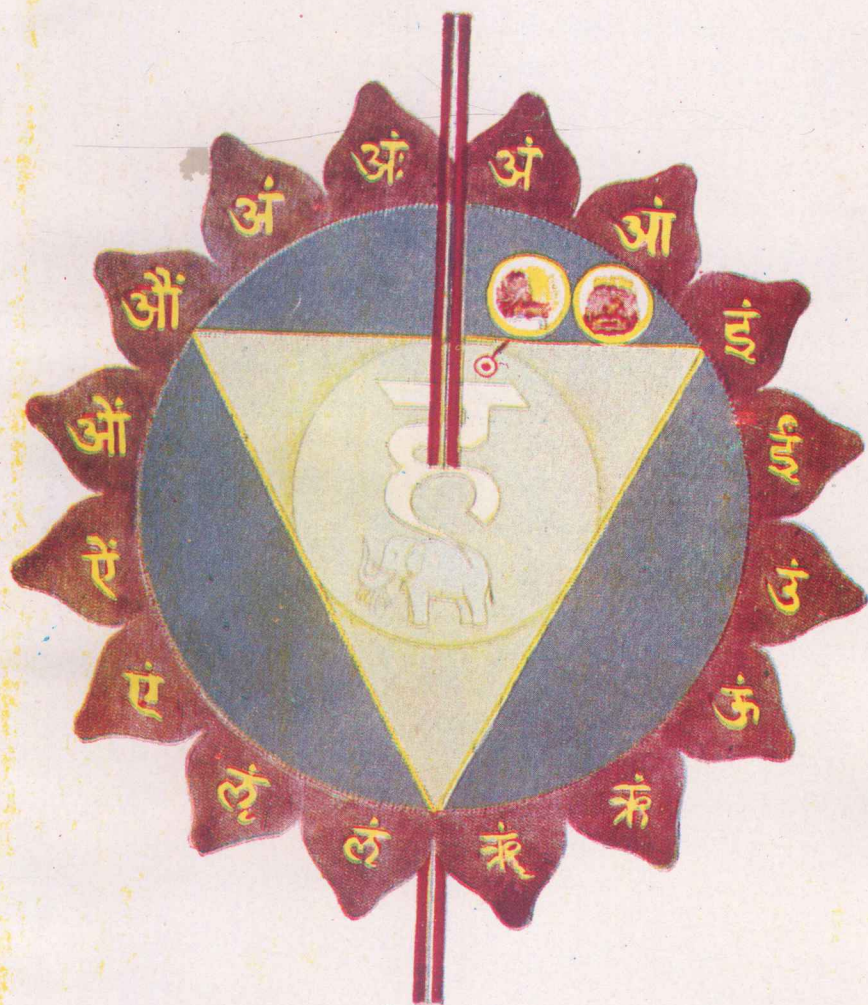
विशुद्ध चक्र **Vishuddha Cakra**

(Laryngeal & Pharyngeal Plexus)

भाग ८ और १२' में स्पष्ट की गई है। देवी की स्थिति 'प्रेम योग तरंगिणी' में चन्द्र मंडल के अन्तर्गत बताई गई है और उसे धब्बे रहित चन्द्रमा के समान कहा गया है। इस मण्डल को निर्वाण, मुक्ति का द्वार कहा गया है, **परन्तु केवल उसके लिये जिसने इन्द्रिय संयम द्वारा योगलक्ष्मी की कृपा प्राप्त कर ली है।** शंकराचार्य के अनुसार 'आत्म ज्ञान प्राप्त साधक गहरी झील के स्थिर जल के समान स्थिर चित्त होकर इस विशुद्ध चक्र पर ध्यान करे'—पूर्ण बोधात्मना तिष्ठेत् पूर्णाचल समुद्रवत्।

त्रिपुरा सार समुच्चय में कहा गया है कि कुम्भक (प्राणायाम की अवस्था) में रहते हुए इस पद्म पर लगातार ध्यान करने वाला यदि क्रोध करे तो तीनों लोकों को हिला सकता है। उसकी शक्ति को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और गणपति भी नहीं रोक सकते।

सारांश (Summary)

कण्ठ के मूल में षोड़ष दल का पद्म बैंगनी धुएँ के रंग का है जिसके तन्तु गुलाबी हैं। प्रत्येक दल पर गहरे लाल रंग के सोलह स्वर 'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः' चमकते हैं। इसके बीज कोष के अंदर वृत्ताकार श्वेत नभ मंडल है, इसके अंदर त्रिकोण है, उसके अंदर चन्द्र मण्डल है।उस पर नभ बीज 'हं' श्वेत वर्ण, श्वेत आभूषणयुक्त एक हाथी पर आसीन है। बीज वर्ण चार हाथों वाला है। उसके हाथों में पाश और अंकुश है, शेष दो हाथों से वर और अभय मुद्रा प्रदर्शित हो रही है। उसके अंक में सदाशिव हैं जो वृषभ की पीठ पर रखे सिंहासन पर बैठे हैं, उनका आधार शरीर हिम-श्वेत और आधा स्वर्ण वर्ण हो कर अर्धनारीश्वर रूप है। उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। उनके हाथों में शूल, टंक, खड्ग, वज्र, ज्वाला (दहन), नागेन्द्र, घंटा, अंकुश और पाश है। एक हाथ से अभय मुद्रा प्रदर्शित कर रहे हैं। उनका पूरा शरीर भभूत मय है, बाघम्बर पहने हैं, गले में सर्पों की माला है। उनके मस्तक पर अर्धचन्द्र है, जिसकी उतरती कला से अमृत टपक रहा है। बीज कोष के अन्दर चन्द्र मण्डल में हड्डियों पर स्थित 'साकिनी' शक्ति है जो श्वेत वर्णा, चतुर्भुजी, पंचमुखी, त्रिनेत्री, पीताम्बरी है और हाथों में धनुष, बाण, पाश और अंकुश धारण किये हुए है।

स्पष्टीकरण

यह ग्रन्थि सोलह नाड़ियों वाली कंठ मूल के अंदर स्थित है। यह नाड़ियाँ स्वर यन्त्र सम्बन्धी हैं। स्वरों (वाणी) का गुण रजस है, अतः सोलह पद्म दलों पर यहाँ रक्तवर्णाक्षर दर्शाये गये हैं। दलों का रंग धूम्र और बैंगनी (लाल, नीला युक्त) मिश्रित है अर्थात् नाड़ियाँ वायु क्षेत्र की हैं परन्तु रजोगुणी और मोहने वाली वाणी उत्पन्न करने वाली हैं। जिसमें ईश्वर प्रदत्त आकर्षण शक्ति (Self attraction) हो उसे नील वर्ण से तन्त्र में प्रदर्शित किया जाता है। कृष्ण को भी नील वर्ण दिखाया जाता है। विशुद्ध चक्र का बीज कोष नभ-मण्डल (आकाश) है। आप जानते हैं स्वर की उत्पत्ति आकाश (Ethereal region) में होती है; आकाश, क्षेत्र वृत्ताकार है। चन्द्र मण्डल भी वृत्ताकार है। इसके ऊपर बीज 'हं' है जो पुनः ऐरावत पर आरूढ़ है। परन्तु यहाँ ऐरावत श्वेत वर्ण है अतः

वासनायुक्त नहीं है। यह ऐरावत धीर गति से वायु सेचन (प्राणायाम) की ओर संकेत करता है। इस चक्र का योनि-त्रिभुज भी वासना रहित होने से श्वेत वर्ण ही है। इसकी विभिन्न सूँडें प्राणायाम की विभिन्न मुद्राओं का संकेत देती है। 'हं' के ऊपर बिन्दु है, जिसमें वृषभ की पीठ पर एक सिंहासन पर सदाशिव को दर्शाया गया है। वृषभ पौरुषवान, वीर्यवान व्यक्ति का प्रकटीकरण है जो स्वयं साधक है। उसे 'सिंह' अर्थात् मन पर सवार होकर 'हं' स्वर साधना करनी है, जिससे वह अर्ध नारीश्वर हो जाता है (अपनी नारी वह स्वयं बन जाता है)। अर्धनारीश्वर में आधा शरीर बर्फ के रंग का और आधा स्वर्ण जैसा दिखाया जाता है। यह बर्फ जैसा रंग चाँदी रजत का प्रतीक है, जो रजोगुण को प्रकट करता है, और स्वर्ण सतोगुण को। तात्पर्य यह है कि ऐसा साधक जब चाहे रजोगुणी व्यवहार कर सकता है और जब चाहे सतोगुणी। अधिकतर लोग एक ही प्रकार की वृत्ति वाले होते हैं। सदाशिव के मस्तक पर चन्द्रमा प्रदर्शित करके तांत्रिक लोग चन्द्रमा की अधोमुखी कला के मस्तक पर अमृत टपकना प्रकट करते हैं। यह अमृत वही है जो कुण्डलिनी साधक के कण्ठ में खेचरी मुद्रा की अवस्था में टपकता है। इस चक्र के बीज कोष के चन्द्र मण्डल में हड्डियों (मज्जा) पर अधिष्ठित साकिनी शक्ति को श्वेत वर्ण में, पीले वस्त्रों में दर्शाते हैं। यह ज्वाला युक्त कुण्डलिनी शक्ति ही है जो यहाँ से आगे बढ़कर आज्ञाचक्र में पहुँचती है।

आज्ञाचक्र

तालु कण्ठं प्रविश्योर्ध्वं भ्रू युगान्ते सितं शुभम्।
द्विदलं हक्षवर्णाभ्यां मनोऽधिष्ठितमम्बुजम्॥

आज्ञाचक्र जो कि द्वि दल पद्म है दोनों भृकुटियों के मध्य में स्थित है। कुण्डलिनी कण्ठ (Throat) और तालु (Palate) के अन्दर (चढ़ती हुई) प्रवेश करती हुई दो भ्रू के मध्य स्थल पर श्वेत और भव्य पद्म पर पहुँचती है जिसके दो दलों पर ह और क्ष वर्ण चमकते हैं। यही मन का क्षेत्र है। यह पद्म अति सुन्दर रूप में चन्द्रमा के समान चमकदार श्वेत वर्ण है। इन पर अक्षर भी श्वेत वर्ण हैं। इस चक्र की चमक की गहराई साधक की ध्यान की गहराई की समानुपाती है। इन दो दलों को नेत्र-पात्र भी कहा जाता है। अक्षरों को कलाएँ भी कहते हैं क्योंकि यह कलाओं के बीज हैं। इसकी अधिष्ठात्री शक्ति 'हाकिनी' है। जो षटमुखी है। प्रत्येक मुख चन्द्रमा के समान है और त्रिनेत्र है। इसकी छः भुजाएँ हैं जिनमें कपाल, डमरू और रुद्राक्ष माला है, एक हाथ में विद्या है। शेष दो, वर और अभय के मुद्रा में उठे हुए हैं। वह स्वयं शुद्ध चित्त है।

एक स्थान पर हाकिनी शक्ति का ध्यान सूत्र इस प्रकार है—

मज्जस्थां शुक्लवर्णां डमरूकरयुतांमक्षसूत्रं कपालं।
विद्यां मुद्रां दधानां त्रिणयनविलसद्वक्तषड्क्त्रयुक्ताम्॥
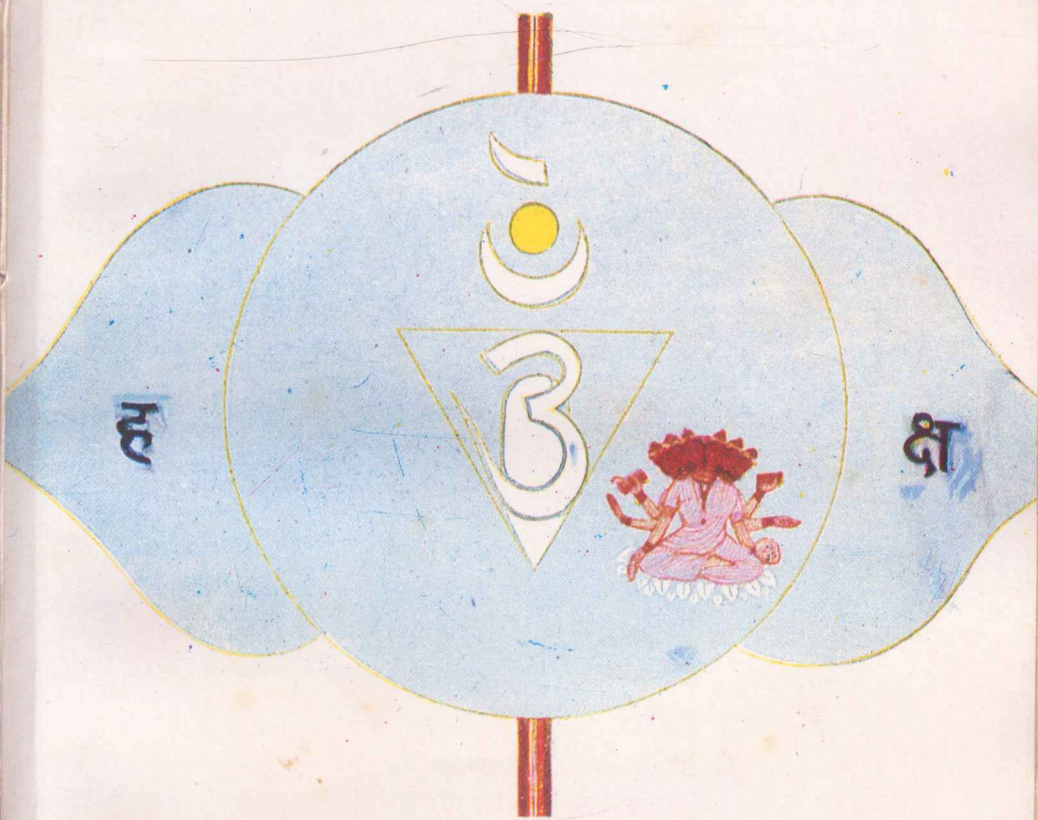
आज्ञा चक्र Ajnā Cakra

(Cavernous Plexus)

हरिद्रान्ने प्रसक्तां मधुमदमुदितां शुक्लपद्मोपरिस्थां।
देवीं देवेन्द्ररत्नाकर मधुमुदितां भावयेद्धाकिनीं ताम्॥

अर्थात् हाकिनी शक्ति पर ध्यान इस प्रकार करें कि वह मज्जा में स्थित है, श्वेत वर्ण है। उसके हाथों में डमरू, कपाल, रुद्राक्ष माला और विद्या है और दो हाथों से वर और अभय मुद्रा प्रदर्शित कर रही है इस प्रकार वह षटभुजी है। रक्त वर्ण के छः मुख वाली जिसके प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र हैं। हल्दी युक्त पके अन्न को पसन्द करने वाली, अमृत पान से प्रमत्त (उल्लसित) श्वेत पद्म पर आसीन है। कहीं-कहीं मज्जस्थ के स्थान पर चक्रस्थ शब्द मिलता है जिसका अर्थ है चक्र में स्थित है। अमृत के विषय में उल्लेख है कि वह अमृत जो देवों के राजा (देवेन्द्र) समुद्र (रत्नाकर) से प्राप्त किया था वह देवी हाकिनी पीकर प्रमत्त हुई है।

आज्ञाचक्र सूक्ष्म मनस क्षेत्र है। पद्म के बीज कोष के अन्तर्गत लिंग रूप में श्वेत वर्ण शिव (जिन्हें 'इतर' कहा जाता है) योनि के अन्दर विद्युत माला के समान प्रकाशित हो रहे हैं। वेदों का प्रथम बीज प्रणव 'ॐ' भी वहाँ चमकता है जो अति उत्तम शक्ति पीठ है जिसके प्रकाश से चित्रिणी नाड़ी (ब्रह्म नाड़ी) दिखाई देने लगती है। साधक को इन सभी वस्तुओं पर क्रमशः ध्यान करने का अभ्यास करना चाहिये। कुल शक्ति रूप अधोमुखी त्रिभुज है।

कहीं-कहीं ध्यान का क्रम इस प्रकार है कि बीज कोष के अन्दर पहले हाकिनी का ध्यान करो तब उसके ऊपर त्रिभुज के अन्दर इतरलिंग, इसी त्रिभुज के अन्दर लिंग के ऊपर (ॐ) प्रणव और अन्त में स्वयं प्रणव के ऊपर मनस का। इस चक्र का साधक अद्वैत भाव को प्राप्त हो जाता है। बहुत सी शक्तियाँ अनजाने में उसे मिल जाती हैं। वह समझ जाता है कि वही ब्रह्म है। जीवात्मा और परमात्मा के बीच का अन्तर उसे समझ आ जाने से वह अद्वैतवादी हो जाता है। इस चक्र के त्रिभुज के अन्दर संयुक्ताक्षर प्रणव है जो कि अन्तरात्मा (शुद्ध मन) दीपक में ज्योति के समान प्रकट करता है। इसके ऊपर अर्ध चन्द्र और उसके ऊपर बिन्दु (अनुस्वार) के रूप में 'म' कार है। इसके ऊपर नाद है जो इतना चमकदार-श्वेत है कि चन्द्र किरणें भी कुछ नहीं है। प्रणव के ऊपर अवान्तर (Final or Second) नाद है जो चन्द्रमा के टुकड़े के समान है। जब योगी योनि मुद्रा द्वारा अपने शरीर द्वारों को बन्द कर लेता है और लगातार अभ्यास द्वारा चित्त को परमानन्द में लीन कर देता है तो उसे प्रणव स्थान पर त्रिभुज के अन्दर प्रकाश के स्फुलिंग (कण) चमकते हैं। मन को स्थिर करने के लिये योनि मुद्रा के सहित श्वास रोधकर के 'हंस' को स्थिर करना ही उचित है। खेचरी मुद्रा भी ऐसी स्थिति उत्पन्न करती है। 'हंस' से यहाँ तात्पर्य श्वास प्रश्वास (हं सः) है। चित्त को खेचर 'ख' कहते हैं। जब यह मनस से तथा संसारी पदार्थों से अलग हो जाता है तो यह अवस्था 'उन्मनि' कहलाती है। इस सब का क्रियात्मक ज्ञान करोड़ों शास्त्र पढ़ कर भी नहीं हो सकता जो गुरु के सान्निध्य से प्राप्त होता है। यह

आज्ञाचक्र ही वह स्थल है जहाँ सु-सुख साधना (आनन्द साधना) सम्पन्न होती है। कहीं-कहीं लिखा है कि प्रणव चारों ओर प्रकाश स्फुलिंग से घिरा है—

तदूर्ध्वे प्रणवाकारमात्मानं दीपसंनिभम्।
स्फुलिंग ज्योतिरिंगाभैर्वेतिष्ठतम् परितः शुभम्॥

योगी को दीपक की ज्योति के समान प्रकाश भी दिखाई देता है जो आकाश (शंखिनी नाड़ी के ऊपर का स्थान) से धरनी (मूलाधार का धरा मण्डल) तक अर्थात् सहस्रार से मूलाधार तक फैला हुआ है।

इस स्थान पर पहुँचने वाला साधक फलाकांक्षा रहित कर्म करने वाला, बन्धन मुक्त, अपने में पूर्ण, सृष्टिकर्ता (संसार को उत्पन्न करने वाला), पालनकर्ता (उसे चलाते रहने वाला), और संहारकर्ता (जब चाहे उसे समाप्त कर देने वाला) भगवान हो जाता है।

निर्वाण तन्त्र के अनुसार—विशुद्ध चक्र से ऊपर ज्ञान चक्र है जिसे पाना अत्यन्त कठिन है। वह पूर्ण चंद्र का क्षेत्र है जो दो दल वाला है। इसके अन्दर हंस के रूप में शंभु का बीज है। ——— यह हंसः मणि द्वीप में है। मणि द्वीप अमृत सागर के बीच में मणि के समान चमकता है। रुद्र यामल तन्त्र के अनुसार मणि द्वीप अमृत सागर के मध्य में है जो अगणित सांसारिक विधि-विधान से परे और संसार के बाहर है। वहाँ पर श्री-विद्या का परम धाम है। हंस के अंक में परम शिव अपने बाँयी ओर सिद्ध काली को लिये बैठे हैं। सिद्ध काली स्वयं परमानन्दमयी हैं। अंक से यहाँ तात्पर्य विसर्ग के बिन्दुओं के बीच के खाली स्थान से है क्योंकि अव्यय विसर्ग रूप है (विसर्गरूपम् अव्ययम)। उस विसर्ग के बीच के स्थान (आकाश 'अ——ह') में परम शिव है। यह सहस्रार से सम्बन्धित है, प्रसंगवश यहाँ दिया गया है। क्योंकि विसर्ग बिन्दु का प्रतीक बिन्दु ॐ का बिन्दु माना गया है। ॐ बिन्दु शिव और शक्ति की संगम मुद्रा है।

उत्कलादिमतेऽत्रैव चणकाकार रूपिणी।
सृष्टिं करोति भूतानि अत्र स्थित्वा सनातनी॥

उत्कल आदि के मत से शक्ति चने की दाल के आकार में आज्ञाचक्र में निवास करती है और सब भूतों को उत्पन्न करती है। यही बिंदु 'म' का नाक से बोला जाने वाला स्वर है जो 'पुल्लिग स्वर' माना जाता है, इस प्रकार यह अव्यक्त 'म' अर्थात् पुरुषवान शिव है। इस प्रकार शिव और शक्ति का संगम प्रतीक यह बिंदु है जो सृष्टि उत्पन्न करता है। चने की दाल का उदाहरण इसलिए दिया गया है कि चने का एक भाग शिव और दूसरा शक्ति माना जाय परन्तु दोनों मिलकर (चना) शिव कहा जायेगा जिसके अंक में शक्ति है। पूर्ण चना अर्धनारीश्वर रूप है—**"तदुभयाभिन्नशिवशक्त्यात्मकश्चणकाकार बिंदुरिति ध्येयम्**—तत्व चिन्तामणि। यही स्थान विष्णु का अतुलनीय प्रकाशमय पीठ है।

मृत्यु के समय श्रेष्ठ योगी प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण को यहाँ स्थिर करके परम पुरुष में लीन होने के लिए उचित योगासन में स्थिर होकर कुम्भक प्राणायाम करता है तब वह जीवात्मा को मूलाधार तक पहुँचाकर गुदा का आकुंचन (वज्रोली मुद्रा) कर विधिपूर्वक कुण्डलिनी चढ़ाता है, और आनन्दपूर्ण नाद पर ध्यान करता है जो सूत्र वत है और जिसका तत्व कुण्डलिनी है। तब वह हंस जो कि प्राण के रूप में परमात्मा है, नाद में लय (विलीन) हो जाता है और जीव सहित विभिन्न चक्रों का भेदन करता हुआ चक्र भेद के आधार पर आज्ञाचक्र तक पहुँच जाता है। कुण्डलिनी में वह सब पृथ्वी आदि स्थूल वस्तुओं को सूक्ष्म तत्वों में परणित कर देता है। अन्त में वह अपने को और जीवात्मा को बिन्दु में एकाकार कर देता है। उस बिन्दु के तत्व शिव और शक्ति हैं। इसके पश्चात् वह ब्रह्म रन्ध में प्रवेश कर जाता है और शरीर त्याग देता है और ब्रह्म में लीन हो जाता है।

सारांश (Summary)

आज्ञाचक्र श्वेत वर्ण का द्विदल पद्म है। इन दलों पर श्वेत वर्ण के ह और क्ष अक्षर हैं। बीज कोष के अन्दर चक्र की अधिष्ठात्री देवी हाकिनी है। वह श्वेत वर्ण है, उसके छः रक्त वर्ण के चेहरे हैं। प्रत्येक चेहरे पर तीन-तीन नेत्र हैं। उसकी छः भुजायें हैं। वे श्वेत पद्म पर आसीन है। उसके हाथों में रुद्राक्ष माला, कपाल, डमरू और विद्या है; शेष दो हाथ वर और अभय मुद्रा में उठे हुए हैं। उसके ऊपर एक अधोमुखी त्रिभुज के अन्दर इतर लिंग विद्युत के समान चमकता है। उससे ऊपर एक और त्रिकोण के अन्दर दीपक की ज्योति के समान चमकने वाला अन्तरात्मा है, इसकी चारों दिशाओं में प्रकाश के स्फुलिंग हवा में उड़ते दिखाई देते हैं। इस प्रकार से मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक सब चमकता है। उस सबसे ऊपर मनस है। मनस से ऊपर चन्द्र मण्डल में हंसः है जिसके अन्तर्गत परम शिव अपनी शक्ति सहित विराजमान हैं।

स्पष्टीकरण

त्रिभुज (योनि) में प्रविष्ट इतर लिंग (अर्थात् सम्भोग मुद्रा में) 'उ' कार केवल योनि के अन्दर है और योनि से बाहर चन्द्र बिंदु तथा अर्ध चन्द्र है, (पाठक ध्यान दें) अर्थात् अश्विनी मुद्रा द्वारा सम्भोग मुद्रा से परे का अनुभव हाकिनी शक्ति द्वारा साधक को होता है जो श्वेत चन्द्र के समान शीतल अमृतपूर्ण है; और साथ ही सूर्य के समान ज्वालामय (सूर्य का वर्ण पीला सा है और चन्द्र का श्वेत, इसलिए आज्ञाचक्र के बिन्दु का रंग पीला चने की दाल जैसा बतलाया है।) यह गुण कुण्डलिनी शक्ति का है जो जलन और शीतलता दोनों का एक साथ अनुभव देती है। परन्तु जब वह यहाँ से आगे बढ़ती है तो शीतल ही होती है। (अर्ध चन्द्र का टुकड़ा कुण्डलिनी की आगे की गति का प्रकटीकरण करता है।) श्वेत वर्ण आज्ञाचक्र का वृत्त मस्तक ग्रन्थि में मिलने वाली दो नाड़ियों इड़ा तथा पिंगला (सूर्य 'ह') के मेल से श्वास के सुषुम्नामय होने को प्रकट करता है। इस प्रकार यह चित्र बताता है कि सुषुम्ना की श्वासावस्था में किया गया वज्रोली अश्विनी मुद्रा युक्त सम्भोग ही शीतल-ज्वाला कुण्डलिनी को आगे बढ़ाता है।

सुषुम्ना की शक्ति हाकिनी के छः चेहरे तथा हाथों में विभिन्न वस्तुएँ विभिन्न कार्य-कलापों के प्रकटीकरण ही हैं। यथा—वर मुद्रा (साधक को सफलता उत्तरोत्तर प्राप्त होती जाती हैं), अभय मुद्रा (साधक में भय नहीं रहता और दृढ़ विश्वास जमता जाता है। रुद्राक्ष माला (हंसः का जप, अर्थात् लय बद्ध श्वास बराबर चलता रहता है) मानव खोपड़ी (साधक की खोपड़ी का पूरा नियन्त्रण इस शक्ति पर ही निर्भर है, थोड़ी सी असावधानी अथवा अविश्वास साधक की खोपड़ी घुमा सकता है अर्थात् पागल कर सकता है) छोटा सा डमरू (इस ग्रन्थि चक्र में डमरू जैसी आवाज सुनाई देती है, यह धमनी की गति है जो लयबद्ध होती है।) पुस्तक (साधक के ज्ञानमय होते जाने का प्रतीक है।) **इन प्रतीकों की आकृतियों, वर्णछटाओं के तांत्रिक अर्थ लगाने से इस चक्र आकृतियों की भाषा को समझकर ही 'मात्र मनोवैज्ञानिक योग-परम्परा' से बचकर वास्तविक कुण्डलिनी मार्ग को पहचाना जा सकता है।**

षड्चक्र क्यों ?

कुण्डलिनी शक्ति की तांत्रिक श्रृंखला में षडचक्रों में छटवाँ चक्र 'आज्ञाचक्र' है। **आज्ञाचक्र में अन्तिम** 'योनि-त्रिभुज तथा लिंग' दर्शाये गये हैं। इससे ऊपर के चक्रों में इनकी आवश्यकता नहीं रहती। अर्थात् आज्ञाचक्र से आगे नारी-पुरुष संभोग की बात समाप्त हो जाती है। इसे यह न समझें कि व्यक्ति संभोग-विरक्त हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि **वह कुण्डलिनी को बिना संभोग के ऊर्ध्वगति देने में सक्षम हो जाता है।** संभोग अर्थात् काम-कला एक तांत्रिक (तकनीकी Techincal) कार्य है। अतः मूलाधार से आज्ञाचक्र तक के छः चक्र जिनमें संभोग का प्रयोग होता है तांत्रिक-चक्र' कहलाते हैं। उससे आगे के चक्र तांत्रिक होते हुए भी इसी सन्दर्भ में तांत्रिक नहीं कहे जाते। आगे के चक्र मैं तांत्रिक इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि वहाँ भी संभोग तो होता है—**स्वयं का स्वयं से**। नारी की आवश्यकता नहीं रहती अतः साधक नारीनटेश्वर की स्थिति में आ जाता है। यही कारण है कि बहुत से विद्वान सहस्रार से ही कुण्डलिनी साधना का प्रारम्भ मानते हैं। इन षडचक्रों के तांत्रिक भेदन के पश्चात् साधक के योगच्युत होने का भय नहीं रहता।

विशुद्ध चक्र में संभोग की धीर गति की मस्ती से अधिक, श्वास की धीर गति की मस्ती पर ध्यान दिया गया है जो सूक्ष्मणा की सूक्ष्म श्वास (न के बराबर) से ही सम्भव होती है। इससे पूर्व का चक्र 'अनाहत' उस क्षेत्र का है जहाँ बिना चोट किये आवाज (अन आहत) होती है—श्वास की आवाज। यही अनाहत मन्त्र 'हं सः' है। इस अवस्था का संभोग वासना रहित, सात्विक संभोग है। इससे पूर्व के चक्र मणिपूरक में मूलाधार वाले संभोग की कामाग्नि ही प्रज्वलित होकर कुण्डलिनी तरंगों को आगे की ओर प्रसारित कर देती है, जिस प्रकार स्वाधिष्ठान चक्र में करती है।

(इन षडचक्रों के स्पष्टीकरणों में बहुत से पाइण्ट जान-बूझकर छोड़ दिये गये हैं क्योंकि उनके लिए उचित प्रमाण, व्याख्याएँ, आदि नहीं मिल पा रहे थे। फिर भी इस विषय के जिज्ञासुओं के लिये लुप्त प्राय: विद्या के प्रवर्तन हेतु यह लघु प्रयास किया गया है जिससे भावी साधक अपने अमूल्य अनुभवों का इसमें योगदान करने में संकोच न करे।)

बिना संभोग के कुण्डलिनी को ऊर्ध्वगति देने, अथवा स्वयं का स्वयं से संभोगरत होने के उदाहरण स्वरूप मेरे एक मित्र श्री मनोहर लाल गुप्ता (आगरा) का अनुभव मनन करने योग्य है।

त्रेपन वर्षीय साधक 'मनोहर लाल गुप्ता' का 'प्रथम अर्ध-नारीश्वर' अनुभव

कुछ लोग तो अधिक श्रम और साधना करते हैं तब परिणाम थोड़े से पाते हैं और कुछ साधना कम करने पर भी अपेक्षाकृत अधिक परिणाम प्राप्त करते हैं। योग ऐसे साधकों को पूर्व जन्म के सिद्ध साधकों की श्रेणी में मानता है। गुप्ता जी आर्य समाजी वातावरण में पलकर, पिछले 30 वर्षों से राधास्वामी दयाल की कृपा से सन्त-मत का अनुसरण करते हुए भी योग-साधना करते ही रहे हैं। मेरी मित्रता मानने से पूर्व उन्होंने विशेष विधि से अपने गुरुदेव से आज्ञा माँगी जिसमें उनके सर्व समर्थ गुरु ने आज्ञा दी कि 'मैंने तुम्हारे लिये उपयुक्त व्यक्ति को आपके साथ लगा दिया है, तुम्हें हिचक नहीं करनी चाहिये' और वे मेरी बताई साधना विधि पर श्रम करने लगे। इन्हें कुण्डलिनी साधना में उतरे लगभग दो-तीन मास ही हुए हैं। इन्होंने लगभग २ वर्ष पूर्व के एक स्वप्न में 'साँप के मुँह में उसकी पूँछ घुसाते हुए अपने को देखा था', तब से बहुत से लोगों से इस स्वप्न के बारे में पूछताछ कर चुके थे, परन्तु उन्हें सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल सका था। जब मुझे यह स्वप्न उन्होंने बताया तो मैंने उन्हें कहा कि 'थोड़े श्रम और साधना से आप कुण्डलिनी में उतर जायेंगे।' उसी समय उन्हें शिवजी के 'अर्ध नारीश्वर' रूप का आशय समझाया था। कुछ दिन बाद उन्होंने स्वप्न में अपने एक मित्र की जिसे वह नया गुरू मानते थे 'अर्ध-नारीश्वर मुद्रा' देखी। बाद में उन्हें उनकी स्थिति के अनुरूप कुछ कुण्डलिनी की अभ्यास मुद्रायें भी बतलाई गई, उनके सतत अभ्यास से वे अर्ध-नारीश्वर स्थिति तक पहुँचने में सफल हुए। वे घटनाक्रम इस प्रकार बताते हैं—

रात को लगभग साढ़े नौ बजे मेरा लिंगकामोद्गमोल्लसित हो गया जैसा २०-२२ वर्ष की उम्र में हुआ करता था। मैं अपनी पत्नी के पास पहुँचा तो वह कुछ अनमनी सी मालूम पड़ी। मैं डरने लगा कि यदि मैं अभी कुछ उपाय नहीं करता तो निश्चित ही आज वीर्य की अधोगति किसी न किसी समय हो जानी है। मैंने लिंग पर शीतल जल की धारा डालकर प्राकृतिक उपचार किया, फिर भी काम नहीं बना। अपने गुरुओं की श्रृंखला को याद करते-करते अपने नये मित्र-गुरु की कुण्डलिनी की बात मस्तिष्क में आ गई। मैं कुण्डलिनी विधि अनुसार 'वज्रोली मुद्रा' करने लगा। वज्रोली करते-करते मुझे अचानक बड़ा आनन्द आने लगा और उस आनन्द की मस्ती में मैं कुण्डलिनी क्रिया द्वारा वीर्य को

ओज में परणित कर मेरुदण्ड में आधा-पौना घण्टे तक चढ़ाता रहा। कुछ समय बाद मैं ऐसा तृप्त, शांत और प्रफुल्ल हो गया जैसा कि मैं शायद संभोगरत होकर भी नहीं हो पाता। बड़ी गहरी नींद आई और सुबह भी एकदम तरो-ताजा प्रफुल्ल मन से उठा। अन्य दिनों सुबह इतना प्रफुल्ल नहीं उठता था। जब यह प्रसंग मैंने अपने मित्र-गुरु को सुनाया तो उन्होंने मुझे समझाया कि 'यह तुम्हारी अर्ध-नारीश्वर स्थिति का प्रथम अनुभव है। इसी अभ्यास को आगे बढ़ाते जाओगे तो नारी-नटेश्वर बन जाओगे।' देखिये कहाँ तक पहुँचाती है 'सन्त सद्गुरूी की प्रेरणा ?'

सहस्रार चक्र

आज्ञाचक्र से आगे के क्षेत्र के बारे में स्वच्छन्द संग्रह में लिखा है कि समष्टि (Cosmic) आज्ञाचक्र से परे बिन्दु के अन्दर १० करोड़ योजन का क्षेत्र है जो १ करोड़ सूर्यों की चमक के समान दीप्तवान है। यहाँ पर शांति से परे की (शान्त्यातीत) स्थिति का स्वामी शान्त्यातीतेश्वर है जिसकी दस भुजाएँ और पाँच चेहरे हैं और बहुत सी बिजलियों की चमक के समान आभायुक्त है। उसके बाँई ओर शान्त्यातीत मनोन्मनी है। उनके चारों ओर निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शांति हैं, इनमें से प्रत्येक के पाँच चेहरे और दस हाथ हैं, यह चन्द्रमा से आभूषित हैं। यह सब बिन्दु तत्व हैं। बिन्दु से ऊपर अपनी कलाओं सहित अर्ध चन्द्र हैं, वे हैं—ज्योत्सना, ज्योत्सनावती, कांति, सुप्रभा, विमला। अर्ध चन्द्र से ऊपर निबोधिका अपनी कलाओं सहित है। कलाएँ हैं—बंधती, बोधिनी, बोधा, ज्ञान बोधा, तमोपहा। निबोधिका से ऊपर नाद अपनी पाँच कलाओं सहित है' वे हैं—इन्धिका, रेचिका, ऊर्ध्वगा, त्रासा और परमा। इससे ऊपर कमल पर ईश्वर है जो दस करोड़ योजन में प्रसारित है। दस हजार चन्द्रमाओं के प्रकाश के समान आभायुक्त है। वह पंचमुखी है। प्रत्येक मुख त्रिनेत्री है। उसके हाथ में शूल है, जटाधारी है वह ऊर्ध्वगामी है जिसे ऊर्ध्वगामिनी कला आलिंगन किये हुए है।

आज्ञाचक्र से ऊपर हल के सिरे के आकार का महानाद का क्षेत्र है जहाँ वायु अर्ध शिव में लय होती है। शिव आधे हैं क्योंकि आधी शक्ति (जिसे नाद भी कहते हैं) है। यह क्षेत्र आज्ञाचक्र के ऊपर और सहस्रार से नीचे है इसलिये इसे कारणवान्तर शरीर (Intermediate Causal Body) भी कहा गया है। शंकराचार्य कहते हैं कि इस स्थान पर वायु नहीं रहती (वायोह विराम भूतम्)। एक स्थान पर कहा गया है कि शिव 'ह' कार है यदि ह को ऊपर से आधा काट दें तो नीचे का भाग भारतीय हल जैसी आकृति शेष बचता है। भूत शुद्धि आदि के विषय में कहा गया है कि वायु (त्वक) स्पर्श तत्व में लय होती है और फिर व्योम में, इसी प्रकार वह नाद में भी लय होती है। श्रुति में कहा है—इ कार से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई जो रसवती है। क कार जो कि रस है जल और तीर्थों की उत्पत्ति हुई। र कार (रेफ) से वाहिनी अग्नि तत्व की उत्पत्ति हुई। नाद से वायु तत्व की उत्पत्ति हुई जो सर्व प्राणमय है। बिन्दु से शून्य (आकाश) तत्व की उत्पत्ति हुई जो कि
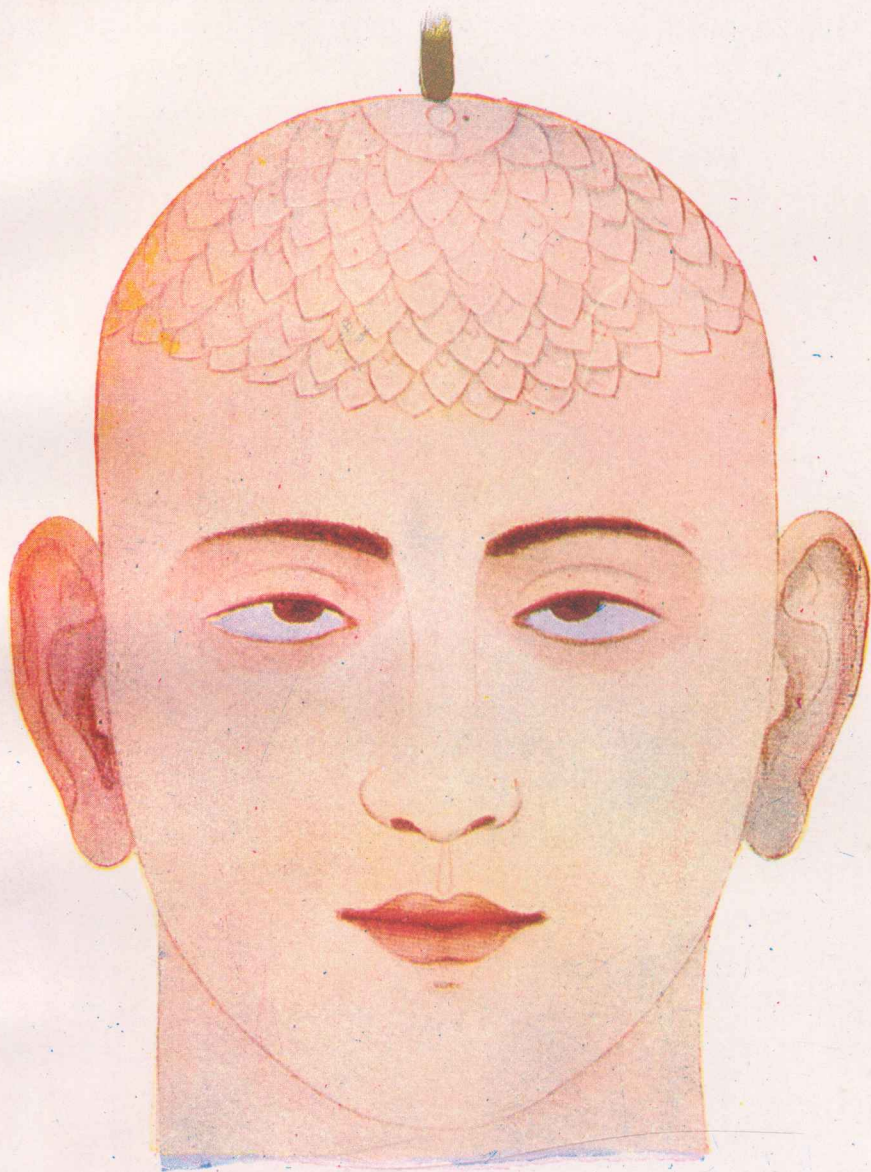
सहस्त्रार चक्र **Sahastrār Cakra**

(Cerebral Plexus)
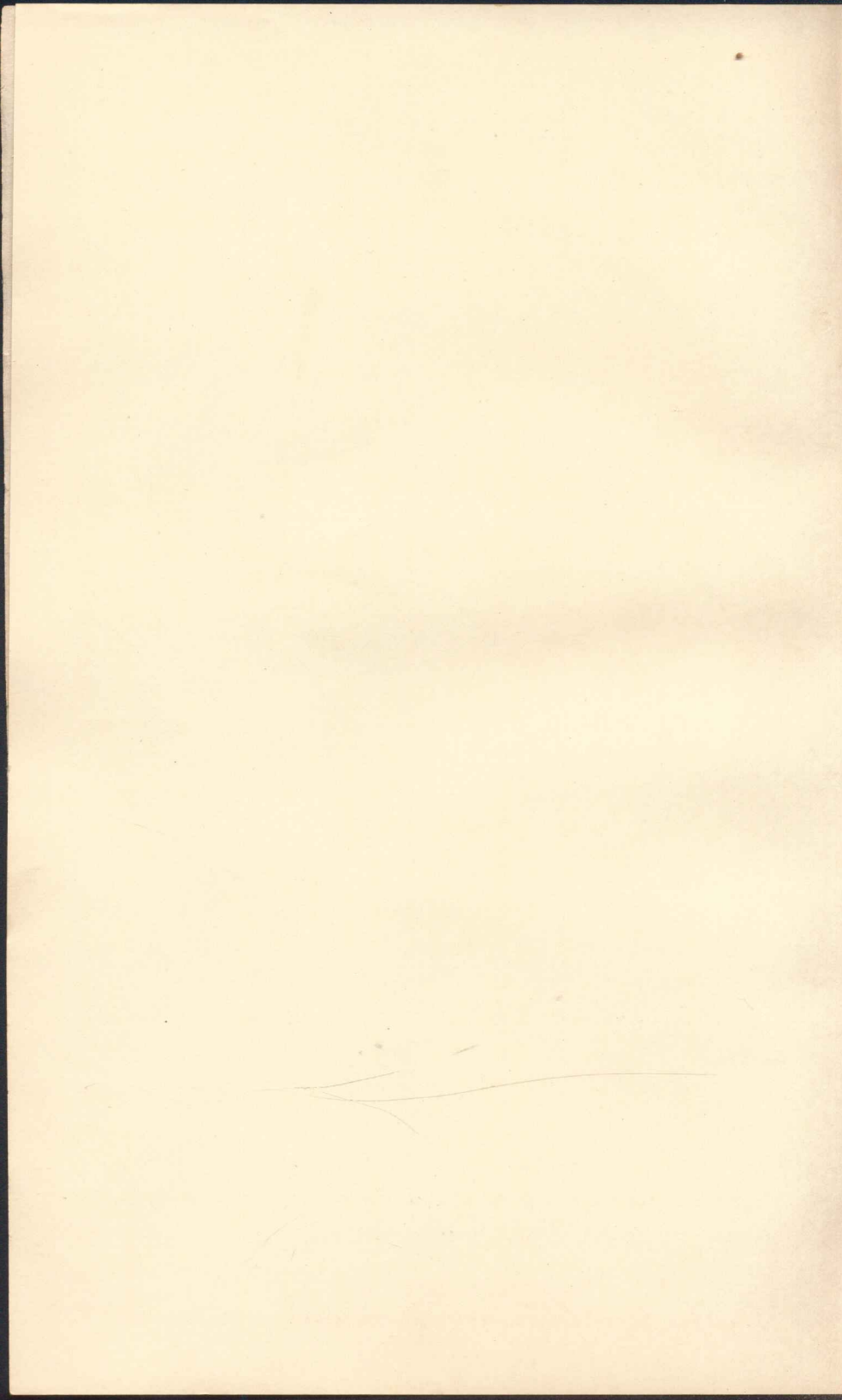
सर्व शून्य और शब्दमय है और इन सबसे पच्चीस तत्वों की उत्पत्ति हुई जो गुणमय हैं यही सम्पूर्ण कालिकामय ब्रह्मांड है। प्रयोग सार तन्त्र में कहा गया है—

नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामयपदोन्मुखी।
शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तदा स्मृता ॥

जो शक्ति मुक्ति की ओर अग्रसर करे वह पुरुष रूप बिन्दु है, जब उसे नाद के द्वारा गतिमय (उद्दीप्त) किया जाता है तो वह शिव की ओर अग्रसर होती है। राघव भट्ट ने कहा है **'शक्तेर्नादबिन्दु सृष्ट्युपयोगावस्थारूपौ'** नाद और बिन्दु शक्ति के सृष्टि के उपयोग की अवस्था के रूप हैं। उपयोग ही सृष्टि करने की शक्ति ('Uayoaga' is Capacity of fitness of Creation)।

आज्ञाचक्र में बतलाई गई वस्तुओं [यथा हाकिनी से ऊपर इतर लिंग, उससे ऊपर प्रणव, उससे ऊपर मनस, उससे ऊपर अहंकार, उससे ऊपर बुद्धि, उससे ऊपर प्रकृति, उससे ऊपर चंद्र (इंदु या बिंदु), उससे ऊपर बोधिनी, उससे ऊपर नाद, उससे ऊपर महानाद, उससे ऊपर कला, उससे ऊपर उन्मनी, उससे ऊपर शंखिनी नाड़ी के मुँह पर (जहाँ कोई नाड़ी नहीं है और सुषम्ना का अन्तिम सिरा है) उस शून्य क्षेत्र पर, विसर्ग से नीचे (विसर्ग ब्रह्म रंध्र के ऊपरी भाग में है) सहस्र दलों वाला पद्म है, जो पूर्ण चंद्र के समान श्वेत वर्ण अधोमुखी, तरुण सूर्य जैसी रश्मि पुंज की कांति वाले अ से ह तक (जिसमें विसर्ग अः) छोड़कर १५ स्वर और ३३ व्यंजन (कुल ४८ सामान्यतः १६ स्वर ३६ व्यंजन वर्णमाला के अन्तर्गत माने जाते हैं) २१ बार दुहराये गये होने से] १००८ दलों पर सुशोभित हैं। कंकाल मालिनी तंत्र के अनुसार—

सहस्रारं महापद्मम् शुक्लवर्णमधोमुखम्।
अकारादिक्षकारान्तैः स्फुरद्वर्णैर्विराजितम् ॥

सहस्र दलों पर अ कार से क्ष कार के पूर्व के अक्षर 'ह' तक कुल ४९ वर्ण बनते हैं जिसमें विसर्ग ब्रह्म रंध्र के ऊर्ध्व भाग में है (तस्मिन रंध्रे विसर्ग च नित्यानंद निरंजनम्—श्री पूर्णानन्द) अतः मात्र ४८ वर्ण शेष रहे। 'क्षकारान्तै' बहुब्रीह समास के आधार पर श्री पूर्णानन्द के अनुसार यह अर्थ देता है कि 'क्ष' कार प्रारम्भ होने तक माना जायगा, अर्थात् 'ह' तक ही वर्ण गिने जायेंगे।

सहस्र दल पद्म के विषय में बहुत सी भ्रांतियाँ आ गई हैं क्योंकि अधिकतर विश्लेषक स्वयं 'साधक' (Practical Siddhas) नहीं रहे। कई पुस्तकें तो अनुमान के आधार पर एक विश्लेषक के पश्चात् दूसरे, और दूसरे के पश्चात् तीसरे विश्लेषक ने लिख डाली है। जिससे विषय गुरु से गुरुतर ही बनता गया। यदि साधक स्वयं कुछ लिखे या बतलाये तो वह यह कह सकता है कि आप जो कुछ अनुमान लगा रहे हैं, वह इस प्रकार नहीं अमुक प्रकार है। विश्लेषकों की बात कोरा शास्त्रार्थ भर रह जाती है। सहस्र दल पद्म में १००८ दल (पंखुड़ियाँ) हैं, पूरे एक सहस्र नहीं। परन्तु उन्हें सामान्यतः

सहस्त्र दल ही कहा जाता है। जैसे १०८ मनकों की माला पर १०० जप करने के लिए ११ माला जपी जाती हैं, ८ की कहीं गिनती नहीं होती। सहस्त्र दल पद्म की मात्र एक सहस्त्र पंखुड़ियाँ मानकर उस पर वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करने के बारे में कोई कहता है कि 'ल' कार को छोड़कर अ से गिनो तो १६ स्वर ३६ व्यंजन मिलकर ५२ - १ = ५१ वर्ण हो जायेंगे। एक कहता है 'क्ष' कार को भी छोड़ दो तो मात्र ५० वर्ण रह जायेंगे औरयदि ये २० बार गिन दिये जायँ तो पूरे एक सहस्त्रः हो जायेंगे और सहस्त्र दल पदम में एक-एक दल पर एक-एक अक्षर की तुक सही बैठ जायगी। दूसरा कहता है ५१ वर्ण २० बार गिनें तो गिनती १०२० बैठती है, १९ बार गिनें तो ९६९ बैठती है, कैसे भी सहस्त्रार पूरा नहीं होता। यह सब अनुमान पर चलने जाला शस्त्रार्थ है।

क्ष, त्र और ज्ञ संयुक्ताक्षर हैं, प्राकृतिक वर्णमाला के अक्षर नही हैं। वे अ से ह तक ही हैं जो सहस्त्र दल कमल की १००८ पंखुड़ियों पर सुशोभित हैं। कुछ लोगों में इन वर्णाक्षरों के रंग के बारे में भिन्न मत हैं। इनका रंग कुछ लोग सहस्त्रार को श्वेत वर्ण मानने के कारण अक्षरों को भी श्वेत वर्ण मानते हैं परन्तु वे चढ़ते सूर्य की प्रभा के समान वर्ण वाले हैं अथवा वर्णित रंग वाले हैं। सर आर्थर एवलौन ने अपने ग्रन्थ The Serpent Power, में लिखा है There is nothing said of the Colour of the letters, and as the Matraka (letters) are white they are to be taken as being white on the Saharsrara Petals. ऐसी बातें अनुमानात्मक हैं। वैसे 'ब्रहत् त्रिविक्रम संहिता' में एक स्थान पर सहस्त्र दल कंवल के वर्णों के रंग के बारे में मिलता है—

बालसूर्य प्रतीकाशमासीद्विन्दुमदक्षरम्।

एक और विशेष बात जो सहस्त्रार के वर्ण क्रम के बारे में है कि ये सारे अक्षर दक्षिणावर्त (दाहिनी ओर से बाई ओर के) क्रम में हैं। सहस्त्रार के बीज कोष के अन्दर दोष रहित पूर्ण चंद्र मंडल है जैसे कि खुले साफ आकाश में पूर्णिमा का चाँद हो और अमृत रस से स्निग्ध, शीतल हो जिसकी किरणें चाँदनी के समान आनन्द उत्पन्न करने वाली हों। कंकाल मालिनी तंत्र में चंद्र मंडल के नीचे के शून्य स्थल के ऊपरी भाग में अंतरात्मा का निवास बताया गया है। चंद्र मंडल के अन्तर्गत विद्युत के समान लगातार चमकने वाला त्रिकोण है। इस त्रिकोण के अन्दर 'शून्य' बिंदु रूप में स्फुरण करता है (चमकता है)। यह बिंदु अनश्वर अत्यंत गुप्त, अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त होने वाला, मुक्ति का मूल आधार है जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म (शास्त्रों में बाल की नोंक के दस करोड़वें भाग के बराबर कहा गया है) परमानन्द दायक है। यह परम बिंदु चन्द्रमा की कलाओं के समान अमा कला और निर्वाण कला सहित त्रिकोण के अंतर्गत दिखाई देता है। कुछ लोग बिंदु को कंद (मूल) मानते हैं। बिंदु एक वृत्त O है और शून्य ब्रह्म पद है जो वृत्त के अन्दर है। 'योगिनी हृदय तंत्र' में कहा है कि कन्द 'सूक्ष्म परमानन्द-कन्द-बिंदु-रूप' है। यही परम शिव कहा गया है। आध्यात्म रामायण का वक्तव्य देखिये—

'जीवात्मा परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः ।'
आचार्य शास्त्रोपदेशा दैक्यज्ञानं यदा भवेत् ।
आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव तु ॥

जीवात्मा परमात्मा का पर्यायवाची (दूसरा नाम) हो जाता है । शास्त्र और आचार्य के निर्देशानुसार जब व्यक्ति जीवात्मा और परमात्मा सम्बन्धी मूल विद्या (तत्व ज्ञान) समझ लेता है तो उसे उनके एक्य भाव (अद्वैत भाव) का बोध हो जाता है। वेदों में भी स्थान-स्थान पर समझाया गया है—तत् त्वम् असि (तत्वमसि) जब आत्मा परमात्मा कहलाने योग्य बन जाता है (परमात्मा हो नहीं जाता, जिज्ञासु ध्यान रखें) तो वह ब्रह्म सब का आत्मा हो जाता है और सूर्य के समान अज्ञान रूपी तिमिर (अँधेरे) का नाशक हो जाता है । उसमें रस (परमानन्द का अनुभव) और विरस (शिव और शक्ति के संयोग से उत्पन्न आनन्द का अनुभव) दोनों एक होते हैं। तत्वमसि की स्थिति को निर्वाण तंत्र के तीसरे पटल में और भी स्पष्ट कर दिया है कि 'हे देव ! जो तुरीयावस्था (चतुर्थ अवस्था) में पहुँच गया वही परमात्मा है । '

परम बिंदु की कलाओं की सूक्ष्मता का स्पष्टीकरण इस प्रकार मिलता है कि चन्द्रमा की षोड़षवीं कला जैसी शुद्ध, बाल सूर्य के समान प्रभा वाली इतनी सूक्ष्म कला है जैसे पद्म के डंठल के सूत्र का सौवाँ भाग हो परन्तु वह इतनी दीप्तिमय है जैसे करोड़ों बिजलियाँ एक साथ चमकी हों, साथ ही वह अत्यन्त मृदु और अधोमुखी है । पर और परा के आनन्द पूर्ण सम्भोग के कारण जो अमृत की धारा बहती है उसका यह पान करती है । इस चंद्र (अमा) कला के अन्दर निर्वाण कला है जो उत्तम से भी उत्तम, अर्ध चन्द्र के रूप में ऐसे चमकती है जैसे सारे सूर्य एक साथ एक ही समय में उदित हो गये हों । सूक्ष्म इतनी जैसे एक बाल की नोंक का हजारवाँ भाग हो । निर्वाण कला के मध्य आकाश (शून्य) में परम निर्वाण शक्ति एक करोड़ सूर्यों की आभा वाली है। उसकी सूक्ष्मता की समानता बाल के सिरे के करोड़वें भाग से की है । उसके अन्दर बहने वाली आनन्द अमृत की धारा ही सब जीवों का जीवन है । उसके अन्दर मायातीत शिव का सनातन स्थल है जो स्वयं शुद्ध ज्ञान और आनन्द का प्रतीक रूप है । यही नित्य आनन्द है । कुछ इसे ब्रह्म कहते हैं, कुछ हंस । शैव इसे शिव का निवास स्थल मानते हैं, वैष्णव परम पुरुष विष्णु का, कुछ रुद्र हरिहर का, देवी के भक्त देवी का, मुनि लोग प्रकृति-पुरुष का संभोग स्थल मानते हैं। तत्वदर्शी इसे आत्मज्ञान अथवा मोक्ष का स्थान मानते हैं । संतों के मन में सत्य (तत्व) ज्ञान का स्फुरण यहीं से होता है ।

स्पष्टीकरण

स्वच्छ आकाश में चंद्रमा के समान ओज-अमृत भरे हुए सहस्र नाड़ियों का क्षेत्र मस्तिष्क-मंडल है जो स्नेह सिक्त और ठण्डा है। इसके अन्दर चन्द्र मण्डल (Thalamus) में अन्तरात्मा है। 'कंकाल मालिनी तन्त्र' सहस्रार में सूर्य और चन्द्र मण्डलों से ऊपर महावायु और उससे ऊपर ब्रह्मरन्ध्र (Aperture of Soul) मानता

है । ब्रह्म रंध्र में विसर्ग को मानता है जो आनन्द पूर्ण ब्रह्म है । इस सबकी अधिष्ठात्री देवी शंखिनी मानी जाती है ।

आप जान चुके हैं कि सूर्य और चन्द्र नाड़ियाँ अपने क्षेत्रों से होती हुई आगे बढ़कर सम्वन्धित नासापुटों में आ मिलती हैं । इससे अन्दर की ओर वायु पूर्ण स्थान है, उससे अन्दर ब्रह्म रंध्र (Thalamus) है जिसमें एक शक्ति है शंखाकार । उसे चाहे आत्मा कहें, ब्रह्म कहें, कोई शब्द या अक्षर कहें परन्तु वह न शब्द है न अक्षर, इसलिये विसर्ग कहा है । परन्तु वह विसर्ग भी नहीं; अत: कुछ विद्वानों ने उसे विसर्ग के दोनों बिन्दुओं के बीच की स्थिति—शून्य कहा है ।

यह शून्य जीवन का 'अन्त' नहीं 'आदि' है । जीवन का प्रारम्भ है । इसे जानने से पूर्व का जीवन तो 'पशु तुल्य जीवन' था । **वास्तविक जीवन का प्रारम्भ तो तब होता है जब आप अपने स्वामी बन जाते हैं ।** स्वामी चिन्मयानन्द इसे 'Zero Point' इसीलिये कहते हैं ।

■

२२

मंदिरों पर रमण मुद्राएँ

भैरवी चक्र की रमण मुद्राओं पर यदि आप ध्यान दें तो पायेंगे कि साधक साधिका की शांरीरिक स्थिति कोणार्क, अजन्ता, ऐलौरा, ऐलीफेन्टा, खजुराहो आदि के मंदिरों पर लगी हुई किसी मूर्ति से समानता रखती है। यदि आप उस मूर्ति में छिपी भावना का अध्ययन कर सके तो आप भावनात्मक स्थिति में भी अन्तर नहीं पायेंगे। आप इन मन्दिरों में एक और महत्वपूर्ण बात देखेंगे कि सभी युगल मूर्तियां मन्दिर के बाहरी दीवारों पर हैं और अन्दर एक विशाल खाली भवन है जिसमें एक मूर्ति अथवा शिव लिंग है। इसका भाव है कि **रमण द्वारा कुण्डलिनी क्रिया से ओज को चढ़ाने वाला काम समाप्त करके ही मन्दिर के ध्यान भवन में प्रवेश करें और मूर्ति अथवा दीपक पर (जैसी आवश्यकता हो) धारणा (Connection) या ध्यान (Meditation) करें**। इससे प्रकट होता है कि मन्दिर के ध्यान भवन में रमण करने की बात नहीं की गई। संभोग आप कहीं और अपनी सामाजिक परिस्थिति के अनुसार कीजिये और ओज ऊर्जा (कुण्डलिनी शक्ति) अर्जित (जाग्रत) कर आगे की साधना (ध्यान आदि) के लिये मन्दिर में पधारिये।

आप चाहें तो अपने विवेक का यहाँ प्रयोग करते हुए **अपनी पत्नी से ऐसा रमण-प्रयोग करके सभी सामाजिक मर्यादाओं को अक्षुण्य रखकर भी तांत्रिक विधि से भोग और मोक्ष का आनन्द स्वयं प्राप्त कर सकते हैं और अपनी रमणी (पत्नी) को भी मोक्ष मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं**। जब आवश्यकता हो वीर्य की अधोगति कर गर्भाधान कर सकते हैं अन्यथा वीर्य की ऊर्ध्वगति द्वारा ओज वृद्धि करते रहिये।

प्रजनन विधान

प्राचीन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में **जो लोग सैक्स को अनैतिक कहते नहीं अघाते वास्तव में वे न पुराणों को जानते हैं न शास्त्रों को, न उन्होनें संस्कृतियों का अध्ययन किया होता है, न विज्ञान का। उन्होंने केवल सुनी सुनाई बातों को वर्तमान चौखट में बैठाने के लिये अपने हिसाब से तोड़-मरोड़ कर रख लिया होता है**। मेरे इस कथन का

औचित्य समझने के लिए आपको 'सृष्टि के प्रजनन विधान' पर एक बार पुनः ध्यान देना होगा—

प्रत्येक प्राणी अपनी परिस्थिति अनुसार सभी रासायनिक उपादों को अपने जटिल सादृश्य में पाचन और विसर्जन के रूप में परणित करता रहता है। आप देखते हैं कि पाचन पहले होता है और विसर्जन बाद में। आहार पहुँचाने का साधन अर्थात् ऊपरी तल और आयतन में एक ऐसा अनुपात है कि उसके भंग होने पर व्यक्तिगत वृद्धि और ह्रास का अनुपात समान हो जाता है।

प्रजनन क्रिया के आधार पर चार प्रकार के प्राणी सृष्टि में पाये जाते हैं—भेदज, अंकुरज, मैथुनज और अनादितः अंडज। सूक्ष्म देहधारी एककोशीय जीवों में तल और आयतन के अनुपात वाली कठिनाई नहीं आती क्योंकि वृद्धि रुकते ही वे बीच से फट कर दो हो जाते हैं और आयतन के स्थान पर उनकी संख्या बढ़ने लगती है। एक एककोशीय जीवों में **'एकोऽहं बहुस्याम्'** वाली उक्ति चरितार्थ होती है और प्रत्येक कोश अपने में पूर्ण और निरन्तर बढ़ने वाला होने के कारण वेद की त्वचा **'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'** को सिद्ध करता हुआ कभी ह्रास न होने वाली वृद्धि को प्राप्त होता चला जाता है। फटक्र संख्या बढ़ने वाली उत्पत्ति को 'भेदज' कहा जाता है।

इनसे बड़े प्राणी जो षट्पदी या अष्टपदी हैं उनमें अंकुरज सृष्टि चलती है। वे कट-कट कर नहीं बढ़ते। मूँगे तथा कुछ विशेष प्रकार के कीड़ों में और कुछ थोड़े से रीढ़धारी जन्तुओं में सम्पूर्ण शरीर ज्यों का त्यों रहता है। उसका केवल एक अंश अलग कटा सा रहता है। वह अंश धीरे-धीरे वृद्धि पाकर दूसरे शरीर का रूप धारण कर लेने के पश्चात् पहले शरीर से अलग हो जाता है और स्वयं के बल पर बढ़ता चला जाता है। अंकुरज प्राणी छोटे-छोटे उपादों तक ही पनपते हैं क्योंकि अस्थि-पिंजर की जटिलता आड़े आ जाती है। यहाँ से मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ होती है।

मिथुन का अर्थ है जोड़ा। दो अलग-अलग कोशिकाएँ (सैलें) जुड़कर एक बनती हैं। इनमें एक कोशिका पुल्लिंग होती है और दूसरी स्त्रीलिंग जिन्हें स्थूल रूप में शुक्र और डिम्ब अथवा भौतिक रूप में लिंग और योनि कहते हें। सामाजिक रूप में यही जनक (पितृ) कोशिकायें एवं जननी (मातृ) कोशिकायें कही जाती हैं। यही जनक और जननी कोशिकायें मिलकर एक नई कोशिका बनाती हैं जो कि नये व्यक्ति का 'मूल' है। यह मूल कोशिका भेदज विधि से संख्या वृद्धि करती-करती असंख्य भारतीय सजातीय कोशिकायें बनाकर शरीर का ढाँचा तैयार करती है। ऐसा नवीन शरीर ही मैथुनज सृष्टि है।

कुछ अल्पायु शरीर ऐसे भी हैं जहाँ भेदन, अंकुरण अथवा मैथुन की सुविधा नहीं है वहाँ 'प्रथा-जनन' की विधि से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। उसमें शुक्र जीवाणु की आवश्यकता नहीं होती। एक नन्हीं सी जननी एक बार में बहुत थोड़े से डिम्ब उत्पन्न करती है। ये डिम्ब ज्योंही परिपक्व होते हैं, नये शरीर की रचना होने लगती है। मधुमक्खी पर नर प्रथा-जनन का ही उदाहरण है, रानी मक्खी भी वीर्य रहित अण्डे से ही उत्पन्न होती है। ऐसी सृष्टि ही अंडज कहलाती है।

महान वैज्ञानिक डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त के आधार पर यदि यह मान लें कि 'पृथ्वी पर सबसे पहले एककोशीय जीव ही प्रस्फुटित हुए। तब उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होकर लाखों-करोड़ों वर्षों में आयोनिज सृष्टि से योनिज सृष्टि बनी है।' तो हमें यह बात स्वीकार करने में कोई संकोच नही होना चाहिये कि 'उस अत्यन्त प्राचीन काल में इसी गुह्य वैज्ञानिक और दार्शनिक आधार पर प्रजनन इन्द्रियों को विश्व के सबसे अधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली तत्व के रूप में स्वीकार करके पूजित किया गया।' उस युग में प्रजनन की घटन को इतना महत्व देना एक अज्ञान मूलक जंगलीपन था अथवा विज्ञान के उच्च अंग था जिसमें कि किसी ईश्वर या देवता के तत्व को स्वीकार न करके केवल प्रजनन विधान को यज्ञ कहा गया, इस विवाद में न पड़ कर इसकी लोकप्रियता एवं वैज्ञानिकता का ध्यान देना अधिक उचित होगा।

यौन पूजा

अब तक की खोजों के आधार पर यह कहा जाता है कि प्रजनन विधान को धार्मिक रूप देने का कार्य प्रजापति ब्रह्मा ने किया जिसे उनकी उत्तराधिकारिणी पुत्री सरस्वती ने आगे बढ़ाया। ब्रह्मा के सबसे छोटे भाई विष्णु के पुत्र यम के पौत्र 'रुद्र' ने प्रजनन इन्द्रियों से सृष्टि उत्पन्न करने के अलावा आत्म तुष्ट होने तथा 'ईश्वररोऽम्' बनाने की विधि खोजकर जननांग को सब कारणों का कारण कहकर पूजित करने के लिये एक हजार अध्याय के काम-शास्त्र का निर्माण किया। उन्होंने गुप्त रूप से घोषित किया—**लिंगांका भगांकाश्च प्रजाः। पुर्ल्लिंग सर्वमीशानं स्त्रीलिंग विद्धिचाप्युमाम्। द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं कि चराचरमिदं जगत्।** आगे उन्होंने कहा—'**अर्चयेथाः सदा लिंगम्। सर्वा भगांका स्त्रियः, लिंगेनापि प्रत्यक्ष चिह्नीकृता सर्वे पुरुषाः।**' प्रजनन विधान को यज्ञ रूप सिद्ध करने हेतु कहा गया है—**"येषा वा अग्निस्तस्या उपस्थ एवं समिल्लोमानि धूमो योनिरर्चिर्यदन्तःकरोति तेऽगारा अभिनंदा विस्फुलिंगास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुत्या पुरुषः संभवति।"** स्वयं रुद्र (शिव-शंकर) तथा उनके शिष्य, पुत्र और उत्तराधिकारीगण '**अहं ब्रह्मास्मि**' तथा '**अहं बह्म द्वितीयोनास्ति**' वाचक रहे हैं और '**लिंग के ऊर्ध्व रेतः धर्म**' (कुण्डलिनी योग) का पालन और प्रचार करते रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सतयुग के अन्त के समय में ही लिंग पूजन की वृत्ति प्राचीन जातियों में स्थान पा गई थी।

सतयुग के पश्चात् त्रेता युग के प्रारम्भ में रक्ष राज रावण ने भी शंकर को अपना गुरु मानकर लिंगार्चन को रक्ष संस्कृति में सम्मिलित कर लिया था। '**प्रहलाद के पुत्र विरोचन ने ब्रह्मा से आत्म पूजा का गुह्योपदेश लिया था**' ऐसा उपनिषदों में आया है 'और फिर उसका असुर जनों में उसने प्रचार किया।' **किसी ईश्वर को न मानकर 'आत्म-पूजन' का आश्चर्यजनक और रहस्यपूर्ण विवरण पुरातत्ववेत्ताओं ने भू-गर्भ से मिस्र के प्राचीन असुर राजाओं के मृत शिररों के पिरामिडों में प्राप्त किया है।**

ऊर्ध्व रेत: धर्म का प्रकटीकरण शिव को अर्धनारीश्वर तथा ऐसी देवताओं की पूजा की बात कहकर किया है जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों का समान प्रतिनिधित्व माना गया था। बेबीलोनिया, मिस्र, चीन, और भारत के शिव लिंगों को देख कर पता लगता है कि स्त्री-पुरुष की स्वतन्त्र और मिथुन रूपों में बराबर पूजा चलती रही है। गाजी के एक प्राचीन सिक्के पर 'अश्वान' देवता की आकृति ऐसी है जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों के तत्व दर्शाकर उसका आत्म तुष्ट होना प्रकट किया है।

यूनान के 'अपोलो' तथा 'डायना' में भी स्त्री-पुरुष का समान प्रतिनिधित्व माना गया है। फ्रासं के चर्चों और म्यूजियमों में लिंग के स्मारक रखे हैं उससे वहाँ लिंग पूजन के प्रति आस्था का पता लगता है। फालिसिज्म (लिंगाची) नाम का एक सम्प्रदाय पाश्चात्य देशों में था। दक्षिण भारत में भी लिंगायत सम्प्रदाय के लोगों से मैं मिला हूँ। रोम और यूनान देश में ईसाई धर्म के प्रचार से पूर्व लिंग पूजा की प्रथा के विवरण मिलते हैं। रोम में प्रियेपस तथा यूनान में फल्लुस (फलेश) नाम से लिंग पूजन चलता है। जहाँ तक कि इन दोनों राष्ट्रों का प्रचीन धर्म-चिन्ह भी लिंग और वृषभ ही था।

इतिहास वेत्ता प्लुटार्क मानते हैं कि मिस्र की लिंग पूजा उस काल में पूरे पश्चिम में प्रचलित थी। अमेरिका में जो प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं वे अमेरिका के आदि निवासियों के लिंग पूजक होने का प्रमाण हैं। ईसाइयों के अहदनामे में ही लिखा है कि रैहीवोयम के पुत्र आशा ने अपनी माँ को लिंग के सामने बलि देने से रोका था। इसका तात्पर्य है कि उस समय लिंग-पूजन था। बैलफैगो नाम यहूदी देवता 'लिंग-मूर्ति' ही है। मिस्र के ओसिरिस नामक लिंग के सामने बैल रहता है। मौयावी और मारिना के यहूदियों ने फैगी पर्वत पर जंगल में लिंग और बछड़े की मूर्ति स्थापित की थी वे उसे 'बाल' कहते थे। अरब में 'लात' नाम से लिंग पूजन होता था।

मक्का में काबे के अन्दर जो लिंग है उसे मुसलमान संगे-असवद कहते हैं। और हिन्दू मक्केश्वर, जिसकी पूजा पहले इजराइली और यहूदी करते थे। बेबीलोन में एक हजार दो सौ फुट का एक महालिंग था। ब्राजील में अनेक शिव लिंग हैं। इटली में भी ईसाई लोग शिव लिंग पूजते हैं। स्काटलैंड के ग्लास्गो नगर में एक सुवर्ण मंडित शिव लिंग पूजा जाता है। अफरीदिस्तान, काबुल, बलख बुखारा आद में पंचशेरऔर पंचवीर नामों से शिव लिंग पूजन होता है। इण्डोचाइना के अनाम क्षेत्र में अनेक शिवालय हैं और वहाँ संस्कृत में बहुत से शिलालेख तथा शिव लिंग आदि पुरातत्व विभाग वालों को मिले हैं। फीजियन्स में एटिव्स तथा निनवा में एषरि नाम से लिंग पूजन होता है। कम्बोडिया (प्राचीन नाम काम्बोज), जावा तथा सुमात्रा में भी बहुत से लिंग मिले हैं। इण्डोचीन, वर्मा के श्री क्षेत्र तथा हंसावती, स्याम के क्षेत्र द्वारावती मलय द्वीप आदि में पाये गये शिवलिंगों को ध्यान से देखें तो यौन उपासना के एक अविश्वसनीय तथ्य का रहस्योद्घाटन होता है। ब्रूसेनवर्क के अनुसार प्लोलमी फिखाड़े लफस के समय ३९० फुट के स्वर्ण मंडित

लिंग की स्थापना की गई थी। हिरो-पोलिस में वीनस (शुक्र देवता) के मन्दिर के सामने दो सौ फुट ऊँचा पत्थर का लिंग स्थापित था। वैदिक पणि लोग (जिन्हें फणिश कहा जाता है) बालेश्वर लिंग के पूजक थे। वाइबिल में इसे 'शिउन' कहा है।

मैक्सको तथा उत्तर मध्य अमेरिका में लिंग पूजा के प्रमाण मिले हैं। बेबीलोनिया और प्राचीन फ्रांस वाले देवी पूजन के पश्चात् लिंग और योनि के आकार की रोटियाँ बनाकर खाते थे। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में पाये गये लिंग एक दम 'शिश्न' की आकृति के हैं। नृत्य में भी हाथों की अँगुलियों की विभिन्न मुद्राओं से यौन संकेत किये जाते हैं—तर्जनी से सामने की ओर संकेत करते हुए शेष अँगुलियों को मोड़ लिया जाय तो शिश्न का संकेत माना जाता है। दोनों अँगूठों को आपस में मिला कर दोनों तर्जनियों को मिलाते हुए सीधे तान देने से योनि का संकेत माना जाता है। दोनों हाथों की हथेलियों को मिलाकर दोनो तर्जनियों को संयुक्त खड़ा कर, शेष अँगुलियाँ परस्पर आबद्ध करके झुका दी जाँय तो सम्भोग की भाव व्यंजना देती हैं।

प्राचीन मिस्र के भित्ति चित्रों में साँप को अपने आप में पूर्ण इकाई (आत्म तुष्ट) प्रकट करने के लिए अपनी पूँछ निगलते प्रदर्शित किया गया है। इसी सन्दर्भ में 'अपोलो' के मन्दिर में सर्प पालने की प्रथा थी जिन्हें वहाँ की नाग कन्याएँ (देवदासियाँ) नग्न होकर खाना खिलाती थीं। इजिप्ट मेसिफ और अशीरिस प्रदेशों के निवासी 'नंदी पर बैठे, हाथ में त्रिशूल कमर में व्याघ्र चर्म लपेटे शिव' की पूजा बेल-पत्र से तथा अभिशेक दूध से करते थे। दूध वीर्यवर्धक है और बेल पत्र वासना शामक है। चिकित्सा की पुस्तकों में लिखा है—Persons desirous to maintain cilibacy with calmness of libido should use aeglefolia (celibacy = ब्रह्मचर्य, libido = वासना, aeglefolia = बिल्व पत्र) दोनों वस्तुओं के प्रयोग से लिंग को ऊर्ध्व रेत: बनाकर 'आत्म तुष्ट' होने में व्यक्ति को आसानी होती है। शैव लोग शिव को आत्म तुष्ट रूप अर्धनारीश्वर मानते हैं उसी सन्दर्भ में हिन्दू पत्नियाँ 'अर्धांगिनी' कहलाती हैं। 'बामांगी' कहलाने का कारण मैं पहले स्पष्ट कर चुका हूँ।

तान्त्रिक पूजा में संम्भोग का महत्व अभी तक कुण्डलिनी के आधार पर बताया गया है। मन्त्रों के आधार पर भी इसका विशेष महत्व दार्शनिकों और तन्त्रज्ञों ने प्रतिपादित किया है। वे मानते हैं कि सम्भोग काल में मन्त्र जाप करने से दो आत्माओं का प्रभाव आकाश में इस प्रकार प्रसारित होता है कि वह एक + एक = दो, न होकर एक और एक = ग्यारह, हो जाता है। उदाहरणार्थ रुद्रयामल तन्त्र में उच्छिष्ट गणेश सम्बन्धी एक प्रयोग के लिए बताया गया है कि "लाल चन्दन या श्वेत आक की गणपति की मूर्ति बनाकर गुरु और अग्नि की साक्षी में स्थापित करें। कृष्ण पक्ष की चतुर्थी से शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तक एक हजार जप प्रतिदिन करें तो मन्त्र चेतन हो जाता है।" इसका तात्पर्य यह है कि मन्त्र सप्राण करने के लिए लगभग १५ हजार जप करने होंगे। अब, 'लोकोपयोगी विज्ञान तन्त्र माला संख्या तीन' के प्रकाशन 'शाबर तन्त्र शास्त्र' में दिये 'उच्छिष्ट गणपति' के प्रयोग में कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आरम्भ करके चतुर्दशी पर्यन्त नित्य १०८ बार जप करने पर मन्त्र

सिद्धि की बात लिखी है। साथ ही यह निर्देश है कि "न्यास, नक्षत्र, वार, व्रत आदि का विचार यथावत समझें।" इसका अर्थ हुआ कि लगभग २७ दिन तक १०८ मन्त्र जप, अर्थात् लगभग तीन हजार मन्त्र जपने होंगे। अब, इसी उच्छिष्ट गणपति के प्रयोग में सम्भोग की अवस्था में मन्त्र जाप करते समय किसी तिथि नक्षत्र वार, व्रत आदि का विचार न करने की बात के साथ शाबर तन्त्र शास्त्र लिखता है—आक की जड़ की लकड़ी की एक अँगूठे प्रमाण की गणेश मूर्ति को एकान्त में स्थापित कर एक युवती स्त्री को अपने सामने बिठाकर उसके गुह्यांग से सम्बद्ध हो २८ बार इस मन्त्र का जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

तात्पर्य यह है कि गुह्यांग से सम्बद्ध होकर मन्त्र जप करने से सम्पूर्ण तिथि, वार, नक्षत्र आदि सम्बन्धी ज्योतिषीय गणनाओं से तो छुटकारा मिला ही साथ ही १५ हजार अथवा तीन हजार वाली संख्या घटकर मात्र २८ जप रह गई है। यदि आप गर्भ चुनाव के सिद्धान्त (महर्षि यतीन्द्र दर्शन) पर ध्यान दें तो देखेंगे कि वहाँ दो फ्रीक्वेन्सियाँ (नर तथा
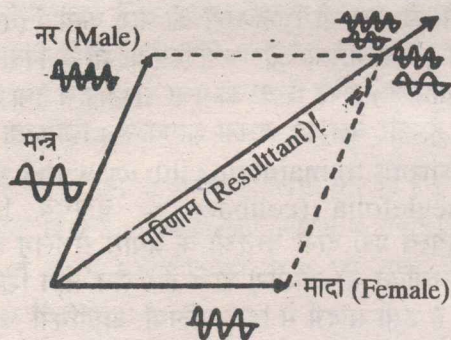
चित्र संख्या ४२

मादा) मिलकर अपने हारमोनिक्स के अन्तर के आधार पर तीन चार परिणामी (Resultant) फ्रीक्वेन्सियाँ बनाती हैं जो आकाश में तरंगित हो उठती हैं। इन तरंगों के 'लगभग समान' तरंगों वाली आत्मायें 'प्रसारक-युगल' की ओर आकर्षित हो जाती हैं। अनन्त आकाशीय क्षेत्र पर ध्यान दें तो यह बात स्वत: ही समझ में आ जाती है कि इन तरंगों की गति अत्यन्त तीव्र है। सन् १९६४ में बंलौर में 'मैटाफिज़ीकल पार्लियामेंट' में शरीर त्याग के पश्चात् आत्मा की गति (जब वह ग्रहों और नक्षत्रों आदि के दबावों से मुक्त हो) लगभग ६०×१०^{२५} मील प्रति सेकिंड गणना की गई थी। वहाँ यह भी स्पष्ट किया गया था कि आत्मा से प्रस्फुटित तरंगों की गति की गणना उनसे सम्भव नहीं हो पाई थी। फिर भी हम अपने विवेक से यह तो मान सकते हैं कि तरंगों की गति निश्चय ही प्रकाश तरंगों (Light Rays) से तो अधिक ही होगी जो लगभग १,८६,००० मील प्रति सेकिण्ड है। गर्भ चुनाव के सिद्धान्त में केवल दो फ्रीक्वेन्सयाँ मिलती हैं परन्तु तपस्या

वाले सिद्धान्त में 'आवश्यक मन्त्र' की फ्रीक्वेन्सी भी सम्मिलित हो जाती है। यह 'त्रिपदी परिणामी तरंगें' किसी विशेष इष्ट मूर्ति का ध्यान करते हुए आकाश में प्रसारित कर दी जाती हैं। तपस्या के सिद्धान्त के अनुसार यह तरंगें इष्ट के ध्यान से सम्बन्धित दिशा की ओर (कम से कम तिगुने और) तांत्रिक आधार पर १११ गुने दबाव (Pressure) से गति ग्रहण करती है। इसलिए इन तरंगों को किसी उचित दूरी तक पहुँचाने के लिए अपेक्षाकृत बहुत कम मन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है।

यहाँ आप एक बात सोच सकते हैं कि यदि सम्भोगावस्था में किसी मन्त्र के १०८ जप करने हैं और आप केवल ५४ कर सके तो आपको आधा फल तो मिलेगा ही। नहीं, ऐसा नहीं होगा। यदि आपकी तरंगों के उचित नक्षत्र तक पहुँचने से पूर्व ही मन्त्र के धक्के (Push) बन्द हो गये तो आपकी प्रसारित तरंगों की शक्ति नक्षत्र तक पहुँचते-पहुँचते इतनी कम रह जायगी कि वहाँ से लौटी तरंगों को आप पकड़ ही नहीं सकेंगे। आपका ट्रान्समीटर कितना भी सही हो, यदि रिसीवर आये हुए सिगनल को न पकड़ पाये तो सब व्यर्थ हो जायगा। जबकि आप तो ट्रान्समिशन ही ढीला किये दे रहे हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि आपका सम्भोग समय इतना लम्बा होना चाहिए कि आपका आवश्यक मन्त्र जप पूरा हो सके।

एक और बात आप ध्यान दे सकते हैं कि ऐसा सम्भोग जिसमें किसी इष्ट का ध्यान किया जा रहा हो, मन्त्र का जप किया जा रहा हो, भोग कहाँ रहेगा? वह तो योग (लिंग-योनि का) मात्र रह जायगा। योग भी ऐसा जो बाहर से दो का योग है, अन्दर से वह भी नहीं, 'अद्वय' है। यदि आप क्रिया विधि पर ध्यान दें तो आप पायेंगे कि **स्त्री-पुरुष की शक्ति बनकर उसे शिव बनने में सहायता देती है**। इसलिए तन्त्र में शिव से पूर्व शक्ति का महत्व है। शक्ति के बिना शिवत्व सपना है।

रमण दक्षता

सम्भोग के समय को लम्बा करने के लिए वीर्य स्तम्भक क्रियाओं का प्रयोग तन्त्र में किया जाता है। इसी सन्दर्भ में मदिरा तथा कुछ औषधियाँ प्रयोग की जाती हैं जो स्तम्भक होती हैं। लम्बे सम्भोग को झेलने के लिए यौनांगों का पुष्ट होना भी एक आवश्यक बात है। प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति (नारी या पुरुष) सामान्यतः ४ घण्टे की सम्भोग क्षमता रखता है। आवश्यकता है साधक-साधिका में 'सम्भोग, कुशलता' के विकास की।

मेरी इस सम्भोग क्षमता की बात को सुनकर ऐसा सभी लोग जो सम्भोग में पाँच मिनट भी नहीं लगाते अपना सिर अवश्य पीटेंगे और इससे अगली बात को सुनकर तो रोने ही लगेंगे कि मैंने ऐसे लोग देखें हैं जो महीनों तक हर रात सम्भोग करते हैं परन्तु उनका एक सम्भोग पूरा नहीं होता (अतः एक सम्भोग महीनों तक चलता है)। कुछ लोगों को ऐसे सम्भोग से हानि का अंदेशा हो सकता है। पहली बात, 'बिना स्खलन के सम्भोग' द्वारा कोई शारीरिक, मानसिक अथवा आत्मिक हानि नहीं होती। यदि किसी

व्यक्ति का वीर्य आधे रास्ते आकर (जिसका अनुभव साधक को हो जाता है) बीच में रोक दिया जाय तो उसकी गाँठ जमकर बाँधी या ग्लीट लिंग और गुदा के बीच की सींवन के स्थान में होने की सम्भावना रहती है। इसलिए आधे रास्ते आये हुए वीर्य को निकाल देना ही श्रेयस्कर है।

भैरवी चक्र के समान ही एक 'चोली मार्ग' है, वहाँ देवी के पास रखे प्याले में ऐसे व्यक्ति को अपना वीर्य डालने की व्यवस्था रहती है जिसका वीर्य आधे रास्ते हो। योनि के अन्दर वीर्य छोड़ना नितान्त वर्जित है। सामान्य व्यक्तियों के लिए अधूरा संभोग छोड़कर प्याले में वीर्य डालने जाना कम कठिन बात नहीं है। ऐसा वीर्य क्षरित व्यक्ति बाद में वहाँ सेवा कार्य करता है, उसे पुनः सम्भोग में उस रात नहीं शामिल किया जाता। हाँ ! एक बात और जो बहुत महत्वपूर्ण है—वीर्य क्षरित व्यक्ति की साथिन को भी सम्भोगानन्द से वंचित होकर अपने साथी पुरुष का ही साथ उस रात देना होता है क्योंकि साधक के क्षरण में साधिका का बराबर का हाथ माना जाता है। यदि साधिका चाहे तो **वीर्य-क्षरण जैसे अपमानजनक कृत्य से साधक को अपनी सम्भोग चेष्टाओं द्वारा बचा सकती है।** इसीलिए नये साधक को कुशल साधिका, तथा नयी साधिका को कुशल साधक के साथ सम्भोग की व्यवस्था की जाती है।

सहवास के समय योनि में चोट न आने का विशेष ध्यान देनरा होता है अन्यथा मूत्राशय प्रदाह (cystitis of inflamation of the bladder) हो सकता है। दूषित पुरुष अथवा दूषित स्त्री के साथ सम्भोग करने से उपदंश आदि रतिज व्याधियों के होने का भय होता है। इनसे बचने के लिए ऐसे सम्प्रदाय संगम से पूर्व सम्भवतः 'कैलोमेल' जैसी उपदंश प्रतिषेधक औषधि का प्रयोग करते हैं। वैसे जहाँ तक मेरा अपना अनुभव है इन लोगों में रतिज रोगी कोई भी नहीं है। डॉ. विलियम ऑस्लर उपदंश प्रतिषेधक के रूप में 'कैलोमेल' की सिफारिश करते हैं।

यदि कोई व्यक्ति स्खलन का इच्छुक होते हुए स्खलित न हो पाय तो उसे बहुत मानसिक यन्त्रणा तथा शारीरिक प्रदाह होगा। आजकल पुरुषों के शीघ्र पतन, लिंग में. उत्तेजना की कमी, स्त्रियों के षण्ढत्व (काम सुख न मिलना), ठण्डापन (कामेच्छा का अभाव), कष्टपूर्ण सम्भोग आदि ऐसे सैक्स विकार हैं जो सम्भोग को अपूर्ण बनाते हैं। आप कहेंगे ठण्डेपन अथवा षण्ढत्व ग्रस्त महिला के साथ सम्भोग को लम्बा करने में आसानी होगी। नहीं, वहाँ सम्भोग तो हो ही नहीं रहा। दोनों भोग (Enjoy) करें, तब सम्भोग वाली बात है। एक व्यक्ति ठण्डा होने से काम चल जाय फिर तो कुण्डलिनी जागरण के लिए हस्त मैथुन से काम चला लिया जाता।

अधिकतर सैक्स समस्याएँ केवल जननेन्द्रिय सम्बन्धी ही नहीं होतीं अपितु मनोवैज्ञानिक भी होती हैं। व्यक्ति का हीन स्वास्थ्य (कोष्ठबद्धता, अर्श, पौरुष ग्रन्थि प्रदाह, शुक्र ग्रन्थि प्रदाह, गुर्दा प्रदाह, मधुमेह, स्नायविक दुर्बलता आदि), जननेन्द्रियों के बारे में अनभिज्ञता, रमण दक्षता (सम्भोग टैकनिक की जानकारी) न होना ही समस्याओं के मूल कारण होते हैं।

रमण दक्षता के लए चार बातें विशेष रूप से अपेक्षित हैं—

(1) **सही मनोवैज्ञानिक स्थिति**—इसमें नारी पुरुष की मनःस्थिति को संभोगानन्द के उपयुक्त बनाने के लिए श्रृंगार, इत्र, पुष्प, पर्यावरण, वातावरण, उद्दीपक, खाद्य, मादक द्रव्य, रेशमी परिधान आदि सम्मिलित हैं। सम्भोग से पूर्व मुद्रा-प्रदर्शन, अंग-चूषण, प्रेम-प्रदर्शन आदि के द्वारा एक-दूसरे को सम्भोग बुभुक्ष बना लेना भी इसी के अन्तर्गत है।

(2) **अच्छा रक्त-संचार**—स्वस्थ रक्त का तीव्र संचार होने से यौनांगों (लिंग, योनि, भगोष्ठ, भगांकुर, स्तनों के कुच वृन्द, होठ, जीभ का अग्र भाग, गर्भाशय मुख आदि) में कठोरता एवं उद्विग्नता उत्पन्न होती है।

(3) **लचकीली पेशियाँ**—सम्भोग क्रिया में सहायता देने वाले अंगों की पेशियाँ लचकीली न होने से तीव्र आवेग नहीं होंगे। साथ ही थकान अपेक्षाकृत अधिक होने से सम्भोग के प्रति उपेक्षा भाव पैदा होने लगेगा।

(4) **सक्रिय स्नायु मण्डल**—कामेच्छा उत्पन्न होने पर मस्तिष्क अपनी तरंगें स्नायुओं के माध्यम से विभिन्न काम केन्द्रों को प्रसारित करता है। सम्भोग प्रारम्भ होने पर काम केन्द्रों से मस्तिष्क की ओर तरंगों का प्रसारण होने लगता है। यह लौटने वाली तरंगें ही सम्भोगानन्द का अनुभव कराती हैं। **यदि स्नायु मण्डल सक्रिय नहीं हो तो सम्भोगावस्था में होने वाले बहुत से सूक्ष्म अनुभवों को हम नहीं पकड़ पायेंगे।** इसे ऐसे समझिये कि मोनो-स्पीकर से गाना सुनने और स्टीरियो से गाना सुनने में जो अन्तर है वैसा ही अन्तर सक्रिय 'स्नायु मण्डल वाले व्यक्ति' के और 'सामान्य व्यक्ति' के सम्भोगानन्द के अनुभव करने में है।

वास्तविकता तो यह है कि कुण्डलिनी योग की गहराई में जितना आप घुसते जायेंगे उसके अनुभवों का वर्णन करने के लिए उतने ही उचित शब्द और उपयुक्त रूपकों की कमी अखरेगी। इसलिए गूँगे को गुड़ का स्वाद बताने में जो कठिनाई अनुभव होती है वैसे ही कठिनाई अपने अन्तर्मन के अनुभवों को बताने में प्रत्येक सन्त अनुभव करता है।

■

२३

यौन चिकित्सा

तान्त्रिक षडचक्रों का मूल आधार 'रमण दक्षता' है जिसके लिए यौनांगों का स्वस्थ एवं पुष्ट होना अनिवार्य तत्व है।

संभोग की पूर्णता में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का विशेष हाथ होता है। इन ग्रन्थियों से निकलने वाले हारमोन्स की कमी होने से व्यक्ति में रमण शक्ति की कमी आने लगती है। आधुनिक विज्ञान लैबोरेट्री हारमोन्स (प्रयोगशाला में तैयार किये गये कृत्रिम हारमोन्स) से स्नायु विकारों की चिकित्सा करता है परन्तु यह विधि सफल नहीं हो रही। यौगिक क्रियाएँ अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को क्रियाशील बनाने में तथा इनके दोषों को दूर करने में बड़ी हद तक सफल रही हैं। योग की अश्विनी मुद्रा सम्भोग अवस्था में ही नारी ओर पुरुष के स्नायुओं को स्वस्थ बनाने में सक्षम होती है। आनन्द का आनन्द और चिकित्सा की चिकित्सा। अलकासन जिसका वर्णन हम पीछे कर आये है, महिलाओं के यौन विकारों के लिए अच्छा अभ्यास है। अलकाभ्यास नितम्ब प्रदेश के लिए अच्छा व्यायाम है। साधकों को ध्यान होगा अलकासन एवं अलकाभ्यास भिन्न प्रकार के व्यायाम हैं।

योगासन-व्यायाम से शरीर की सर्वपक्षीय उन्नति होती है अतः यदि योगासनों के द्वारा स्वास्थ्य सन्तुलन रखा जाय तो सैक्स सन्तुलन स्वतः ही रहता है। सम्भोग के आसनों के बारे में तान्त्रिक एवं काम शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों में बहुत मसाला प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं कि विभिन्न आसनों को अदलबदल कर की गई मैथुन क्रिया में विविधता और नूतनता का अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त यौनेन्द्रियों में असमानता, शारीरिक अनुपयुक्तता आदि शारीरिक कारणों से भी विभिन्न सम्भोगासनों की आवश्यकता हो सकती है। आचार्य हैवलाक एलिस अपने कामशास्त्र में यही सलाह देते हैं कि सम्भोगासन की दिशा में आपनी शारीरिक स्थिति का ध्यान रखते हुए पति-पत्नी को स्वयं अपनी सूझ-बूझ और अनुभव से काम लेकर अधिक से अधिक सन्तोष और आनन्द देने वाली विधि अपनानी चाहिए और अपने **सम्भोग की पूर्णता का लक्ष्य 'प्रकाश-वलय रखना चाहिए न कि मात्र स्खलन'**।

स्वास्थ्य सम्बन्धी योगासनों में तानासन, गरुड़ासन, तुलासन, सिद्धासन, पद्मासन, अश्विनी मुद्रा, उड्डुयान बन्ध, योग मुद्रा, सरलेशासन, शीर्षासन, बद्ध पद्मासन, सूर्यासन, धनुरासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, मत्स्यासन, पवनमुक्तासन, जानुशिरासन, पश्चिमोत्तानासन, हलासन, अलकासन, अलकाभ्यास, कोणासन, सर्वांगासन, अर्चनाभ्यास, इन्दू मुद्रा, रजनी मुद्रा, स्वर्णाभ्यास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जो स्वास्थ्य के साथ-साथ सैक्स यन्त्रों को भी सन्तुलित करते हैं।

यौनांग शरीर के सर्वाधिक कोमल और संवेदनशील भाग होते हैं। पुष्ट और सुडौल उरोज (स्तन), संकुचित दृढ़ योनि, मुख छवि, कटि प्रदेश एवं जाँघें तथा भुजायें स्त्री को कामोत्तेजक रूप देते हैं। इसी प्रकार लिंग का आवश्यकतानुसार कठोर और लचीला होना, स्तम्भन शक्ति युक्त होना तथा व्यक्ति का आवेशपूर्ण होना सम्भोग को लम्बा और आनन्दपूर्ण बनाता है। रति क्रीड़ा के इन आधार अंगों को पुष्ट बनाने के लिए तन्त्रशास्त्र एवं आयुर्वेद में बहुत से प्रयोग दिये गये हैं। नारी और पुरुष सम्बन्धी कतिपय प्रयोग यहाँ दिये जा रहे हैं, परन्तु आनन्द के लोभ में उचित से अधिक कोई भी प्रयोग हानिकारक हो सकता है, यह आवश्य ध्यान रखें।

→ गम्भीरा के पत्तों के रस में समान भाग तिल का तेल मिलाकर दोनों के बबराबर पानी मिला दें और आग पर चढ़ा दें। जब पानी जल जाय तो तेल को शीशी में भर लें। इस तेल की मालिश से ढीले स्तन सुडौल हो जाते है।

→ बच, असगंध; गजपीपल समान मात्रा में चूर्ण कर कपड़े में छान कर भैंस के घी में मिला कर रख लें। इस लेप की मालिश से उरोज पुष्ट होते हैं।

→ माजूफल, फिटकिरी, कपूर तीनों को कपड़छन कर चूर्ण बना कर एक चुटकी योनि में लगाने से योनि संकुचित हो जाती है।

→ भाँग की पत्ती पीसकर 3 घण्टे तक योनि में रखें तो योनि संकोचन होगा। सम्भोग के समय उसे निकाल सकते हैं।

→ नीम की छाल घिस कर योनि में लगाने से उसकी दुर्गन्ध भी दूर होती है और वह संकुचित भी होती है।

→ माजूफल और चीनियाँ कपूर कपड़छन कर थोड़ा शहद मिलाकर बेर के समान गोली बना लें। सम्भोग से 4 घण्टे पूर्व एक गोली योनि में रखने से संकोचन होता है। सम्भोग के समय उसे निकाल दें।

→ भैंस के घी या मक्खन में कपूर मिला कर लिंग की मालिश करने से लिंग में दृढ़ता आती है।

→ किसी अच्छे आयुर्वेदिक निर्माता का 'श्री गोपाल तेल' मालिश करने से पुरुषेन्द्रिय दृढ़ होती है।

→ अकरकरा, असगंध, भिलावा, उटंगन और तज, समभाग पीसकर लिंग मुंड के अतिरिक्त सम्पूर्ण लिंग पर इसका लेप कर ऊपर से पान का पत्ता लपेट कर लंगोट बाँध लें। यह लिंग को मोटा और दृढ़ बनाता है।

- सुअर की चर्बी शहद में मिलाकर लगातार मालिश करने से लिंग पुष्ट और लम्बा होता है।
- असगंध, शतावर, कुठ, जटामांसी और कटेली के फल को चार गुने दूध तथा तिल के तेल में पकाकर दो माशे प्रतिदिन खायें और अंगों पर लेप करें तो स्तन, लिंग, कान, और हाथ भी पुष्ट होते हैं।
- जटामांसी, बहेडा, कुठ, असगंध, शतावर को तेल में पकाकर लिंग पर लेप करें तो पुष्टि होती है।
- घृत, शहद, गोरोचन, मछली का पित्ता, मोर की शिखा और भिलावा पीसकर तनिक सा योनि मे लेप करें तो संकोचन होगा।
- घोड़े के मूत्र में मालकंगनी, सोंफ, केसर, और वंशलोचन मिला कर योनि के अन्दर लेप करें तो संकोचन होगा।
- एरण्ड का तेल, मछली का तेल और बेल (बिल्व) के पत्तों का रस मिलाकर स्तनों पर मालिश करे तों स्तन कठोर होते हैं।
- काली गौ को दूध में सफेद मौथा पीसकर स्तनों पर लेप करें तो लटके हुए स्तन भी पुष्ट होते हैं।
- बच, असगंध की जड़ तथा पत्र, और गजपीपल को ताजी पानी में पीसकर स्तनों पर लेप करें तो स्तन पुष्ट होते हैं।
- दोनों हल्दी, कमल का पराग, देवदार की लकड़ी, तीनों समान भाग पीसकर योनि के भीतर लेप करने से वह संकुचित हो जाती है।
- बीरबहूटी पीसकर योनि में लेप करने से वह संकुचित और कठोर हो जाती है।
- सम्भोग काल में अश्विनी तथा वज्रोली मुद्रा का समुचित प्रयोग लिंग, स्तन योनि तथा मस्तिष्क को प्राकृति रूप में पुष्ट करता है।

बाजीकरण एवं स्तम्भन

तन्त्र में बाजीकरण शब्द आया है जिसका अर्थ है पुरुष का स्त्री से बाजी मार जाना। संस्कृतज्ञों ने बाज अर्थात् घोड़े से इसका अर्थ लगाया है कि पुरुष को घोड़े के समान सम्भोग करने वाला बनाना। जो भी हो दोनों का तात्पर्य सम्भोग में पुरुष से पूर्व अथवा पुरुष के साथ स्त्री को स्खलित करने से है। यूँ स्त्री को स्खलित करने के तन्त्र में बहुत से उपाय दिये गये हैं। उन्हें देखकर लगता है कि **जब विलासी और भोगी लोग 'तान्त्रिक' का पाखंड करके बैठ गये तो सम्भोग का उद्देश्य मात्र 'स्खलित होना'** भर रह गया। विलासी पुरुष तो शीघ्र पतन आदि के शिकार होते ही हैं अत: उन्हें स्त्री के शीघ्र स्खलन कराने वाली विधियाँ ढूँढनी पड़ीं। आपने पिछले पृष्ठों में देखा ही है कि **स्खलन वाला सम्भोग 'भ्रष्ट सम्भोग' है। सम्भोग का लक्ष्य प्रकाश-वलय है न कि नारी-पुरुष स्खलन।** अत: हमें बाजीकरण की औषधियाँ नहीं चाहिये, स्तम्भन की औषधियाँ चाहिये जिससे सम्भोग का समय बढ़ाया जा सके। फिर भी गृहस्थ सुख का ध्यान रखते हुए

शीघ्र पतन के शिकार पतियों के लाभार्थ कुछ बाजीकरण प्रयोग हम यहाँ दे रहे हैं जिससे कोई युगल भ्रष्ट (अपूर्ण) सम्भोग का शिकार हो कर कामकुण्ठा ग्रसित न हो।

सर्वेषां द्रव योगानां मन्त्र राजं मयोदितम्।
जपेदष्टोत्तरशतम् तन्त्रयोस्य सिद्धये॥
'ॐ नमो भगवते रुद्रायउड्डामरेश्वराय स्त्रीणां
मन्द द्रावय द्रावय स्वाहा ठः ठः।

'ॐ नमो ......ठः ठः' मन्त्र का १०८ बार जप सम्भोग काल में सब प्रकार की स्त्रियों को स्खलित करने के लिये है।

→ कालीमिर्च, धतूरे का बीज, पिप्पली, और लोध को पीसकर शहद में मिला कर लिंग पर लेप करके सम्भोग करें तो स्खलन में बहुत देर लगाने वाली स्त्री भी शीघ्र स्खलित होती हैं।
→ कटेली की जड़ और फल, पीपल, कालीमिर्च, गोरोचन पीसकर लिंग पर लेप कर सम्भोग करें तो स्त्री शीघ्र द्रवित होगी।
→ वेल (बिल्व) के फूल, मुण्डी के फूल, तथा मुश्क काफूर (कपूर), सामान भाग पीसकर लिंग पर लेप करें तो स्त्री शीघ्र द्रवित होगी।
→ असगंध के काढ़े में उड़द (माष) तथा मुलहठी बराबर पीसकर लिंग पर लेप करने से स्त्री शीघ्र स्खलित होती है।
→ सिंदूर, इमली का बीज और शहद, के समान भाग का लेप योनि में करने से स्त्री शीघ्र द्रवित होती है।
→ शहद में त्रिफला (हरड़, बहेडा, आँवला) का चूर्ण मिलाकर योनि में लेप करने के पश्चात् सम्भोग करने से स्त्री शीघ्र स्खलित होगी।
→ पिप्पली-मघा, चन्दन कटेली और पकी इमली का लेप लिंग पर करके सम्भोग करने से स्त्री शीघ्र द्रवित होती है।
→ अगस्त्य के पत्तों के रस में घी, शहद और सुहागा मिलाकर लिंग पर लेप करके सम्भोग करने से स्त्री शीघ्र द्रवित होती है।
→ मैथुन के पश्चात् जो पुरुष बाँये हाथ से अपना वीर्य स्त्री के बाँये पैर के तलवे में एकदम मल देता है वह स्त्री जीवन भर उस पुरुष से पूर्व स्खलित होगी।

सव्येन पाणिकमलेन रतावसाने
यो रेतसा निजभवेन विलासिनीनाम्।
वामं विलिम्पति पदं सहसैव यस्याः
वश्यैव सा भवति नात्र विकल्पभावः॥

→ सेंधा नमक और कबूतर की बीट लिंग पर लेप कर सम्भोग करने से स्त्री चरमानन्द प्राप्त करती है।
→ खसखस और चन्दन शहद में मिलाकर जो मनुष्य अपने गले पर पोत कर सम्भोग करता है वह स्त्री को मोहित करता है।

वीर्य स्तम्भन के लिये सबसे उत्तम उपाय सम्भोग काल में मन को विषय रहित (अर्थात् काम वासना सम्बन्धी भावुकता रहित) कर लेना है। मन को वश में करने के लिये युद्ध वाला नियम लागू होता है। लड़ने वाले का बल दिनों दिन बढ़ता है और मन का बल क्रमशः घटने लगता है। वीर्य स्खलित होने के समय किसी दुर्घटना, अग्निकांड, युद्ध आदि का ध्यान करने से स्तम्भन होता है। स्तम्भन शक्ति की वृद्धि पुष्टि-कर भोजन से होती है। भोजन बलदायी औषधियों से अधिक लाभप्रद होता है। ऐसे पौष्टिक भोजन लगातार सेवन करने से ही लाभ देते हैं। रक्त बढ़ाने वाले सभी भोजन पौरुष एवं स्तम्भन शक्तिवर्द्धक होते हैं। तंग और चुस्त कपड़े स्तम्भन शक्ति में कमी लाते हैं। कुछ वीर्य स्तम्भन उपाय देखिये—

→ **चिताभस्म बचा कुष्ठं कुंकुम रोचनं समम्।**
चूर्ण स्त्री शिरशि क्षिप्तं वशीकरणमदभुतम्॥
चिता की भस्म, बच, कुठ, कुंकुम, और गोरोचन, समान भाग चूर्ण कर स्त्री के सिर पर छिड़क दें तो उसके साथ सम्भोग करने से वीर्य स्तम्भन और वशीकरण होगा।

→ इमली के बीज रात भर पानी में भिगोकर सबेरे छील कर पीस लें, फिर गुड़ मिलाकर आधे-आधे तोले की गोलियाँ बनाकर एक-एक गोली दूध के साथ प्रातः सायं सेवन करने से पौरुष वर्धन एवं स्तम्भन होता है।

→ सर्दियों की ऋतु में प्याज का रस आधा तोला और शहद का एक तोला मिलाकर प्रतिदिन चाटने से पूरे वर्ष के लिये पौरुष संचित हो जाता है।

→ गाय के एक सेर घी में आक (मदार) के सौ पत्ते साफ करके एक एक पत्ता तलें। सारे पत्ते तल जाने पर पत्ते फेंक दें और घी छान कर रख लें। इस घी को प्रति दिन दूध या रोटी के साथ दो तोले की मात्रा में खायें। स्तंभक एवं पौरुषवर्धक है।

→ दिवाली के दिन श्वेत लक्ष्मणा की जड़ मन्त्र शोधित कर सम्भोग के समय पास रखने से स्तंभन होता है।

■

रति सूत्र

सम्भोग क्रिया तीन भागों में सम्पादित होती है—काम, रति एवं आनन्द। काम क्रिया में वासना रहित (आलिंगन, चुम्बन, छेड-छाड़, प्यार भरी बातचीत, हँसी-मजाक आदि के द्वारा) प्रेम क्रीड़ा का व्यापार होता है, जिससे सम्भोग क्रिया में सम्पूर्ण शरीर पाँचों ज्ञानेन्द्रियों सहित भाग ले सके। यहाँ आप लोग 'वासना रहित प्रेम क्रीडा' शब्द से चौंकेंगे। **वासना में व्यक्ति अंधा होता है और प्रेम में चैतन्य।**

वासना पूर्ण आलिंगन में व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इतना कसता है कि दूसरे की जान ही निकल जाती है। प्रेममय आलिंगन में दूसरे के आनन्द का भी पूर्ण ध्यान रखा जाता है। वासनायुक्त चुम्बन में होठों से रक्त निकलते हुए देखा जा सकता है। दाँतों से काटने वाले स्थलों पर घाव बनते देखा जा सकता है। जबकि प्रेममय काटना एक सिहरन और गुदगुदी पैदा करने भर तक सीमित होता है, जिसमें दूसरा आनन्द ले; न कि उसे पकड़कर दस दिन तक रोता रहे। छेडछाड़ में धौलधप्पड़ मुक्केबाजी भी सम्मिलित हैं, परन्तु उसकी सीमा भी दूसरे के लिये आनन्दपूर्ण होने तक ही है। दस दिन तक दर्द करने वाला स्तनमर्दन भी अनुचित है। प्यार-भरी बातचीत और हँसी-मजाक में भी दूसरे के मनोभावों का ध्यान रखते हुए दिल पर चोट न देने वाली बातें ही उचित हैं। स्पर्शानन्द हेतु त्वचा पर हल्का (बिना दबाव का) हाथ सहलाना एक अद्‌भुत आनन्द देता है। रूपदर्शन हेतु एक-दूसरे की ओर प्यार भरी दृष्टि से टकटकी लगाकर देखना एक अजीब सिहरन उत्पन्न करता है। गर्दन, सिर और वक्ष आदि पर सूँघना भी दूसरे व्यक्ति में फुरफुरी पैदा करता है। 'कान' प्रेमपूर्ण बातें तथा प्रशंसा सुनने के विशेष प्रेमी होते हैं। प्रत्येक शरीर की बनावट, गठन, आदि में माँसपेशियों की लोच आदि के आधार पर कुछ न कुछ विशेषता होती है, उसकी प्रशंसा से व्यक्ति के प्रति स्थिरता उत्पन्न होती है।

मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने कहा है कि 'पहले वासना तब प्रेम' और हम कहते हैं 'प्रेम की तो बात दूर सम्भोग तक में वासना का कोई काम नहीं।' **'वासना रहित संभोग' ही समाधि का द्वार है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि संभोग के बिना समाधि नहीं होती। समाधि की जो बहुत सी विधियाँ हैं उनमें एक सम्भोग विधि भी है।** उपर्युक्त काम

क्रीड़ा में जिस प्रकार हमने ऑख, कान, नाक त्वचा आदि का वासना रहित आनन्दपूर्ण प्रयोग किया है इसी प्रकार जीभ का प्रयोग भी चूषण कार्य में किया जाता है। दूसरे व्यक्ति के शरीर के विभिन्न अंगों पर चूषण उसे एक अद्‌भुत मस्ती प्रदान करता है। अधिक चूषण से त्वचा पर कई दिन तक रहने वाला निशान पड़ जाता है अतः सामाजिक मर्यादा का ध्यान रखकर ही चूषण कार्य सम्पादित करें।

पाँचों इन्द्रियों के माध्यम से काम के लिए सम्पादित होने के समय मस्तिष्क अपनीं तरंगें जननेन्द्रियों की ओर प्रेषित करता है और वे अपनी-अपनी बनावट के अनुसार रति क्रिया के लिये तैयार होने लगती हैं। रति क्रिया का प्रारम्भ लिंग के योनि में प्रवेश होने पर होता है। कुछ जोड़े लिंग मुण्ड को योनि मुख पर रगड़-रगड़ कर घर्षणानन्द लेते हैं और अपने साथी को आनन्द विभोर कर लेने पर ही रति क्रीड़ा प्रारम्भ करते हैं। रति क्रीड़ा में भी वासनांध होने की कोई आवश्यकता नहीं। वासनांध व्यक्ति लिंग प्रवेश काल में ही स्वयं आहत हो जाता है अथवा अपनी साथिन को आहत कर देता है। नारी और पुरुष दोनों की यौनेन्द्रियाँ पर्याप्त स्राव छोड़ती हैं जिससे जननांग आहत होने का कोई कारण शेष नहीं रहता। जननांग का आहत हो जाना सम्भोग का 'अमानवीयपन' प्रकट करता है।

लिंग प्रवेश के उपरान्त थोड़े से आघातों-प्रतिघातों का आनन्द लेकर दोनों व्यक्ति अपनी श्वासों को सम करने का प्रयत्न करें। श्वास अपेक्षाकृत सम हो जाने पर पुनः प्रारम्भिक कामकेलि' प्रारम्भ करें। ध्यान रहे, लिंग योनि के अन्दर ही रहेगा। जब उत्तेजना बढ़ने लगे तो आघात-प्रतिघात भी बढ़ाते चलें। जब-जब पुरुष की उत्तेजना चरम शिखर की ओर बढ़े (अर्थात् आघात-प्रतिघात अपने आप होने लगें) तभी लम्बी और गहरी श्वास लेते हुए पुरुष कुंभक अवस्था में वज्रोली मुद्रा का अभ्यास करे। जब उत्तेजना शांत हो जाय तो पुरुष अपनी श्वास सम करता हुआ महिला को अश्विनी मुद्रा के लिए कहे। महिला जब अश्विनी मुद्रा करेगी तो लिंग उसका प्रति उत्तर अपने आप देगा। अब पुरुष पुनः आघात-प्रतिघात बढ़ाये जब महिला की उत्तेजना चरम शिखर की ओर बढ़ने लगे (अर्थात् महिला के आघात-प्रतिघात अपने आप होने लगें) तो महिला लम्बी और गहरी श्वासें लेती हुई कुंभक अवस्था में अश्विनी मुद्रा प्रारम्भ करे और पुरुष उसकी क्रिया का आनन्द ले क्योंकि अश्विनी मुद्रा का प्रति उत्तर तो उसका लिंग स्वतः देगा। इस प्रकार दोनों सहयोगी अपने चरमोत्कर्ष का हर बार आनन्द लेते हुए स्खलन बिन्दु को जितनी देर तक चाहें टालते चले जाय। यह कुंभक क्षणिक होंगे।

रमण परिणाम

प्रत्येक चरमोत्कर्ष के समय ओज निर्माण होता है जिसे वज्रोली अथवा अश्विनी द्वारा मस्तिष्क तक चढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। **बहुत से चरमोत्कर्ष सम्पन्न हो जाने पर** मस्तिष्क में ओज द्रव्य इतना भर जाता है कि और द्रव्य के लिये वहाँ स्थान नहीं रहता। उसके बाद अगले सम्भोग में पुनः ओज को धक्का देकर जब ऊपर चढ़ाया जाता

है तो गले में मस्तिष्क से अमृत रस टपकता है जो रक्त में मिल जाता है। ऐसा व्यक्ति ही वास्तव में अमृत-छका (अमृत पायी) व्यक्ति होता है।

'अमृत-रस-युक्त' वाले दम्पति पुनः सम्भोग द्वारा ओज चढ़ायें तो पुनः अमृत रस टपकने के समय इस जोड़े के सम्पूर्ण शरीर के चारों ओर आभा प्रस्फुटित होती है। जिसका कारण मैं पहले स्पष्ट कर चुका हूँ। इस प्रकार, ओज का तेज में परिवर्तन चरम बिन्दु पर ही होता है। प्रकट में भी, दही को एक विशेष समय तक मथने से ही मक्खन निकलता है। गृहस्थों के लाभार्थ 'योग विलास' सारणी दी गई है, उससे लाभ उठायें।

महर्षि 'यतीन्द्र' योग-तालिका, क्रमांक 20

योग-विलास सारणी

[वीर्य की अधोगति न करने के दृढ़ निश्चय के साथ रमण मार्गी (स्वस्थ गृहस्थ) सामान्य काम-केलि के पश्चात् योनि में लिंग प्रवेश करके अभ्यास प्रारम्भ कर सकते हैं। 'शरीर चेतना' के अभ्यास के पूर्ण होने पर 'मनश्चेतना' का अभ्यास करें और तब 'आत्म चेतना' की साधना करें।]

शरीर चेतना (अखण्ड रमण सिद्धि तक)	मनश्चेतना (वर्तुलाकार स्थितितक)	आत्म चेतना (जीवन पर्यन्त)
आमने सामने लेटकर		
अनुलोम कला (पुरुष प्रधान) १. आलिंगन चुम्बन स्पर्श मर्दन चूषण सीत्कार } विलास चक्र २. आलिंगन श्वास नियोजन अश्विनी मुद्रा वज्रोली मुद्रा चुम्बन } योग चक्र ३. सीत्कार प्रहर्षण चुम्बन अश्विनी वज्रोली आनन्दपूर्ण मुस्कराहट } योग विलास चक्र (प्रथम दल) प्रहर्षण आलिंगन अश्विनी वज्रोली आनन्दपूर्ण मुस्कुराहट } योग विलास चक्र (द्वितीय दल) प्रहर्षण स्पर्श अश्विनी वज्रोली आनन्दपूर्ण मुस्कुराहट } योग विलास चक्र (तृतीय दल)	**१. सम्मुख रति** **२. पृष्ठ रति** (कुछ क्रियायें विलोम कला में स्थान एवं परिस्थिति विशेष में कम हो जाती हैं।) **३. आसन रति** विभिन्न संभोगासनों का विवरण 'महर्षि वात्स्यायन कामसूत्र आदि' जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में देख सकते हैं। उपयुक्त आसनों की विशेष रति ही 'आसन रति' कहलाती है। **४. कुण्डलिनी प्रस्फुटन** कुण्डलिनी की ऊर्ध्वगति संभोग के चरम काल (स्खलन) से ठीक पूर्व श्वास रोककर (बँध सहित कुम्भक) अश्विनी तथा वज्रोली मुद्रा के झटके देने से होती है। **इसलिये चरम बिन्दु को समझना आवश्यक है अन्यथा 'योग विलास' को 'भोग विलास' बनने में एक क्षण भी नहीं लगेगा।** पुरुष विभिन्न आसनों और मुद्राओं आदि के द्वारा यह जान ले कि वह स्वयं कौन से सम्भोग आसन में अपने को स्खलित होने से बचा पाता है उस आसन का उपयोग नारी के	सत् **१. कुण्डलिनी और शरीर चेतना के बीच का अन्तराल** ही सत्य का वह क्षण है जहाँ से ज्ञान निष्ठ चित्त परम आनन्द का मार्ग प्रशस्त करता है। **२. लम्बी रमण साधनाओं द्वारा** साधक (कामानन्द) (स्खलन बिन्दु) तथा ब्रह्मानन्द (कुण्डलिनी स्फुरण) के अन्तराल को समझ कर शारीरिक तरंग और कुण्डलिनी तरंग के अन्तर पर ध्यान देने लगता है। काम कला से इस प्रकार कुण्डलिनी का स्फुरण होने के कारण कुण्डलिनी विलास को 'काम कला विलास' भी कहा जाता है। **चित्** **कामानन्द को स्खलन बिन्दु पर त्यागने वाला ज्ञान-निष्ठ चित्त** ही स्वस्थ मनश्चेतना का प्रमाण है। ऐसा चित्त ही— मन को वश में करके आनन्द इच्छा का त्याग कर, शक्ति की ऊर्ध्वगति कर पाता है।

प्रहर्षण मर्दन अश्विनी वज्रोली आनन्दपूर्ण मुस्कुराहट } योग विलास चक्र (चतुर्थ दल) प्रहर्षण चूषण अश्विनी वज्रोली आनन्दपूर्ण मुस्कुराहट } योग विलास चक्र (पंचम दल) प्रहर्षण सीत्कार अश्विनी वज्रोली आनन्दपूर्ण मुस्कुराहट } योग विलास चक्र (षष्ठम दल) ४. **विलास चक्र** ५. **योग चक्र** ६. **विरामालिंगन**—आँखे बंद करके प्रगाढ़ आलिंगन युक्त विराम विलोम कला **(नारी प्रधान)** — १. विलास चक्र २. योग चक्र ३. योग विलास चक्र (षड दल युक्त) ४. विलास चक्र ५. योग चक्र विरामालिंगन	मद-आनन्द वर्धन के लिये करे और बार-बार नारी को स्खलन बिन्दु तक पहुँचाये। इस बिन्दु पर नारी श्वास रोककर अश्विनी मुद्रा द्वारा अपनी कुण्डलिनी की ऊर्ध्वगति करे। इसके पश्चात् पुरुष सबसे अधिक सम्भोगानन्द पाने की मुद्रा या आसन में रति रत हो, बार-बार अपने को स्खलन बिन्दु पर लाकर वीर्य स्राव से पूर्व ही वज्रोली मुद्रा द्वारा श्वास रोककर वीर्य की ऊर्ध्वगति करे। इस प्रकार नारी पुरुष दोनों मिलकर एक दूसरे के ओज वर्धन में पूरक बनें। **५. सरलेशासन** (आँखें बन्द करके करें) उचित सम्भोगासन में (जिसमें जल्दी जल्दी स्खलन बिन्दु बार-बार आये) अनुलोम, विलोम कलाओं का प्रयोग करते हुए विभिन्न रति क्रियायें सम्पादन कर शक्ति की ऊर्ध्व गति करते रहें। प्रत्येक कला के अन्त में प्रगाढ़ आलिंगन सहित सरलेशासन में आँखें बन्द करके विराम करें। इस विरामालिंगन अवस्था में जो कुछ बन्द आँखों में अनुभव हो उसे बाद में अपनी 'दैनिक साधना डायरी' में लिख लें।	अखण्ड और लम्बे सम्भोगों में वीर्य की अधोगति नहीं होने देता। अश्विनी अथवा वज्रोली मुद्राओं द्वारा ओज निर्माण कर मेरु द्रव का आयतन बढ़ाता है। नव निर्मित ओज को मेरु द्रव में मुद्राओं की सहायता से ठेल कर मस्तिष्क द्रव को घनीभूत करता है। घनीभूत द्रव द्वारा मस्तिष्क को अधिक सक्षम बनाता है और योगियों के गले में टपकने वाले अमृत रस का निर्माण करता है। **आनन्द** अपना मालिक स्वयं बन जाने से बड़ा आनन्द कहीं नहीं है। समाधि तरंगों की मस्ती चाहे जब उत्पन्न करके आनन्द का अनुभव करना अद्भुत होता है, यह **अद्वैत की स्थिति** [जहाँ आनन्द प्राप्ति के लिये दूसरे (पुरुष अथवा नारी) साथी की आवश्यकता नहीं रहती] **अखंड ब्रह्मचर्ययुक्त रमण साधना से प्राप्त होती है।** आनन्द से ही आनन्द की प्राप्ति हो इससे बड़ा आनन्द क्या होगा? इस आनन्द को जितना गहरा करेंगे उतना ही पूर्णत्व की ओर एवं परमानन्द की ओर अग्रसर होंगे।

आमने सामने बैठकर

अनुलोम कला } शाम्भवी
विलोम कला

आमने सामने खड़े खड़े

एक शाम्भवी

आमने सामने पुरुष खड़ा नारी बैठी

एक शाम्भवी

आमने सामने पुरुष बैठा नारी खड़ी

एक शाम्भवी

सम्मुख रति

पाँच शाम्भवी (लेटे, बैठे, खड़े, खड़े बैठी, बैठे खड़ी) मुद्राओं की एक रति होती है, जो पुरुष और नारी के मुँह आमने सामने होने से 'सम्मुख रति' कहलाती है और आगे पीछे (पुरुष नारी के पीछे) होने से 'पृष्ठ रति' कहलाती है।

रमण

एक सम्मुख रति तथा एक पृष्ठ रति मिलकर एक 'रमण' (संभोग) पूरा होता है।

रमण सिद्धि

कैसे भी संभोग आसन में रमण करते हुए जब तक न चाहे वीर्य की अधोगति न होने देना ही रमण दक्षता (संभोग तकनीक) है। जिसे अखंड रमण सिद्धि भी कहते हैं

६. वर्तुलाकार साधना

तांत्रिक रमण विधि से समाधि आनन्द प्राप्त करते रहने के कुछ मास पश्चात् बिना रमण के समाधि में जाने को ही साधक का वर्तुलाकार (अर्थात् पूर्ण) होना कहा जाता है। जहाँ वह स्वयं का स्वयं से रमण करता है और स्खलन जैसी स्थिति आने पर वज्रोली अथवा अश्विनी के झटकों से कुण्डलिनी को ऊर्ध्वगति देने लगता है। इस स्थिति में उसे नार (अथवा नर) की आवश्यकता नहीं रहती। वह अपने में पूर्ण हो जाता है।

७. पवित्र भाव

तांत्रिक रमण का आधार शाम्भवी मुद्रा है। उसमें 'पवित्र भाव' साधक की विशेष आवश्यकता है। 'ज्ञान संकलनी तंत्र' में कहा है—

वेद शास्त्र पुराणान सामान्य गणिका इव। एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्त कुल वधू रिव॥ (वेद, शास्त्र तथा पुराण आदि सामान्य गणिका के तुल्य हैं एक शाम्भवी मुद्रा ही सुरक्षित कुल वधू के समान पवित्र है।) वेश्या उपासना किसी का भला नहीं करती फिर भी व्यक्ति को मृग तृष्णा होती है कि 'उससे लाभ होगा ही' परन्तु, पत्नी उपासना कभी धोखा नहीं देती; प्रकट में भले ही वह कर्कशा हो। वेश्या के सम्बन्ध से पत्नी का सम्बन्ध अपेक्षाकृत अधिक पवित्र और गुप्त होता है चूँकि गहरी होती है।

मूलाधार—अखंड रमण सिद्धि ही कुंडलिनी का मूल आधार है।

पूर्णत्व की ओर

किसी भी सुखमय आसन में एकान्त में आँखें बन्द करके बैठें जब तक शरीर में वहीं झनझनाहट तथा कम्पन न होने लगे जो लम्बे रमण काल में होती थी, गहरे और तेजी से श्वास-प्रश्वास लेते रहें। शरीर में खूब झनझनाहट उत्पन्न हो जाने पर अचानक सब क्रियायें बन्द कर के मात्र वज्रोली एवं अश्विनी मुद्रायें करें। इस अवस्था में संभोग काल की विराम अवस्था में होने वाले अनुभवों के समान ही आनन्दपूर्ण शान्ति स्रोत फूटेंगे।

इन अनुभवों को दूसरे समाधि सिद्ध साधकों के साधना अनुभवों से मिलाकर देखें कि आप कहाँ हैं?

गहरी लम्बी सतत साधनायें पूर्णत्व प्रदान कर शिवत्व का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

सुगन्ध-प्रयोग

कुण्डलिनी-योग का दाहक तेज कम करने, तथा ध्यान की गर्मी शांत करने के लिये **योगी द्वारा प्रयुक्त होने वाले अनुलेपन एवं सुगन्ध (इत्र)** आदि।

सामान्यतः—खस	शीतल है
शीत काल—केशर, काला अगर	उष्ण है
ग्रीष्म काल—चन्दन, सुगन्ध बाला, कपूर	शीतल है
वर्षा काल—केशर, कस्तूरी	शीतोष्ण है

■

२५

अन्य चक्र

मैं चक्रों की संख्या के बारे में पहले ही 'प्रश्न चिन्ह' लगा आया हूँ। फिर भी, जो कुछ विद्वान साधकों के अनुभवों से मुझे प्राप्त हो सका है, प्रस्तुत करने का प्रयल कर रहा हूँ। षडचक्रों के बारे में तो बहुत कुछ पढ़ने और सुनने को मिल ही जाता है परन्तु अन्य के बारे में नहीं। शारदा तन्त्र और कलार्णव तन्त्र में मूलाधार आदि के १६ आधार कहे गये हैं—१. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूरक, ४. अनाहत, ५. विशुद्ध, ६. आज्ञा, ७. बिन्दु, ८. कलापद, ९. निबोधिका, १०. अर्धेन्दु, ११. नाद, १२. नादान्त, १३. उन्मनि, १४. विष्णु-वक्त्र, १५. ध्रुव मण्डल और १६. शिव। इन सभी को प्रणव का आधार कहा गया है। 'घटमार्ग' वाले इसी प्रकार १८ चक्रों को मानते हैं—१. गुदा चक्र, २. इन्द्रि चक्र, ३. नाभि चक्र, ४. हृदय चक्र, ५. कण्ठ चक्र, ६. आज्ञा चक्र, ७. सहस्त्र दल कँवल, ८. त्रिकुटी, ९. सुन, १०. महासुन्न, ११. भंवर गुफा, १२. सत खण्ड, १३. अलख, १४. अगम, १५. अनामी, १६. गुप्त, १७. गुप्त, १८. गुप्त; इससे और आगे सत्पुरुष परमेश्वर। जिसमं १३ से १८ तक 'ब्रह्मांड' क्षेत्र के अन्तर्गत, ७ से १२ तक 'अण्ड' क्षेत्र के अन्तर्गत और १ से ७ तक पिंड (भौतिक शरीर) के अन्तर्गत माने जाते हैं।

इन विभिन्न चक्र क्षेत्रों में कुण्डलिनी शक्ति की चाल (गति) को स्पष्ट करने के लिये कहा है कि गुदा चक्र से आज्ञा चक्र तक वह चींटी की चाल से चलती है, अर्थात् अत्यन्त धीर गति से। सहस्त्र दल कमल और त्रिकुटी के क्षेत्र में यह मकड़ी की चाल से चलती है अर्थात् बार-बार चढ़ती है और उतरती है। सुन्न और महासुन्न के क्षेत्र में वह मछली की चाल से चलती है अर्थात् अचानक रुक जाती है और अचानक तेजी से चढ़ने लगती है। भँवर गुफा और सतखण्ड क्षेत्र में उसकी चाल पक्षी जैसी, और ब्रह्माण्ड क्षेत्र में उसकी गति बतलाने की कोई उपमा नहीं है। परन्तु आज के युग में उसकी गति बतलाने की एक सरल उपमा है वह मैं अपनी समझ से बतलाने का प्रयल करता हूँ। जैसे—

रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठकर आप बाहर की ओर न झाँकें तो ऐसा लगता है कि हम गति में नहीं हैं, जबकि हम गति में होते हैं। ऐसी ही स्थिर परन्तु गतिमान अवस्था ब्रह्माण्ड

क्षेत्र में शक्ति की होती है । इससे अधिक सरल उपमा मेरी समझ में नहीं आ रही । पृथ्वी की गति भी ऐसी ही उपमा के अन्तर्गत है परन्तु वह जन सामान्य की पहुँच से परे रहेगी ।

महासुन्न (चक्र संख्या १०) क्षेत्र के बाँई ओर १० दल का कँबल (पद्म) है जिसे सहज द्वीप कहा जाता है । दाहिनी ओर १२ दल का कँवल है जिसे अचिन्त्य द्वीप कहा जाता है । इस प्रकार घटमार्गी कुल २० पद्म मानते हैं । अनहद नाद को झींगुर की आवाज जैसा बताते हैं ।

इन २० चक्रों में कुछ के अस्पष्ट वर्णन साधकों से प्राप्त हो पाते हैं । अस्पष्ट इसलिये क्योंकि उनमें से बहुत से अनुभवों को साधक भूल जाते हैं । बहुत से अनुभवों में वे यह याद नहीं कर पाते कि अमुक बात महासुन्न अवस्था की है अथवा सहस्रार की या ऐसी दो मान्य अवस्थाओं के बीच की । गुप्त अवस्थाओं की बातें कहने के लिये न कोई उपमा उन्हें समझ पड़ती है न कोई शब्द । सहस्र दल कमल के आगे त्रिकुटी अवस्था में ४ दल, सुन्नावस्था में ६ दल और महासुन्नावस्था में ८ दल के पद्मों का विवरण प्राप्त होता है । त्रिकुटी का प्रकाश लाल सूर्य जैसा, सुन्न का १२ सूर्यों के समान, सतखण्ड का १६ सूर्यों के समान, अलख का अरबों सूर्यों के समान, अगम का खरबों सूर्यों के समान बताया है । पता नहीं ऐसा बताने वालों की दृष्टि में १ सूर्य का प्रकाश कितना होता है ?

एक साधक के अनुसार यह विभिन्न अवस्थाएँ अलग-अलग प्रकार के अनाहत नाद उत्पन्न करती हैं जिससे साधक कोअवस्था परिवर्तन का भान हो जाता है । इन नादों कें बारे में सहस्रार में घण्टा और शंख ध्वनि मिश्रित झंकारमय गूँज क समान, त्रिकुटी में मृदंग पर हुई ॐ के समान, सुन्न में 'र' कार का स्वर जैसा सारंगी पर निकलता है, वैसी आवाज के सामान; भँवर गुफा पर मुरली में सोहं का स्वर बजने के समान, सतखण्ड में वीणा की स्वर लहरी के समान अनहत नादों की आवाजें सुनाई देने के विवरण प्राप्त होते हैं ।

इन विभिन्न अवस्थाओं में जो दिव्य दृश्य प्रतीत होते हैं, उनके बारे में साधक कहते हैं कि त्रिकुटी में (सहस्र दल से आगे) भूत-पिशाच, स्त्रियाँ, आँधी, तूफान, बाधायें, ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ आदि बहुत सी वस्तुओं के दर्शन होते हैं। जिनमें कुछ भयावने तथा कुछ लुभावने दृश्य होते हैं । महासुन्न अवस्था में ऐसा प्रतीत होता है कि हम प्रश्न पूछ रहे हैं और उसका उत्तर हमें सुनाई दे रहा है । निर्देश मिलते हैं, प्रकट सुनाई देते हैं पर निर्देशक या गुरु दिखाई नहीं देता है । इस अवस्था के बारे में शास्त्रों में मिलता है कि **यहाँ गुरु देह स्वरूप नहीं शब्द स्वरूप होता है।**

भँवर गुफा की अवस्था में सत गुरुओं का दरबार दिखाई पड़ता है । उसमें जहाँ तक साधककी दृष्टि जाती है गुरु ही गुरु दिखाई पड़ते हैं । उन करोड़ों गुरुओं में शिष्य एक भी नहीं है, ऐसा भान होता है । आगे की अवस्था सत खण्ड की है वहाँ सत पुरुष का दरबार दिखाई देता है । अन्य सत गुरुओं से अलग सत पुरुष के दिखाई देने मात्र से साधक को अत्यन्त आनन्द प्रतीत होता है क्योंकि इससे पूर्व की अवस्था में उसने इसे (सत पुरुष को) बड़ी लगन और परिश्रम से खोजा होता है ।

सहस्त्रार से पूर्व की अवस्थाओं में साधक अनहत नाद की उपलब्धि की कोई बात नहीं बता पाते क्योंकि अधिकतर साधक सन्यासी (दार्शनिक) पद्धति का उपयोग करने वाले मिलते हैं जिसमें **क्लीं, श्रीं, ह्रीं, ॐ, सोहं** आदि भिन्न-भिन्न बीज मन्त्रों के जापों के कारण आहत नाद चलते रहते हैं। **अनाहत (अन आहत) नाद का प्रारम्भ तो तब ही हो पाता है जब आहत नाद पहले बन्द कर दिया जाय।**

अब कुछ नई पद्धतियों में लीक से हटकर काम हुआ है और अनहत-नाद का अभ्यास मूलाधार से पूर्व ही प्रारम्भ कराने की बात की गई है। उनसे झींगुर की आवाज जैसे तथा रात के सन्नाटे की आवाज जैसे अनुभव साधकों ने दिये हैं। 'नित्या तन्त्र' में कहा गया है—मूलाधार से सर्वप्रथम नाद (Sound) उठता है जिसे 'परा' कहते हैं। वह ऊपर जाकर स्वाधिष्ठान में स्थित होता है तब वह 'पश्यन्ती' कहलाती है। शनः-शनः अनाहत में पहुँचता है। बुद्धि तत्व से एकाकार हो जाने पर वह 'मध्यमा' कहलाता है। आगे वह इसी प्रकार कण्ठ क्षेत्र में विशुद्ध तक पहुँचता है। वहाँ वह 'वैखरी कहलाता है। इत्यादि।

अग्नि चक्र

कुछ लोग मूलाधार से पूर्व अग्नि चक्र को मानते हैं। शाक्त तन्त्रों में सामान्य सम्भोग के लिये काम वेग त्रसित उन्मत्त साधक-साधिकाओं की 'कामाग्नि उद्दीप्त अवस्था' को अग्नि चक्र (कामाग्नि) की स्थिति बताते हैं। अग्नि को जीवन का उद्गाता मानकर अग्नि का सम्बन्ध ब्रह्मा (सृष्टि रचने वाला) से कुछ लोग मानते हैं। यदि यह अग्नि 'कामाग्नि' है तो सृष्टि (ब्रह्मा) वाली बात जमती है अन्यथा नहीं। 'योनि त्रिभुज' में अग्निरेखा की अधिष्ठात्री वामा है जो ब्रह्मा की शक्ति बताई गई है।

एक मत के अनुसार यम, नियम, आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहार ये पाँच अग्नि चक्र के अन्तर्गत हैं, जो कि कुण्डलिनी के मूलाधार चक्र से पूर्व ही सिद्ध किये जाते हैं। अतः ये 'गणेश ग्रन्थि' के अन्तर्गत हैं और कुण्डलिनी का श्री-गणेश करते हैं। इसके पश्चात् ही धारणा, ध्यान और समाधि की विभिन्न अवस्थाओं में कुण्डलिनी के षडचक्रों का भेदन होता है।

मेरे विचार से **अग्नि चक्र' समाधि की अवस्थाओं में कुण्डलिनी जाग्रत होने से पूर्व की अवस्था को मानना चाहिये। जिसमें श्वास चेतना** (Breath Conscious), **शरीर चेतना** (Body Consciоus), **आत्म चेतना** (Soul Conscious), **और महा चेतना** (Super Conscious) **के स्तर आते हैं।**

ईशावास्यापनिषद [जो कि शुक्ल यजुः संहिता (बाजसनेही संहिता) का अन्तिम (चालीसवाँ) अध्याय है] में अग्नि चक्र के विषय में एक श्लोक मिलता है—

अग्ने नव सुपथाराये अस्मानिविश्वानि देव वयुनानि विद्वान।
युयोध्यस्मज्जुहुराण मेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम॥

[हे अग्ने ! हमें कर्म फल भोग के लिये सुपथ से ले चल। हमारे सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों के जानने वाले हे देव ! हमारे मार्ग में बाधक पापों को नाश कर दे। हम तेरे लिये बहुत से नमस्कार वचन विधान करते हैं।]

'अग्नि चक्र' जो कि साधक के लिये मूलाधार चक्र से पूर्व की सीढ़ी है उससे वह साधक (जिसे ईशोपनिषद के इससे पूर्वले श्लोकों में सत्य धर्मा कहा गया है) कहता है कि मुझे आगे आने वाले कर्म-फल-भोग के लिये उन्नत मार्ग से ले चल। आप जानते हैं शुभाशुभ कर्मों का तथा उचित-अनुचित कर्मों का व्यावहारिक ज्ञान अग्नि चक्र के अन्तर्गत ही आता है, और उस समय आने वाली बाधायें भी विशद रूप में ही आई प्रतीत होती हैं। अतः साधक यहाँ 'अग्नि चक्र' को देव (मानवीकरण अलंकार) कहकर सम्बोधित करते हुए कहता है कि 'तू शुभाशुभ कर्मों का स्पष्टीकरण करते हुए मार्ग में आने वाली बाधओं का नाश कर दे।' ईशोपनिषद की जगतगुरु शंकराचार्य की व्याख्या देखें तो बात स्पष्ट हो पायेगी।

जगतगुरु शंकराचार्य ने अपने भाष्य में इस श्लोक में 'अग्ने'

शब्द का अर्थ भौतक अग्नि से लगाया है चूँकि मृत्यु के उपरांत उनके आधार पर अग्नि की आवश्यकता होती है। परन्तु 'नय गमय सुपथा शोभनेन मार्गेण' (मुझे सुपथ अर्थात् शुभ मार्ग से ले चल) की वहाँ तुक नहीं बनती क्योंकि मृत्यु के पश्चात् अग्नि में तो केवल शरीर पहुँचता है जिसे कि भस्म हो जाना है। जो सुपथ मार्ग पर जाने की बात करने वाला तत्व है वह तो अग्नि में शरीर पहुँचने से पूर्व ही जा चुका होता है। अतः भौतिक अग्नि द्वारा मृत्यु के पश्चात् शरीर के सुपथ मार्ग से जाने का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। आगे शंकराचार्य अग्नि को सम्बोधित करते हुए अपने भाष्य में कहते हैं—**'हे देव ! वयुनानि कर्माणि प्रज्ञानानि वा विद्वज्जानन्'** (हमारे सम्पूर्ण कर्म अथवा ज्ञानों को जानने वाले हे देव !) स्पष्ट है कि कोई भी अग्नि कर्मां वा ज्ञानों को जानने वाली नहीं हो सकती और न पापों का विनाश करती है। वे आगे कहते हैं **'ततो वयं विशुद्धाः सन्त इष्टं प्राप्स्याम'** (तब हम सिद्ध होकर अपना इष्ट प्राप्त कर लेंगे)। भौतिक अग्नि में पड़कर भौतिक शरीर शुद्ध होने की बात कवि की कल्पना ही कही जा सकती है और फिर विशुद्ध होकर अपना इष्ट प्राप्त कर लेने की बात से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अग्नि' वह अग्नि नहीं है जो मृत्योपरांत शरीर को भस्म करती है। आगे शंकराचार्य जी **'नमः उक्तिं विधेम'** के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण देते हैं **'किन्तु वयमिदानीं ते न शक्नुम परिचर्याम् कर्तुम्'** [परन्तु इस समय हम तेरी परिचर्या (सेवा) करने में समर्थ नहीं हैं] यह वाक्य भौतिक अग्नि के सम्बन्ध में उचित नहीं है क्योंकि भौतिक अग्नि की परिचर्या के लिये घास-फूस आदि पदार्थों के जुटाने में कोई कठिनाई नहीं होती। कोरे नमस्कार से तो अग्नि की परिचर्या होती नहीं **'नमस्काराण परिचरेम इत्यर्थः'** (नमस्कार से ही तेरी परिचर्या करते हैं, यह अर्थ है।)

ईशोपनिषद को पढ़कर देखें तो सोलहवें श्लोक में पायेंगे कि साधक को ज्ञानोदय हुआ है। सत्रहवें श्लोक में साधक के मर जाने की बात की गई है जो युक्तियुक्त नहीं है। ज्ञान होने के पश्चात् उसे कर्मणा में ढालने की बात ही स्वाभाविक है। अतः शंकराचार्य

का यह कथन भी 'अग्नि चक्र' का सम्बन्ध ही प्रमाणित करता है कि **'लिंग चेदं ज्ञान कर्म संस्कृतमुत्क्रामत्विति'** (ज्ञान और कर्म के संस्कार से युक्त यह लिंग उत्क्रमण करे)। पीछे कुण्डलिनी चक्रों के विवरणों से आप यह समझ ही चुके हैं कि लिंग उत्क्रमण कब करता है ? 'लिंग की उत्क्रमण मुद्रा' के साथ ही 'योनि मुद्रा' की बात स्वाभाविक रूप में सामने आती है।

योनि मुद्रा—एक स्पष्टीकरण

योनि मुद्रा के विषय में कहा जाता है उससे मन संसार से विरक्त होता है। 'शारदा तिलक' में योनि मुद्रा की विधि के बारे में लिखा है—बाँई ऐडी गुदा के सामने और दाहिनी ऐडी बाँये पैर के ऊपर रखकर इस प्रकार सीधे तन कर बैठो कि शरीर, गर्दन और सिर पृथ्वी से लम्बवत हों। फिर अपने होठों को कौए की चौंच के समान बनाकर श्वास खींच कर पेट भर लो। बाद में अपने कान के छेद अँगूठों से, ऑखें तर्जनियों से, नथुने मध्यमाओं से और मुँह को शेष अँगुलियों से कसकर बन्द कर लो। ऐसे कुम्भक प्राणायाम से सब इन्द्रियों का संयम करते हुए मन्त्र पर ध्यान करो जिससे प्राण और मन के एकत्व का आभास होने लगे। यही योग है।

कौल मार्ग योनि मुद्रा का अर्थ सम्भोग मुद्रा मानता है जिसमें व्यक्ति बिना किसी परिश्रम के संसारी बातों से विरक्त होकर एक मात्र सम्भोग में एकाग्र हो जाता है। बार-बार कुम्भक की सहायता से अश्विनी और वज्रोली मुद्राओं द्वारा वीर्य की ऊर्ध्वगति कर कुण्डलिनी मार्ग पर अग्रसर होता है। गहराई में जाकर 'क्रियात्मक परिणामों' में दोनों बातें एक हो जाती हैं अतः हम यह कह सकते हैं कि सन्यासियों के लिये शारदा तिलक वाली योनि मुद्रा उचित है और गृहस्थ के लिये कौल मार्ग वाली।

द्वादश दल पद्म

सहस्रार के अन्दर पाया जाने वाला एक अन्तिम श्वेत द्वादश दल पद्म, जा अधोशीर्ष त्रिभुज युक्त अर्थात् योनि संगत है। इसके प्रत्येक दल पर गुरु मन्त्र निर्माण करने वाले द्वादशाक्षर 'स ह ख फ्रें ह स क्ष म ल ब र यूं' हैं। इसे सिद्ध कर लेने के पश्चात् ऐसा कोई पद्म शेष नहीं रहता जिसकी सिद्धि हेतु योनि (नारी) की आवश्यकता हो। सहस्रार और उससे आगे के चक्रों में कोई योनि नहीं है। जो 'यती' इसे सिद्ध कर पाता है वह 'यतीन्द्र' होकर सहस्रार की ओर उन्मुख हो जाता है। (यहाँ पाठक मेरे शरीर नाम से सम्बन्ध लगाकर भ्रमित न हों) यह अन्तिम त्रिभुज शक्ति पीठ अथवा योनि पीठ कहा गया है। इसकी सिद्धि ही काम कला की सिद्धि है। इस योनि पीठ को 'मन्त्रमय पीठ' भी कहा है। इसे गुरु मन्त्र (वाग्भव बीज) 'ऐं' से मन्त्रित किया जाता है। 'काम कला' के विषय में कहा है—

'तस्य कन्दलित कर्णिका पुटे क्लृप्त रेखमकथादिरेखया
कोण लक्षित हलक्ष मंडली भावलक्ष्चमबलालयं भजे'

—पादुका पंचकम्

अवलालयं—अवला (नारी) का आलय (स्थल) अर्थात् योनि जिसे तांत्रिक लोग काम-कला भी कहते हैं अधोशीर्ष त्रिभुज से प्रकट किया जाता है। इस **त्रिभुज की तीन रेखायें इस काम कला के तीन उपयोग प्रदर्शित करती हैं। काम-कला का उपयोग सन्तान के लिये, सांसारिक आनन्द के लिये तथा समाधि के लिये किया जाता है। इसलिये काम-कला को त्रिशक्ति रूप कहा जाता है।** सम्पूर्ण कलायें षोडष (१६) मानी गई हैं। श्री कृष्ण को १६ कला सम्पूर्ण योगी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि **षोडष कला किसी कार्य के करने की विधि की 'पूर्णता' की सीमा है।** इसी आधार पर इस **त्रिभुज की प्रत्येक रेखा** (अर्थात् काम कला का प्रत्येक उपयोग) **षोड़षी** (अपनी पूर्णता की सीमा तक) है, चाहे वह ब्रह्मा की शक्ति का प्रतीक वामा रेखा हो जो सन्तान (सृष्टि) उत्पन्न करती है, या वह विष्णु की शक्ति का प्रतीक ज्येष्ठा रेखा हो जो सांसारिक सम्भोगानन्द से शरीर का पोषण करती है। अथवा रुद्र की शक्ति का प्रतीक रौद्री रेखा हो जो इतनी विनाशकारी है कि व्यक्ति का क्षय कर मृत्यु प्रदान करती है। इन त्रिभुज रेखाओं को षोड़षी दिखाने के लिये यन्त्रकार ने प्रत्येक रेखा में १६ वर्णों की कल्पना की है जो अ से अः तक, क से त तक और थ से स तक माने गये हैं। इसका विशद स्पष्टीकरण मेरी दूसरी पुस्तक 'कुण्डलिनी तन्त्र रहस्य' में दिया है।

प्रत्येक कार्य (उपयोग) का एक इष्ट होता है। यह शास्त्रीय चरित्र गणना के आधार पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। इनके लिये तीन कोणों पर तीन बिंदु के रूप में योनि-त्रिकोण में वामा, ज्येष्ठा और रौद्री के प्रतीक ह ल क्ष वर्ण बताये गये हैं। इस शक्ति पीठ (योनि मण्डल) के बारे में 'तन्त्र जीवन' में लिखा है— रजः सत्वतमोरेखा योनिमण्डलमण्डिता। अर्थात् यह योनि मण्डल सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी रेखाओं से निर्मित है। शाक्तानन्द तरंगिणी में कहा है कि 'अ क थ त्रिकोण के बाहरी भाग पर चलें तो वह वामांगी रहे।' यांत्रिक भाषा का स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जब तक बाहरी (सांसारिक) रूप में इस त्रिभुज (नारी योनि) का उपयोग हो तब तक वह वामांगी (पत्नी रूप) रहे। [बाद में तो वह धर्म-पत्नी, देवी, शक्ति, शिवा आदि बन जायेगी।] उपर्युक्त श्लोक के प्रारम्भ में इस योनि स्थल को **'कन्दलित कर्णिका पुटे'** कहा है। अर्थात् वह स्थल जहाँ दो बीज-कोष आपस में एक-दूसरे पर आक्रमण करते हैं; एक नारी का दूसरा पुरुष का। कुछ लोग इन दो बीज कोषों का अर्थ दो नारी बीज कोष (Overy) लगाते हैं, वह व्यावहारिक नहीं है। प्रतीक भाषा के पक्षधर कह सकते हैं कि एक कमल का बीज कोष (Pericarp) दूसरे कमल के बीज कोष में समाया हुआ है इसलिये 'कंदलित कर्णिका' कहा है। वैसे मैं यन्त्र वाले अध्याय में पहले ही स्पष्ट कर आया हूँ कि कँवल का अर्थ नाड़ी केन्द्र (Nervous Centre) और दल का अर्थ है नाड़ियाँ (Nerves)। जितनी नाड़ियाँ किसी नाड़ी केन्द्र (कँवल) से निकलती हैं उतने ही दल का वह कँवल प्रदर्शित किया जाता है। द्वादश दल पद्म क्षेत्र की ग्रन्थि से बारह नाड़ियाँ निकलती हैं जो 'सहस्त्र नाड़ी गुच्छ' (मस्तिष्क) से आवृत्त हैं। जैसे कि एक छोटे कटोरे के ऊपर एक बड़ा कटोरा

उल्टा करके रख दिया गया हो। पाठक शरीर के अन्दर चित्र में 'मनश्चक्र' का क्षेत्र देखें तो इस पद्म की बात समझ में आ सकती है। ब्रह्मनाड़ी का अन्तिम छोर तथा अन्य विशेषताएँ उस क्षेत्र से मेल खाती हुई दृष्टिगोचर होंगी।

विनाशक चक्र

मूलाधार में नीचे तीन और नाड़ी केन्द्रों (चक्रों) की बात करते हुए Sir John Woddroffe न 'The Serpent Power' के Introduction में लिखा है—"There are firstly seven centres, which with one exception correspond with chakras described. The author says that there are three other lower centres, but that concentration on them is full of danger. what these are is not stated." बाद में, इन चक्रों के बारे में उन्हें कोई विवरण प्राप्त न हो पाने के कारण वे इन तीन चक्रों को मान्यता नहीं देते। परन्तु जहाँ उन्हें यह बात मिली है कि 'Concentration on them is full of danger' वहीं उन्हें यह सोचना चाहिये कि विनाशक (Dangerous) चक्र को तो सबसे पहले वश में करना आवश्यक है।

यदि विनाशक (Dangerous) चक्र को यूँ ही छोड़ दिया गया तो अनजाने अवश्य वह खतरनाक (Dangerous) हो जायगा। विनाशकारी (Dangerous) वस्तु की ओर से तो और भी सावधान (Cautious) रहने की आवश्यकता होती है। उसकी ओर से आँख बन्द कर लेना तो बुद्धिमत्ता नहीं है। किसी भी तकनीकी (Technical तांत्रिक) कार्य के बारे में समझाते समय उसमें आने वाले, उत्पन्न होने वाले अथवा सम्भव हो सकने वाले खतरों के प्रति सबसे पहले शिष्य को सावधान किया जाता है।

यह तीनों विनाशकारी चक्र धारणा, ध्यान और समाधि के हैं। अधिकतर साधक यहीं उलझे रह जाते हैं। **सांसारिक उलझाव में डालने वाले और साधक को लक्ष्य च्युत कराने वाले यही तीन चक्र हैं। 'धारणा (Concentration) चक्र'** में व्यक्ति त्राटक द्वारा हिप्नोटिज्म (सम्मोहन-निद्रा) आदि के प्रयोगों में उलझकर मार्ग च्युत होने लगता है। **'ध्यान चक्र' (Meditation) में व्यक्ति टेलीपैथी (Telepathy) आदि में उलझकर लक्ष्य च्युत हो जाता है। 'समाधि चक्र'** (Conscious) में व्यक्ति दिव्य दृष्टि (Clair Voyance) आदि के चक्कर में पड़कर अपना लक्ष्य छोड़ जाता है। इन तीन चक्रों में सांसारिक कार्य-कलापों में प्रयुक्त होने वाली बहुत सी शक्तियाँ (सिद्धियाँ Static form of the creative energy in bodies) व्यक्ति को मिल सकती हैं; जिनमें उलझकर साधक कुण्डलिनी का तो प्रारम्भ भी नहीं कर पाता। कुण्डलिनी का प्रारम्भ मूलाधार चक्र से होता है। इसलिये सिद्धि के लोभ को त्याग कर कोई विरला साधक ही कुण्डलिनी मार्ग पर अग्रसर हो पाता है। ■■

२६

'ॐ' ब्रह्म-सम्बन्ध

ॐ अष्टक

ॐ परमानन्द है, अद्वैत, जगदाधार है।
ॐ ही शिव-शक्ति बन कर 'विष्णु तेज' आधारहै ॥ १ ॥
ॐ ब्रह्मा ने चलाया प्रजा वर्धन के लिये।
लिंग शिव ने था चलाया ओज वर्धन के लिये ॥ २ ॥
ॐ साधक है वही जो लक्ष्य से विचलित न हो।
भ्रष्ट साधक, पशुनिरा, अवसर पड़े कट्टर नजो ॥ ३ ॥
ॐ ब्रह्मा है, प्रजा उत्पन्न करती शक्ति जो।
ॐ रौद्रात्मक बने तो विनाश कर दे भक्त को ॥ ४ ॥
ॐ विष्णु जब बने तो महा-पोषण शक्ति हो।
अर्ध नारीश्वर बने, नारी नटेश्वर भक्त हो ॥ ५ ॥
ॐ तीनों शक्ति है, जो चाहिये वह प्राप्त कर।
ॐ साधक बन, स्वयं भू हो, वो युक्ति प्राप्त कर ॥ ६ ॥
युक्तियाँ ही साधना हैं, योग हैं, तप हैं यही।
तू ही शिव है, ब्रह्म तू ही ऋषि मुनि कहते यही ॥ ७ ॥
ॐ है 'शिव-शक्ति-संगम' का ही रेखा चित्र यह।
जीत ले इस जग-भँवर को जो समझ ले ज्ञान यह ॥ ८ ॥

—'दर्पण'

ॐ ध्यान प्रक्रिया

'ॐ साधना' प्रारम्भ करने के लिये बसंत (Spring) या शरद (Autumn) ऋतु को श्रेष्ठ माना गया है। आप तो जानते हैं योग में स्थान, समय और भोजन का विशेष महत्व होता है। इनके अनुसार प्राणायामादि में अन्तर हो जाता है। जैसे—स्थान उत्तेजना

(anxiety) उत्पन्न करने वाला न हो, जंगल आदि की तरह असुरक्षित न हो (गुफा उचित है), भीड़ भरा स्थल न हो जो तनाव उत्पन्न करें।

भोजन पवित्र तथा शाकाहारी हो, न बहुत गर्म, न बहुत ठण्डा, न बहुत खट्टा, न नमकीन, न चटपटा हो। साधक २४ घण्टें में एक ही बार भोजन करे। भोजन सुपाच्य और शक्तिपूर्ण हो। लम्बा टहलना और तेजी से होने वाले शारीरिक अभ्यासों से बचता हुआ साधक को अ + उ + म अक्षरों में तोड़कर प्रणव का ध्यान करें।

'दूरस्थ पूर्वानुमान' साधना के आधार 'Practice (Yoga : Laya-Karma) में Sir John Woodroffe) ने लिखा है—साधक रजोगुण युक्त लाल रंग के 'अ' कार पर ब्रह्मा (विधि) का ध्यान ६ मात्रा तक इड़ा नाड़ी द्वारा पूरक करता हुआ करे। कुंभक से पूर्व उड्डयान बन्ध मुद्रा करे और सतोगुण युक्त काले रंग के 'उ' कार पर विष्णु का ध्यान ६४ मात्रा तक कुंभक में करे। शिव का ध्यान ३२ मात्रा (बीज मन्त्र के जप) तक पिंगला नाड़ी द्वारा रेचक करता हुआ उसके तमोगुण युक्त श्वेत रंग के 'म' कार पर करे। फिर इसी प्रकार पिंगला से पूरक कुंभक और इड़ा से रेचक करके अनुलोम-विलोम विधि से जप और ध्यान की संख्या बढ़ाता जाय।

इस विधि में त्रुटियाँ इस प्रकार हैं—

ब्रह्मा सतोगुणी हैं सतोगुण का रंग श्वेत है अतः 'अ' कार लाल नहीं श्वेत होगा। विष्णु रजोगुणी हैं। रजोगुण का रंग लाल है अतः 'उ' कार लाल होगा। शिव या शंकर जिन्हें रुद्र तथा संहारक शक्ति के रूप में माना जाता है वह तमोगुणी हैं। तमोगुण का रंग काला है अतः 'म' कार काला होगा। अब मात्राओं पर विचार करें तो प्राणायाम का अनुपात सर जान वुडरोफ के अनुसार ६ : ६४ : ३२ बनता है जो उचित नहीं है यह १६ : ६४ : ३२ होना चाहिये। अर्थात् इड़ा से पूरक १६ मात्रा में फिर कुंभक उड्डयान बन्ध के साथ ६४ मात्रा में और तब रेचक पिंगला से ३२ मात्रा में होना चाहिये।

महर्षि यतीन्द्र योगाश्रम (आगरा) सन् १९६८ में सन्यासियों के लिए ॐ ध्यान की व्यवस्था इस प्रकार थी—

विधि	बीज	इष्ट	गुण	रंग	प्राणायाम	नाड़ी	मात्रा
अनुलोम	अ	ब्रह्मा	सत्व	श्वेत	पूरक	इड़ा	१६
	उ	विष्णु	रजस	लाल	कुम्भक	बन्ध	६४
	म	रुद्र	तमस	काला	रेचक	पिंगला	३२
विलोम	अ	ब्रह्मा	सत्व	श्वेत	पूरक	पिंगला	१६
	उ	विष्णु	रजस	लाल	कुम्भक	बन्ध	६४
	म	रुद्र	तमस	काला	रेचक	इड़ा	३२

तांत्रिक ॐ साधना

आप लोगों को तान्त्रिक व्यवस्था काध्यान तो होगा ही। तन्त्र में ॐ का अर्थ ब्रह्म सम्बन्ध है। कुलार्णव संहिता (व २१९) के अनुसार—

'भोगेन मोक्ष आप्नोति भोगेन कुलसाधनम्।
तस्माद यत्नाद भोगयुक्तो भवेद वीरवरः सुधीः ॥'

अर्थात् बुद्धिमान और श्रेष्ठ वीर (साधक) यत्न पूर्वक भोगयुक्त रहे। वह भोगयुक्ति के द्वारा ही कुल (कुण्डलिनी) साधना से मुक्ति प्राप्त करता है। हो सकता है यहाँ कुछ दार्शनिक विचारधारा वाले लोगों की समझ में **यत्नपूर्वक भोगयुक्त रहने वाली बात कुछ अटपटी लगे क्योंकि वे तो भोगमुक्त होने के यत्न करने की बात सुनते आये हैं** (करते नहीं आये)। वे एक छोटा सा प्रयोग करके स्वयं देखें—पत्नी को तैयार करके मैथुन में प्रवृत्त हों, और प्रयत्न करें कि वीर्य क्षरण न हो; उनकी समझ में **यत्नपूर्वक भोग** की बात आ जायगी।

तन्त्र के अनुसार 'ॐ' मात्र स्त्री-पुरुष समागम का रेखाचित्र है। अब कुण्डलिनी के आधार पर इसकी साधना कैसे हो—सम्भोग की साधना में दो व्यक्ति (नारी और पुरुष) एक साथ साधना करते हैं। इस साधना से पूर्व की तैयारी के रूप में नारी को 'अश्विनी मुद्रा' का और पुरुष को 'वज्रोली' का अच्छा अभ्यास होना आवश्यक है। यदि केवल पुरुष ही अपनी साधना करे और नारी मात्र एक माध्यम (साथिन) के रूप में प्रयुक्त करना चाहे तो कर सकता है। इसी प्रकार नारी चाहे तो पुरुष को मात्र एक माध्यम (साथी) के रूप में उपयोग कर सकती है; वैसे सम भोग तो दोनों की साधना में ही समान भोग (आनन्द) देता है।

शाबरसिद्ध महिला

'खोये तन्त्रों की तलाश' में श्री ईश्वर सिंह बैस ने एक तान्त्रिक नारी के बारे में लिखा है कि कनखल के एक तान्त्रिक 'गोलू' से उन्होंने भवानी नामक महिला तान्त्रिक के बारे में बड़ी-बड़ी अटपटी बातें सुनीं जिसके कारण वे भवानी से मिलने पहुँचे। गोलू के विचार से 'नारी कभी सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकती। सिद्धि और तन्त्र की आड़ में भवानी अपनी हवस पूरी करती थी।' परन्तु अधिकांश लोग उसे दुर्गा का अवतार मानते थे। भवानी ने पूरा शाबर तन्त्र शास्त्र सिद्ध कर रखा था। शाबर तन्त्र के अधिकांश यन्त्रों की सिद्धि के लिये अक्षत योनि साथिन की आवश्यकता कही गई है। यदि अक्षत योनि कन्या न हो तो पत्नी को भैरवी रूप में प्रयोग करने की सलाह दी गई है परन्तु इस स्थिति में अनुष्ठान कुछ लम्बे समय तक किये जाते हैं। 'स्त्री' तन्त्र को सिद्ध करे ऐसा शास्त्रों में नहीं था अतः कनखल के त्रिपुर सुन्दरी मन्दिर के पास तन्त्र विद्या के अच्छे जानकार श्री हिमाद्रि घोष के साथ श्री ईश्वर सिंह बैस ने भैरवी के दर्शन किये। भवानी ने उन्हें नील कण्ठ मन्दिर में साक्षात्कार के मध्य बतलाया कि उसने स्वयं शिव की कृपा से उनका प्रिय तन्त्र 'शाबर' पूरा का पूरा सिद्ध कर लिया है। अनुष्ठानों के समय भैरवी भी वही रहती थीं और

साधक भी। उनका साथी पुरुष तो निमित्त मात्र रहता था। आचार्य सत्यानन्द ने 'तन्त्र विद्या' में इस भैरवी के साक्षात्कार का वर्णन दिया है।

तन्त्र सूत्र

जो व्यक्ति ऐश्वर्य भोग, इन्द्रिय सुख भोग आदि वासना तृप्ति पर ही रुक जाता है और काम से अगली सीढ़ी पर नहीं चढ़ता, तन्त्र उसे 'पशु' कहता है। तन्त्र के अनुसार प्रेम-क्रीड़ा का परिणाम सम्भोग, सम्भोग का परिणाम समाधि, समाधि का परिणाम अलौकिक आनन्द, आनन्द का परिणाम दिव्य प्रकाश होता है। **प्रेम-क्रीड़ा से दिव्य प्रकाश तक सम्पूर्ण व्यापार अद्वैत की अवस्था की गहराई पर निर्भर करता है। दिव्य प्रकाश आत्मा के तल का प्रकाश है। जो व्यक्ति इतना पहुँच जाय वही परमात्मा की बात समझ सकता है। उससे पहले परमात्मा की बात करना व्यर्थ है।** इस दिव्य प्रकाश की स्थिति लाने की विभिन्न विधियाँ भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित हैं। तन्त्र सम्भोग को ही साधना का क्षेत्र मान कर चलता है चूँकि अन्य विधियों वाले लोगों में लक्ष्य च्युत कराने वाला 'सम्भोग' ही पाया गया है।

एक बार हम लोग खेत में होकर गाँव जा रहे थे, वहाँ मेड (Boundry line of the field) के ऊपर से ही रास्ता (पगडंडी) था। लोगों ने पगडंडी को पतली करके नाली निकाल दी थी जिससे खेतों में पानी दिया जा रहा था। पूरी मेंड इतनी पतली कर दी थी कि उस पर चलने में हम लोगों के पैर बार-बार नाली में फिसल जाते थे। मेरा एक दोस्त भी साथ में था। हम लोग बहुत सम्भल-सम्भल कर मेंड पर चल रहे थे। इस दोस्त ने अपनी चप्पल उतारकर अपने हाथ में पकड़ीं और नाली में ही उतर कर चलने लगा। हम लोगों से बोला - अब आ जाओ। देखें कौन मेरी बराबरी करता है ? और सचमुच वह हम सब लोगों से आगे निकल गया।

यही सूत्र तन्त्र ने पकड़ा है। **बड़े-बड़े साधक 'काम' से हार जाते हैं। तन्त्र 'काम' में उतर कर ही दौड़ लगाने की विधि बताता है।** सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस विधि से लक्ष्य की ओर बढ़ने वाला आज तक के इतिहास में फिसला नहीं है। लक्ष्य च्युत नहीं हुआ है। इन्द्र की तपस्या को कोई भंग नहीं कर पाया और देवताओं का सिरमौर बन गया। परन्तु इन्द्र ने बहुतों की तपस्या भंग की। कामदेव को भस्म किया (अव्यर्थ किया) तो केवल शिव ने, क्योंकि शिव की तपस्या का प्रारम्भ ही शिव और शक्ति (पार्वती) के संयोग (अर्द्धनारीश्वर) से होता था। अब कामदेव क्या करेंगे ? जितना जोर दिखायेंगे उतना साधक और भी तेजी से लक्ष्य की ओर बढ़ता जायगा। यह तो नदी के बहाव की दिशा में नाव खेने वाली बात है। जितना नदी जोर देगी उतनी ही नाव और तेजी से आगे बढ़ेगी जितनी हवा जोर देगी उतनी ही नाव और आगे बढ़ेगी। **इस तेजी से बढ़ने में नाव की गति संयत रखने वाला ही 'वीर' कहलाता है, साधक कहलाता है।** पीछे कुलार्णव संहिता में 'तस्माद् यत्नाद भोग युक्तो भवेद वीर वरह सुधीः' में 'वीर' शब्द का यही आशय है।

ब्रह्म सम्बन्ध विधि

ॐ की 'शून्यस्थ साधना' की सफलता दोनों व्यक्तियों की साधना में ही निहित होती है क्योंकि साधक-साधिका दोनों की अद्वय स्थिति ही तन्त्र के अनुसार ॐ है। 'तांत्रिक ब्रह्म सम्बन्ध (ॐ) साधना' में सन्यासियों वाली ब्रह्मा, विष्णु, महेश (ॐ) साधना के 'बीज, इष्ट, गुण-रंग' से कुछ लेना देना नहीं होता। तन्त्र कहता है वे सब दर्शन (Philosophy) की मानी हुई बातें हैं। हम वही मानते हैं जो जानते हैं अर्थात् **हम मानने में विश्वास नहीं रखते, जानने में ही विश्वास करते हैं।** तांत्रिक ॐ साधना प्रारम्भ करने से पहले साधक-साधिका को कुछ दिन प्राणायाम के द्वारा श्वास गति को लय पूर्ण और श्वास का दबाव कम से कम करने का अभ्यास कर लेना अच्छा रहता है। सामान्य सम्भोग की तरह इस साधना में भी प्रेम क्रीड़ा को प्रचुर मात्रा में समय देना आवश्यक है। 'तांत्रिक सम्भोग' में 'ॐ' को नारी-पुरुष का अद्वय प्रमाणित करने के पश्चात् ॐ की साधना के बारे में लिखा है—लिंग प्रवेश से पूर्व साधिका साधक के बाँई ओर लेटे और साधक उसके दाहिनी ओर लेट कर एक दूसरे की ओर मुँह कर के प्रेम क्रीड़ा सम्पन्न करते रहें। थोड़ी देर में साधक पिंगला स्वर में और साधिका इड़ा स्वर में आ जायेंगे। यह हठ योग के नियम के अनुसार स्वतः ही होगा। इसके पश्चात् लिंग को योनि में प्रवेश किया जा सकता है। अतः साधक साधिका के ऊपर आकर सम्भोगासन में लिंग प्रविष्ट कराये और १६ प्रहर्षण (धक्के) लगाये, प्रत्येक प्रहर्षण के साथ साधिका भी अपनी ओर से प्रहर्षण दे। इसके बाद प्रहर्षण बन्द करके निश्चेष्ट परन्तु संश्लिष्ट अवस्था में ही रह कर दोनों श्वास स्थिर (सम) करने का प्रयत्न करें। श्वास स्थिर हो जाने पर लिंग प्रविष्ट दशा में ही साधक बाँई ओर, और साधिका दाहिनी ओर (पहली स्थिति के हिसाब से साधिका के स्थान पर साधक और साधक के स्थान पर साधिका) होकर अश्विनी मुद्रा के ६४ झटके (धक्के नहीं) लगायें। यह प्राणायाम के अनुपात में कुम्भक की अवस्था है अतः श्वास गति अत्यन्त मन्द रखनी है। इसके पश्चात् दोनों के स्वर में पुनः परिवर्तन हो जायेगा। साधक का दाहिना (पिंगला) और साधिका का बाँया (इड़ा) स्वर चलने लगेगा। यदि स्वर परिवर्तन में देर हो तो आलिंगन मुद्रा में ही प्रेम क्रीड़ा सम्पन्न करते रहें।

स्वर परिवर्तन होना ही अन्तःशरीर के तैयार होने का प्रमाण है। स्वर परिवर्तन होने पर साधक ऊपर आ जाय और ३२ प्रहर्षण करे। प्रत्येक प्रहर्षण के प्रति उत्तर के रूप में साधिका भी ऐसा ही करे। यदि इस बीच स्वर परिवर्तन हो जाय तो युगनद्ध अवस्था में ही साधक बाँई ओर, और साधिका दाहिनी ओर (साधक के ऊपर आने से पूर्व की अवस्था में) हो जाय जिससे स्वर (श्वास प्रश्वास की दिशा) सही हो जाय। अर्थात् साधक का दाहिना (पिंगला) और साधिका का बाँया (इड़ा) स्वर चले।

अब विलोम क्रिया सम्पादित करने के लिये साधिका साधक के ऊपर आकर (जिससे साधक पिंगला में और साधिका इड़ा स्वर में रहेगी) १६ प्रहर्षण दे, और प्रत्येक प्रहर्षण के प्रतिउत्तर में साधक नीचे से प्रहर्षण करे। अब साधिका बाँई ओर और साधक

दाहिनी ओर (पहली करवट के अनुसार) युगनद्ध बने रहें। अब दोनों श्वास को स्थिर करते हुए साधिका ६४ झटके अश्विनी मुद्रा के दे जिसका प्रतिउत्तर साधक वज्रोली से देगा। इस बीच स्वर परिवर्तन होने पर साधिका (पिंगला स्वर में और साधक इड़ा स्वर में) पुनः ऊपर आकर ३२ प्रहर्षण देगी जिसका उत्तर साधक को भी देना होगा।

महर्षि यतीन्द्र योगाश्रम, बम्बई में सन् 1978 में विवाहित युगल के लिए 'तांत्रिक ॐ साधना' की सारणी इस प्रकार रही—

विधि	प्राण	नाड़ी साधक	नाड़ी साधिका	अधम मात्रा	मध्यम मात्रा	उत्तम मात्रा
अनुलोम (साधक ऊपर रहे)	मुक्त	इड़ा	पिंगला	४	८	१६
	सम	सुषुम्ना	सुषुम्ना	१६	३२	६४
	मुक्त	पिंगला	इड़ा	८	१६	३२
विलोम (साधिका ऊपर रहे)	मुक्त	पिंगला	इड़ा	४	८	१६
	सम	सुषुम्ना	सुषुम्ना	१६	३२	६४
	मुक्त	इड़ा	पिंगला	८	१६	३२

उपर्युक्त विवरण में दी गई 'उत्तम मात्रा' (१६ : ६४ : ३२ के अनुपात) तक पहुँचने के लिये पहले साधक-साधिका अधम मात्रा की कम से कम 'एक रति' का अभ्यास करें। कुछ दिन में ठीक अभ्यास होने लगे, तब मध्यम मात्रा की एक रति का अभ्यास करें और तब अन्तिम मात्रा 'उत्तम' की रति का अभ्यास करें।

किसी भी एक मात्रा का अनुलोम तथा विलोम दोनों विधियों से अभ्यास करने पर एक चरण पूरा होता है। ऐसे ४ चरण मिलकर एक प्रहर कहलाता है, और आठ प्रहर की एक रति होती है। उत्तम मात्रा की कम से कम एक रति पूरी करना एक स्वस्थ व्यक्ति के लिये सामान्यतः आवश्यक है। ऐसी कई रति क्रियाएँ एक साथ मिलकर **'सम्भोग' कहलाती हैं, जो वीर्य की अधोगति हो जाने पर 'भ्रष्ट सम्भोग' अथवा ऊर्ध्व गति होने पर 'सफल सम्भोग'** कही जाती हैं। जितनी अधिक रति-संख्या होगी उतनी सम्भोग साधना लम्बी होगी। **लम्बी साधनायें ही दिव्य प्रकाश की ओर व्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं।**

सम्भोग काल को लम्बा बनाने के चक्कर में बहुत से तान्त्रिक नशीली वस्तुओं का उपयोग करते हैं। वह **'निकृष्ट सम्भोग'** है। क्योंकि नशे में व्यक्ति अर्ध मूर्च्छावस्था में रहता है। योग में सतत चैतन्यता आवश्यक है। **चैतन्यता रहित सम्भोग पशु तुल्य है।**

चैतन्यता में ही आनन्द की खोज की जा सकती है। सर्वानन्दमयी परम चेतना ही योगी का प्रथम सोपान है। **मूर्च्छा में जीने वाला भोगी होता है।**

विपरीत मैथुन का वर्णन करते हुए सर आर्थर एवलौन ने 'मन्त्र' के अन्तर्गत स्पष्ट किया है—In Viparita Maithuna, Sakti is above Siva, and moving on and in Coition with Him because she is the active and He the inert consciousness. **–The Serpent Power.**

बम्बई, मड आईलैंड सन् १९८० में एक 'चौधरी दादा' नाम के बंगाली व्यक्ति से भेंट हुई। वे अच्छे योगी थे। काम वासना को साधना में रुकावट समझने के कारण पत्नी की रोज-रोज की कलह उनकी गृहस्थी उजाड़ रही थी। उन्हें कहीं से मेरे बारे में पता लगा कि इस विषय में उन्हें शायद मुझसे कुछ सलाह मिल जाय जिससे वे पत्नी को वश में कर सकें। मैंने उन्हें काम साधना की सभी बारीकियाँ समझाने के बाद उन्हें आदेश दिया कि वे आज से **पत्नी को आध्यात्म के मार्ग की विषैली नागिन न समझकर उसे मार्ग की सहचरी मानें** दोनों साथ मिलकर अपनी साधना आगे बढ़ायें। उन महोदय की एक और और समस्या थी कि वे शीघ्र-पतन के शिकार थे। मैंने उन्हें उचित काम-केलि के पश्चात् योनि में लिंग प्रवेश करके सो जाने की बात बताई। वे इसे असम्भव कहते थे। बहुत समझाने पर वे इसके लिये सहमत हुए क्योंकि उनकी पत्नी पहले ही उन्हें शीघ्र-पतन के कारण हीन-भाव से देखती थी। साथ ही उन्हें हिदायत दी गई कि वे जो करने जा रहे हैं, उसकी पूर्व सूचना पत्नी को नहीं देंगे।

अगले दिन वे मेरे पास आये उन्होंने बताया कि जब वे बहुत देर तक बिना अधिक हिले-डुले लिंग प्रविष्ट करके युगनद्ध पड़े रहे तो उनकी पत्नी को कुछ अटपटा लगा, पूछताछ हुई। उनकी पत्नी ने इतना ही कहा कि "इन गुरू जी से आप पहले क्यों नहीं मिल लिये ?" उस दिन उन्हें मैंने कहा वे पत्नी को अश्विनी मुद्रा सिखायें और ४-६ बार युगनद्ध अवस्था में आज अश्विनी का प्रयोग करें और सो जाँय। वीर्य क्षरित न होने दें। उन्होंने ऐसा ही किया। धीरे-धीरे उनकी पत्नी भी आज्ञाकारिणी हो गई। घर की कलह भी बन्द हो गई। कुछ दिन बाद उन्होंने बताया कि उन्हें अब परिवार नियोजन हेतु कुछ भी प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं रही। उनका शीघ्र-पतन वज्रोली-अश्विनी मुद्रा से ठीक हो गया है और दोनों ही अपने में पहले से अधिक प्रेम तथा आकर्षण अनुभव करते हैं। साथ ही उनमें स्फूर्ति (Activeness) बढ़ी है।

लगभग ६ मास में यह युगल 'तान्त्रिक ॐ साधना' सफलतापूर्वक करने लगा था। हर रात ३-४ घण्टे तक सम्भोग रत रहते हुए भी लगभग ६ मास से वीर्य अथवा रज क्षरित न होने देने के कारण ब्रह्मचारी युगल 'तांत्रिक ॐ साधना' के अन्तर्गत ध्यान के समय हुए अनुभवों में से 'श्री चौधरी' का एक बार का अनुभव देखिये—

वज्रोली मुद्रा सम्पन्न करने के समय मेरी श्वास बहुत मन्द हो रही थी। मुझे इतना अच्छा लग रहा था कि मेरा मन आँखें खोलने को नहीं हो रहा था। मैं अश्विनी के झटके

ले रहा था कि मुझे लगा—मेरे सामने एक ऐसा समुद्र है जिसमें हीरे और चमकदार पत्थर भरे पड़े हैं और बहुत सा गाढ़ा-गाढ़ा उसमें पानी है। मेरे मस्तिष्क में आ रहा था कि 'यह अमृत (Nectar) है।' अमृत की बात आने से मेरे मस्तिष्क में विष्णु भगवान की बात आई। सोचा, इस अमृत भरे समुद्र में कहीं वह भी तो नहीं है। मैंने उस समुद्र में खोजना प्रारम्भ किया तो समुद्र के बीच में ऐसा बाग दिखाई दिया जिसमें सोने के वृक्ष थे। वृक्ष तो आम के से थे पर उनमें फूल कमल के थे जिनमें से पराग टपक रहा था। बाग के पास नदी थी। बाग में कोयल की सी 'कूक' की ध्वनि भी थी।

वृक्षों में मैंने कोयल देखने की कोशिश की तो कुतरे हुए मातुलिंग चमकने लगे, जैसे तोते आमों को कुतर जाते हैं। मैंने तोते उन वृक्षों के बीच ढूँढने का प्रयत्न किया। तो लगा कि वृक्षों के बीच कदम्ब का बाग है। कदम्ब के पेडों के नीचे सिद्ध गुरु लोग बैठे हैं। तपस्यालीन हैं। कदम्ब के पेड़ों के बीच में मणियों से बना किला चमक रहा था जिसमें २५ परकोटे थे। मैं किले के अन्दर भी देख रहा था। वहाँ आँगन (सहन) में सिंहासन था उसके चारों ओर आकाश गंगा की तरह सितारे झिलमिल कर रहे थे। सिंहासन के चारों ओर १२८ सुन्दरियाँ थीं जिनमें ६४ सफेद वस्त्रों में थी और ६४ रंगीन वस्त्रों में थीं। उन्हें देखकर मुझे लगा कि यह स्वर्ग है तो इन्द्र भी कहीं होंगे। मैंने चारों ओर इन्द्र के दर्शन के लिये आँखें घुमाई तो यह देखकर मैं दंग रह गया कि इन्द्र द्वारपाल बने परकोटे के द्वार पर खड़े थे। इसका अर्थ था कि मैं इन्द्रपुरी से भी ऊँची जगह पर था तब सिंहासन पर देखा। सिंहासन रंग-बिरंगा श्री-चक्र सा लगा। उसके मध्य में शिव अपनी षोड़षी शक्ति (भगवती) को अंक में भरे दिखाई दिये। पता नहीं कितनी देर तक उस नारी नटेश्वर को देखता रहा ? पत्नी को झकझोरने पर वह आनन्द समाप्त हो गया।

पत्नी कहती है कि आपकी श्वास मन्द होते-होते बन्द सी हो गयी पर वज्रोली के झटके मुझे मिल रहे थे इसलिए मैं घबराई नहीं। मैंने सोचा आप समाधि में होंगे। धीरे-धीरे आपकी ओर से झटके कम होते गये और फिर बन्द हो गये, परन्तु लिंग में भरपूर कड़ापन था, इसलिये मैं बराबर अश्विनी के झटके देती रही। धीरे-धीरे मुझे भी ध्यान दर्शन प्रारम्भ हो गया। फिर पता नहीं कब मैं अपने ध्यान रंग में खो गई। मेरा ध्यान दर्शन पता नहीं क्यों टूट गया परन्तु आप फिर भी निश्चेष्ट थे तो मैंने आपको झकझोर कर उठा दिया।

'तांत्रिक ॐ साधना' के प्रारम्भ करने के ८ मास बाद का श्रीमती चौधरी का एक अनुभव—

लगभग ४ घण्टे तक हम लोग विभिन्न रति क्रियाएँ संपादित करते-करते थक से गये थे। सोच रहे थे कि अब खेल बन्द करें कि मैं ध्यान दर्शन (Trance) में आ गई। प्रारम्भ में मुझे अश्विनी मुद्रा का भी ध्यान रहा। फिर तो अनोखी वस्तुएँ देखने में मग्न हो गई।

मुझे लाल रंग के ४ पुष्प दलों वाला कमल दिखाई दिया। उन दलों पर तपाये हुए सोने जैसे रंग से वं शं षं और सं अक्षर दिखाई दिये। कमल के बीच में खाली स्थान पीले रंग का था जिसकी आठों दिशाओं में एक-एक शूल था। उस वर्गाकार पीले स्थान में 'लं'

अक्षर चमक रहा था। वह अक्षर कई सूँड वाले सफेद हाथी पर सवार दिख रहा था। इस सुनहरे 'लं' में बिजली की सी चमक थी। इस चकम पर गौर करने से लाल रंग का चार हाथों वाला और चार मुँह वाला एक बच्चा दिखाई दिया। बच्चे के हाथ में एक डंडा, कमंडल, रुद्राक्ष माला थी और एक हाथ अभय मुद्रा में उठा था। उसे देखकर मेरे मन का भय दूर हो गया। मैंने निर्भय होकर और अधिक देखना प्रारम्भ किया तो लाल कमल पर लाल रंग की एक देवी दिखाई दी जिसके चार हाथ थे। उनमें शूल, खत्वांग, खड्ग तथा चषक (प्याला) था। गुरु जी ने उस देवी का नाम डाकिनी बताया था। 'लं' के अन्दर एक बिजली की तरह चमकता हुआ अधोमुखी त्रिभुज था जिसके अन्दर काम वायु और काम बीज भरा था। उसके ऊपर श्याम वर्ण का लिंग था। इस लिंग के चारों ओर साढ़े तीन चक्कर लगाये (शायद) कुण्डलिनी शक्ति थी। लिंग्र के ऊपर चमकदार 'चित्त कला' थी जिसकी दंड के समान स्थिति थी।

जब मैंने गुरु जी को अपना यह अनुभव सुनाया तो वे बहुत प्रसन्न होकर बोलने लगे—

'ध्यायेत कुण्डलिनी देवी स्वयं भूलिंगवेष्टिनीम्
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टि रूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्
विश्वातीतां ज्ञान रूपां चिन्तयेदूर्ध्व वाहिनीम्॥

इन दोनों व्यक्तियों के अनुभवों में एक बात स्पष्ट होती हैकि ध्यान-दर्शन श्वास सम होने पर (प्राण के सुषुम्ना में गति करने पर) ही होता है। यही वह समय है जब साधक-साधिका शून्यस्थ हो पड़ते हैं, निर्विचार हो पड़ते हैं। इस अवस्था की अनुभूतियाँ ही समाधि की अनुभूतियाँ हैं। योग तालिका १९ तथा २० के समाधि परिणाम एक जैसे रहेंगे। यहीं सम्भोग से समाधि फलित होती है। [इन अनुभवों में मनोवैज्ञानिक दर्शन का प्रचुर मात्रा में मिश्रण प्रतीत हो रहा है, जो साधकों के दार्शनिक ज्ञान के कारण होता है। कुछ काल के निरन्तर नेति नेति के अभ्यास से मनोवैज्ञानिक दर्शन के स्थान पर सत्य-दर्शन प्रारम्भ होने लगते हैं।]

गायत्री मंत्र

मेरा अपना विचार है कि गायत्री मंत्र शुद्ध सतोगुणी 'कुण्डलिनी मंत्र' है। **कुण्डलिनी का सेवक धीरे-धीरें वर्तुलाकार वृत्ति की ओर इस सीमा तक अग्रसर होता है कि उसे दूसरे व्यक्ति (नारी अथवा पुरुष) की आवश्यकता नहीं रह जाती और अपने में ही अपना आनन्द भोग करता हुआ उच्च, उच्चतर एवं उच्चतम अवस्था की ओर उठता जाता है। यदि आप गायत्री का तांत्रिक अर्थ लगायें, तो जो भोग के द्वारा कुण्डलिनी जगाना चाहते हैं उन्हें भी उतना ही दिशा दर्शन देता है जितना कि उनको, जो योग के द्वारा, कुण्डलिनी जगाना चाहते हैं देखिये—**

भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्।

(यह सात प्राणायाम की व्याहतियाँ है) ॐ अर्थात् अ, उ, म्—ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों की शक्ति से व्यक्ति एक-एक करके प्राणायाम की सहायता से सात आध्यात्मिक स्तरों को प्राप्त करता है। जो कि कुण्डलिनी के षटचक्र भेदन के अन्तर्गत आते हैं। **'तत् सवितुः वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियोयोनः प्रचोदयात्।'** (अर्थात् हम सूर्य के दिव्य प्रकाश का ध्यान करते हैं। यह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे)। यदि आपको ध्यान हो कुण्डलिनी का वर्ण 'प्रातः सूर्य सम प्रभा मय' कहा गया है। जो प्रभा प्रातः सूर्य की होती है, वहीं संध्या के सूर्य की होती है। उस प्रभा का ध्यान करने के लिये गायत्री मंत्र को दोनों समय की संध्या वन्दन में स्थान दिया गया है। **रात में गायत्री जप निषेध है** स्वामी चिन्मयानन्द ने अपनी पुस्तक 'Meditation & Life' में इसे स्पष्ट किया है।

यदि वैदिक-सनातन गायत्री-पद्धति पर ध्यान दें तो इस मंत्र को सूर्य की ओर मुँह करके दोनों संध्या काल में कमर तक पानी में खड़े होकर, दोनों हाथों की अंजली में पानी भर कर खड़े-खड़े जपने की बात की है। प्रत्येक मन्त्र की समाप्ति पर बार-बार अंजलि में पानी भरा जाय। ऐसा विधान इसलिये है कि यह सूर्य मंत्र शरीर के अन्दर बहुत गर्मी उत्पन्न करता है। जिसका विशेष प्रभाव संतानोत्पादक भाग पर होता है। उस भाग को ठंडा बनाये रखने के लिये कमर तक पानी में खड़ा होना एक बाह्य उपचार है, बार-बार अंजली में पानी भरना ऐसे ही है, जैसे लोहा काटते समय उस पर बार-बार पानी डालना आवश्यक होता है। इसके साथ ही तलवे और हथेलियों से शरीर की गर्मी को जितना शीघ्र निकाला जा सकता है उतना किसी दूसरे अंग से नहीं। इसलिये पैर और हाथ पानी में कर दिये जाते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि लू के सताये रोगी की गर्मी हथेली और तलवों से निकालने के बाह्य उपचार वैद्य लोग कराते हैं। प्रत्येक मंत्र के पश्चात् हाथ का पानी बदलने (अर्ध्य तर्पण करने) के पीछे भी यही रहस्य है कि पानी गर्म होने के पश्चात् हाथों में ठंडा पानी भरा जा सके।

कोई भी शक्ति उत्पन्न करें गर्मी पैदा होती है, यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यदि उस गर्मी को संयत न किया जाय तो वह भयावह परिणाम देती है। एटम-बम आदि इसी नियम पर आधारित होते हैं। कुण्डलिनी जागरण काल में जो गर्मी उत्पन्न होती है उसे भिन्न-भिन्न प्रकार के उपायों (चन्दन का उपयोग, खस के इत्र का उपयोग, घी, दूध, मलाई, मक्खन आदि का उपयोग) से शमन करने के प्रयत्न किये जाते हैं। आपने सम्भवतः ध्यान दिया हो, ध्यानावस्था में लोग (गर्मी के कारण) कपड़े उतारकर फेंक देते हैं।

तांत्रिक विधि भी यही कहती है कि ब्रह्म सम्बन्ध (रमण) से षडचक्र भेदन होता है और व्यक्ति उच्चतम अवस्था की ओर अग्रसर होता जाता है। गायत्री मंत्र का भाव है—'दिव्य सूर्य प्रभा पर हमारा ध्यान होता है जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करती है।' **यह सूर्य प्रभा कुण्डलिनी प्रभा ही है जो सहस्रार की ओर चढ़कर बुद्धि (Intellect) को ज्योतिर्मय (Illuminate) करती है।** बड़ी सरल और वैज्ञानिक बात इस मन्त्र में कही है। तांत्रिक लोग गर्मी शांत करने के लिये सम्भोग को ही श्रेष्ठ मानते हैं। आयुर्वेद ग्रन्थों में

देखा है कि 'लू' के सताये हुए के लिए सम्भोग अच्छी चिकित्सा है। अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध के द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत होते समय जितनी गर्मी उत्पन्न होती है वह उसकी के द्वारा पचा दी जाती है। इत्र, स्नान आदि की क्रियायें वहां ब्रह्म सम्बन्ध को रुचिकर एवं प्रसन्न मुद्रा में बनाये रखने के विचार से सम्पादित होती हैं।

गायत्री का देवता सविता या सावित्री माना गया है। जो तीन से सेवित हो वह सावित्री। इस रूप में कुण्डलिनी तीन से सेवित होती है—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। गायत्री मन्त्र में प्राणायाम व्याहृतियाँ अलग से जोड़ी जाती हैं। वास्तव में सामान्य गायत्री मंत्र तीन पंक्तियों का है जिसकी प्रत्येक पंक्ति में आठ अक्षर हैं—

"तत् सवितुर्वरेण्यम्।
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।"

जगतगुरु शंकराचार्य ने ब्रहदारण्यक उपनिषद में 'ॐ' के साथ ही इस श्लोक को पूर्ण माना है, और इसे 'सावित्री गायत्री' कहा है चूँकि गायत्री छन्द में सावित्री के सम्बन्ध में कहा गया है। स्वामी चिन्मयानन्द ने 'Mantra and Japa – Gayatri' में कहा है कि That represents Lord Sun, is the accepted version even though there are some scholars who protest against this.

आगे स्वामी जी कहते हैं—The mantra, as it stands, obviously invokes the Lord Sun and pleads to him to illumine the intellect of the seeker. The Sunlight can not, it is certain, illumine in us the intellect ..... It is a prayer un to the self to unveil itself and come to manifest as pure wisdom in our life.

यहाँ स्पष्ट प्रकट करता है कि स्वामी चिन्मयानन्द गायत्री के इस अर्थ से सहमत नहीं हो रहे। ऐसे बहुत से प्रसंग हैं जहाँ हमारा जिज्ञासु सन्त अपने अनुभवों में गुप्त विद्या के कारण पक्का हो नहीं पाता। सावित्री का अर्थ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना से सेवित कुण्डलिनी शक्ति के सूर्य सम तेज की बात जमती है, **Which can really imllumine the intellect of the seeker.** (जो वास्तव में साधक की बुद्धि को ज्योतिर्मय करती है।)

समाधि दर्शन की प्रकिया

अन्तर्मन की क्रियाएँ बड़ी अद्भुत हैं। जितनी गहरी हमारी साधना जाती है, उतनी ही ऊँची उसकी सिद्धि फलित होती है। जैसे कि एक पेड़ की जड़ें जितनी अधिक गहराई में जाती हैं उतनी ही ऊँचाई पर उसके फल लगते हैं। इस विषय पर फ्रायड, युंग आदि बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने अनुसंधान किया है, परन्तु वह बहुत सतही (ऊपरी) काम है। योग अन्तर्मन की उस गहराई तक जाने वाली साधना है जहाँ ब्रह्म अचेतन (Cosmic

unconsciousness) की अवस्था आ जाती है, जिसकी सिद्धि ब्रह्म चेतन (Cosmic consciousness) होती है।

फ्रायड की काम वासना सम्बन्धी खोज प्रत्येक व्यवहार का केन्द्र 'वासना' मानते हुए भी भौतिक तल तक ही सीमित रह सकी, जबकि गुस्तक युंग इसे 'मनस' तक ले जा सके। उन्होंने 'वासना' को 'दर्शन' से जोड़ने का प्रयत्न किया। परन्तु हमारे ऋषियों ने वासना को ब्रह्म-चेतन तक पहुँचने की सीढ़ी बनाकर उसे पूर्णतः आध्यात्म से जोड़ दिया। चेतन से ब्रह्म-चेतन तक पहुँचने की प्रक्रिया ही कुण्डलिनी-योग की तांत्रिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति जितना अधिक सम्भोग की गहराई में **(पाठक ध्यान रखें, यहाँ सम्भोग की गहराई की बात की गई है, सम्भोगों की संख्या की नहीं, इसका भाव गुणात्मक है, गणनात्मक नहीं)** जाता है उतना ही वह आत्मा (ब्रह्म) के निकट पहुँचता जाता है। इसका प्रथम चरण (अति चेतन अवस्था) सम्भोग-रत रहते हुए भी वीर्य को स्खलित न होने देने में प्रकट होता है। **यही अन्तर्मन के वश में होने का प्रथम प्रकटीकरण है। हमारे बहुत से ऋषि इसी बिंदु पर फिसले हैं;** जबकि तन्त्र साधना का 'आरम्भ' यहीं से है। It is the zero point.

तपस्या के वैज्ञानिक दर्शन के अनुसार—बँधे चित्त की धारणा (Complete Concentration) वाला साधक ही अपनी आत्मिक शक्ति को विभिन्न ग्रहों तक भेजकर अपने संस्कारों के आवरण हटा सकता है। ज्यों-ज्यों आत्मा पर आच्छादित आवरण (Layers) हटते जायेंगे, उसकी शुद्धता तथा तेजोमयता निखरती चली जायेगी। तत्व ज्ञान का सिद्धान्त है कि जितने कम कर्म बन्धनों के आवरण आत्मा पर आच्छादित होंगे उतनी ही अधिक ऊँचाई तक ब्रह्मांड में आत्मा जायगी, और जितनी अधिक ऊँचाई तक आत्मा जा सकेगी उतनी ही अधिक श्रेष्ठ योनि में पुनर्जन्म होता है। शनः-शनः लगातार धारणा और ध्यान के अभ्यासों से ऐसे व्यक्ति की आत्मा शरीर त्याग के पश्चात् आकाश में उस स्तर तक पहुँचने लायक हो जाती है, जहाँ से वह वापस पृथ्वी पर नहीं आती। जब पृथ्वी की ओर नहीं आती तो जन्म नहीं हो सकता, और जन्म नहीं तो मृत्यु भी नहीं; इस जन्म-मरण से छुटकारे को ही मोक्ष कहा जाता है।

विलोम क्रिया में आप पायेंगें कि मोक्ष के लिये आत्म-शुद्धि चाहिये, आत्म शुद्धि के लिये संस्कार मुक्ति चाहिये। संस्कार मुक्ति मंत्रों द्वारा प्राप्त नक्षत्रों की शक्ति से होती है। उसके लिये ऊँचे स्तर की धारणा की आवश्यकता है। उसके लिये सक्षम मस्तिष्क चाहिये। मस्तिष्क की क्षमता ओज पर निर्भर होती है, और 'ओज निर्माण' कुण्डलिनी योग पर। 'वासना रहित संभोग' कुण्डलिनी तंत्र की प्राकृतिक और सहज प्रक्रिया है जिसकी सिद्धि यम-नियम आदि अष्टांग योग से ही होती है।

■

२७

कुण्डलिनी तीसा

कुण्डलिनी की बातें करते बड़े-बड़े अभिमानी देखे।
इड़ा पिंगला और सुषुम्ना के बातूनी योगी देखे ॥ १ ॥
योगी देखे, भ्रष्टी देखे, भ्रष्टी के कारण भी देखे।
ब्रह्मचर्य की बातें करते व्यभिचारी बहुतेरे देखे ॥ २ ॥
कुण्डलिनी है विद्या ऐसी बिना 'किये' नहीं समझे कोई।
कहने सुनने वाले लाखों, 'करने' वाला बिरला कोई ॥ ३ ॥
महा व्यक्तिगत बात 'प्रेम' है सामूहिक में भान नहीं है।
कुण्डलिनी अनुभव की कोई ज्ञान-अनुमान नहीं है ॥ ४ ॥
कुण्डलिनी केवल काम शक्ति जो उठती मूलाधार से।
मूल से. ब्रह्मांड तक जाती बड़ी फुंकार से ॥ ५ ॥
कोई जरा सा छेड दे अगर सोते साँप को।
वह भनभनाकर फन उठाता, चैतन्य जाग्रत साँप हो ॥ ६ ॥
ऐसे ही अपनी काम-शक्ति छेड़ते योगी 'यती'।
वह भड़भड़ाकर रीढ़ से ब्रह्मांड तक है काँपती ॥ ७ ॥
काम शक्ति उद्वेलित करते पूर्ण प्राकृतिक विधियों से।
काम ज्ञान को पूर्ण परखते परिचित होते निधियों से ॥ ८ ॥
ब्रह्मांड सिर में, मूल लिंग में, मेरु दण्ड ही रास्ता है।
वीर्य बनकर ओज, चढ़ता, सर्प के सम भासता ॥ ९ ॥
वीर्य का चढ़ना, गिराना जिसके वश में हो गया।
वही अपना ईश, स्वामी इन्द्रियों का हो गया ॥ १० ॥
वीर्य फेंकना है 'रिलीफ' पर रखना उसका है आनन्द।
वीर्य-शक्ति जब 'तेज' बने तब मिल पाता है परमानंद ॥ ११ ॥
पत्नी वह नारी होती जो वंश की वृद्धि करे पति का।
परन्तु धर्म-पत्नी होती जो 'धर्म-सहयोग' करे पति का ॥ १२ ॥

धर्म अर्थ काम और मोक्ष हेतु होती है हर शादी।
परन्तु मोक्ष के नाम पर व्यक्ति की होती देखी बरबादी ॥ १३ ॥
'धर्म-सहयोग' है कुण्डलिनी का ऊर्जावर्धन मूलाधार।
जिसके लिये समागम होवे कम से कम घंटे दो-चार ॥ १४ ॥
मूलाधार रजस-योनि और श्याम स्वयं-भू होता है।
ऐरावत की चाल समागम बहु मुद्रा में होता है ॥ १५ ॥
जब-जब बिंदु स्खलन आये वज्रोली कुंभक में मार।
नारी करे 'अश्विनी' उठती परमानन्द अमृत की धार ॥ १६ ॥
यह आशय शिव-लिंग दिखाता बेल पत्र औषधि उसकी।
अंग चिकित्सा हेतु बतावे जल-धारा से पुष्टि इसकी ॥ १७ ॥
स्वाधिष्ठान से ओज शक्ति, जलवर्ण छटा में चढ़ती है।
विष्णु शक्ति सी पोषण करती आगे-आगे बढ़ती है ॥ १८ ॥
मणिपूरक में अग्निवर्ण हो खाया पिया हजम करे।
रुद्र शक्ति सी मेषांध हो विष को भी जो भस्म करे ॥ १९ ॥
अनाहत है वायु चक्र जहाँ श्वास चले मृग जैसी चाल।
बाण लिंग और योनि स्वर्णिम क्षण में मंद त्वरित हो चाल ॥ २० ॥
विशुद्ध चक्र है गल-ग्रन्थि पर वाणी पर अंकुश रखता।
ऐरावत सी धीमी वाणी विश्वास भरी बातें करता ॥ २१ ॥
आज्ञा चक्र के लिंग योनि वासना रहित हो कर्म करें।
चना रूप में व्यक्ति अर्ध नारीश्वर ही से रहा करें ॥ २२ ॥
मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध।
आज्ञा चक्र तक होता है क्रमशः जगत-समागम शुद्ध ॥ २३ ॥
आज्ञा के पश्चात् नहीं नारी आवश्यक रह जाती है।
भोग, योग दोनों होते हैं 'शून्य' दशा हो जाती है ॥ २४ ॥
सहस्त्रार है 'शून्य', समागम अपने अन्दर हो जाता।
यही 'अर्ध-नारीश्वर' स्थिति, ब्रह्मचर्य असली आता ॥ २५ ॥
सहस्त्रार से पुनः शक्ति कपाल-कुह्वर में चलती है।
अन्दर अन्दर घुसती जाती, शीतल होती और जलती है ॥ २६ ॥
ईश्वर की अद्भुत गरिमा का आनन्द व्यक्ति को मिलता है।
एक एक कर कँवल बदन में मानों अंदर खिलता है ॥ २७ ॥
कुण्डलिनी जाग्रत करना भी है एक व्यवस्था तकनीकी।
विधि विधान तांत्रिक हैं यों और सिद्धि सदा ही है नीकी ॥ २८ ॥
अगणित विधियाँ कुण्डलिनी की पर सबसे अच्छी है 'नारी'।
नारी को 'शक्ति' मान चलो, शिव बनो स्वयं, कितनी न्यारी ॥ २९ ॥
यों 'कुण्डलिनी-तंत्र' ध्येय है 'काम-शक्ति से पाओ मोक्ष।
योग-भोग दोनों जीवन में, कभी न पाओ कोई शोक ॥ ३० ॥

—'दर्पण'

हिन्दी-अँग्रेजी शब्दावली

अम्बागर्जन	Roaring exercise
अनितासन	Pelvic pose
अलकासन	Mare pose
अर्चनाभ्यास	Centre setting exercise
अर्ध मत्येन्द्रासन	Spinal twist pose
अन्जनेयासन	Legs split pose
आकर्ण धनुरासन	Shooting bow pose
इन्दू मुद्रा	Hand toe pose
उड्डयान बंध और नौलि	Abdominal contraction
उर्वशी आसन	Thrilling pose
उत्तित्थ कूर्मासन	Tortoise pose (in balancing)
उर्ध्व पद्मासन	Head stand lotus pose
ऊषासन	Legs up pose
एक पाद हस्तासन	Leg hand pose
एक पाद शिरासन	Leg head pose
कर्ण पीड़ासन	Ear knee pose
कपोतासन	Pigeon pose
काकासन	Crow pose
कान्तासन	Arms pose
कुसुमाभ्यास	Eye ring exercise
कुक्कुटासन	Cock pose
कूर्मासन	Tortoise pose
खंड पीड़ासन	Ankle twise
गर्भासन	Bending lotus pose
गरुड़ासन	Eagle pose
गो मुखासन	Cow head pose

गोरक्षासन	Ankle knee pose
चक्रासन	Wheel pose
चंद्रकलाभ्यास	Eyes swinging exercise
जसवीर मुद्रा	Single cheek exercise
जानुशिरासन	Head knee pose
जीत मुद्रा	Lips space exercise
तोलांगुलासन	Balance pose
त्रिकोणासन	Triangle pose
द्विपाद शीर्षासन	Head knee pose
धनुरासन	Bow pose
नटराजासन	Nataraj pose
नाभिपीड़ासन	Upward twist of ankle
निशासन	Long breath pose
नीलमासन	Hip pose
नेहासन	Wall-feet pose
पद्मासन	Lotus pose
परविन्दर व्यायाम	Cheek developing exercise
पर्वतासन	Mount pose
पश्चिमोत्तानासन	Head knee pose
पादांगुष्ठासन	Tip toe pose
पाद हस्तासन	Hand to feet pose
पुष्पाभ्यास	Eyes throwing exercise
पूनम मुद्रा	Neck stretch pose
बकासन	Crane pose
बद्ध पद्मासन	Bound lotus pose
भद्रासन	Ankle knee pose
भुजंगासन	Cobra pose
ममता वाणी	Heart language
मध्यमा नौली	Central contraction
मत्स्यासन	Fish pose
मयूरासन	Peacock pose
मंजू मुद्रा	Arms stretch pose
मंडूकासन	Frog pose
योगदंतासन	Yogi's staff pose

योग मुद्रा	Lotus staff pose
रमा मुद्रा	Stomach pose
रनजीतासन	Neck knee pose
रजनी मुद्रा	Knee elbow pose
राज मुद्रा	Teeth saving exercise
वज्रासन	Kneeling pose
वक्रासन	Curved pose
वंदनासन	Thigh heel pose
वाम तथा दक्षिण नौलि	Left & right contraction
वातायनासन	One knee & foot pose (wind-relieving pose)
विनीतासन	Leg pose
वीणावाणी	Tingling language
वीरासन	Warrior pose
वक्षासन	Tree pose
वृश्चिकासन	Scorpion pose
शकुनाक्षि व्यायाम	Eyes circling exercise
शलभासन	Locust pose
शवासन	Corps pose
शक्ति चालिनी	Nerve power stimulation
शीर्षासन	Head stand pose
सरलासन	Easy pose
सरलेशासन	Corps pose
सतारान	Pillow feet pose
सरोज लहरी	Waving sound
सुखासन	Easy pose
सुदर्शन प्राणायाम	Dawn breathing
सुप्त वज्रासन	Kneeling pose
सुप्त वज्रासन (पूर्ण)	Diamond pose (in full kneeling position)
स्वास्तिकानासन	Ankle lock pose
स्वर्णाभ्यास	Common setting exercise
हरजीत मुद्रा	Double cheek exercise
हलासन	Plough pose
हस्तपादासन	Leg and arm stretching exercise

विशिष्ट योग क्रियाएँ

प्राणायाम	Wind purification
कुंजर क्रिया	Water purification
अग्निसार क्रिया	Fire purification (Breathing and abdominal manipulation)
वस्त्र शुद्धि	Cloth purification
हृद धोती	Cleaning of the tongue and root of throat
दन्त धोती	Cleaning of teeth
मूल शोधन	Rectum cleaning
शंख प्रक्षालन	Complete washing
जल नेति	Nose cleaning with water
सूत्र नेति	Nose cleaning with thread
नौली क्रिया	Manipulation of abdominal muscles
त्राटक	Gazzing exercise

■

★ उच्चस्तरीय प्रामाणिक साहित्य ★

प्रत्येक पुस्तक पर डाक खर्च अलग।

दीप पब्लिकेशन हॉस्पीटल रोड, आगरा-3